"JEEVAN SAKHA"

1945 G.K.U.

by Arya Samaj Foundation Chennai

Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

078735

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

COMPILED

078735

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन सखा

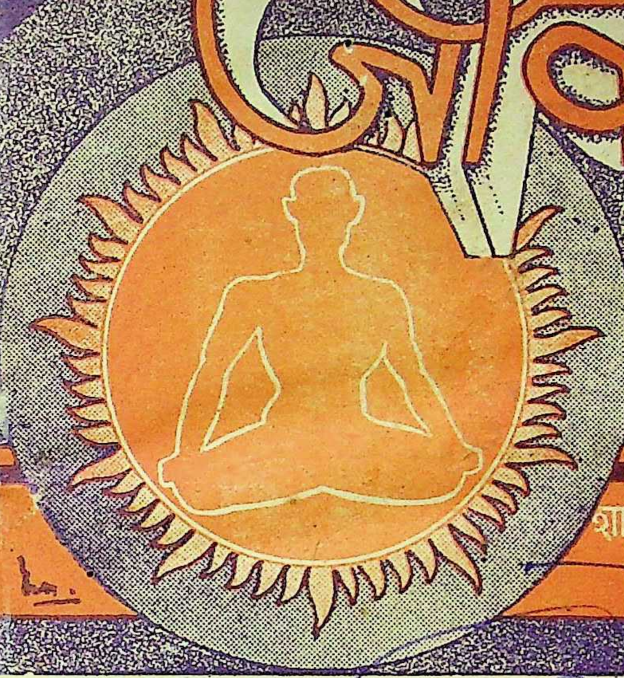

शारीरिक, मानसिक और नैतिक स्वास्थ्य
पथ-प्रदर्शक

"प्राकृतिक चिकित्सा को महंगी नहीं मानता, यह हमेशा लम्बी भी नहीं है। मैं तो इसे पहला स्थान देता ही हूँ। इसीलिये हो मैंने अपने लिए और स... चिकित्साओं को छोड़कर अपने आप इस चि...त्सा को किया और अच्छा हुआ। बालेश्वरप्रसाद को भेजोगे तो मैं खुश होऊंगा। ऐसे जितने चिकित्सक ...ं उनसे मिलना चाहता हूं। मेरा इस दिशा ... ज्ञान कतई पूरा नही है। इसलिए जो ...द मिले लेना चाहता हूं। आयुर्वेद को भी ... छोड़नेवाला नहीं हूँ और इसीलिए आहिस्ते ...म चलता हूँ।"—बापू

उस दिन बापू का मौन दिवस था। सेवा...म आश्रम के एक प्रमुख कार्यकर्त्ता प्राकृतिक ...कित्सा के सम्बन्ध में बापू की निश्चित राय ...ना चाहते थे तभी बापू ने उपर्युक्त मन्त्र ...कर उत्तर दिए। प्राकृतिक चिकित्सा-प्रणाली ...विशेषतः भारतीय प्राकृतिक चिकित्सा ...ली से बापू का नाम इस प्रकार जुड़ा ... है कि एक के बिना दूसरा रह ही नहीं ...ता। भारतीय प्राकृतिक चिकित्सा-प्रणाली

पाश्चात्य प्राकृतिक चिकित्सा प्रणा... नहीं, किन्तु उससे अपेक्षाकृत अ... है। इसमें जल, वायु, धूप और मि... के साथ साथ योग-शास्त्र तथा ... भी समन्वय हुआ है। उपचार-क... विशेषतः आहार सम्बन्धी नियमों ... भौगोलिक स्थिति के अनुसार ... अन्तर होना भी अनिवार्य है न इ... की दृष्टि से भारतीय प्राकृतिक ... प्रणाली पाश्चात्य चिकित्सा-प्रणा... न होती हुई भी अपना एक अ... और मौलिकता रखती है। और ... भारतीय चिकित्सा-प्रणाली के आदि...

आज कोई नौ-दस महीने हुए ... बीमारी के कारण सरकार ने बा... खां पैलेस में कैद रखना खतरे ... समझ कर उन्हें बिना किसी श... दिया। सचमुच उनकी बीमारी ... में—पब्लिक संसार के अन्य स... शोक और चिन्ता प्रकट की जा... डाक्टरी बुलेटिनों से आशङ्का और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसे अवश्य पढ़िये !

श्री कुलरंजन मुखोपाध्याय की एक

नयी और अनमोल पुस्तक

वैज्ञानिक जल-चिकित्सा

मूल्य सिर्फ दो रुपया

प्राकृतिक चिकित्सालय

रामगढ़ जैपुर

यहाँ आपको राजपूताने के प्रमुख प्राकृतिक-चिकित्सक डा० सत्यनारायण अग्रवाल [की] देख रेख में, हरेक रोग से निश्चित रूप से राहत मिलेगी । प्राकृतिक चिकित्सा [के] समस्त साधनों जैसे जल, मिट्टी, धूप, वायु, व्यायाम, उपवास, युक्ताहार, मालिश, [रंग] चिकित्सा, दुग्ध चिकित्सा, बिजली, मानसोपचार आदि से आप पूर्णतया परि-[चि]त हो, दूसरों को भी इन्हीं साधनों से रोग दूर करने की सलाह देने क़ाबिल हो [जा]येंगे ।

पूरी जानकारी के लिये डाक टिकट सहित लिखें—

प्राकृतिक चिकित्सालय,

रामगढ़ (जैपुर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Reg. No. A-172

शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्
NATURE ONLY HEALS

जीवन सखा

सम्पादक
डा० बालेश्वरप्रसाद सिंह

वर्ष १०] जनवरी, फरवरी १९४५ [अङ्क १, २

तत्त्व चिकित्सा का पुनरुत्थान

ले० श्रीयुत गंगाप्रसाद गौड़ 'नाहर'

[अकतूबर १९४४ के अङ्क से आगे]

जेम्स करी—डाक्टर जेम्स करी लिवरपूल के रहने वाले थे। सन् १७१७ ई० के लगभग इन्होंने एक जल चिकित्सा सम्बन्धी पुस्तक लिख कर प्रकाशित करवाई थी। बाद में एक और पुस्तक इन्होंने लिखी। कुछ दिनों बाद इन दोनों पुस्तकों का अनुवाद जर्मन भाषा में भी हो गया, जिससे इनकी ख्याति और भी बढ़ गयी।

प्रोफ़ेसर ऑरटॉल—एक शताब्दि बाद अर्थात् सन् १८०४ ई० में जर्मनी के शहर ऑसबैक के निवासी प्रोफेसर ऑरटॉल ने केवल जल पोकर सब रोगों को दूर करने की विधि का प्रचार किया, जिससे जर्मन-जनता जल के स्वास्थ्यवर्द्धक गुणों से और भी प्रभावित हो उठी।

विनसेंज़ प्रिस्निज़—यदि सच पूछा जाय तो उक्त डाक्टरों के समय तक जनता में फिर प्राकृतिक चिकित्सा का व्यावहारिक रूपसे प्रचार न हो सका था। इस काम को सर्वप्रथम किया जर्मन डाक्टर विनसेंज़ प्रिस्निज़ ने। यही कारण है कि कुछ विद्वानों की धारणानुसार डाक्टर प्रिस्निज़ ही आधुनिक चिकित्सा-प्रणाली के जनक माने जाते हैं। जो भी हो, किन्तु यह तो सत्य है कि आज से लगभग २३०० वर्ष पहले हियोक्रेटूस के उठाये हुये रोग उपशम सङ्कट वा Curative Crises के अनुसन्धान-कार्य को प्रिस्निज़ ने ही अपने काल में पूरा किया। इस तथ्य से भी इन्कार नहीं किया जा स[कता] कि आधुनिक प्राकृतिक चिकित्सा का आन्दोलन, आज से सवासौ वर्ष वा विनसेंज़ प्रिस्निज़ के समय से ही आरम्भ हुआ।

जर्मनी के सिलेसियन पहाड़ की तरेटी में स्थित एक गा[ँव में] एक साधारण एवं अशिक्षित गृहस्थ के घर, सन् १८०१ ई[०] लगभग प्रिस्निज़ का जन्म हुआ। कुछ बड़ा होने पर पिता ने [उन्हें] अन्य किसान बालकों की भाँति चरवाहे का काम सौंपा। [बालक] प्रिस्निज़ दिनभर घर के आस-पास के पहाड़ी जङ्गलों में [गायें] चराया करता था। एक दिन की बात है। वह अपनी गाय[ें] जङ्गल में चरा रहे थे, इसी बीच उन्होंने एक हिरनी को देख[ा] वह लंगड़ाती हुई एक झरने के पास पहुँची और लगभग आध[े घंटे] तक पानी में खड़ी रहने के बाद पानी से निकल कर जिध[र से] आयी थी उधर ही चली गयी। इस घटना से, अष्टवर्षीय [एवं] कुशाग्र बुद्धि रखने वाले बालक प्रिस्निज़ के दिल में यह जान[ने की] उत्कण्ठा हुई कि वह घायल हिरनी पानी में कुछ देर तक रह कर क्यों चली गई। ऐसा सोचकर उन्होंने दूसरे दिन भी [उसी] जगह छिपकर घायल हिरनी के आने की प्रतीक्षा की। हिरनी [उस] दिन भी, लगभग पहले दिन के समय पर ही फिर आयी [और] इस बार आध घंटे से कुछ अधिक समय तक पानी में ठह[री]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नः प्रस्थान किया। इसी प्रकार प्रतिदिन, तीन सप्ताह तक मय पर और नियमितरूप से वह आती और पानी में थोड़ी ; खड़ी रह कर चली जाती। प्रिस्निज़ बराबर उसकी गति-गेट करते रहे। उन्होंने देखा कि इस क्रिया से, हिरनी का श दिन-दिन कम होता जा रहा है। अंत में एक दिन जब र्णरूपेण अच्छी हो गयी तो उसके बाद फिर जल में खड़ी आयी। प्रिस्निज़ के हृदय पर इस घटना का प्रभाव अंकित ा। उस वर्ष उनकी अवस्था केवल ८ वर्ष की थी।

'परोक्त घटना के आठ साल बाद, एक दिन प्रिसनेज़ जङ्गल से काटकर घर लौट रहे थे कि एकाएक बर्फ की बौछार और इस ज़ोर की आयी कि उनको मज़बूर होकर रास्ते में ही ध्पर के नीचे शरण लेनी पड़ी। दैवयोग से वह छप्पर भी बौछार की तीव्रता को सहन न कर सका। और धराशायी ा। बेचारे प्रिसनेज़ उसी के नीचे दब गये, जिससे उनकी सलियाँ बुरी तरह से कुचल गयीं और उनके शरीर में वे घुस ीं। अभी वे छप्पर के नीचे ही थे कि उनको आठ वर्ष पहले रन वाली घटना याद हो आयी। उन्होंने दिल ही दिल में की कि इस विपद से निकलने के बाद अपनी पसलियों के में मैं पानी का ही उपयोग करूंगा। और उन्होंने किया ा ही। हिरनी की भाँति पानी में खड़ा रहकर उनको जल का न करना था, क्योंकि उनकी पसलियाँ टूटी थीं। सूती कपड़े ो पानी से तर कर के वह अपने अङ्गों पर रखते और उसे बारबार रहते। इस तरह कुछ ही दिनों तक करते रहने से उनकी क्रमशः कम होती गयी, अन्त में वे बिलकुल स्वस्थ हो गये।

स तरह से एक गँवार एवं अनपढ़ किसान बालक के सर, चिकित्सा के जनक होने का मौर बँधा। सन् १८२६ ई० में ज़ ने अपने घर पर ही जल-चिकित्सा करनी आरम्भ की। की तादाद में रोगी दूर-दूर से उनके घर आते और पानी के से रोग मुक्त होकर उनका यशोगान करते हुए घर वापस बाद को उन्होंने ग्रेफ़ेन बर्ग में एक चिकित्सा गृह की ा की, जिसमें उपचार के लिये संसार के कोने-कोने से झुंड रोगी पहुँचने लगे।

अन्य कितने ही उन्नायकों की भाँति प्रिसनिज़ भी, तत्कालीन -पंथी चिकित्सकों की आँखों में खटकने लगे। काफ़ी विरोध झूठी निन्दा, अपयश उपहास, गालियाँ, और यहाँ तक कि तों में क़ानूनी कार्रवाई। सभी को बारी-बारी से उन्हें ा पड़ा। लेकिन अंत में प्रिसनिज़ ही विजयी हुए। सत्य की विजय होती ही है। प्राचीन डाक्टरों द्वारा उपर्युक्त उत्पीड़न सनिज़ की मान-प्रतिष्ठा में चार चाँद लग गये। उनका गौरव और भी बढ़ गया।

प्रिसनिज़ की चिकित्सा प्रणाली में जल को ही अधिक महत्व दिया जाता था। भोजन में सादगी के भी वे पक्षपाती थे। उन्होंने यह अनुभव किया कि पुरानी बीमारियों को दूर करने का एक मात्र साधन यह है कि शरीर के भीतर की जीवनी शक्ति को तीव्र किया जाय, जिससे वह शरीर में एकत्र विषाक्त पदार्थों, तथा विभिन्न प्रकार के भोजनों के कारण रक्त में आये हुए विजातीय द्रव्यों (Toxins) को बाहर निकाल देने में समर्थ हो सके। लेकिन यह एक ऐसी प्राकृतिक प्रक्रिया है, जिसमें अधिक समय लगता है। यही कारण है कि वे अपने रोगियों को अपने चिकित्सा-काल में धैर्य्य धारण करने पर अधिक ज़ोर देते थे। उन्होंने अपने इस 'मोटो को' अपने स्वास्थ्य गृह के समीप, ठीक रास्ते पर एक पत्थर के खम्भे पर लिख भी रखा था। खम्भे पर लिखा था 'तुम्हें' धैर्य धारण करना होगा।' क्रमशः

(कवर पेज से आगे)

बोध होता था। किन्तु बापू के डाक्टरों को धोखा देने वाले पहले से ही प्रसिद्ध हो चुके हैं। उन्होंने इस बार भी डाक्टरों के भय तथा आशंका को निर्मूल सिद्ध कर दिया, प्राकृतिक चिकित्सा में उनका अटल विश्वास विजयी हुआ—उन्होंने रोग पर पुनः विजय प्राप्त कर ली और इसी सत्य को उन्होंने अपने पत्र में प्रकट किया है।

इस पत्र के द्वारा बापू ने प्राकृतिक चिकित्सा के विरुद्ध आम-तौर से लिए जाने वाले इस आक्षेप का भी उत्तर दे दिया है कि वह बहुत महंगी पड़ती है। यह आक्षेप असत्य ही नहीं, दूषित एवं पक्षपातपूर्ण धारणा का भी परिचायक है। सच तो यह है कि प्राकृतिक चिकित्सा ही गरीब भारत के लिए सबसे सहज और उपयुक्त चिकित्सा है। इसीलिए बापू ने उस कस्तूर बा-स्मारक फण्ड के अंतर्गत कार्यान्वित की जाने वाली योजना में इसे एक विशेष योजना में स्थान दिया है। उनका विचार देश के विभिन्न स्थानों में प्राकृतिक चिकित्सा के केन्द्र स्थापित का है। उनकी कामना है कि प्रत्येक भारतवासी इस नैसर्गिक चिकित्सा को अपनाये। बापू की यह सतत कामना फलवती हो, हमारी यही प्रार्थना है।

बापू का यह पत्र उन कथित चिकित्सकों के लिये एक चेतावनी के रूप में है जो आयुर्वेद को तिरस्कार की दृष्टि से देखते हैं अथवा जिनका यह ख्याल है कि प्राकृतिक चिकित्सा के साथ आयुर्वेद का कोई सम्बन्ध हो ही नहीं सकता। आशा है, वे अपना विचार बदलेंगे और यह महसूस करेंगे कि भारतीय प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली को एक मौलिक स्वरूप प्रदान करने के लिये यह आवश्यक है कि आयुर्वेद की अपेक्षा अथवा तिरस्कार न करके प्राकृतिक चिकित्सा के साथ सामंजस्य स्थापित किया जाय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

078735

भोजन विधि

इस लेख के लेखक कविराज महेन्द्रनाथ पांडेय से 'जीवन सखा' के पाठक परिचित ही होंगे। ये आयुर्वेदाचार्य हैं और प्राकृतिक-चिकित्सा पद्धति से भी भिज्ञ हैं। आयुर्वेदाचार्य होते हुए भी इनकी रचनायें प्राकृतिक ढंग से ही होती हैं, जिसकी झलक इस लेख में दर्शाई जा रही है। अगले अङ्कों में इस लेख के सम्बन्ध में और विशेष बातें बताई जायंगी।—सं०

ले०—कविराज महेन्द्रनाथ पाण्डेय

भोजन के महत्त्व और उसके विविध अंगों का वर्णन पहले किया जा चुका है। इस अध्याय में आयुर्वेद के आधार पर भोजन विधि और भोजन क्रम का वर्णन करना चाहते हैं। आजकल के अंग्रेज़ी शिक्षित लोग इस विधि को भूल गये हैं। अब तो होटल के अशिक्षित लोग, जिस नियम की पाबन्दी करते हैं, उसी नियम की पाबन्दी बाबू लोग जान में या अनजान में, ज्ञान बश या अज्ञानता वश करते हैं। अशिक्षित लोग किसी नियम का पालन करते ही नहीं। वे समझते हैं कि किसी भी तरह, कोई चीज़ पेट के अन्दर जाना चाहिए। उनके यहाँ सिर्फ़ एक ही नियम है जिसकी पाबन्दी वे करते हैं। वह नियम है छुआ-छूत और चूल्हा-चौके का। उनके लिए स्वास्थ्य का विषय जरूरी नहीं है, वे धर्म की रुढ़ि का अन्ध अनुसरण करना चाहते हैं।

जितना आवश्यक भोजन के विविध अंगों का अनुसरण करना है, भोजन का विश्लेष समझना है, खनिज लवण और विटामिनों का ज्ञान प्राप्त करना है और जितना आवश्यक यह जानना है कि हम क्या खायँ, उतना ही जरूरी यह भी जानना है कि हम किस क्रम से खायँ। हमारी यह धारणा है कि आज-कल के होने वाले बहुत रोग केवल इस ज्ञान के अभाव के कारण—यह न जानने के कारण कि कौन चीज़ किस क्रम से खायँ—होते हैं। यदि इस आवश्यक ज्ञान की जानकारी हो जाय और लोग इस सनातन ज्ञान के आधार पर भोजन का नियम बनावें तो स्वास्थ्य में सुधार हो, जीवन दीर्घकालीन हो, जनता की औसत जिन्दगी बढ़ जाय। भोजन का जो गुण है, वह पूर्णरूप से प्राप्त हो और लोगों का जीवन सुखी हो जाय तथा रोगों की संख्या भी घटे।

इस प्रकार हमने देखा कि देश के अधिकांश शिक्षित और अशिक्षित दोनों ही भोजन के नियमों को भूल चुके हैं।

भोजन का गुण

जो भोजन किया जाये उसमें निम्नलिखित गुण होने चाहिए—(१) भोजन तृप्ति करने वाला हो, (२) भोजन करते ही तुरन्त बल बढ़ावे, (३) देह को धारण करे, (४) स्मृति शक्ति (५) आयुवर्द्धक हो, (६) शरीर की शक्ति बढ़ावे, (७) ओज बढ़ावे, (८) सत्त्व (भीतरी शक्ति, उत्साह आदि) बढ़ावे शरीर को सौन्दर्य युक्त रखे। शारीरिक सौन्दर्य बढ़ावे। शा सौन्दर्य बढ़ाने का अर्थ है, शरीर के चमड़े का स्वाभावि चिकनापन, कोमलता, मृदुता क़ायम रहे। दाँत मज़बूत और बने रहें, नेत्रों में ज्योति पूर्ण रहे, नाखून स्वभावतः लाल और रहें, बाल काले, मुलायम, लच्छेदार रहें, असमय में गिरें न

भोजन सामग्री का चुनाव करते समय सावधानी रखनी और ऐसे भोजन का ही चुनाव करना चाहिए जिसमें उपरोक्त मौजूद हो। आजकल हमारे देश में कितने लोग हैं जो भो सम्बन्ध इतनी सावधानी रखते हैं और इस दृष्टि से छा करके भोजन का चुनाव करते हैं। भोजन के सम्बन्ध में देश काल अर्थात् मौसिम का भी विचार रखना चाहिये और दोनों प्रातः और सायंकाल का भी ध्यान रखना चाहिए।

घर का प्रबन्ध और मर्दों के भोजन का प्रबन्ध घर की दे के हाथ में होता है। उनको इस विषय की पूर्ण शिक्षा मिलनी च ताकि वे अपने घर वालों के और लड़कों बच्चों के स्वास्थ्य की पूरी रक्षा कर सकें और यथोचित भोजन का प्रबन्ध कर सकें

भोजन का प्रकार

आहार छः प्रकार का होता है—(१) चूष्य-चूसने वाला ईख आदि, (२) पेय पीने योग्य जैसे फलों का रस, मांस मठा, दूध आदि, (३) चाटने योग्य चीज़ जैसे लपसी, च सेवई, खीर आदि, (४) भोज्य भोजन योग्य पदार्थ जैसे दाल-रोटी-सब्जी आदि पदार्थ भोजन योग्य है। (५) भक्ष्य अ खाने योग्य पदार्थ जैसे लड्डू, गरांड आदि पदार्थ भक्ष्य कह हैं। भोजन में इनकी गिनती नहीं है। (६) चर्व्य-चबाने ला चीज़ें, जैसे दालमोट, पापड़, चिवड़ा भूनाचना चावल, ब चबेना आदि। भोजन के इतने ही प्रकार हैं। संसार भर के स

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

े भोजन, इन्हीं ६ प्रकारों में आ जाते हैं। फल तरकारियों । इसमें अलग से नहीं गिनाया गया है परन्तु वे सभी चीज़ें अन्तर्गत ही हैं। ये सभी प्रकार के भोजन एक से दूसरी भारी है। भोजन करते समय हलके और भारी भोजन ल अवश्य रखना चाहिए। हलका भोजन जल्द पचता है ारी भोजन देर में। भारी भोजन तीन प्रकार का होता है। ात्रा गुरु जैसे मूंग आदि। मूंग हलका होता है परन्तु मात्रा क भोजन करने पर भारी हो जायगा, देर में पचेगा। (२) गुरु जैसे उरद। उरद का स्वभाव ही भारी है। इसमें ई भी है, प्रोटीन भी है। इस कारण यह देर में पचता है। ए इसे कम मात्रा में खाना चाहिए। (३) संस्कार से ने, तलने, भूनने आदि से और एक में दूसरी चीज़ मिलाने से ज़ें भारी हो जाती हैं, देर में पचती हैं जैसे मैदा, घी, चीनी से बनी मिठाई, पूड़ी आदि संस्कार गुरु है। मोहनभोग, , खीर सेंवई आदि को भी इसी प्रकार समझना चाहिए।

इन हलकी और भारी चीज़ों के खाने का नियम यह है कि चीज़ें तृप्ति के अनुसार खाना चाहिए। तृप्ति के अनुसार का मतलब है आधा पेट भरना। और भारी चीज़ों को चीजों की अपेक्षा आधा खाना चाहिए अर्थात् आध पेट का ही खाना चाहिए। पतली चीज़ें और पतली चीज़ों के लेने े भी कोई चीज़ मात्रा से अधिक न लेनी चाहिए। यदि और व्यायाम करने वाले लोग थोड़ा बहुत इस नियम का कदापि उल्लंघन कर दें तो उतनी हानि नहीं है परन्तु रोगी कमज़ोर आदमी यदि इन नियमों का पालन करने में ढिलाई ो अवश्य ही हानि होने का डर रहता है। भोजन में फल रियां शामिल करने पर उनकी उचित मात्रा का ख्याल रखना । अन्न की अपेक्षा फल और शाक तरकारियाँ तिगुनी चौगुनी े पड़ेंगी, इसके बाद ग्रहण करना पड़ेगा और उसके लेते समय भारी का ख्याल करके अनुपात निश्चित करना पड़ेगा।

भोजन का समय

आजकल जब से अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार हुआ है और के लोग विदेशियों के सम्पर्क में आये हैं, तब से उनकी ही करने लग गये हैं। सुबह सोकर उठते ही चारपाई पर चाय ए। उसके बाद नौ बजे बिस्तर छोड़ने पर ब्रेकफास्ट या नाश्ता ए। बारह बजे लंच या भोजन चाहिए, तीन बजे टिफिन जलपान चाहिए, पाँच बजे शाम को चाय चाहिए और दस ात को सपर या रात का भोजन चाहिए। ऐसा जान पड़ता उनका जीवन खाने ही के लिए बना है। इस प्रकार भोजन करने वाले लोगों के शरीर पर गोश्त और चरबी अधिक चढ़ी रहती है परन्तु जुकाम, पेट में वायु, कब्ज रात को नींद न आना आदि बीमारियां उन्हें प्रायः प्रतिदिन घेरे ही रहती हैं। जितनी सफाई, जितनी स्वतंत्रता, जितना व्यायाम योरोप के देशों में लोगों को प्राप्त है यदि उनके साथ वहाँ के लोग भोजन के ठीक ठीक नियमों का पालन करते तो उनका स्वास्थ्य आदर्श होता।

हमारे देश के नकलची लोगों ने योरोप की सफाई की नकल नहीं की, वहाँ की सी स्वतंत्रता हासिल करने की नकल नहीं की, वहाँ की सी व्यायाम पद्धति नहीं अपनाई, परन्तु वहाँ का अवगुण बार-बार खाने का अवगुण अपना लिया। इस नकल का नतीजा यह हुआ कि रहा सहा स्वास्थ्य भी चौपट हो रहा है।

आयुर्वेद के मत से भोजन का समय दो बार ही है। एक बार दोपहर को और एक बार शाम को। इसके अलावा न तो नाश्ता करने की जरूरत है और न जलपान की। जो लोग शारीरिक परिश्रम अधिक करते हैं जैसे किसान, मल्लाह आदि यदि आवश्यकता हो तो एक बार सुबह वे हलका सा जलपान या नाश्ता कर सकते हैं।

कम शारीरिक परिश्रम करनेवाले यदि नाश्ता करना ही चाहे और बिना नाश्ता किये यदि दोपहर तक न रहा जाय तो ऐसी हालत में वे हलके और सभी फलों का नाश्ता कर सकते हैं। सूखे मेवे जैसे किशमिश, मुनक्का आदि खाकर तीन छटांक या एक पाव दूध पी सकते हैं। फिर जब भूख लगे तब दोपहर को भोजन करें। लिखा है—

याम मध्ये न भोक्तव्यं याम युग्मं न लंघयेत्।

हमारे देश में स्कूल, कालेज और दफ़्तरों का समय स्वास्थ्य की दृष्टि से बहुत ही अहितकर है। सभी स्कूल कालेज और दफ्तर दस बजे लगते हैं। लोगों को ९ बजे ही भोजन करके घर से निकल जाना पड़ता है। भोजन का यह समय अत्यन्त हानिकर है। नौ बजे भूख लगने का समय ही नहीं है। यदि ज़बरदस्ती भोजन किया जाय तो ठीक से पचेगा नहीं, कच्चा रस बनेगा। हमारे देश के नौज़वान लड़के इसी कारण मोटे-तगड़े नहीं दिखाई पड़ते। बहुत दिनों तक इस बुरे आदत के बनी रहने के कारण मन्दाग्नि हो जाती है, खट्टी डकार आने लगती है, पेट में वायु बनने लगती है

हमारी निजी राय तो यह है कि स्कूल कालेज और दफ़्तर का यह समय बदल जाना चाहिए, किन्तु जब तक ऐसा होना सम्भव न हो तब तक के लिए हम यह सलाह देंगे कि स्कूल, कालेज या दफ़्तर भोजन करके न जाया जाय, केवल हलका नाश्ता क लिया जाय और भोजन दोपहर को ही किया जाय। क्योंकि सभ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चिकित्सा संबंधी मेरे अनुभव

श्री हरिश्चन्द्र 'विशारद'

मुझे एक बवासीर के रोगी का उपचार करने का अवसर प्राप्त हुआ। ग्राम सुधार आदर्श केन्द्र, टीकापट्टी, (पूर्णिया) के सुपरवाइज़र श्री वासुदेव प्रसाद सिंह जी ने उस रोगी को मेरे हवाले कर दिया। मैंने रोगी से पूछ-ताछ की। उसे वर्षों से घोर कब्ज़ियत थी। क़रीब डेढ़ महीने से उसे बवासीर उभड़ आयी थी। इस अवधि में उसने अनेकों प्रकार के औषधोपचार किये थे। भ्रू के निकट तथा छाती में एक विचित्र प्रकार का बेचैन करने वाला दर्द भी हुआ करता था। रोगी को प्राकृतिक-चिकित्सा पर रंचमात्र विश्वास न था। मैंने किसी तरह समझा-बुझा कर उसे कम-से-कम दस दिन तक प्राकृतिक उपचार करने के लिये राज़ी कर लिया। इतने पर भी वह दूसरे
निकट प्राकृतिक उपचार पर अपने घोर अविश्वास का बखा
करता था। मैंने धैर्यपूर्वक उसकी चिकित्सा शुरू क
उसके गुदा-मार्ग के दोनों किनारे पर बवासीर का उभाड़ थ
सा दबाव-पूर्ण स्पर्श से उसमें पीड़ा होने लगती थी। इस
एनिमा देने का भी कोई उपाय नहीं था। मेरी यह प्रवृत्ति
कि प्राकृतिक-चिकित्सा में रोगी जितना अंश तक संयम
लिये तैयार हो सके उससे ज्यादा संयम के लिये उसपर
डाला जाय। साथ ही कम-से-कम ख़र्च पर ही उसे रोग
किया जाय।

रोगी उपवास करने के लिये भी तैयार नहीं था; बहुत
सुनने पर दो दिन यानी ४८ घंटे उपवास करने के लिये तैयार ह

उपवास के दिन रोगी का चिकित्सा-क्रम इस प्रकार का
सवेरे शौचादि से निवृत्ति के बाद नदी के किनारे जाकर भीं
की छः ढेरियां बनाकर उन पर दस-दस मिनट के क्रम से
तक बैठना बाद में १२ बजे तक कोई भी ऐच्छिक कार्य
१२-४० तक पेंडू पर मिट्टी की पट्टी, ४ बजे तक पुनः
कार्य। ४ से ४-१० तक कटि स्नान। ७ बजे करीब दो मि
सर्वाङ्गासन। ८ बजे से ८-४० तक पेडू पर मिट्टी की पट्टी

दो दिन के उपवास के बाद तीसरे दिन ६ बजे मट्ठा
लिये दिया। चिकित्सा का शेष क्रम वही रहा। चौथे दिन
को दस्त के रूप में पुराना मल निकलना शुरू हुआ।

चौथे दिन से शाम को भी मट्ठा देना शुरू किया। स
का समय ६ बजे शाम तथा मट्ठा पीने का उसके एक
रात को पूर्ण विश्राम। यह क्रम एक सप्ताह तक चला।
में मल बिल्कुल ही निकल गया यानी दुर्गन्धित काला म
लना बंद हो गया। साफ-सुन्दर दस्त आने लगा। छ
भवों के ऊपर का दर्द जाता रहा। किन्तु बवासीर के दर्द क
में कुछ कमी आने के सिवा विशेष कुछ परिवर्त्तन नह
उसके बाद दोपहर को मट्ठा के स्थान पर रोटी और आ
किया। चिकित्सा का शेष क्रम वैसा ही रहा। उस रोगी
चेचक हुआ था, जो शायद खुलकर नहीं निकला था,

स्कूल-कालेजों में टिफिन (नाश्ते) के लिए छुट्टी मिलती है, प्रायः दफ़्तरों में भी छुट्टी मिल जाया करती है।

जिन लोगों को ऐसी सुविधा न मिल सके कि वे दोपहर को भोजन कर सकें, यदि उन्हें स्वास्थ्य की कामना हो तो हमारी राय में ६ बजे भोजन न करना चाहिए। उनके लिए अच्छा होगा कि वे शाम को ५-६ बजे भर पेट भोजन किया करें और दोपहर को या ६-१० बजे केवल हलका जलपान करें। कच्ची भूख में भोजन करने से यह अच्छा है कि भोजन न किया जाय।

सन्ध्या समय का भोजन ७-८ बजे शाम को हो जाना चाहिए। अधिक रात गये खाने की प्रथा स्वास्थ्य के लिए हानिकारी है। ६-१० बजे रात को सो जाना चाहिए। सोने के पहले पेट कुछ खाली हो जाय तो स्वास्थ्य की दृष्टि-से यह अच्छा है। इसलिए सोने के कम से कम दो ढाई घण्टे पहले जरूर खा लेना चाहिए। रात का भोजन अत्यन्त हलका होना चाहिए। आयुर्वेद की सम्मत तो यह है कि रात को कुछ फल खाये जायं और दूध पीया जाय। परन्तु आजकल दूध फल में पैसा अधिक लगता है। दूध मिलना मुश्किल है। इसलिए ऐसा भोजन ग्रहण करना आसान नहीं है। एक समय भोजन और दूसरे समय फल दूध पर रख कर हमने कितने ही रोगियों को नीरोग किया है। इसलिए यह विधि हमें अधिक पसन्द है। क्रमशः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और दस-बारह दिन में साफ़ हो गया। करीब डेढ़ महीने
ी चंगा हो गया। बवासीर का कहीं नाम तक न
।

रोगी को एक सप्ताह के बाद ही प्राकृतिक-उपचार पर
जम गया। १० १२ दिन के बाद उसने अपने घर जाकर
चिकित्सा का रोग से मुक्त हो जाने के समय तक किया।
र के पास हो एक वैद्य महोदय थे, जो रोज़ आकर कहते
पीते रहने से बवासीर-छूटने की कभी सम्भावना रही
जाने पर वे वैद्य महाशय आकर आश्चर्य प्रकट करने लगे,
ं क्यों ?

र धारण के लिये जीव मात्र को आहार ग्रहण करना आव-
ही। इसीलिये काम करने वाले और आराम करने वाले
भोजन करते हैं। यहाँ मैं केवल काम करनेवालों की, ऐसे
नेवालों की जो यदि चार-पाँच दिन काम नहीं करें तो
ों मरने की नौबत आ जाय, चर्चा करना चाहता हूँ।

े काम में फसे व्यक्ति भी औषधोपचार के समय अपने को
ान कर आराम लेते हैं और कर्ज़ लेकर चिकित्सा का सारा
ाते हैं। इस समय में होने वाले सभी खर्च को चिकित्सा-
में माना जाय या साधारण आवश्यक भोजन के अलावे के
को तथा वैद्य और औषध में होने वाले खर्च को उसके
रखा जाय, इसकी विवेचना में मैं पड़ना नहीं चाहता।
ज इतना कहना चाहता हूँ कि श्रम करने वाले व्यक्ति यदि
श्रम कर के उतना ही भोजन करते हैं तो वह कभी चिकित्सा
शामिल नहीं किया जा सकता।

ो चिकित्सा-पद्धति इसी ओर झुकी हुई है। किसी भी रोगी
अत्यन्त-निर्बल नहीं हो गया हो, मैं तीन-चार दिन आवश्यक
ोधन कर धीरे-धीरे उसे, उसके आवश्यक काम में लगा
। इसके बाद कार्य-पूर्ति की सारी सुविधा के मुताबिक ही
चिकित्सा का विधान बना देता हूँ। और तो और, स्वयं
कार्य ही उसकी चिकित्सा हो जाता है. भोजन में साधारण-
वह जितना खर्च करता है उससे एक पैसा भी ज्यादा खर्च न
। उल्टे मसाला, तेल आदि छुड़वा कर कुछ पैसे की बचत
ा देता हूँ। जो रोगी अत्यन्त निर्बल हो गये हों उनके लिये
तो बाहर से खर्च करने की आवश्यकता प्रत्येक चिकित्सा में है फिर भी वह कुछ काम करने लायक सब से प्रथम प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा ही सम्भव है, ऐसा मेरा दावा है। उदाहरण के लिये ऐसे कितने अनुभव मेरे पास हैं जिनमें एक-दो का मैं उल्लेख कर देता हूँ।

एक मजदूर जिसका नित्य का आहार लगभग नित्य की मजदूरी पर ही निर्भर था, पाँच दिन से आँख-दर्द से पीड़ित था। आँखों में उसने कुछ पैसे की दवाई आदि खरीद कर भी लगाई थी, पर उससे कुछ भी लाभ नहीं हुआ था। मैंने उससे विशुद्ध मिट्टी की पट्टी पेडू पर तथा शिर पर लेने के लिये दिन-रात में कम से कम दो बार कहा। उसने उस दिन एक ही बार पट्टी ली और आँख का दर्द काफ़ी घट गया। दूसरे दिन सवेरे जब वह मजदूरी करने जा रहा था तो पहले मुझे धन्यवाद देने आया।

एक दूसरा भी मजदूर ही था, जो तीन दिन से पेट दर्द से व्याकुल था। वह मेरे पास आया और उसकी औषधि पूछी। मैंने उससे पूछा कि तुम खाते क्या हो और कै बार? उसने बताया, मेरे पास मकई ही एक मात्र अनाज है। उसीका सत्तू या भूंजी दोनों शाम खाता हूँ। मैंने उससे रात का भोजन छोड़ देने के लिये कहा और बताया कि खूब तड़के उठकर तुम शौचादि से निवृत्त होकर अपने खेत में दोपहर तक कुदाली चलाया करो। उसने वैसा ही किया और उसके तीसरे दिन आकर मुझे दर्द छूट जाने की खुश खबरी सुनाई।

मेरे पास चिकित्सा के लिये एक ऐसे व्यक्ति आये हैं जो आज १० वर्ष से पेट के रोग से परेशान हो रहे थे। रोग से छुटकारा पाने की आशा में उन्होंने डाक्टरों और वैद्यों के पाकेट गर्म किए हैं तथा विशेष प्रकार का भोजन करने में भी उनका बहुत पैसा खर्च हो चुका है। अब वे चारों ओर से थक कर प्राकृतिक-चिकित्सा कर रहे हैं। मैंने उनके कार्य के सिलसिले को अनुसरण रखते हुए पांच चिकित्सा-विधि बता दी है। उन्होंने निश्चय कर लिया है कि एक पैसा भी फ़ाजिल खर्च नहीं होने देंगे। इसी आधार पर उनकी चिकित्सा आज क़रीब महीने दिन से चल रही है। आराम हो जाने पर यदि मौका मिल सका, तो कभी लिखूंगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दाँतों की देखरेख

लेखक—डा० किशोरीलाल जी एल-डी० एस-सी० एन-डी० डी० वाई०

Prevention is better than eure.

देखरेख इलाज से भी अच्छा है—एक प्रसिद्ध और सची कहावत है। इसलिए हमें चाहिए कि हम उन उपायों और सिद्धान्तों पर अच्छी तरह से चलने की कोशिश करें जिनसे कि हमारे दाँत खराब होने से बचे रहें। क्योंकि मनुष्य का स्वास्थ्य उसके अंगों की तन्दुरुस्ती पर निर्भर करता है। मनुष्य का शरीर कई अङ्गों पर निर्भर है। जिनके वर्णन की यहाँ आवश्यकता नहीं जान पड़ती। हम यहाँ पर दाँतों या इनसे सम्बन्ध रखने वाले अंगों का ही कुछ हाल लिखेंगे जो हमारे अभीष्ट विषय से सम्बन्ध रखते हैं।

डाक्टरों ने मुंह को पेट का द्वार नियत किया है क्योंकि स्वाभाविक रूप से शरीर के अन्दर किसी चीज़ को प्रवेश करने के लिए सब से पहले मुंह में ही डाली जाती है। मुंह और उसके संबंधी अंग ऐसे हैं जिनसे पहले पहल भोजन या अन्य चीज़ों से सामना करना पड़ता है। दांत ही शरीर का एक ऐसा अंग है जो भोजन पर चक्की का (काटना, कतरना, पीसना) काम करके मेदे के हवाले कर देते हैं। मेदा इस भोजन पर हांडी का काम करके उसे इस योग्य बना देता है कि वह बदन का अंग बन जाय। फिर ज़िगर (लीवर) इस पाचनयुक्त भोजन के तरल पदार्थ को पचा कर रस को ख़ून में मिला देता है। कहने का तात्पर्य यह कि पाचन-क्रिया दाँत और मुंह से ही शुरू होती है। इसलिए जितना साफ-सुथरा मुंह होगा और दाँत जितने मज़बूत और स्वस्थ होंगे, उतना ही वे भोजन पर अपना काम ठीक ढंग से और अच्छी तरह से करेंगे। इसके प्रतिकूल मुँह और दाँत मज़बूत न होंगे तो भोजन के साथ उसी रंग की बदबू, पीव वग़ैरह शामिल होकर मेदे में प्रवेश करेंगे। जिस रंग की तासीर से सम्बन्ध रखती बदबू मुंह में होगी और ऐसा गन्दा बदबूदार भोजन जब मेदे में पहुँचेगा तो मेदा भी इस बदबूदार भोजन पर अपना काम न करेगा। उसका परिणाम यह होगा कि वह भोजन सड़ने लग जाता है और मेदे में आकर गिरानी पैदा हो जाती है। यही क्रम लगातार होते

खराब हो जाती है। यही कारण है कि जो लोग दांतों [...] आंतों से लेते हैं वे अधिकतर मेदे और अतड़ियों के रो[गी] पाए जाते हैं। इस शरीर को स्वस्थ रखने के लिए जरू[री] दाँतों और मसूड़ों को स्वस्थ रखने के लिए प्रयत्न कि[या] किसी ने क्या खूब कहा है :—

'मुँह स्वास्थ्य का द्वार है।' अधिकांश में यह दे[खा] है कि जब कोई दुश्मन किसी बादशाह पर चढ़ाई कर[ता] बादशाह अपनी बचत के लिए मज़बूत किला बनवाता है [और] किले के साथ साथ सदर फाटक को—सिंह द्वार को मज़बूत बनवाने की कोशिश करता है। इस विचार से वह मज़बूत बनवाता है कि अगर कमजोर दरवाजा हुआ तो [दुश्मन की] फौज शीघ्र ही फाटक तोड़ कर किले के अन्दर दाखिल हो [जायगी] और तमाम सचित सामग्री को नष्ट कर डालेगी। ठीक [यही हाल] मनुष्य के शरीर का है। मनुष्य का शरीर एक किला है, मुं[ह] दरवाज़ा है। दांत किवाड़ और संतरी हैं। दरवाज़ों की [रक्षा] अच्छे सुन्दर मजबूत किवाड़ों और रखवालों पर निर्भर [है]। बस इन बातों से तय है कि शरीर के स्वास्थ्य का सब कुछ [दाँतों पर] निर्भर करता है। जब हम दाँत को ऐसी आवश्यक वस्तु [के रूप] में देखते और पाते हों तो हमारा सर्वप्रथम कर्तव्य होत[ा है कि] हम दांतों की देख-भाल उचित रूप से करें।

दाँतों की बनावट और ईश्वरी लीला

प्राकृति की लीला तो देखो। दांतों के चिन्ह बच्चों [...] के रूप में गर्भावस्था से ही विद्यमान रहते हैं गर्भ के ७ [...] से ऐनमल का चिन्ह बनना शुरू हो जाता है। और ८ [...] के बाद एक कतार सी बन जाती है। हमको भी प्रकृति पर ध्यान रखना चाहिए और उसकी सहायता करनी [चाहिए] अर्थात् गर्भावस्था में स्त्री को इस प्रकार का भोजन दिया [जाय जो] विशेषतः दाँतों के लिए बिलकुल पुष्ट एवं हितकारी सा[बित हो] जैसे दूध एक पूर्ण भोजन है। इसको देने से उसे भोजन [...]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकृति चिकित्सा के कुछ अनुभव

ले०—डा० सत्यनारायण अग्रवाल 'रामगढ़

मानीय प्राकृतिक चिकित्सालय में विभिन्न रोगों के अनेक मरीज आते रहते हैं उनकी चिकित्सा में अनेक तरह के अनुभव रोज़ होते रहते हैं। इनमें कई बहुत दिलचस्प होने के साथ-साथ ...नक भी होते हैं और उनसे प्रकृति की अचूक व महान् वास्तविक दिग्दर्शन होता है। 'जीवन-सखा' के पाठकों ...े भी अब मैं इन्हें बराबर उपस्थित करूँगा।

...) एक लड़का श्रीकृष्ण मेरे चिकित्सालय में दाखिल हुआ ...१० वर्ष की थी। बेहोशी से दौरे रोज दो-तीन बार तक ... शारीरिक हालत भी अच्छी नहीं थी। बच्चे को रोज ... मिनट का सिटज बाथ, शाम को १० मिनट का हिपबाथ, ...ं ३० मिनट तक पेड़ू पर मिट्टी की पट्टी दी गई और ...बाद खुली हवा में १५ २० मिनट नंगे बदन दौड़ना ...या। भोजन में फल और रोटी-सब्जी दिये गये। मैं ...ा कि बच्चे को इलाज में कम-से कम दो महीने तो ...येंगे। पर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ कि दो ही तीन दिन में उसका दौरा आना बिलकुल बन्द हो गया। चिकित्सा शुरू करने के सात-आठ रोज़ बाद एक दिन एक हलका दौरा फिर आया, जो अंतिम था। बीस रोज़ में तो बच्चे की तन्दुरुस्ती भी ऐसी ठीक हो गई थी कि नया आदमी पहिचान न सके। मैंने बीस रोज बाद मामूली खानपान के परहेज़ की हिदायत कर उसकी चिकित्सा बन्द करवा दी। दो वर्ष हुए बच्चा तब से बिलकुल स्वस्थ है।

(२) एक ब्राह्मण करीब ४० साल की उम्र के थे। उनको क्रोष्टशीर्ष हो रहा था। घुटना सूज कर पैर का मोड़ना असम्भव बनाये हुए था। अनेकों एलोपैथिक डाक्टरों, वैद्यों व जर्राहों का इलाज कर बेचारे निराश हो चुके थे। नामी डाक्टरों ने कह दिया था कि पैर काटना ही पड़ेगा। मैंने उनको समझा-बुझा-कर प्राकृतिक चिकित्सा को आजमाने के लिये राजी किया। खाने-पीने का निर्देशित परहेज रखना तो उन्होंने मंजूर कर लिया, पर सिवाय स्थानीय उपचारों के शारीरिक उपचार करवाने को वे तैयार नहीं हुए। खैर, स्थानीय मिट्टी की पट्टियां, वाष्प स्नान व बिजली का स्पार्किंग शुरू किया गया। दो-तीन रोज़ में ही काफी फ़ायदा

...ा, सब्जियां इत्यादि सभी दांतों के लिए हितकर ...ै।

कुछ उपाय

...होने पर बच्चे को तथा मां को अच्छी चीज़ असली रूप ...ी चाहिए। बच्चे का उस समय का स्वाभाविक भोजन, ...ध है। दूध से निम्नलिखित लाभ हैं।

...बच्चों के लालन-पालन तथा बढ़ने के लिए गुण इसमें ...

...-माँ के दूध से ताक़त होती है और वह रोग से बचाता ...लों के दूध में यह बात नहीं पाई जाती।

...-मां के स्तन का दूध चूसने से मसूड़ों का व्यायाम होता ...ांत मज़बूत निकलते हैं।

...चूस-कर दूध पीने से मसूड़ों के व्यायाम के साथ-साथ एक प्रकार का रस निकलता है जिससे दूध पेट के अन्दर जाकर शीघ्र ही पच जाता है।

५—प्रकृति ने बच्चे की भोजन सम्बन्धी कमी को पूरी करने के लिए माता के स्तन में दूध पैदा किया है। अगर मां का दूध अभाग्य से नहीं मिलता तो गाय के दूध में पानी मिला कर, एक बार उबाल कर, थोड़ा शहद मिलाकर, पीने के लिए दिया जाना चाहिए। जब जरा बच्चा बड़ा हो चले तो मक्खन और ताजे फलों का रस देना चाहिए परन्तु बाजारू दूध अथवा दवाएँ कभी नहीं देनी चाहिए। गाय के दूध के अभाव में बकरी का दूध दिया जा सकता है।

आजकल बाजार में दूध, बना हुआ दूध, केमिकल फ़ूडज सभी इसी प्रकार की चीज़ें बच्चों की सेहत के उपलब्ध हैं। इनको कभी भूल करके भी बच्चों को नहीं देना चाहिए। यदि दिया तो बच्चों के असली स्वास्थ्य तथा मज़बूत दांत से हाथ धो बैठेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुलसी

लेखक—श्रीयुत श्रीनाथदास अग्रवाल

(दिसम्बर के अंक से आगे)

यूरोप के किसी प्रधान शहर के एक शिकारी अपने नौकर के साथ शिकार खेलने गए। जंगल में दोनों आदमी एक दूसरे से अलग हो गए। कुछ समय पश्चात शिकारी को अपने बगल वाली झाड़ी में कुछ सरसराहट की आवाज हुई और यह समझ कर कि शिकार [भा]गा जा रहा है उन्होंने आवाज के निशाने पर गोली चला[ई]। बहुत खोजने पर भी वे यह न जान सके कि शिकार कैसा [थ]ा, किधर गया और क्यों चीखा-चिल्लाया नहीं। नौकर भी न [ल]ौटा, लाचार यह सोचकर कि नौकर को कोई जानवर उठा ले [ग]या, शिकारी लौट आया। संयोग की बात कि छः महीने बाद शिकारी फिर ठीक उसी जंगल में उसी स्थान पर गया। उसका शिकारी कुत्ता थोड़ी देर बाद दौड़ता हुआ आया और शिकारी का कोट पकड़कर अपने साथ चलने के लिए जोर लगाने लगा। शिकारी उसके साथ गया और छः महीने पूर्व जिस झाड़ी में उसने गोली चलाई थी वहीं अपने नौकर की लाश पाया। उसे यह देखकर महान आश्चर्य हुआ कि उसकी लाश ६ महीने बाद भी सड़ी न थी। खोज करने पर उसने देखा कि बिल्कुल झाड़ी के बगल में तुलसी के पेड़ बहुतायत से उगे हुए हैं। नौकर के का घाव ज्यों का का त्यों था। उसे विश्वास न हुआ और सन्देह के निवारणार्थ उसने छिपकिली मारकर वहीं डाल कई महीने बाद तक उस छिपकिली का शव ज्यों का त्यों प[ड़ा रहा] और न सड़ा, न गला।

इन सब के अलावा तुलसी मलेरिया की अचूक दव[ा है।] कहा भी है—'पीतो मरिच चूर्णेन तुलसी पत्र जों रसः... निहन्ति विषम ज्वरम्' अर्थात् काली मिर्च के साथ तुलसी का रस से मलेरिया का नाश होता है। इम्पीरियल मलेरियल कान्फ्रे[न्स ने] भी तुलसी को मलेरिया की अनुपम औषधि माना है। इस [सम्बन्ध] की भी एक मनोरंजक घटना मुझे याद हो आयी है। बम्[बई में] जिस समय अलबर्ट म्यूजियम और विक्टोरिया गार्डन बनने [लगे] उसमें हजारों मजदूर भर्ती हो गए। लेकिन वहाँ मलेरिया जोरों का फैला कि जितने भी मजदूर थे, या तो बीमार [हो] चले गये या काम छोड़कर भाग गये। नये मजदूर आने को ही न होते थे। बहुत तरह के उपाय किए गए। ज़ोरों से दव[ा] का भी उपयोग किया गया, परंतु सब व्यर्थ। अन्त में वहाँ के [बगीचे के] व्यवस्थापक के कहने से बगीचे भर में चारों तरफ तुलसी के [पेड़] लगा दिए गये। और साहब को बड़ा आश्चर्य हुआ जब कि [उन्होंने] देखा कि सब मजदूर वापस आगए और मलेरिया का [प्रकोप] एकदम शांत हो गया। जार्ज बर्डवुड ने इसका विवरण [...] लिखा है।

आशा है यहाँ तक तो तुम सब अच्छी तरह समझ [गई] होगी। बेटी, अब मैं तुम्हें इसके कतिपय प्रयोग बताऊंगी।

प्रयोग

जुकाम पर—तुलसी का रस पीओ। यदि नाक [से] दुर्गन्ध-युक्त श्राव होता हो, तो इसकी सूखी पत्ती की [बुकनी] सूंघना चाहिए।

[म]ालूम हुआ और दो हफ़्ते में तो रोग ८० प्रतिशत ठीक हो गया। अब पैर चाहे जैसे मोड़ा व घुमाया जा सकता था। पर सूजन अभी कुछ बाकी था और थोड़ी पीड़ा भी। इलाज चालू करने के १८वें रोज एक उभार आया और सूजन बहुत बढ़ गया, पर पीड़ा नहीं। उस सूजन से पैर को मोड़ने आदि में भी कोई अड़चन नहीं थी। किन्तु रोगी डर गया और उसने चिकित्सा बन्द कर दी, यह सोचकर कि मैं ठीक नहीं हो सकता। पर वास्तव में वह ठीक हो चुका था क्योंकि हफ़्ते भर बाद ही कोई उपचार न होने [प]र, उभार निकल जाने से कोई क्षति न हुई, सूजन आप ही आप [ज]ाता रहा और पैर साधारण अवस्था में आ गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) तुलसी का रस और आदी का रस मिला कर पीना ए।

खाँसी पर—अड़ूसा और तुलसी के पत्ती का रस बराबर २ कर पीना चाहिए।

खाँसी ज्वर तथा अन्य साधारण रोगों में—तुलसी का तोले शहद २ तोले, आदी का रस छः माशे, अजवाइन का छः माशे लेकर एक में मिला कर रोग की अवस्थानुसार ० बूंद तक रोगी को देना चाहिए। छोटे उम्र के बच्चों के इससे भी कम मात्रा में देनी चाहिए।

(२) तुलसी की मंजरी आदी में पीसकर बालकों की खाँसी ना चाहिये।

(३) तुलसी के रस में मिश्री मिला कर पीने से भी लाभ है।

कुब्ज खाँसी पर—तुलसी की हरी पत्ती दो तोले व गुलाबी करी चार तोले लेकर खल में खूब घोटें और काली मिर्च के र गोलियाँ बनाकर छाया में सुखा लें। एक एक गोली प्रातः शहद या पान के साथ सेवन करना चाहिए।

कुक्कुर खाँसी पर—तुलसी की मंजरी, बच, पीपल और ो चारो वस्तु छः-छः माशे ढाई तोले चीनी मिलाकर आध सेर में पकावें। जब आधा पाव जल रह जाय तब उतार कर छान ौर रोगी को पिला दें।

बालकों की खाँसी पर—डेढ़ पाव तुलसी का रस शुद्ध भर जल में मिला कर धीमी आग पर पकावें। फिर एक सेर डालकर पकावे और जब शीरा चासनी के रूप में हो जाय तार बंधने लगे तो उतार लें। इस चासनी की २ माशा के अनुसार बच्चों को खिलाने से सर्व प्रकार की खाँसी नष्ट ाती है।

बालकों की काली खाँसी पर—तुलसी और काली मिर्च र पीसकर मूंग के बराबर गोलियाँ बनावे। बच्चों को दिन में बार एक एक गोली खिलाना चाहिए।

छाती का दर्द, खाँसी और जुकाम पर—श्याम तुलसी ाय बनाकर पिलाना चाहिए।

छाती की जकड़न पर—तुलसी की सूखी पत्ती तीन माशा एक माशा आदी की चाय बनाकर पीना चाहिए।

ज्वर खाँसी, वमन-प्यास आदि पर—तुलसी को सुखा, धीमी आग में तवे पर कौर लेवें। ऐसी ३ माशा पत्ती, छोटी यची का दाना ३ रत्ती, दालचीनी ३ रत्ती, लौंग ३ रत्ती, ी ३ रत्ती, सब चीज़ों को १० तोले खूब खौलते हुए पानी ल कर २ मिनट बाद आग पर से उतार लेवें। पांच मिनट तक वैसे ही पड़ा रहने दें। आवश्यकतानुसार दूध, चीनी उस मिला कर चाय की तरह काम में लावें। इसके सेवन से उपरो सभी रोग दूर होते हैं।

कान की पीड़ा में—पत्ती का रस कान में डाल चाहिए।

कर्ण रोग पर—तुलसी और मकई की पत्ती का रस पा दिनों तक लगातार कान में छोड़ना चाहिए।

कनपटी के पीछे की सूजन पर—तुलसी की पत्ती और एरंड की कोपलों को बराबर लेकर पीसकर और थोड़ा सा सेंध नमक मिलाकर सहने योग्य गरम करके लेप करें।

कान के सूजन पर—ताज़ी तुलसी मंजरी सहित ले उसका रस निकाल और दो चार बूंद कान में छोड़ देना चाहिए।

कान पकने पर—श्याम तुलसी और भाँगरा का रस मिल कर कान में छोड़ना चाहिए।

मुख की कांति बढ़ाने के लिए—तुलसी की सूखी पत्ती को पीस कर उसका उपटन मुंह में लगाना चाहिए।

मुख के छालों पर—तुलसी और चमेली की पत्तियों को चबायें: इससे जीभ, ओष्ठ आदि के छाले अच्छे होते हैं और मुं की दुर्गन्ध, मसूड़े को पीड़ा एवं दाँतों के सभी प्रकार के रो अच्छे हो जाते हैं। साथ ही गला भी साफ हो जाता है।

गले के दर्द पर—तुलसी के रस में शहद मिला कर पीना चाहिए।

मुँह के छाले और दुर्गन्धि पर—तुलसी की पत्ती चबाना चाहिए। इससे मुंह और जीभ के छाले अच्छे होते हैं और दाँत चमकीले तथा मजबूत होते हैं।

दांत के दर्द और मुँह की दुर्गन्धि पर—तुलसी का चूर्ण दाँत पर लगाना चाहिए।

दाँत के रोगों पर—तुलसी की सूखी पत्ती एक तोला जटामाशी एक माशे, अकरकरा छः माशे, सेंधा नमक छः माशे सुपारी भुनी हुई छः माशे, रूमी मस्तगी एक तोला, बदाम के छिलके की राख एक तोला, इलायची ३ माशे, सब औषधियों को चूर्ण कर कपड़े से छान कर प्रातःकाल और दोनों समय भोजनो परान्त इस मंजन से दाँत साफ करना चाहिए। इससे दाँत के सारे रोग दूर होते हैं और दांत मोती की तरह चमकीले हो जाते हैं।

दाँत की पीड़ा पर—तुलसी की पत्ती और काली मिर्च की गोली बनाकर दाँत के नीचे दबाना चाहिए।

दाँत में कीड़े पड़ने पर—तुलसी के रस में थोड़ा कपूर मिला कर उसमें रुई भिगा कर पीड़ित स्थान पर रखना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) जंगली तुलसी का रस कान में डालने से दाँत के कीड़े मर कर गिर जाते हैं।

पेट की पीड़ा पर—तुलसी और आदी का रस मिलाकर गरम करके पीना चाहिए। यदि छोटे बालक के पेट में पीड़ा हो तो आदी का रस और तुलसी का रस बराबर लेकर गरम करके पिलावें। इससे बच्चे के पेट के सभी विकार दूर होते हैं। यदि प्रतिदिन पिलाया जाय तो किसी प्रकार का उदर विकार कभी न होगा।

ज्वर पर—तुलसी का काढ़ा पिलाने से बुखार आकर पसीना उतर जाता है।

ज्वर और खाँसी पर—सवा तोले तुलसी का रस, ढाई तोले शहद और दस आने भर आदी का रस निकाल कर सबको एक में मिला लें। आवश्यकता पड़ने पर ३० बूँद से ६० बूँद तक रोगी को दें।

जीर्णज्वर पर—तीन माशे तुलसी के रस के साथ दो दाना काली मिर्च और थोड़ी सी मिश्री मिलाकर लगातार कुछ दिन तक सेवन करें।

अँतरिया ज्वर पर—तीन माशे तुलसी के रस में दो दाना काली मिर्च का चूर्ण मिलाकर चाट लें और ऊपर से गरम पानी पीयें।

सर्व प्रकार के ज्वर पर—काली मिर्च का चूर्ण तुलसी के रस में भिगा कर छाया में सुखा लें। जब अच्छी तरह सूख जाय तो पुनः तुलसी के रस में भिगावें और फिर छाया में ही सुखा लें। इस प्रकार सात बार सुखाकर और गोली बनाकर रख लें। जिसे बुखार आता हो उसे बुखार आने के तीन घंटे पूर्व से एक एक घन्टे के अंतर पर बराबर एक एक गोली गरम पानी के साथ दें।

जड़ या ज्वर पर—तुलसी के रस में सोंठ घिसकर माथे पर लेप कर और मुँह ढाँक कर सो जाँय। थोड़ी देर में पसीना आकर बुखार उतर जायगा।

प्रतिदिन आने वाले ज्वर पर—पुदीना और तुलसी का काढ़ा बनाकर पिलाना चाहिए।

ज्वर में घबराहट और कै पर—तुलसी का रस मिश्री के शर्बत में मिलाकर दे या तुलसी का शर्बत जल में मिला कर दे।

बच्चों के मलेरिया ज्वर की दवा—तुलसी की ताज़ी पत्ती १० तोला, काली मिर्च एक तोला, छोटी पीपल एक तोला, जायफल एक तोला, सब चीजों को महीन पीसकर मटर बराबर गोलियाँ बना लें और छाया में सुखाकर रख लें। युवकों को एक एक गोली तथा चौथाई से आधी गोली तक अवस्थानुसार गरम जल के साथ दिन में ३ बार दें। इससे मलेरिया ज्वर [illegible] हो जाता है। यदि गरमी मालूम पड़े तो दवा की मात्रा कम देनी चाहिए।

कम्प ज्वर एवं मलेरिया ज्वर पर—६ तोला तु[illegible] की पत्ती, एक तोला काली मिर्च, एक तोला धतूरे की जड़ की [illegible] एक तोला मदार की जड़ की छाल, लेकर सब को पानी के [illegible] महीन कर मटर बराबर गोलियाँ बना लें। ज्वर आने के पू[illegible] एक गोली घन्टे-घन्टे भर के अंतर से देना चाहिए।

सन्निपात और प्लेग के ज्वर में—तुलसी की [illegible] बेलपत्र, पीपल के पत्ते, प्रत्येक एक एक छँटाक कूटकर एक [illegible] जल में पकावे। जब छः छंटाक रह जाय तो मल मल कर छान [illegible] मात्रा २॥ तोला दो-दो घन्टे के अंतर से दे।

शीतल ज्वर में—तुलसी की मंजरी एक तोला, मेथी [illegible] तोला, लेकर खूब कूट लें। ३ माशे चूर्ण आध पाव जल में [illegible] कर देने से बहुत लाभ होता है।

विषम ज्वर पर—श्याम तुलसी के रस में काली [illegible] का चूर्ण मिलाकर दें।

(२)—ढाई पत्ती तुलसी गुड़ में गोली बनाकर लें।

(३)—तुलसी के एक तोले रस में थोड़ी काली मि[illegible] चूर्ण मिलाकर शहद के साथ ले।

(४) दस पत्ती तुलसी व ३ दाना काली मिर्च का चूर्ण में गोली बनाकर खायें।

आमाशय के शूल पर—तुलसी के पत्ती की चाय ब[illegible] पीना चाहिए।

पार्श्व वेदना में—तुलसी के पत्ती का रस आदी का [illegible] एवं पोखरमूल मिलाकर गरम करें। जब लेप गाढ़ा हो तब आक्रान्त स्थान पर लगाने से लाभ होता है।

पाचन शक्ति बढ़ाने के लिए—पत्ती को पी[illegible] पीना चाहिए।

अजीर्ण और मंदाग्नि पर—एक तुलसी का रस, [illegible] तोला सोंठ, दो तोला पुराना गुड़, सबको एक में मिलाक[illegible] के बराबर छोटी छोटी गोलियां बना लें। सुबह, दोपहर और [illegible] को एक एक गोली जल के साथ इस्तेमाल करना चाहिए।

बालक के उदर शूल पर—तुलसी के रस में सोंठ [illegible] चूर्ण मिलाकर चटाना चाहिए।

बालकों के यकृत सम्बन्धी रोगों पर—तुलसी [illegible] चाय बनाकर पिलानी चाहिए।

पित्त वृद्धि के लिए—तुलसी का रस पीना चाहिए।

(क्रमशः)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिशु जीवन के प्रति माता का सम्बन्ध

लेखक—श्रीयुत बृजमोहन मिहिर

प्रनियमित भोजन से उत्पन्न कष्ट की समस्या उस समय भीषण रूप धारण करती है जब प्रकृति नियमों की अवहेलना की जाती है। शरीर में आमाशय के निर्माण का और जठराग्नि का के आवश्यकतानुसार, भोजन-विज्ञान के नियमों का पालन हुए, शरीर के पोषण के लिये जब उसका आयोजन किया है तो उससे हानि की आशंका नहीं होती। भोजन के य में आयु की दृष्टिकोण में रहना भी अति आवश्यक है। और अशुद्ध भोजन का क्रम रखते हुए अच्छे स्वास्थ्य की दुराशा है। आश्चर्य है कि मनुष्य जीवित रहता है।

प्रकृति की अतिशय उदारता है कि जीवन के असंयत होने वह यथा सम्भव अपना काम करती रहती है। इस समय में स्वाभाविक जीवन व्यतीत करने की रुचि का अभाव है; बात जानने और समझने की ओर की प्रवृत्ति ही नहीं है। झने के कारण अनेकों प्रकार का कष्ट भोगते हैं लेकिन ने की चेष्टा नहीं करते अस्वस्थ हो जाने पर भाग्य को कोस कर ही दोषारोपण करके सन्तुष्ट हो जाते हैं। इस अज्ञता के मनुष्य स्वयं तो कष्ट उठाता ही है, पर उस परिवार में हुए बच्चे भी उनकी अनभिज्ञता के कारण अस्वस्थ्य जीवन त करते हैं।

मनुष्य बड़ी आयु में अपने कष्ट को दूसरों पर प्रकट तो कर है लेकिन बच्चे जब घर वालों की असावधानी के कारण पड़ते हैं तो उनकी बुरी दुर्गति होती है। उनका कष्ट तो तौर पर मालूम नहीं होता, अन्दाजन कई प्रकार की बुराइयों नके शरीर पर अजमाइश हो जाती है। कितने तो इस दवा में चल भी बसते हैं। लेकिन अधिक अंशों में प्रकृति बहुत है। इन कटु, उग्र और तीव्र औषधियों का वह सहन कर है। अपना विशेष अनुकम्पा से वह फिर भी बच्चे को जीवन दे देती है।

रोग के अनुसार भोजन पर ध्यान देकर यदि प्राकृतिक जीवन व्यतीत करने का उन्हें अवसर दिया जाय तो वे अधिक सुगमत पूर्वक और शीघ्र अच्छे हो सकते हैं। उनके अन्दर बड़ी आयु-वालों की अपेक्षा प्राणशक्ति की स्फूर्ति और रक्त की शुद्धता अधिक होती है।

बालकों को अगर हमें कष्ट से बचाना है तो अनुमान से काम न लेकर हम उनके भोजन का ऐसा समुचित प्रबन्ध करें कि रोग का शिकार न बन सकें। औषधि के बल पर बालकों को स्वस्थ्य रखने का बिचार करने वाले पूर्ण भ्रम में हैं। औषधि किसी भी अवस्था में हित पहुँचाती है यह प्रश्न आज संसार में विवादग्रस्त हो गया है। कितने विशेषज्ञों ने यह सिद्ध कर दिया है कि औषधि अधिकांश में निरर्थक है। बाल्यावस्था में इनका रक्त शुद्ध होता है अतः उसपर हर एक चीज़ का प्रभाव शीघ्र पड़ता है। लोगों की चेष्टा यह होनी चाहिये कि दूषित आहार और औषधि से प्रकृति के इस अनुपम गुण का अपहरण न करना चाहिये। शरीर की रचना भी कुछ इस प्रकार की है कि वह प्राणी को सदा स्वस्थ्य रखना चाहती है। असंभवित जीवन व्यतीत करने पर भी अन्दर की प्राण शक्ति पूरे तौर पर रोग का मुकाबला करने में लग जाती है और भरसक वह मनुष्य को रोग से मुक्त कर देती है। जब से प्राणी इस पृथ्वी पर सांस लेना शुरू करता है, प्राण शक्ति अनिवार्य रूप से निरन्तर यह कार्य करती रहती है। यदि ऐसा न होता तो मनुष्य का जीवन यापन अत्यन्त दुःसह हो जाता। मनुष्य भीषण प्रकोप में उसी समय पड़ता है जब वह काफ़ी अर्से तक प्रकृति के नियमों का उलंघन कर चुकता है। बिजातीय द्रव्य को निक्षेपण करने के कार्य को जब प्राणशक्ति उनके बोझ से दबकर न्यून कर देती है तो मनुष्य बीमार पड़ता है और यदि ऐसी स्थिति में बिजातीय द्रव्य अधिक हुआ जिसे कि प्राणशक्ति अपनी निर्बल दशा में नहीं निकाल पाती तो अन्त में उसे यकायक शरीर त्याग कर देना पड़ता है। बालक से लेकर वृद्ध तक हर एक आयु के प्राणियों के साथ नित्य प्रति यही हुआ करता है। यदि मनुष्य स्वस्थ्य और जीवित रहना चाहता है तो उसे अपनी सब प्रकार की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

76283

अनुकूलता और प्रतिकूलता पर ध्यान देना चाहिये। यदि जीवन स्वस्थ नहीं है तो जीना बेकार और भारस्वरूप है। अस्वस्थ जीवन में जीवन की उपियोगिता नष्ट हो जाती है। स्वयं प्राणी कष्ट उठाता है, दुःख का जीवन व्यतीत करता है और दूसरों के लिये भी कष्ट और दुःख का कारण बन जाता है। अपने स्वास्थ्य और घर में छोटे बच्चों के स्वास्थ्य के लिये जिम्मेदार घर के वयोवृद्ध व्यक्ति ही हैं। रोगी मनुष्य संसार का बहुत बड़ा अकल्याण करता है। मनुष्य का यह परम कर्त्तव्य होना चाहिये कि बालकों को रोग से मुक्त रखकर स्वस्थ्य रखने के लिये उनके भोजन पर विशेष ध्यान दें।

नवजात शिशुओं के लिये प्रकृति ने बहुत सुन्दर प्रबन्ध किया है। उत्पन्न होने के बाद लगभग ४८ घन्टे के क़रीब-क़रीब मूर्च्छितावस्था में रहते हैं। श्वांस के साथ उन्हें हर एक नई चीजों के संपर्क में आना पड़ता है जिनका कि वे एक साथ ही एक दिन के जीवन में मुकाबला नहीं कर सकते। अतः वे यथा सम्भव अधिक से अधिक समय तक के लिये विश्राम करते हैं। और शनैः शनैः सौम्य-पदार्थों से परिचित होते हैं और उनका ज्ञान प्राप्त करने का अनुकरण बाल्यावस्था से आरम्भ होकर जीवन पर्यन्त या उस समय तक स्थित रहता है जब तक कि मनुष्य को ज्ञान का संवेदन नहीं हो जाता। मूर्च्छितावस्था में रहने से उनकी चिरकालीन शून्यता नष्ट हो जाती है। आमाशय कार्य करने लगता है। जठराग्नि उद्दीप्त हो उठती है। ऐसी उत्फालित दशा में बालक को भूख का प्रथम आभाष होता है और वह चाहने लगता है कि इस उत्सुकता का शमन होवे। इस समय तक प्रसव वेदना के पश्चात् माता भी बच्चों की देखरेख करने के योग्य हो जाती है। और बच्चे के स्वास्थ्य के अनुसार उसे जैसे दूध की आवश्यकता होती है, देने में समर्थ होती है।

बालक के लिये प्रकृति की ओर से दिया हुआ सर्वोत्तम आहार माता के स्तन का दूध है। प्रकृति ने बड़ी निपुणता के साथ बालक के लिये इस पेय आहार का आयोजन किया है। नवजात शिशु का प्रत्येक अंग पुष्प के समान कोमल और सुन्दर होता है। शरीर में आन्तरिक और वाह्य शुद्धता होने के कारण बालक के स्वास्थ्य पर आहार का अमोघ प्रभाव पड़ता है। माता का दूध बच्चे के लिये सब प्रकार से अनुकूल भोजन है। शरीर की दृष्टि और पुष्टि के लिये जिन-जिन चीजों की आवश्यकता होती है वे सब इसमें पाई जाती हैं। कैसा भोजन करने से शुद्ध दुग्ध का उद्भव होता है—यह मैं 'माता का भोजन' शीर्षक लेख में उल्लेखित कर चुका हूँ, जो कि जीवन सखा के किसी अंक में प्रकाशित हो चुका है। बच्चे को यह आहार सदा ताज़ा मिलता है। ऋतु की आवश्यकता के अनुसार बच्चे को जैसे उष्ण या शीतल भोजन

की आवश्यकता होती है, वैसे ही उसमें तारतम्य होता रह[ता है।] बच्चे को सब प्रकार से स्वस्थ्य रखने के लिये मां के दूध [में] गुण विद्यमान हैं। इसके अतिरिक्त मां का ही यह पवित्र दूध बच्चे के अनेक सद्गुणों का समावेश करता है। मां के ही पूर्ण और स्निग्ध दूध पीकर बच्चा वीर देश भक्त, और ज्ञान[ी] अद्वितीय व्यक्ति बनता है। माता के दूध के अतिरिक्त दूसरे प्र[कार के] आहार में यह गुण विद्यमान नहीं हैं। प्रकृति ने बालक के [लिये] की इतनी अच्छी व्यवस्था की है पर बच्चा बीमार हो जा[ता है।] इसका कारण बच्चा स्वयं नहीं है अपितु वे लोग हैं जो अ[पने] बच्चे का प्रतिमा समझते हैं। उनकी अनवधानता से ब[च्चे को] शारीरिक कष्ट भोगना पड़ता है। माता का सही आहार न[होने,] किसी रोग विशेष से पीड़ित होने, असंगत विचार अनर्गत [विषय] भोग की लिप्सा, आलस्य मलिनता आदि के होने से [बच्चे के] शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य पर अधिक प्रभाव पड़ता है [जिसका] ही परिणाम बच्चे का रोग है। अतः जो स्त्रियाँ बच्चे [को दूध] पिलाती हैं उन्हें अपने स्वभाव, विचार और आहार पर विशेष [ध्यान] देना चाहिये। प्रसन्न रहना यों तो सभों के लिये अभीष्ट है [प्रसन्न] रहने वाले कार्य सम्पादन करने में समर्थ होते हैं और जीव[न की] प्रत्येक समस्या को भली प्रकार समझते हैं। कार्य की सफलता कुछ चित्त की प्रसन्नता पर निर्भर करती है। सांसारिक जी[वन में] सफलता ही सब कुछ है। इसकी तुलना करने वाली दूसरी [वस्तु] नहीं है। कार्य में सफलता का मनुष्य जीवन के स्वास्थ्य पर [भी] प्रभाव पड़ता है। स्वास्थ्य को अच्छा रखने के लिये प्रसन्[नता] अत्यावश्यक है। प्रसन्नता का जब जीवन के साथ इतना [घनिष्ठ] सम्बन्ध है तो सब स्त्रियों के लिये और मुक्तता होने वाली[यों] के लिये और स्तन पान कराने वाली स्त्रियों के लिये तो [प्रसन्न] रहना उनका कर्त्तव्य होना चाहिये। विषादवदना और मलि[न] रहना उनके लिये बहुत ही हानिकर है। यथा सम्भव उन[्हें इस] दुर्गुण से बचने की चेष्टा करना चाहिये।

मन और शरीर शरीर अभिन्न वस्तु है। मन की कि[सी] दशा का शरीर पर प्रभाव पड़ता है। मन यदि अपनी किस[ी] स्थिति में उदास और दुःखी है तो शरीर भी अलसाया हु[आ] रहेगा। ऐसी दशा में मनुष्य किसी प्रकार का शारीरिक [श्रम] करना न पसन्द करेगा। इसी प्रकार यदि शरीर किसी [रोग से] क्रान्त है तो मन इसके प्रभाव से सूना न रहेगा। शरीर की [अस्व]स्थता के साथ मन भी अस्वस्थ्य हो जाता है और पूर्ण [विश्राम] चाहता है। पूर्ण स्वास्थ्य के लिये निर्मल काया और प्रस[न्न मन] आवश्यक है। सुन्दर विचार और चरित्र से मन प्रसन्न र[हता है] और मित आहार से शरीर स्वस्थ्य रहता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फुन्सियाँ

(Scabies, from Life Devine)

अनु० — श्री कीर्तिनारायण सिंह

आ हरी त्वचा भी शरीर के मुख्य अंगों में से है क्योंकि इसके द्वारा ही विजातीय द्रव्य शरीर से बाहर निकलता है। जब तक यह विजातीय द्रव्यों को बाहर निकालने का काम करता है, तब तक का स्वास्थ्य ठीक रहता है और किसी प्रकार की बीमारियाँ न पाती। जब तक यह अपना काम करती है तब तक , दाद इत्यादि की शिकायत नहीं होती। खुजली को दूर ही साधारण बीमारियों को दूर करना है।

ीमारियों का प्रधान कारण अप्राकृतिक रहन सहन और खान- है। इनकी गड़बड़ी से शरीर विजातीय द्रव्य से भर जाता ब यह विजातीय द्रव्य किसी कारण से दब जाता है और निकलना बन्द हो जाता है, तभी बीमारी की शुरुआत होती जातीय द्रव्य जब बाहर निकल जाता है, तभी शरीर शुद्ध ा है। शरीर की सफाई के लिए विकारों का निकलना जरूरी होता है। जब शरीर के अन्दर विकार जमा हो और यदि शरीर इस विकार को साँस, पसीना और पेशाब- के रूप में अपने ग़ैर मामूली तरीक़े से नहीं निकाल सकता ा रूपी असाधारण तरीक़े से निकालता है। लेकिन यदि रोग ा निकल नहीं पाता और उसे रोकने की कोशिश की जाती रोग एक रास्ते को छोड़ दूसरे मार्ग का सहारा लेता है। लिन्डलार का कहना है कि जब फुन्सियाँ निकलती हैं और दूर करने के लिए गन्धक और पारे का उपयोग किया जाता यही ज़हरीले फोड़े तपेदिक और दूसरी प्राणघातक बीमा- का रूप धारण कर लेते हैं। विदेशी चिकित्सा पद्धति के पर विश्वास करती है क्योंकि सूक्ष्म दर्शक यंत्र (Micro-) के सहारे उन छोटे-छोटे कीड़े का पता चलता है, जो की हालत में चमड़े में छिपे रहते हैं और विदेशी चिकित्सा- विश्वास करती है कि छोटे कीड़े ही इसके कारण और फुन्सी णाम स्वरूप है। प्रचलित अंगरेजी शिक्षा प्रणाली (Allo- ic) में यह रोग अच्छा नहीं किया जाता बल्कि दबा दिया जाता है जिसका फलस्वरूप फुन्सी तो गायब हो जाती है, परन्तु जो विजातीय द्रव्य शरीर से निकाल रहे थे उनके बाहर निकलने का रास्ता बन्द हो जाता है। विकार उसी अंग में इकट्ठा होने लगते हैं और तब शरीर के उसी अंग में बीमारी होती है। यह अक़सर देखा गया है कि जो चर्म-रोग को कारबोलिक तेल या दूसरी ज़हरीली चीजों से दबाते हैं—वे अजीर्ण बदहज़मी से हमेशा पीड़ित रहते हैं; कभी कभी उन्हें पेट में जलन भी हुआ करता है।

लेखक के निजी अनुभव से अनेक प्रकार के पारा, गंधक या दूसरी ज़हरीले पदार्थ का प्रयोग चर्म रोग पर करने से पाचन क्रिया की भयंकर बीमारियाँ कब्ज, मंदाग्नि या मुंह में बार-बार सूजन आने की बीमारियाँ हुई। डाक्टरी-पद्धति ऐसे नतीजे से अनभिज्ञ है। कारण यह कि रोगों की एकता को नहीं मानती। प्राकृतिक चिकित्सा में रोगों के एकता के सिद्धान्त को मानते हैं। पारा, गंधक या इसी प्रकार के ज़हरीले पदार्थों का प्रयोग अवैज्ञानिक है। क्योंकि ये पदार्थ स्वतः विजातीय द्रव्य हैं। ये पदार्थ हज़म नहीं होते। और शरीर में जो खान-पान या रहन-सहन द्वारा जो विजातीय-द्रव्य उत्पन्न हुए हैं उनसे भी यह अधिक भयंकर हैं। इन दवाओं से जो बीमारियाँ उत्पन्न होती हैं, इन्हें दूर करना, बनिस्वत साधारण बीमारियों के, कठिन होता है। इसी तरह हम बीमारियों को दो हिस्से में बाँट सकते हैं। एक स्वभावतः उत्पन्न होते हैं और दूसरे अस्वाभाविकतः अर्थात् जो दवाओं के प्रयोग से। पहला स्वभावतः कम दुखदायी है बनिस्वत दूसरे के। ज़ोर की जलन जो ठंढ़े पानी के प्रयोग से तथा ठंढी पट्टी से दूर किया जाता है, वह दवाओं का निकलना ही है। डाक्टर लिन्डलार के चक्षु-निदान से नीचे लिखे उदाहरण लिए गये, हैं जो बतलाता है कि चर्म-रोग को दबाने का परिणाम क्या होता है और चर्मरोग प्राकृतिक तरीक़े से कैसे दूर किया जा सकता है।

बहुत दिनों की बात है कि डाक्टर लिन्डलार के यहाँ एक [illegible] की बच्ची रोग निर्णय के लिए आयी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रश्नोत्तरी

डाक्टर बालेश्वरप्रसाद सिंह

मेरा छोटा पुत्र ८-९ वर्ष का है। ४ वर्ष हुए उसको टाइफाइड हो गया था जो तीन माह रहा। उसी समय से उसका शारीरिक विकास ठीक प्रकार से नहीं हो रहा है और निम्न-लिखित आदतें भी उसकी हो गई हैः—

सोते में वह अधिकतर मुंह खोले रखता है और क़रीब-क़रीब रोज़ दांत बहुत कटकटाता है। फिर अपने शरीर को कुछ ऐसे तोड़-मोड़ कर सोता है कि अर्धं-गोलाकार की शकल बन जाती है। उस का सिर पीछे की तरफ, छाती वो पेट आगे की तरफ़ और पांव पीछे की तरफ़ हो जाते हैं। जागते में भी उसे अक्सर मुंह खोले रखने की आदत है। बहुत समझाते हैं पर वह भूल जाता है। कृपया कोई सरल उपचार बतलाइये।

(२) क्या कोई खाद्य पदार्थ अल्यूमीनियम के बरत हानिकारक तो नहीं हो जाता ?

.श्रीकान्तिप्रसाद रस्तोगी, कमिश्नरी मेरठ

उत्तरः—

(१) महाशय जी !

आपके प्रश्न देखने से पता चलता है कि आपके लड़ टाइफाईड की हालत में ही दवा का काफ़ी प्रयोग किया गय बीमारी बिलकुल निकली नहीं थी। उसका असर ज्ञान त पर पड़ा और यह भी पता चलता है कि उसके फेफड़ों पर म असर आया था, खांसी की भी शिकायत थी। बीमारी कुछ द गयी। बीमारी के बाद चीनी की मिठाई तथा शक्कर का अधिक किया गया। जिसकी वजह से बच्चे के पेट में कीड़े (W ms) की शिक़ायत हुई, जिससे लड़का दाँत कटकटाता है।

डाक्टर लिन्डलार—(सर के बायें भाग में एक पीला निशान देख कर) तुम कई वर्षों से सर के दर्द, स्नायु-दुर्बलता इत्यादि रोगों से पीड़ित रहती हो।

लड़की—हाँ ! कृपया इसका कारण बतलाइये।

डाक्टर—पहले तुम्हारे सर में कीड़े पड़ गये थे और तुम्हारी मां ने उसका कोई अच्छा इलाज न किया।

लड़की—हाँ, मुझे याद है कि मेरे सर में कई बार कीड़े पड़ गये थे। परन्तु यह तो बतलाइये कि इससे और रोगों से क्या मतलब ?

डाक्टर—इसके कारण सिर्फ़ बाहरी गंदगी नहीं किन्तु भीतरी भी।

तीन महीने प्राकृतिक चिकित्सा के प्रयोग करने के उपरान्त, एक दिन वह लड़की डाक्टर साहब के पास आयी। उसकी खोपड़ी में असंख्य फुन्सियाँ निकलती आ रही थीं, जिसके दर्द से वह परेशान थी। डाक्टर साहब ने देखा कि खोपड़ी के दाग एक उजली रेखा से घिर गई थी। देखने से पता चलता था कि फिर उसमें उभार होने वाला है।

डाक्टर—तुम्हें शीघ्र ही नये आगन्तुकों के दर्शन होंगे।

लड़की—(कुछ करुण-आश्चर्य मिश्रित स्वर में) आगन

डाक्टर—हाँ, वही आगन्तुक, जिनका स्वागत तुम्हारी कुछ वर्षों पहले किया था।

इस परिवर्त्तन के एक सप्ताह के अन्दर वह डाक्टर सा कमरे में आयी और हंसते हुए कहने लगी।

लड़की—डाक्टर साहब, एक नहीं, लाखों मेहमान प फिर भी मैं अभी तक उनकी सेवा में तत्पर हूं।

डाक्टर—ठीक है। ये सब तुम्हारी बीमारी को दूर करने हैं। अब तुम इनकी सेवा एक कंघी और ठंडे पानी के सिवा चीज़ों से न करो।

लड़की—आपको हार्दिक बधाई है कि आपने इस उ का प्रयोग करने के लिये कहा, अन्यथा पहले की ही तर उनकी सेवा करती।

लड़की के पुराने मेहमान (लीक और ढील) करीब दो स तक ठहरे और फिर जैसे आये थे, वैसे ही चले गये। उस से सदा ही वह इन झंझटों से दूर रहने लगी। प्राकृतिक उ के अन्दर उसे सिर्फ़ तीन महीने ठंढ पानी का प्रयोग पड़ा था।

क्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इलाज

[ल]ड़के को प्राकृतिक भोजन पर रखिए। किसी भी भोजन की [...] लेकर देखने से पता चल जायगा। इस विषय पर "जीवन- [सखा] के भोजनाङ्क में भी लेख निकल चुके हैं। सुबह में टट्टी [न] आने पर लड़के को एनिमा का प्रयोग कराइये। एनिमा में [प]ानी और नीबू का रस रहे। रात में सोते समय आधे घन्टे [मि]ट्टी का प्रयोग पेडू पर कराइए। यह प्रयोग तीन महीने से [हो]ने तक कराइए। इस बीच में आपका लड़का स्वस्थ हो [जाय]गा और उसकी तन्दुरुस्ती भी अच्छी हो जायगी।

(२) अल्यूमीनियम के बर्तन में भोजन बनाने की परिपाटी [हिन्दुस्]तान में काफी चल गई है। हाँ यह ठीक बात है कि इससे [बीमार]ियां भी काफ़ी फैल चुकी हैं। अल्यूमीनियम में चावल, [द]ाल तरकारी बनाने में कोई दोष नहीं है, पर जब नमक का [प्रयोग] होता है, अल्यूमीनियम में छेद-ही-छेद हो जाते हैं, जो [साफ] होना मुश्किल सा हो जाता है। उसमें कीड़े (Worms) [ह]ोते हैं जो रोग को फैलाते हैं।

[प्र]श्न—(१) यदि श्वेतसार और प्रोटीन पदार्थ खाद्य पदार्थों [का] योग हानिप्रद है तो—

(अ) क्या दाल और चावल या रोटी के साथ सेवन करना [...] है?

(ब) आटा तथा सूजी का हलुवा (Porridgo) क्यों [...] और स्वास्थ्यप्रद भोजन बताया गया है? वस्तुतः कुछ लोगों [क]ा मत है कि दूध तथा रोटी का साथ-साथ सेवन एक दूसरे [को प]चाने में सहायक होता है।

श्री युत वी० सी० मुकर्जी,
हेडमास्टर
गवर्नमेंट हाई स्कूल, जौनपुर

उत्तर—(१)

(अ) हाँ, दाल और चावल दोनों साथ खाना अवैज्ञानिक है, [क्योंकि], चावल का पाचन मुंह में ही लार से ही शुरू हो जाता है, [औ]र तक होता रहता है। जब आमाशय रस और पित्त चावल [के सा]थ मिलता है तो इसका पाचन रुक जाता है। कारण लार [क्षार] है। अम्ल द्वारा इसकी क्रिया नष्ट हो जाती है। प्रोटीन का [पाचन] जब आमाशय रस पेट में मिलता है तभी इसकी क्रिया शुरू होती है। प्रोटीन और श्वेतसार के पाचन अलग-अलग ही होना चाहिए। जिनकी पाचन क्रिया अच्छी है, वे दोनों साथ-साथ खाते हैं, पचाते भी हैं और उनके लिए कोई हर्ज नहीं है। पर जिनकी पाचन क्रिया कमज़ोर है उनको कष्ट जरूर होगा।

(ब) सूजी या आँटा या किसी चीज़ का हलुआ गरिष्ट ज़रूर होता है। इसमें काफ़ी घी, चीनी इत्यादि चीज़ें पड़ी रहती हैं। यह कभी भी हलका भोजन नहीं कहा जा सकता।

(४) दूध में वायु ज़रूर होती है और रोटी के साथ या और किसी श्वेतसार Starch के मिलाने से वायु कम हो जाती है। मैकफिडन साहब कहते हैं कि ये दोनों चीज़ें साथ-साथ खायी जा सकती हैं। पर फिर भी यह कहना पड़ेगा कि दूध-रोटी भारी ही होगा। कारण दूध-रोटी टाइफाईड के बाद नहीं दिया जा सकता, पर सिर्फ़ दूध दिया जा सकता है। दूध के साथ नीबू, संतरे या Calcium Citeraty मिला देने से दूध का हाज़मा ज़्यादा अच्छा होता है।

प्रश्नः—(१) एक व्यक्ति को पत्तीदार भाजी तथा पालक चौलाई आदि से हाथ पैरों में दर्द, आलस्य मानसिक अशान्ति व कुछ कमज़ोरी सी प्रतीत होती है व लौकी, तोरई आदि फल भाजियों से भी यही हालत होती है पर कम यानी इन तमाम शाकों से यह हालत होती है व Brainfag भी पैदा होता है। कृपा कर इसका कारण पूर्ण रूप से समझा कर लिखें। क्या ऐसे व्यक्ति को शाक-भाजी नहीं खानी चाहिये? और अगर खाना चाहिए तो किस प्रकार? क्या भाजियों का रस कुछ दिनों तक स्वरक्षित भी रखा जा सकता है? ग्रा० नं० १९६०—

उत्तर—(१) उपरोक्त महाशय को मंदाग्नि की बीमारी है। पेट में वायु ज़्यादा बनती है। पत्तीदार सब्जी के खाने से वायु ज़्यादा बनती है। इनको पहले मन्दाग्नि का इलाज़ करना चाहिए और पकी सबजी के बदले कच्ची सब्ज़ी का प्रयोग करना चाहिये। साथ ही अदरख का प्रयोग भी करे, वायु कम होगी।

सब्जियाँ सुखा करके ही सुरक्षित रखी जा सकती हैं।

नोटः—अब से 'जीवन-सखा' दो महीने में (By mou-thly) निकला करेगा। इसका वार्षिक मूल्य घटाकर कम से कम ३) तीन रुपया कर दिया गया है।

[वा]र्षिक मूल्य ३) } सम्पादक डा० बालेश्वरप्रसाद सिंह { प्रति अंक का ।।=)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पढ़िये ! लाभ उठाइये !!

सुन्दर, स्वस्थ और सुखी जीवन के इच्छुकों को ये पुस्तकें पढ़नी चाहिए

(१) रोगों की अचूक चिकित्सा (चतुर्थ संस्करण) : श्री जानकीशरण वर्मा, बी० ए० ५)
(२) मठा उसके गुण तथा उपयोग (परिवर्द्धित संस्करण) : श्री महेन्द्रनाथ पांडेय ॥≈)
(३) स्वास्थ्य और व्यायाम; केदारनाथ गुप्त ... ... २।)
(४) स्वास्थ्य के नुस्खे : 'जीवन सखा' कार्यालय ... ... ।)
(५) क्या और कैसे खायें : डा० बालेश्वर प्रसाद सिंह ... ... ।≈)
(६) ब्रह्मचर्य ही जीवन है : श्री स्वामी शिवानन्द ... ... १॥)
(७) सचित्र हठयोग : श्री स्वामी शिवानन्द ... ... १।)
(८) कब्ज या कोष्ठबद्धता : डा० बालेश्वर प्रसाद सिंह ... ... १)
(९) शक्ति दर्शन; शंकरलाल तिवारी ... ... ॥)
(१०) आँख का अचूक इलाज : श्री महेन्द्रनाथ पांडेय ... ... २)
(११) जुकाम : श्री महेन्द्रनाथ पांडेय ... ... १॥)
(१२) शहद के गुण : और उपयोग श्री महेन्द्रनाथ पांडेय ... ... ॥।)
(१३) आकृति निदान : लुई कूने ... ... २)
(१४) जलचिकित्सा : राखाल दास पहला भाग ... ... १॥।)
" दूसरा भाग ... ... १॥)
" तीसरा भाग ... ... १॥)
(१५) स्वास्थ्य के लिये शाक तरकारियां : श्री महेन्द्रनाथ पांडेय ... १॥)
(१६) आकृति निदान : लुई कूने ... ... २)
(१७) जलचिकित्सा : राखाल दास पहला भाग ... ... १॥।)
" दूसरा भाग ... ... १॥)
" तीसरा भाग ... ... १॥)
(१८) स्वास्थ्य के लिये शाक तरकारियाँ : श्री महेन्द्रनाथ पांडेय ... १॥)
(१९) हम सौ वर्ष कैसे जीवें : केदारनाथ गुप्त, एम० ए० ... ... १॥।)
(२०) सूर्य-नमस्कार : श्री भगवती प्रसाद पांडे, बी० ए० ... ... १।)
(२१) स्वास्थ्य और जल चिकित्सा : प्रिन्सिपल केदारनाथ जी गुप्त ... ॥।)
(२२) आहार ही औषध है : डा० एल० एन० रतरा ... ... १॥।)
(२३) फलाहार चिकित्सा : श्री महेन्द्रनाथ पांडेय ... ... २।)
(२४) Nature Cure by H. Lindlahr, M.D. 7 8
(२५) Practical Nature Cure by Dr. K. L. Sharma, N.D. 7 8
(२६) Fasting Cure by Dr. L. Sharma N.D. ... 0 6
(२७) Drugless Healing by Dr. L. Kameshwar Sharma, M.A., N.D. 0 8
(२८) Food-de-Medicine by Dr. L. N. Ratra, H.M.B. ... 1 4
(२९) Universal un-cooked food 3 8
(३०) Nature Cure of Eyedefect By Dr. K. L. Sharma. ...

स्वास्थ्य सम्बन्धी पुस्तकें मिलने का पताः—मैनेजर, स्वास्थ्य ग्रंथ-भंडार, लूकरगंज, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तरी भारत में प्राकृतिक चिकित्सा का प्रमुख केन्द्र

'प्राकृतिक स्वास्थ्य गृह' प्रयाग

जहाँ अब तक न जाने कितने कथाकथित असाध्य रोगों से पीड़ित होने वाले रोगियों ने पहुँच कर अपने को नीरोग और स्वस्थ बना लिया। यही कारण है, जो यह चिकित्सा केन्द्र लगातार उन्नति करता जा रहा है।

यदि आप किसी भयानक रोग से पीड़ित हो रहे हैं, डाक्टरों और वैद्यों की दवा से निराश हो चुके हैं, तो आप फ़ौरन यहाँ पधारें या पत्र देकर चिकित्सा के सम्बन्ध में विवरण प्राप्त करें।

यहाँ इन रोगों की सफलता पूर्वक चिकित्सा होती है—दमा, साधारण दुर्बलता, स्नायु दौर्बल्य, सभी तरह के चर्म रोग, रक्ताभाव, पुराना जुकाम, खाँसी, कब्ज, प्लुरिसी, अनिद्रा, दमा, मृगी, रक्त-चाप, मधुमेह मुटापा, मंदाग्नि, संग्रहणी, गठिया, स्नायु-शूल (scitica) उदर-शूल (colic pain), पथरी (gallstone troubles), गुर्दे की बीमारी, विषाक्त फोड़ा, नासूर, भगंदर, तथा विभिन्न प्रकार के स्त्री रोग जैसे—मासिक स्राव न होना या बहुत अधिक होना, स्राव के समय दर्द होना, प्रदर—इत्यादि इत्यादि।

यहाँ जिस चिकित्सा विधि से रोगी का इलाज किया जाता है उनमें यौगिक क्रियायें, आसन, प्राणायाम, मालिश, सूर्य-रश्मि-चिकित्सा, जल-चिकित्सा, मिट्टी तथा वाष्प-चिकित्सा, आहार चिकित्सा, उपवास, मानसोपचार आदि सम्मिलित हैं।

स्वास्थ्य गृह में भरती होने के नियम—(१) इस स्वास्थ्य गृह में स्त्री और पुरुष दोनों तरह के रोगी भर्ती किये जाते हैं। किन्तु संक्रामक रोगों से पीड़ित होने वाले तथा चारपाई छोड़ने में असमर्थ रोगियों के रखने का प्रबन्ध नहीं है। (२) रोगियों के रहने उपचार तथा सेवा-शुश्रूषा का प्रबन्ध संस्था की ओर से किया गया है (३) रोगियों से चिकित्सा फीस ६५) प्रति मास ली जाती है, जिसमें मकान का किराया और इलाज़ की फीस दोनों शामिल हैं।

विशेष जानकारी के लिए नीचे लिखे पते से पत्र व्यवहार करें :—

संचालक

प्राकृतिक स्वास्थ्य गृह

११, लूकरगंज, इलाहाबाद।

Printed at the Mission Press Allahabad.
Published by Dr. Baleshwar Prasad Sinha, 11, Lookerganj, Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन सखा

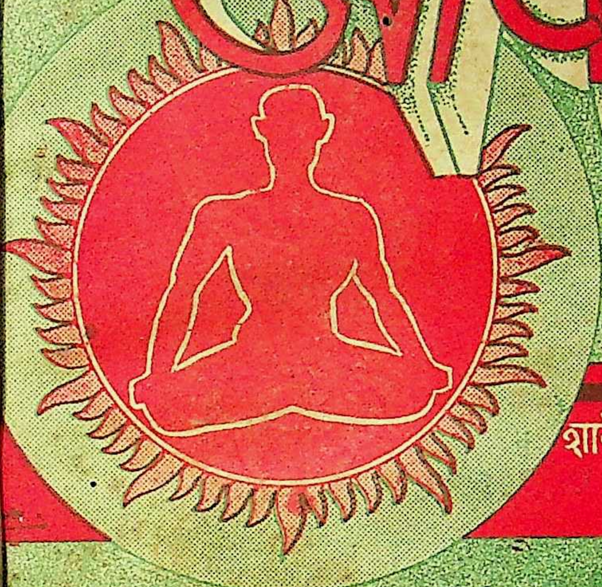

शारीरिक, मानसिक और नैतिक स्वास्थ्य पथ-प्रदर्शक

संयुक्त प्रान्त, मध्य प्रान्त तथा बिहार के शिक्षा विभागों द्वारा स्वी

इस अंक में पढ़िये

१—शिशु-जीवन के प्रति माता का सम्बन्ध—[लेखक श्रीयुत बृजमोहन मिहिर] ...

२—स्वास्थ्य और मानसिक आरोग्यता—[ले० श्री विजय बहादुर सिंह बी० ए०] ...

३—रजो दर्शन—[लेखिका— डा० इन्दुमती सिनहा, एन० डी० डी० वाई०] ...

४—हमारे छोटे भाई का मृगी से कैसे छुटकारा मिला—[ले० श्री ललित मोहनसिंह (गया)

५—गठिया के कारण और उसकी सुलभ चिकित्सा—[ले० श्रीयुत श्रीकृष्ण शर्मा] ...

६—आसन-व्यायाम की वैज्ञानिक विशेषता—[ले० श्रीयुत गणेशप्रसाद द्विवेदी, एम० ए० एल० एल० बी०

७—शारीरिक विकास में मनोविनोद—[ले० श्रीयुत कीर्ति 'कुमार'] ...

मार्च
१९४५

सम्पादक

डा० बालेश्वरप्रसाद सिंह

११ जून १९४५ ई० को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अखिल भारतीय प्राकृतिक-चिकित्सा

सम्मेलन का सातवाँ अधिवेशन

युक्त प्रान्तीय लेजिस्लेटिव एसेम्बली के माननीय सभापति बाबू पुरुषोत्तमदासजी टण्डन की अध्यक्षता डूकोटाई (दक्षिण भारत) में मई के अन्तिम सप्ताह में करने का वृहत् आयोजन किया गया है। इसमें प्रमुख चिकित्सकगण भाग ले रहे हैं। वे सज्जन, जो इसमें भाग लेना चाहते हों विशेष जानकारी ए निम्नलिखित पते से पत्र-व्यवहार करें—

सेक्रेटरी—

आल, इण्डिया नेचर-क्योर

कान्फ्रेंस, पुड्डूकोटाई,

दक्षिण भारत

प्राकृतिक चिकित्सालय

रामगढ़ जैपुर

यहाँ आपको राजपूताने के प्रमुख प्राकृतिक-चिकित्सक डा० सत्यनारायण अग्रवाल देख-रेख में, हरेक रोग से निश्चित रूप से राहत मिलेगी। प्राकृतिक चिकित्सा मस्त साधनों—जैसे जल, मिट्टी, धूप, वायु, व्यायाम, उपवास, युक्ताहार, मालिश, चिकित्सा, दुग्ध-चिकित्सा, बिजली, मानसोपचार आदि से आप पूर्णतया परि- न हो, दूसरों को भी इन्हीं साधनों से रोग दूर करने की सलाह देने क़ाबिल हो गे।

पूरी जानकारी के लिये डाक टिकट सहित लिखें—

प्राकृतिक चिकित्सालय,

रामगढ़ (जैपुर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Reg. No. A-172

जीवन सखा

सम्पादक
डा० बालेश्वरप्रसाद सिंह

वर्ष १०] मार्च, १९४५ [अङ्क ३

शिशु जीवन के प्रति माता का सम्बन्ध

(गतांक से आगे)

लेखक—श्रीयुत बृजमोहन मिहिर

इन दोनों बातों के प्रति माता का ध्यान रहेगा तब ही वह स्वस्थ्य रह सकेंगी। ऐसी प्रसन्न और स्वस्थ माता सृष्टि के कार्य के लिये उपयुक्त पात्र हैं। वे अपने उत्तरदायित्व को भली प्रकार समझेंगी और आवश्यकतानुसार उचित जीवन व्यतीत करती हुई गुणवान सुन्दर और उत्तम बालकों की माता बनेगी।

ऐसा उत्तरदायित्वपूर्ण जीवन व्यतीत करते हुए भी बच्चा बीमार हो सकता है। बीमारी का कोई न कोई कारण तो होता ही है; पर कभी-कभी गलती का ठीक तौर पर पता नहीं चलता। ऐसी दशा में घबराने की कोई बात नहीं है। रोग के नाम पर जाने की आवश्यकता नहीं है। आधुनिक काल के अन्य चिकित्सकों ने रोग के अनेक नाम धर दिये हैं, प्रत्येक रोग का अलग-अलग कारण बतलाते हैं और अलग-अलग चिकित्सा करते हैं। इतना सब होते हुए भी प्रायः उन्हें बीमारी का पता नहीं चलता। साधारण बीमारी ज्वर है। इसका रूप अगर कुछ भीषण होता है तो वह प्रथम अवस्था में यह नहीं बतला सकते कि किस प्रकार का ज्वर है। टाइफाइड ज्वर होते हुए कभी-कभी वह उसे मलेरिया बतलाते हैं और मलेरिया का उसे राजयक्ष्मा भी कह देते हैं। प्रत्येक पैथीवाले रोग का इलाज नहीं करते, बल्कि मरीज को क्या कष्ट है केवल उसे दूर करने की चेष्टा करते हैं। इस प्रयास में वे भांति-भांति की औषधियों का प्रयोग कर डालते हैं। कभी-कभी कष्ट भी बढ़ जाता है और रोग भी अच्छा नहीं होता। इन औषधियों की प्रतिक्रिया भी शरीर पर अच्छी नहीं होती। किसी प्रकार रोग से मुक्त हो जाने पर भी औषधि का असर काफी समय तक रहता है और स्वास्थ्य प्राप्त करने में काफ़ी समय लग जाता है। कभी-कभी मरीज को जीवन तक से हाथ धो डालना पड़ता है।

लेकिन प्राकृतिक चिकित्सक रोग को इस प्रकार नहीं लेते। शरीर के किस स्थान में कष्ट है या क्या तकलीफ़ है यह वह भी जानने की कोशिश करते हैं; लेकिन वे विभिन्न रोगों के अनुसार उसके लिये विभिन्न प्रकार की चिकित्सा नहीं करते। उनकी दृष्टि में रोग एक है अर्थात् मनुष्य अस्वस्थ्य है। अतः वे अस्वस्थता का इलाज करते हैं। रोग विशेष का नहीं। प्रत्येक रोग का मूल कारण उनकी दृष्टि में भोजन सम्बन्धी अव्यवस्था है। अनियमित भोजन से शरीर में विजातीय द्रव्य एकत्र हो जाता है जो टाइफाइड ज्वर के बिगड़ जाने पर वह अक्सर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि शरीर के विभिन्न भागों में कष्ट विशेष के रूप में प्रकट होता है। उसको हटा कर शरीर को स्वाभाविक दशा में ले जाने का ही उनका एकमात्र प्रयास रहता है। इसके हट जाने पर मनुष्य कष्ट से मुक्त होकर स्वस्थ जीवन प्राप्त करता है।

औषधि के बल पर रोग को अच्छा करना जीवन को स्वाभाविक दशा में लाने का प्रयास नहीं है; बल्कि वह उसके लिये पूर्ण प्रतिबंध्य है। औषधि से कोई रोग अच्छा भी हो जाय तब भी उसकी प्रतिक्रिया अनिवार्य है।

शरीर में प्रकृति ने स्वयं ऐसा आयोजन कर दिया है कि किसी रोग के उपस्थित होने पर किसी भी प्रणाली का आश्रय लिये बिना वह प्राणी को मुक्त कर देने की चेष्टा करती है। शरीर के शुद्ध कीटाणु बिजातीय कीटाणु के साथ युद्ध करके उन्हें पराजित कर देते हैं। शरीर के बहुत बिगड़ जाने की दशा में यह विवश हो जाते हैं और शरीर से प्राण पखेरू उड़ जाते हैं। शीघ्र आरोग्य प्राप्त करना, अधिक काल तक रोगी रहना या शरीर से प्राण का निकल जाना यह तीनों दशायें मनुष्य के अन्दर Vitality अर्थात् प्राण-शक्ति पर निर्भर करती है। जिस कदर अच्छी, अन्दर की प्राण-शक्ति होगी, प्राणी भला चंगा रहेगा और कदाचित् यदि किसी रोग का ग्रास बना भी तो शीघ्र स्वास्थ्य लाभ करेगा। प्राण-शक्ति की बहुत बड़ी महिमा है। इसको सदा जाग्रत और बलवती रखना चाहिये। फिर रोग से भयभीत रहने की आवश्यकता न रह जायगी। औषधि के बल पर मनुष्य सदा स्वास्थ्य नहीं रहेगा और यदि रहा भी तो वह अल्पकाल के लिये ही रहेगा। इसलिये जीवन में इस का महत्व अधिक नहीं है। बालकों को तो इसकी कोई आवश्यकता नहीं है।

जिस बच्चे को स्वाभाविक जीवन व्यतीत करने दिया जायगा और उसका आहार शुद्ध होगा तो उसके बीमार होने का भय नहीं-सा रह जायगा। लापरवाही से अगर कभी बीमार हुआ भी तो रोग विषम रूप न धारण करेगा। साधारण स्वाभाविक बालक को अगर कोई रोग हो सकता है तो वह केवल ज्वर है। यह एक चिन्ह है जो सूचित करता है कि शरीर के अन्दर कुछ अनावश्यक पदार्थ एकत्र हो गये हैं जो ज्वर के रूप में बाहर निकलने की चेष्टा कर रहे हैं। यह साधारण ज्वर बालक को एक ही दिन का उपवास करा देने और बाद में दो चार दिनों तक फल के रस और फल पर रखने से अच्छा हो जाता है। यदि बालक नित्य अपने आप शौच कर लेता है तो उसे एनिमा देने की आवश्यकता नहीं है, वर्ना आवश्यकतानुसार सादे पानी के एनिमा का प्रयोग किया जा सकता है। इस से पेट की सफ़ाई हो जाती है और रक्त में विजातीय पदार्थ के घुल जाने से जो विषमता आ गई है वह शान्त हो जाती है और शरीर के ताप का अन्त हो जाता है। ऐसा करने से दूसरे भीषण रोग का प्रकोप नहीं होने पाता।

इस लिये अगर मातायें अपना आहार-विहार ठीक कर लें तो न वे जल्दी बीमार होंगी और न उनके बच्चे। स्वास्थ्य के सम्बन्ध में प्रकृति उनकी अधिक पक्षपातिनी है। साधारण स्वाभाविक जीवन व्यतीत करने पर बीमारी इन से कोसों दूर रहती है। स्वस्थ माता बच्चे को जो दुग्धपान करायेगी वह उसके लिए अमृत तुल्य होगा। बच्चे को जितने दूध की आवश्यकता होगी वह उसे माता द्वारा सदा प्राप्त होता रहेगा। ऐसे शुद्ध दूध को पीता हुआ बच्चा कभी बीमार न पड़ेगा। दूध के शुद्ध होने पर भी यदि आवश्यकता से अधिक या न्यून दूध पिलाया जायगा तो भी बच्चे के बीमार हो जाने का भय है! दूध होने पर अकसर ज्यादा ही पिला दिया जाता है। रोते हुए बच्चे को चुप कराने का अबोध माताओं के पास यही एक मात्र उपाय है। दुःख की बात है कि माता-पद से विभूषित स्त्रियां बच्चे के पालन-पोषण के विज्ञान से नितान्त अनभिज्ञ हैं। गलत पालन पोषण से बच्चे का अच्छा विकास नहीं होने पाता और न उसमें अच्छे गुणों का उद्भव होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूख के अनुसार जब बच्चे को भोजन कराया जाता है तो वह उसके देह में लगता है। बच्चा भूखा हो जाता है, यह उसकी मुखाकृति और बच्चे के संकेत से मालूम हो जाता है, लेकिन यह कोई गम्भीर बात नहीं है। दूध पिलाने का समय निर्दिष्ट हो जाने पर बच्चा बीच में उसकी इच्छा न करेगा। उत्पन्न होने के बाद तीन महीने तक बच्चे को प्रति तीन-तीन घंटे पर दूध पिलाना चाहिये। चार महीने की आयु से प्रति ४ घंटे पर। इसके बाद २४ घंटे में केवल चार बार। प्रातःकाल सोकर उठने पर शौच के बाद ७ या ८ बजे, फिर १२ बजे, तीसरे पहर ४ बजे और रात्रि को ८ बजे। रात्रि में किसी समय अगर बच्चा जाग जाय और रोये तो उसे दूध के तापमान का थोड़ा जल पिला देना चाहिये। केवल इतने से बच्चे को सन्तोष हो जायगा और वह सो जायगा। बच्चे के बिस्तरे की ओर काफी ध्यान देना चाहिये। बच्चे का बिछौना मुलायम और ऋतु के अनुसार ठंडा या गरम होना चाहिये। बिछौना ऐसा होना चाहिये कि अगर रात को बच्चा उसे गीला कर देता है तो उससे कुल बिछौने को न बदलना पड़े, बल्कि ऊपर का ड्रापर बदल देना चाहिये। गद्दे के ऊपर मोमजामा या मेकनटास बिछाना चाहिये और फिर उसके ऊपर मुलायम सूती गदेलिया और फिर उसके ऊपर ड्रापर। गीले बिस्तरे पर पड़े रहना बच्चा कभी पसन्द नहीं करता। गीले बिस्तरे पर पड़े रहने से बच्चा बराबर रोता रहेगा।

बच्चे को आरम्भ से ही अलग सुलाना चाहिये। इससे बच्चे और माता दोनों का हित है। अलग सुलाने से बच्चा निर्विघ्न रात भर सोता रहेगा। उसे बीच-बीच में दूध पीने की आदत न पड़ेगी। जनन-कार्य के बाद माता को पूर्ण विश्राम की कई महीने तक आवश्यकता होती है। बच्चे के अलग सोने पर माता की नींद में भी किसी प्रकार की बाधा न पड़ेगी। बच्चे को मसेहरी के अन्दर सुलाना अच्छा है। इससे मक्खी-मच्छड़ आदि उसे कष्ट न पहुंचा सकेंगे। जाड़े की रात्रि में नींद खुल जाने पर देख लेना चाहिये कि बच्चा ठीक ओढ़े हुए है। बच्चे के उढ़ौने में एक, दो तागा लगा देना चाहिये ताकि हाथ पैर मार कर वह उसे खोल न डाले यानी एक प्रकार का खोल बनाकर बच्चे को उसके अन्दर सुलाना अच्छा है। एक वर्ष की आयु होते होते माता को बच्चे के मुंह में स्तन देने की आदत बन्द कर देना चाहिये। तीन महीने की आयु हो जाने पर बच्चे को शंतरा, अंगूर, सेव, मीठे आम का पतला रस, किशमिश, मुनक्के का पानी इत्यादि देना आरम्भ कर देना चाहिये। ६ महीने की आयु के बाद पालक, टोमाटो, लौकी, तरबूज, खरबूजे का तथा अन्य मीठे फलों का रस भी देना चाहिये। ९ महीने की आयु पूरी हो जाने पर बच्चे को बकरी या गाय का ताजा धारोष्ण दूध देना चाहिये। अगर उबाल कर दूध देना पड़े तो उसमें दूध की मेक़दार का एक चौथाई पानी मिला दिया जाय। बच्चा अगर दूध हज़म कर लेता है तो कोई जरूरत नहीं है, वर्ना १ चाय का चम्मच निथरा हुआ चूने का पानी दे देना अच्छा होगा। दूध पान के साथ फल के रस का व्यवहार भोजन में विटामिन की पूर्ति करेगा और चूने का पानी पाचन क्रिया में सहायता पहुंचायेगा। फलों के रस में शंतरे का या इस जाति के और फलों का रस सर्वोत्तम है।

माता के दूध में बच्चे के स्वास्थ्य के लिये सब आवश्यक पदार्थ विद्यमान हैं। इसके अतिरिक्त दूध के साथ एक और प्रकार का रस निकलता है जो बच्चे के पेट की आलाइश को साफ करता है। स्वस्थ बच्चे के मल का रङ्ग सोने-जैसा पीला होता है। मल के इस रङ्ग को देख कर समझ लेना चाहिये कि बच्चे की पाचन-क्रिया अच्छी है और उसे अपने भोजन से पूरा लाभ हो रहा है। इसके विपरीत लाल, मिट्टी जैसे या किसी और रङ्ग के मल को देखकर समझ लेना चाहिये कि बच्चे का स्वास्थ्य अच्छा नहीं है। जो भोजन उसे कराया जाता है, अनुकूल नहीं है। ऐसे समय दूध पिलाने की संख्या में कमी कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देना चाहिये। अधिक अच्छा यह है कि आवश्यकतानुसार एक दो दिन बच्चे को दूध न पिलाया जाय। अलबत्त शन्तरे का रस, किशमिश का पानी, सेब का रस इत्यादि दिये जा सकते हैं। यह भी देखा जाता है कि दूध पीने के बाद तुरन्त या थोड़ी देर में बच्चा उलटी कर देता है। यह दोष यही सूचित करता है कि बच्चे को जितना दूध पिलाया गया है उसकी उसे ज़रूरत नहीं थी। ज़रूरत से ज़्यादा दूध पिलाना बच्चे की जान लेना है। उलटी हो जाने या पतले दस्तों के आ जाने पर लोग अधिक ध्यान नहीं देते; लेकिन कुछ ही दिनों के बाद बच्चा कठिन व्याधि से ग्रसित हो जाता है और उसका जीवन खतरे में पड़ जाता है। उसकी यकृत और तिल्ली बढ़ जाने से भोजन पचाने के लिये उसमें से जो रस निकलता है उसका निकलना बन्द हो जाता है और यकृत स्वयं बढ़ना आरम्भ करता है। ऐसी दशा में बच्चा जो भोजन करता है उसका पोषण रस नहीं बनता। इसकी पूर्ति के लिये उसे अधिक आहार की आवश्यकता पड़ती है। इस रोग के आरम्भ में बच्चा अधिक भोजन करता है। रोग जब विकराल रूप धारण कर लेता है तो अधिक भोजन करने की भी उसकी रुचि जाती रहती है। इस समय बच्चे के अन्दर रोग से लड़ने की शक्ति का खातमा हो जाता है। अब वह चुपचाप शान्त लेटा रहता है। उसका रोना-हंसना सब कुछ बन्द हो जाता है और वह इस संसार में कुछ दिनों का ही मेहमान हो जाता है। आमाशय में जब पाचन-क्रिया का कार्य समाप्त हो जाता है तो जो थोड़ा बहुत भोजन पेट में पहुंचता है वह भी उसके लिये विष हो जाता है। मल के रूप में उसका बाहर निकलना भी मुश्किल हो जाता है। पेट फूलकर चिकना, तरबूज की तरह हो जाता है। यकृत रोग के साथ थोड़ा ज्वर भी रहता है। यकृत विकार और मिठुआ करीब-करीब एक ही रोग है। अधिक आयु वालों के लिये जैसे यक्ष्मा है, बच्चों के लिये वैसे ही यह यकृत विकार और मिठुआ है। असाध्य दशा में इस रोग से पीड़ित बच्चा बचता नहीं। कुछ समय तक क्षीण होते-होते बच्चे के जीवन का अन्त हो जाता है। प्यारे बच्चे की माता ही अपनी भूल से इस विपत्ति का मूल कारण है। माता को दूध के सम्बन्ध में एक और बात की ओर विशेष ध्यान देना चाहिये। उसे यह देख लेना चाहिये कि बच्चे के कांस्टिट्यूशन के हिसाब से स्तन का दूध अधिक सबल तो नहीं है। किसी का दूध बच्चे की आवश्यकतानुसार निर्बल होता है और किसी का सबल। दोनों ही प्रकार के यह दूध ठीक नहीं हैं। नियमित रूप से दूध पिलाने पर भी अगर बच्चा भली प्रकार पनपता नहीं और उसको उलटी हो जाती है या दस्त आने लगता है तो समझ लेना चाहिये कि या तो दूध विकार है या बच्चे में शारीरिक शक्ति की कमी है। इस सम्बन्ध में माता को अपना दूध जंचा लेना चाहिये और अपने भोजन में दूध को सबल या निर्बल बनाने के लिये तारतम्य करना चाहिये। यदि दूध पाचन में सबल है तो उसे शीघ्र हजम हो जाने वाली हलकी खोराक खानी चाहिये—जैसे साग भाजी, कुछ फल और केवल आध सेर तक बकरी या गाय का दूध। यदि दूध निर्बल है तो उसे अधिक दूध, मेवा यानी बादाम, पिस्ता, चिलगोजा इत्यादि इस्तेमाल करना चाहिये या और प्रकार के प्रोटीडफूड व्यवहार में लाना चाहिये।

अर्थात् दूध जब बलवान है तो ग्लूबतेज की मात्रा अधिक लेनी चाहिये और यदि कमजोर है तो पुतनक पदार्थ का कुछ अधिक व्यवहार करना चाहिये। बच्चे को उलटी हो जाने की या कई बार टट्टी हो जाने की शिकायत है; किन्तु बच्चा देखने में प्रसन्न और स्फूर्तिवान है तो सन्तुलित भोजन के अतिरिक्त किसी विशेष प्रकार के भोजन की आवश्यकता नहीं है। प्रत्येक दशा में मिताहारी होना आवश्यक है।

बच्चे के मुँह में स्तन देने के सम्बन्ध में माताएं भूल किया करती हैं। साधारण स्त्रियां

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वच्छता पर तनिक भी ध्यान नहीं देतीं। अगर वे बैठी हैं तो बैठी हुई और अगर सोई हैं तो सोई हुई, ज्योंही बच्चा रोया, दूध पिलाना शुरू कर देती हैं। ऐसी दशा में वे स्वयं भी सो जाती हैं और बच्चा भी दूध पीता हुआ सो जाता है। बच्चे को दूध पिलाने की यह आदत बुरी है। इस तरीके से बच्चा दूध अधिक पी जाता है। दूध की एक दो बूँदें स्तन के बाहर भी फैल जाती हैं और बच्चे का मुंह भी उससे लगा रहता है। इससे बच्चे को सांस लेने में दिक्कत होती है और बाहर की गंदगी का बच्चे के स्वास्थ्य पर असर होता है। दूध जागती हुई हालत में बैठे हुए पिलाना चाहिये। निश्चित समय पर ही दूध पिलाना चाहिये। यह भी अन्दाज कर लेना चाहिये कि दूध पीने में बच्चा कितना समय लेता है। उसी के अनुसार दूध पिलाने में उसे समय देना चाहिये। यह ठीक नहीं है कि बच्चा जितनी देर तक चाहे दूध पीता रहे या थोड़ा-थोड़ा सुस्ता कर दूध पीने में बहुत देर लगाये। यह दोनों बातें भोजन के सम्बन्ध में बच्चे की आदत को आरम्भ से बिगाड़ देंगी। ऐसी हालत में बच्चा कभी दूध ठीक से और ठीक मात्रा में न पियेगा। कभी कम दूध पीने से 'भूखा' रह जायगा और कभी अधिक पी जायगा। निर्धारित समय होने पर उसे दूध पिलाया जाय और पिलाने के बाद तुरन्त ही स्तन को धो लेना चाहिये। वय प्राप्त कोई व्यक्ति क्या यह पसन्द करेगा कि भोजन किये हुए गन्दे पात्र में वह फिर भोजन करे। सफाई सब को पसन्द है, लेकिन आलस्य इसमें प्रतिरोध उपस्थित करता है। दूध पिलाने में एक ही स्तन बार-बार मुंह में नहीं देना चाहिये। प्रातःकाल सात बजे यदि दाहिनी ओर का स्तन दिया है तो दूसरी दफा १० या ११ बजे बाईं ओर का स्तन देना चाहिये। ऐसा करने से दोनों तरफ का दूध बराबर निकलता रहेगा। उसमें गुलटी न पड़ने पायेगी। गुलटी पड़ जाने से स्तन में तनाव होता है, और दर्द हो जाता है। ऐसे स्तन का दूध भी कुछ विकृत हो जाता है। गलती से स्तन में तनाव हो जाने पर मन्दी सेंक करना चाहिये और सहते हुए गरम पानी से उसे धोना चाहिये। दिन में कई बार ऐसा करने से दो तीन दिन में तकलीफ जाती रहती है। अगर जरूरत से ज्यादा दूध होता है तो भोजन में परिवर्तन करना चाहिय अर्थात् ऐसी चीजें खाई जांय जिससे दूध की उत्पत्ति कम होवे। इसके अलावा; आवश्यकता से अधिक दूध होने पर उसे हाथ से दबाकर भी निकाला जा सकता है। इस उपचार से बच्चा इस स्तन को मुँह में देने लगेगा। दूध पिलाने के पहले उसको एक-दो बार जमीन पर गिरा देना चाहिये। बच्चा अपनी मां का थर्मामिटर है। जैसा मां का स्वास्थ्य होगा वैसा ही बच्चे का। उसके मानसिक गुण और अवगुण का प्रभाव भी बच्चे के मस्तिष्क में प्रवेश करता है। मां के शरीर की खराबी या उसकी आदत बच्चे में भी आ जाती है। गर्भवास में एक स्त्री को चाय पीने का दुर्व्यसन लग गया था। रात्रि को ११ बजे वह चाय पीती थी। यह समय आने पर बच्चा बड़ा बेचैन हो जाता था। काफी समय तक उसकी इस बेचैनी का कारण किसी की समझ में नहीं आया। कुछ बड़ा हो जाने पर उसे एक रात्रि को यों ही चाय पिला दी गई। उस रात्रि को बच्चा प्रसन्न था। फिर बराबर उसे चाय दी जाने लगी। चाय देने से बच्चे में और खराबियां उत्पन्न हुईं, लेकिन बच्चे की विकलता जाती रही। अतः गर्भकाल में माताओं को अपने व्यवहार में बड़ी सावधानी रखनी चाहिये।

बच्चे के भोजन के सम्बन्ध में उसके अन्न-प्राशन पर भी विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है। बच्चे को उसकी आयु के सातवें महीने से दांत निकलना शुरू हो जाता है। स्वस्थ बालक को दांत निकलते समय कोई कष्ट नहीं होता। पहले उसके आगे के ऊपर वाले दो दांत साथ ही साथ निकलते हैं और तब नीचे के दो दांत निकलते हैं। दो वर्ष की आयु हो जाने पर बच्चे के प्रायः सब दांत निकल आते हैं। आगे के प्रथम २ दांतों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के निकल आने पर यह न समझ लेना चाहिये कि बच्चे को मनचाही चीज़ें खाने को दी जा सकती हैं। आगे के दो दांतों का मतलब है चीज़ों को कुतरना। कुतरी हुई चीज़ें चौघरे से दबाई कूंची, और पीसी जाती है। अगर प्रकृति आठ ही महीने की आयु में बच्चे को ठोस भोजन खिलाना चाहती तो आगे के दो दांतों के साथ पीछे की चौघर भी चीज़ों को दबाने और पीसने के लिये निकलती। लेकिन शिशु की कोमल आयु का ख्याल करके प्रकृति ने ऐसा आयोजन नहीं किया है। चौघर न निकलने के समय तक प्रकृति का यही प्रबंध है कि बच्चे को ऐसे पेय पदार्थ दिये जांय जिन्हें कूँचने की कतई आवश्यकता न हो। इस आयु में बच्चे को किसी भी ठोस चीज़ के देने का मतलब है उसके लिये रोग को आमन्त्रित करना। ऊपर नीचे आगे के दोनों दांतों के निकल आने पर उसे शंतरा, अंगूर, सेब इंजीर इत्यादि कुतरने के लिये दिये जा सकते हैं। इस अवस्था में बच्चा कुतरी हुई चीज़ों को अधिकतर फेंक ही देता है; क्योंकि कड़ी चीज़ों को पहले-पहल निगल जाने का उसका अभ्यास नहीं होता। चीज़ों को निगल जाने का अभ्यास तो वह मुलायम चीज़ों से सीख लेता है।

आठ महीने की आयु तक बच्चे को केवल मां का दूध और उसके साथ मीठे शंतरे या इस जाति के और दूसरे मीठे फलों का दिन भर में ½ छटांक तक रस दिया जाना चाहिये। इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं। बच्चा जब नौ, दस महीने का हो जाय तो मां को कोशिश शुरू कर देना चाहिये कि १ वर्ष की आयु प्राप्त करते-करते बच्चे की आदत स्तन-पान करने की छूट जाय। इस समय मां को चाहिये कि वह उसे गाय या बकरी का दूध देना शुरू कर दे। उबले हुये दूध में कुछ समय तक पहले थोड़ा पानी मिलाना आवश्यक है। इस सम्बन्ध में इस लेख में ही पहले कहा जा चुका है।

चौघर निकल आने पर भी बच्चे को अन्न की चीज़ें न दी जांय तो अच्छा है। मुलायम उबली हुई हरी तरकारी, उबला हुआ सेब, भिगोई हुई इन्जीर, मुनक्का, किशमिश इत्यादि देना चाहिये। इस प्रकार का आहार बच्चे को उसकी २ वर्ष की आयु तक ज़रूर मिलना चाहिये। जो लोग सम्पन्न हैं यदि वे इस आयु में बच्चे को उबली हुई तरकारी न दे कर केवल दूध, मेवा और फल पर उसे रक्खें तो विशेष हितकर है। सब्जी का आश्रय पैसे की कमी पर ही लिया जाय।

जो लोग बच्चे को उसके आगे के दो दांतों को निकला हुआ देखकर किसी शुभ मुहूर्त में उसका अन्नप्राशन कर देते हैं, सब प्रकार से अनुचित करते है। अन्नप्राशन संस्कार तो २ वर्ष की आयु के पहले कदापि न होना चाहिये। इस आयु के पहले जिनके बच्चे अन्न पर रहने लगते हैं उनके यहां बीमारी भी झांकना शुरू कर देती है। बाजार की मिठाइयां, पूरी कचौरी मैदे के बने हुए सकल पकान्न इत्यादि उसे कभी भूल कर भी न दिये जांय। जिस कदर वह दूध पी सके, उसे दूध देना चाहिये, इसके साथ फल और इंजीर, मुनक्का, किशमिश ५ नग बादाम तक दिन भर में दिये जा सकते हैं।

अबुध या भोले माता-पिताओं को आज भी भोजन-विज्ञान का ज्ञान नहीं है। इसके अभाव में वे नहीं जानते कि बच्चे को क्या, कितना और कैसा भोजन देना चाहिये। गरीबों की तो समस्या ही अलग है। जो पैसे वाले हैं वे भी अपनी असावधानता और अविज्ञता से इस पर ध्यान नहीं देते। प्रत्येक को इस संबंध में सजग होना चाहिये। इससे वे बहुत बड़ी होने वाली क्षति से अपनी तथा अपनी सन्तान की रक्षा करेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वास्थ्य और मानसिक आरोग्यता

ले० श्री विजय बहादुर सिंह बी० ए०

प्रत्येक मनुष्य की यह आन्तरिक कामना रहती है कि वह सदा स्वस्थ एवं सुखी रहे—इसके लिए वह निरन्तर प्रयत्नशील रहता है, तिसपर भी वह किसी न किसी प्रकार के असंयम का आखेट बन ही जाता है और एक न एक व्याधि उसके सुखमय जीवन को चिन्ताशील एवं अशान्त बना डालती है। बाल, तरुण, प्रौढ़ एवं वृद्ध होना यह शरीर का नैसर्गिक धर्म है। प्रौढ़ावस्था के बीतते-बीतते अनेक व्याधियों का पदार्पण शरीर में परिलक्षित होने लगता है। और स्वभावतः मनुष्य के हृदय में मृत्यु के सन्निकट आने की एक संदिग्ध भीति विराजित हो जाती है।

पूर्ण सावधानी रखने पर भी हम देखते हैं कि सामान्य कारण के उपस्थित हो जाने से शरीर रोगग्रस्त एवं मन अशान्त हो उठता है। शरीर को स्वस्थ रखने के लिए साधारण व्यक्ति जितना वाह्य उपचारों एवं आहार-विहार पर ध्यान देता है उतना अपने मानसिक विकारों को नियंत्रित एवं परिशोधित करने में नहीं लगाता। वह अपने शरीर को ही अपना व्यक्तित्व मानता है। वह यह नहीं समझता कि शरीर तो आत्मा का भोगायतन है। आत्मा वस्तुतः अजर एवं अमर है। उसके सन्निकट रोग जरा, चिन्ता आदि का उन्मेष तक नहीं होता। यह सब तो शरीर ही पर अपना प्रभाव दिखलाते हैं।

साधारण मनुष्य शारीरिक संयम पर जितना ध्यान देते हैं उतना मानसिक संयम पर नहीं रखते। संभवतः अज्ञान ही इसका कारण है। शरीर और मन का पारस्परिक बड़ा ही घनिष्ट सम्बन्ध है। यदि शरीर स्वस्थ एवं सुखी है तो मन भी प्रसन्न एवं उत्साहपूर्ण रहता है। इसी प्रकार मन की स्वस्थता एवं स्थिरता का शरीर की स्वस्थता पर बहुत उत्तम प्रभाव पड़ता है।

शरीर और मन का अन्योन्याश्रित संबंध है सही; पर मन अधिक बलवान है। अनुभव से यह देखा जाता है कि कभी-कभी शरीर के बहुत अस्वस्थ रहने पर भी यदि मन को किसी अन्य सुखद विषय की ओर लगा दिया जाय तो शरीर में होने वाली वेदना का उस समय कुछ भी अनुभव नहीं होने पाता। शारीरिक सुख-दुख को अनुभव करने वाला मन ही है। ठीक इसके विपरीत मनके चंचल, क्षुब्ध एवं क्लान्त रहते समय उसकी प्रिय से प्रिय वस्तु भी सुखद नहीं होती और उसका स्वस्थ शरीर क्लान्त, मलिन एवं अवसादपूर्ण होते-होते व्याधि-ग्रस्त हो जाता है। इससे आप अनुमान कर सकते हैं कि शारीरिक स्वास्थ्य से मानसिक स्वास्थ्य मनुष्य के लिए अधिक हितावह एवं उपादेय है। शारीरिक स्वास्थ्य के लिए उचित आहार-विहार एवं सदाचार जितना आवश्यक है उससे कहीं अधिक हमें अपने मन को सुसंस्कृत करने के लिए इन्द्रिय-निग्रह एवं कठोर संयम की आवश्यकता है हमारे भीतर तीन शक्तियां प्रतिक्षण कार्य करती रहती है जिन्हें हम "इच्छा-शक्ति, ज्ञान शक्ति और क्रिया शक्ति" के नाम से अभिहित करते हैं। आप अनुभव से देखते होंगे कि हृदय में किसी नये विचार का उन्मेष होता है; या किसी नये कार्य के करने की अभिरुचि उत्पन्न होती है। इसके बाद आप अपनी बुद्धि—reason से उसके गुणावगुण का विवेचन करते हैं। और अंत में उसके करने और न करने का निर्णय करते हैं। यदि बुद्धि उसे करना उचित समझती है तो आप उसके संपादन में संलग्न हो जाते हैं। विचारों का जन्मदाता मन है। उसके गुणावगुण का निर्णय करना बुद्धि का कार्य है। और उसे कार्य में परिणत करना विवेक का धर्म है।

आप थोड़ा संयत-चित्त होकर विचार करें तो आप देखेंगे कि आप शरीर ही नहीं, वरन् उससे होने वाले कार्यों एवं सुख-दुःखादिकों के साक्षी हैं। साक्षी अमर है; शरीर नाशमान है। साक्षी शरीर का प्रेरक एवं शासक है। अतः साक्षी शरीर से अधिक बलवान है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हम जिसे शरीर या स्थूल देह कहते हैं, वह भी पांच कर्मेन्द्रियों एवं पांच ज्ञानेन्द्रियों से युक्त होने से ही कार्य करने की क्षमता पाता है; अन्यथा वह जड़ ही रह सकता है। आप देखते हैं कि हमारे प्रत्येक कार्य के जनक हमारे विचार हैं। जैसे हमारे विचार हैं, वैसे ही हम बन जाते हैं। विचार से ही व्यक्ति राक्षस हो जाता है और विचार से ही वह महात्मा बन जाता है। विचारों का प्रभाव मानव जीवन पर धीरे २ अंकित होता रहता है। यह निश्चित सिद्धान्त है।

विचार करने से यह दिखाई पड़ता है कि शारीरिक स्वस्थता से मानसिक समस्थिति एवं शांति हम लोगों के लिए अधिक उपादेय है। मन ही विचार करता है। मन ही इन्द्रियों को कार्य करने के लिए प्रेरित करता है। वस्तुतः शरीर का संचालक मन है। यदि मन संयत नहीं है, सदाचार के वायु से सुरभित नहीं किया गया है तब तो उस से उत्पन्न होनेवाले विचार भी दुखद, रोगोत्पादक एवं भयावह परिणाम उत्पन्न करने वाले ही सिद्ध होंगे। मनुष्य केवल अपनी कामनाओं एवं लालसाओं का पुतला ही नहीं है। वह यदि अपने को ईश्वरांश मान कर अपनी अनुचित लालसाओं पर कठोर निग्रह करे तो आरोग्यता के साथ मानसिक सुख-शान्ति का रत्नागार खुल जाय।

मन की प्रसन्नता ही सारे सुखों की जननी है। इसके विपरीत मन की अप्रसन्नता के कारण शारीरिक स्वस्थता में विकार उत्पन्न होने लगते हैं और हमें अधिक दुख उठाने पड़ते हैं। मन ही विचारों का केन्द्रस्थल है। वही विचारों को उत्पन्न करता है। मन के अनुकूल धर्म को राग कहते हैं। मन अपने अनुकूल कार्य चाहता है। यदि कोई उसके राग के विरुद्ध कार्य या आचरण करता है तो उसमें द्वेष; असूया, ईर्ष्या, क्रोध आदि विकार उत्पन्न हो जाते हैं जो मानव-जीवन को अशान्त एवं दुखमय बना देते हैं। क्रोध से हिताहित का ज्ञान नहीं रह जाता; बुद्धि भ्रमित हो जाती है एवं विवेक पथभ्रष्ट हो जाता है। फलतः उस व्यक्ति की अधोगति हो जाती है। अतः हमें अपने मन में उत्पन्न होने वाले कामनाओं पर कठोर नियंत्रण रखना चाहिए। यदि हम ध्यानपूर्वक विचार करें तो हमें यह स्पष्ट दिखाई पड़ेगा कि हमारे शत्रु हमारे शरीर-अन्तःकरण के भीतर ही निवास करते हैं। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मत्सर आदि के उन्मूलन करने की हमें सतत चेष्टा करनी चाहिए। क्रोध, ईर्षादि के कारण चिन्ता, उद्वेग आदि अनेक विषाक्त विकार उत्पन्न हो उठते हैं जो हमारे रक्त को शोषण कर डालते हैं।

हमें अपने हृदय में सदा यह सुदृढ़ भाव स्थापित करना चाहिए कि हम शरीर से मनुष्य होते हुए भी सत्-चित्-आनन्द—पुरुष के अंश हैं। ईश्वर या आदि-पुरुष जिसकी हम सन्तान हैं—केवल सात्विक है और विकार रहित है। हम लोगों में सत, रज और तम—तीनों गुण समाविष्ट हैं। तम और रज से दूर रहने की चेष्टा करना ही मनुष्य-धर्म है। हम में जो व्यक्ति जितना तम और रज से दूर रहता है, वह उतना ही शारीरिक आरोग्य एवं सांसारिक सुख का उपभोग करता है। और संसार के ताप उसे अधिक नहीं सताते। वह शान्तमय जीवन व्यतीत करता है।

हम जब कभी सात्विक जीवन की ओर प्रवृत्त होने का प्रयास करने लगते हैं उस समय हमारे संस्कार बहुत ही बाधाएँ एवं प्रतिघात उपस्थित करते हैं। संस्कार हमारे स्वकृत कर्म या मनचिंतित विचार हैं जिन्हें पूर्व में हमने किये या सोच रखे थे। वे तम और रज से पूर्ण रहते हैं। संस्कारों के तम और रज अंश ही हमें अपने मधुर प्रलोभनों में बलात् खींच ले जाते हैं और हमें पथभ्रष्ट किया करते हैं। वे बहुत प्रबल होते हैं और हमारे सुपथ के तो बहुत बड़े बाधक हैं।

राग रजोगुण का सहज धर्म है। रजोगुण से लालसाएँ उत्पन्न होती हैं। मन उन्हें पाने के लिये लालायित हो उठता है। उनका अनुसरण करता है; और दुख के गर्त में गिर पड़ता है। अतः मन पर नियंत्रण रखना प्रत्येक विवेकशील व्यक्ति का धर्म है। अपनी लालसाओं पर विजय पाना ही स्वस्थ एवं सुखी होने की पहली सीढ़ी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रजो दर्शन

[लेखिका—डा० इन्दुमती सिनहा, एन. डी. डी. वाई.]

बाल्यावस्था को पार कर यौवन के देहरी पर पहुंचने की अवस्था को वयःसंधि कहते हैं। यह वयःसंधि ही वह महत्वपूर्ण मोड़ है, जहाँ से स्त्री-जीवन की धारा एक नयी दिशा की ओर प्रवाहित होती है। यही अवस्था है जब उसे पहला रजो-दर्शन या मासिक धर्म होता है।

अधिकांश स्त्री-रोग इसी मासिक धर्म या माहवारी की गड़बड़ी से उत्पन्न होते हैं, जिनका जीवन पर बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ता है। और यह गड़बड़ी पैदा होती है आधुनिक स्त्री-समाज की भूलों के कारण। इसका एक प्रमाण यह है कि अधिकांश स्त्री-रोग शहरों में आधुनिक सभ्यता के वातावरण में रहने वाली स्त्रियों को सताते हैं न कि देहात की स्त्रियों को, जो शहर की स्त्रियों के मुकाबले में प्रकृति के अधिक निकट रहती हैं। शहरी स्त्रियों का अप्राकृतिक रहन-सहन, अनुचित आहार विहार, अत्यधिक विलास-प्रियता ही सारी बुराइयों की जड़ है। यदि हम अपनी भूलों को सुधार लें, प्रकृति के मार्ग पर चलें तो यह मानी हुई बात है कि बहुत सी बीमारियों की या तो नींव ही न पड़ने पायेगी, या उनका रूप इतना भयंकर नहीं होगा जितना कि आजकल देखने में आता है।

स्त्री-शरीर के उत्पादक अंगों की बनावट

मासिक धर्म तथा इससे सम्बन्ध रखने वाली बीमारियों का जिक्र करने से पहले यहाँ पर संक्षेप में उत्पादक अंगों की बनावट तथा उनकी स्थिति का वर्णन करना बहुत जरूरी है।

स्त्री-शरीर के निचले पेट में पेशाब और मलकी थैलियों के बीच जरायु (बच्चेदानी) होता है। यह एक तरह की खाली थैली है, जिसकी शक्ल अमरूद या नाशपाती की सी होती है। इसी बच्चेदानी में बच्चा ९-१० महीने तक गर्भ की हालत में रहता है। इसमें रबड़ की थैली की भाँति संकुचित होने (सिकुड़ने) और फैलने की शक्ति होती है। गर्भ की हालत में ज्यों-ज्यों बच्चा बढ़ता है त्यों-त्यों वह बच्चेदानी भी बढ़ती या फैलती जाती है। और बच्चा पैदा हो जाने पर यह सिकुड़कर फिर पहले जैसी हालत में आ जाती है। इसके ऊपरी भाग को जरायु की जड़ (Fundus) और निचले भाग को जो बहुत कुछ पतला होता है, जरायु-ग्रीवा (Cervix) या जरायु की गर्दन (गर्भाशय-ग्रीवा) कहते हैं। गर्भाशय ग्रीवा से ३ इंच लम्बी नसों की एक टेढ़ी नली जाती है, जो जरायु से जुड़ी रहती है। इसे योनि-पथ कहते हैं। जरायु के दोनों किनारे पर एक-एक इंच लम्बी बादाम के आकार की दो थैलियाँ होती हैं, जिन्ह डिम्बकोष, डिम्बाशय या डिम्बाधार कहते हैं। हर एक डिम्बकोष (Ovaries) में सरसों के दाने जैसे छोटे- छोटे दस-बीस डिम्ब Ovum) होते हैं। जरायु की जड़ में दोनों तरफ बांह की तरह तीन-तीन इंच लम्बी दो नलें होती हैं, जो जरायु को डिम्ब से मिलाती हैं। इन्हें 'काललनल' (Fallopian Tubes) या स्त्री-वीर्य-वाही नल कहते हैं।

युवावस्था होने पर जब स्त्री की जननेन्द्रिय पुष्ट होती है, तब डिम्ब-कोष से डिम्ब निकला करते हैं। तभी डिम्ब-कोष, 'कालल-नल' और जरायु में रक्त की अधिकता होती है और उससे रक्त बह निकलता है। इसी को ऋतुः-स्राव, रजो-दर्शन, मासिक-धर्म या माहवारी कहते हैं।

पहली माहवारी का समय

प्रथम रजोदर्शन या माहवारी के समय पर किसी देश की भौगोलिक स्थिति, वहाँ के निवासियों के रहन-सहन आदि का प्रभाव पड़ता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रिटेन जैसे शीत-प्रधान देश में आम तौर से १४ साल की उम्र में रजोदर्शन होता है। छोटे कद वाली (नाटी) अथवा मेहनत का काम करने वाली स्त्रियों के कुछ पहले ही माहवारी शुरू हो सकती है। इसके विपरीत लम्बे कद की अथवा देर तक बैठकर काम करने वाली स्त्रियों में रजोदर्शन कुछ देर से होता है। किन्तु भारत जैसे गरम देश में आम तौर पर १२ या १३ साल की अवस्था में ही रजोदर्शन हो जाता है। कभी-कभी पहले रजो दर्शन में बिलम्ब होने के भी उदाहरण पाये जाते हैं, जब कि १६ साल की या उससे भी अधिक आयु तक माहवारी शुरू नहीं होती। लेकिन यह कोई असाधारण बात नहीं, और इसे कोई रोग समझ कर घबड़ाने की भी जरूरत नहीं। इसके लिए सिर्फ चाहिए यही कि हम अपना खान-पान, रहन-सहन शुद्ध और सात्विक रक्खें। अगर हमारी ही भूलों के कारण हमारे शरीर में कोई अन्दरूनी विकार नहीं आ गया है, तो माहवारी शुरू होने के समय में कुछ अन्तर पड़ जाने से कोई बुरा नतीजा नहीं निकल सकता।

माहवारी की यह क्रिया वयः संधि से आरम्भ होकर ४०-४५ साल की अवस्था तक जारी रहती है। उसके बाद मासिक-धर्म हमेशा के लिए बन्द हो जाता है। इस अवस्था को आर्त्तव-क्षय (Meno-Pause) या 'अवस्था का बदलना' (Change of life) कहते हैं। आर्त्तव क्षय होने पर गर्भ नहीं रह सकता।

मासिक धर्म पर चन्द्रमा की कलाओं का प्रभाव

मासिक धर्म प्रायः २८ दिन में होता है। माहवारी का सम्बन्ध चन्द्रमा की कलाओं से है। इस लिए अगर किसी स्त्री की शारीरिक अवस्था बिलकुल दुरुस्त हालत में हो—उसमें कोई अन्दरूनी विकार न हो तो इसे पूर्णमासी के दिन शुरू होकर ३-४ दिन तक जारी रहना चाहिए। और अगले महीने २९ वें दिन उसे फिर माहवारी शुरू हो जाना चाहिए। जिन स्त्रियों के पूर्णमासी के दिन या उसके लगभग माहवारी नहीं होता तो निश्चय जानना चाहिए कि उनके शरीर में विजातीय द्रव्य मौजूद है, और मासिक धर्म के दिन पूर्णमासी से जितने दूर टलते जाय उतना ही अधिक विजातीय द्रव्य उनके शरीर में मौजूद होना समझना चाहिए।

प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली के जनक लुईकुने का कहना है कि मासिक धर्म स्त्री-शरीर में उत्पन्न होने वाले रसों की अनावश्यक अधिकता प्रकट करता है। गर्भ रह जाने पर वे ही रस जो पहले अनावश्यक समझे जाते थे, गर्भ की पुष्टि के काम में आने लगते हैं, और इसीलिए सगर्भावस्था में माहवारी बन्द हो जाती है। यह बात अनुभव से सिद्ध हो चुकी है कि गर्भ की रक्षा के लिए पूर्णमासी के आस-पास के दिन खटके के होते हैं, और गर्भ-स्राव हो जाने का डर लगा रहता है। क्योंकि यही वह समय है जब शरीर के स्वस्थ और नीरोग स्त्री को गर्भ न रहने पर स्वाभाविक रजोदर्शन होता है। लुईकुने का यह भी कहना है कि जिन रोगों का सम्बन्ध जरायु या बच्चेदानी से होता है वे जैसे-जैसे चन्द्रमा की कलाएँ बढ़ती हैं वैसे ही वैसे रोग अधिक खतरनाक होते जाते हैं और इसी तरह ज्यों-ज्यों चन्द्रमा की भी कलाएँ क्षीण होने लगती हैं त्यों-त्यों रोग के कारण पैदा हुई तकलीफों में भी कमी होने लगती हैं। इन बातों से यही साबित होता है कि प्रकृति से हमारा कितना गहरा सम्बन्ध है। फिर यदि प्रकृति से मुँह फेर कर, उसके नियमों का उल्लंघन करके हमें तरह-तरह के रोगों और व्याधियों के रूप में यातनाएं भोगनी पड़ती हैं तो इसमें आश्चर्य प्रकट करने की कौन सी बात है।

मासिक धर्म की अवधि और उसके पूर्णरूप

मासिक धर्म औसतन २८ दिन में हुआ करता है। गरम देशों में यह इससे कुछ पहले भी हो सकता है। और माहवारी का स्राव भी अपेक्षा से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिक मात्रा में हो सकता है। इससे कम समय में या इतने ही समय में एक से अधिक बार माहवारी का होना असाधारण अवस्था का सूचक है। यह स्राव ज्यादातर ३ से ५ दिन तक होता है। अगर यह दो दिन से कम या सात दिन से अधिक दिन तक हो तो इसे असाधारण समझना चाहिए। माहवारी के दिनों में जो खून जाता है उसकी मात्रा में भी विशेष रूप से अन्तर पाया जाता है। आम तौर से यह स्राव २ से ८ औंस तक होता है। लेकिन इस नियम में भी अपवाद पाया जा सकता है और प्रत्येक स्त्री की अपनी अलग-अलग प्रकृति होने से इस मात्रा में कमी-वेशी हो सकती है। अगर किसी स्त्री को कभी तो कम और कभी अधिक मात्रा में स्राव होता हो तो उसे असाधारण ही समझना चाहिए। आवश्यकता से अधिक मात्रा में स्राव होने का अन्दाज इस आधार पर लगाया जा सकता है कि इस तरह की माहवारी में अक्सर थकावट और कमजोरी या शिथिलता मालूम होती है।

माहवारी के समय खास तौर से इस तरह का खून आता है जो साधारण लाल रंग का और चमकीला होता है और उसका थक्का नहीं जमता। इस स्राव में श्लेष्मा भी पाई जाती है और उसमें कुछ मात्रा में कैलशियम क्षार भी मिलता है। यह स्राव गर्भाशय या जरायु की जड़ या उसके पिछले भाग से होता है, जो माहवारी के एक हफ्ते पहले से फूल जाता है। यही बात स्वतः गर्भाशय के भी सम्बन्ध में पाई जाती है। वह कुछ बढ़ जाता और मुलायम भी हो जाता है। माहवारी के आरम्भ में खून की शिराएँ फूट जाती हैं और यही रक्त अन्त में मासिक स्राव के रूप में बाहर निकलता है। मासिक धर्म के समय गर्भाशय के फूले हुए भीतर के स्तर (Cudometriun) का बहुत अधिक भाग टूट कर रक्त में मिल जाता है। माहवारी के बन्द होने पर उस पुराने स्तर से एक नया भीतरी स्तर अगली माहवारी होने से पहले के ३ हफ्तों में फिर तैयार हो जाता है।

यदि कोई स्त्री बिलकुल स्वस्थ और निरोग है है तो उसमें माहवारी के दिनों में बहुत कम लक्षण प्रकट होने चाहिए। लेकिन सामान्य माहवारी की अवस्था में भी कइयों को ज्यादातर आलस्य या शिथिलता और उत्तेजना (Irritability) की शिकायत हुआ करती है। अक्सर उसे मामूली सिर-दर्द भी होता है: थोड़ा बहुत पीठ में दर्द, जांघों में भारीपन में, पेट के निचले हिस्से में कुछ तकलीफ हो जाना भी साधारण बात है। मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि माहवारी के दिनों में एक तिहाई स्त्रियों के जोरों की पीड़ा, दूसरी एक तिहाई के मामूली पीड़ा और बाकी तिहाई स्त्रियों के कुछ भी पीड़ा नहीं होती। मासिक के एक दो दिन पहले और उसके बीच स्तन कुछ बढ़ जाते और अपेक्षा से अधिक संवेदनशील हो जाते हैं। कुछ प्रणाली-रहित ग्रंथियां भी, खासतौर के गले में अपटुका ग्रंथि— Thyroid gland, कपोलों की पारोटिड ग्रंथि भी, इसी प्रकार कुछ बढ़ी हुई मालूम होती हैं। कुछ स्त्रियों के त्वचा में, खास करके चेहरे की त्वचा में, कुछ रंगीनी छा जाती है।

माहवारी शुरू होने के पिछले हफ्ते में नाड़ी की गति कुछ धीमी पड़ जाती है, रक्त-चाप सामान्य से कुछ बढ़ जाता है और खून में भी अपेक्षा से अधिक लाल रक्त-परमाणु बढ़ जाते हैं और उसमें कैलशियम क्षार भी बहुत बढ़ जाता है। लेकिन माहवारी शुरू हो जाने पर रक्त चाप अपने आप घट जाता है और रक्त में कैलशियम क्षार की मात्रा में भी विशेष रूप से कमी हो जाती है।

मासिक धर्म पर सगर्भावस्था का प्रभाव

आमतौर पर सगर्भावस्था में मासिक का होना रुक जाता है। फिर भी यह मुमकिन है कि सगर्भावस्था के पहिले दो तीन महीनों तक माहवारी होती रहे। लेकिन गर्भ रह जाने की हालत में जो माहवारी होती है उसमें साधारण मासिक के मुकाबले में कम मात्रा में खून जाता है। एक दूसरी बात जो खासतौर से देखने को मिलती है, वह यह है कि गर्भ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रह जाने पर मासिक स्राव एकाएक रुक जाता है। इसलिए अगर किसी ऐसी स्त्री के, जिसे ठीक समय से माहवारी होती रही हो, मासिक धर्म का होना एकाएक रुक जाय तो समझना चाहिए कि वह गर्भवती हो गई है।

लेकिन अगर मासिक धर्म एकाएक बन्द न होकर धीरे-धीरे बन्द हो तो उसके बारे में यह नहीं कहा जा सकता कि ऐसा गर्भाधान के कारण हुआ है। इसमें तो कुछ महीने पहिले से ही मासिक के दिनों में खून जाना धीरे-धीरे कम होने लगता है और अन्त में बिल्कुल बन्द हो जाता है। इस तरह की अवस्था का कारण ज्यादातर शारीरिक स्वास्थ्य की गड़बड़ी ही होती है, न कि गर्भ रह जाने की अवस्था।

प्राकृतिक चिकित्सा के जनक आचार्य लुईकुने का कहना है कि मासिक धर्म स्त्री के शरीर में उत्पन्न होने वाले रसों की अनावश्यक अधिकता का सूचक है। गर्भ रह जाने पर वे ही रस, जो अनावश्यक समझे जाते थे, अब गर्भ की पुष्टि के काम में आने लगते हैं। यह एक मानी हुई बात है कि गर्भ की रक्षा के लिए पूर्णिमा के आस-पास के दिन खटके के होते हैं। क्योंकि यही वह समय है जब किसी स्वस्थ और नीरोग स्त्री को गर्भ न रहने पर स्वाभाविक रजोदर्शन होता है। इसलिए इन्हीं दिनों में गर्भ-स्राव हो जाने की आशंका हो सकती है। लुईकुने का यह भी विचार है कि जिन रोगों का सम्बन्ध गर्भाशय से होता है वे चन्द्रमा की कलाओं के अनुसार घटते बढ़ते हैं। इन बातों से भी यही साबित होता है कि मानव-जाति से प्रकृति का कितना गहरा सम्बन्ध है।

मासिक धर्म सम्बन्धी असाधारण अवस्थाएँ

वयः संधि के पहिले के मासिकधर्म का न होना एक साधारण बात है, और यही बात आर्तवक्षय माहवारी का हमेशा के लिए बन्द हो जाना, जिसे 'अवस्था का बदलना' भी कहते हैं— के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। प्रसव के बाद जब तक माता बच्चे को दूध पिलाती है, तब तक भी मासिक का न होना स्वाभाविक है, हालांकि यह बात सभी माताओं में समानरूप से नहीं पाई जाती। कई माताओं के दूध पिलाने के पहिले दो या तीन महीने बाद फिर माहवारी होने लगती है। दूसरी ओर अगर यह दूध पिलाने की अवस्था अपेक्षा से अधिक समय तक जारी रहे तो इस वजह से भी मासिक का होना स्थायी तौर से रुक सकता है।

मासिक सम्बन्धी एक विशेष असाधारण अवस्था, लेकिन जो प्रायः बहुत कम देखने में आती है, वह होती है जिसमें किसी श्लैष्मिक झिल्ली से खून आता है। यह केवल उन्हीं स्त्रियों में होती है जिनके गर्भाशय सम्बन्धी अंगों की गड़बड़ी के कारण पहले कभी माहवारी नहीं हुई रहती है। इस तरह की स्त्रियों के हर महीने होने वाला मासिक स्राव अक्सर किसी स्वस्थ श्लैष्मिक झिल्ली—जैसे नाक, उदर, फेफड़े और पाखाने के रास्ते, और कभी कभी स्तनों के चूचुओं से भी हुआ करता है।

इस तरह के मामलों में किसी खास उपचार की आवश्यकता नहीं होती, क्योंकि ये लक्षण आगे चलकर अपने आप मिट जाते हैं। लेकिन अगर यह स्राव किसी रोगी श्लैष्मिक झिल्ली से होता हो तो उसका उचित उपचार करना आवश्यक होगा।

कभी कभी यह मासिक स्राव शरीर के भीतर ही भीतर हुआ करता है, लेकिन बाहरी तौर पर इसका कोई लक्षण नहीं दिखायी देता। असल में होता यह है कि गर्भाशय की आवरण कला से माहवारी के समय स्राव तो होता है लेकिन वह योनि-पथ में किसी प्रकार की रुकावट पैदा हो जाने के कारण बाहर नहीं निकल पाता। यह रुकावट किसी किस्म के तीव्र प्रदाह या शोथ के कारण पैदा होती है। इस तरह के स्राव की आशंका तभी करनी चाहिए जब किसी लड़की के सयानी हो जाने पर भी मासिक नहीं होता हो, लेकिन उसे हर महीने कुछ दिनों तक पेट के निचले हिस्से में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दर्द होता हो। माहवारी में खून का थक्का जम जाना यह सूचित करता है कि गर्भाशय की आवरण कला नीरोग हालत में नहीं है। माहवारी का ठीक समय से न होना, बिल्कुल ही न होना, कष्ट के साथ होना, बहुत कम या बहुत अधिक होना यह सब असाधारण अवस्थाएँ होती है, जिनका अलग-अलग सविस्तर वर्णन किया जायगा।

माहवारी के दिनों में सावधानी

मासिक के रूप में स्त्री के शरीर का अन्दरूनी मल या विकार बाहर निकल जाता है। शरीर की सफाई का यह प्राकृतिक साधन केवल स्त्रियों को ही मिला है—पुरुष-जाति इससे वंचित ही है। इस लिये शरीर की अन्दरूनी सफाई के इस स्वाभाविक कार्य में सहायता पहुँचाना हमारा कर्त्तव्य है। मासिक के दिनों में मन में किसी तरह की उत्तेजना न आने देने और शान्त चित्त रहने की बड़ी आवश्यकता है। ऐसा न करने से बहुत हानि पहुंच सकती है। इन ३-४ दिनों तक रजस्वला स्त्री को भरसक कोई काम नहीं करना चाहिये, जहाँ तक बन पड़े पूर्ण विश्राम अथवा आराम करना चाहिए। लेकिन अगर कुछ काम करना ही पड़े तो वह ऐसा तो किसी हालत में भी न होना चाहिए जिससे कि बदन में थकावट आ जाय। पुराने विचार के हिन्दू घरों में रजस्वला स्त्री से घर का कोई काम-काज नहीं कराया जाता—४-५ दिन तक उसे 'अछूत' ही समझा जाता है।

भारत में प्राकृतिक चिकित्सा के प्रवर्त्तक महात्मा गांधी की भी यही सलाह है कि मासिक धर्म के समय किसी को भी नियत कार्य नहीं सौंपना चाहिये। उस समय स्त्री पर किसी प्रकार प्रकार का बाहरी बोझ न होना चाहिए। यह इष्ट है, कि उनका मन जिस काम में लगे उसे वे सुख से करें। कितनी ही स्त्रियों को 'मासिक धर्म का परिणाम मालूम नहीं होता, और वे अपना काम काज चालू रखती हैं। बहुतों को असह्य वेदना होती है। कितनों को वेदना तो नहीं होती; किन्तु शरीर काम करने लायक नहीं रहता जिसे इस धर्म का सदुपयोग करते बनता है वह हर महीने नयी शक्ति प्राप्त करती है। ये तीन-चार दिन नयी शक्ति प्राप्त करने के होते हैं और प्राप्त करने के लिए स्त्री को प्रत्येक जिम्मेदारी से मुक्त रखना इष्ट है। उसे सोने की इच्छा हुई तो उसे वैसा करने की छूट चाहिए। नासमझी के कारण बहुत सी स्त्रियां उस समय भी दौड़ धूप नहीं छोड़तीं। वे ज्ञानहीन हैं। उन्हें समझा देने की आवश्यकता है।'

मासिक धर्म के दिनों में, प्रकृति के कार्य में सहायता पहुंचाने के लिये भोजन भी ऐसा करना चाहिए जो मिर्च मसालों से रहित, शुद्ध, सात्विक हलका और सुपच हो। अगर इन दिनों में किसी को कोई खास तकलीफ हो जाय तो उस हाल में फलों का रस या सिर्फ दूध पीकर रह जाना उत्तम होगा। अगर कब्ज की शिकायत मालूम हो तो एनिमा लेना चाहिए। एनिमा का पानी गुनगुना होना चाहिए। अगर माहवारी के दिनों में बहुत खून जाता हो तो शुरूआत में कुछ घन्टों तक लेटे रहने से भी बहुत फायदा हो सकता है। रजस्वला स्त्री को ठण्डे पानी का प्रयोग स्नान आदि के लिये बिलकुल न करना चाहिए। अगर स्नान करना ही हो तो किसी बन्द कमरे में गुनगुन पानी में तौलिये को निचोड़ कर बदन पोंछ लिया जा सकता है।*

*लेखिका की शीघ्र ही प्रकाशित होने वाली पुस्तक नारी-आरोग्य-दर्शन से।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे छोटे भाई को मृगी से कैसे छुटकारा मिला

ले० श्री ललित मोहनसिंह (गया)

हमारे छोटे भाई ऊधो की उम्र इस समय १८ है। उसे मृगी का दौरा सात वर्ष की उम्र से शुरू से हुआ था। इसके पहले भी कभी-कभी दौरा होता था परन्तु उस पर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता था। बच्चा है, गर्मी से गस्ती आ जाती है—इससे ठीक पता भी नहीं लगता था जब वह कुछ बड़ा हुआ तो पहले तीन माह के अन्तर देकर दौरा आने लगा और तब ही से इलाज भी आरम्भ हुआ। हमारे पिता जी को होमियोपैथिक चिकित्सा पर बहुत विश्वास था, क्योंकि उन्होंने कुछ स्वयं भी इसका अध्ययन किया था। इस लिए करीब एक वर्ष तक होमियोपैथिक दवा होती रही, पर कुछ लाभ नहीं हुआ। दौरा पहले आधे मिनट तक रहता था, परन्तु अब करीब एक मिनट तक रहने लगा। और दौरे के बाद अब उसे कुछ परेशानी होने लगी, कभी-कभी ऐसा भी होने लगा कि ज़बान कट जाये। अब मुह से कुछ झाग (फेन) भी निकलने लगा।

इसके बाद वैद्य जी की दवा हुई। पटना के एक प्रमुख वैद्य ने करीब ६ माह तक दवा की। इसके बाद बनारस में एक सुप्रसिद्ध वैद्य हैं उनका भी इलाज तीन माह के क़रीब चला; किन्तु रोग ने और भी भयानक रूप धारण किया। अब दौरा माह में एक बार होने लगा, और कुछ अधिक समय तक रहने लगा।

अंग्रेजी दवा से हम लोग पहले कुछ घबड़ाते थे। परन्तु अब करें क्या, दूसरा रास्ता भी तो नहीं दिखता था, लाचारी थी, परन्तु ज्यों-ज्यों दवा होती गयी रोग बढ़ता गया। जितना भी हम लोगों से हो सकता था, किया। अब हालत यह हो गई कि तीसरे चौथे और कभी-कभी एक दिन में आठ-दस बार होने लगा हम लोग सब ही परेशान हो गये। परन्तु कर क्या सकते थे कहावत है—मरता क्या नहीं करता।

जब तक साँस तब तक आश। एक मित्र के पास हिन्दी में डा० लुई कुहने के New Science of Healing का अनुवाद मिला। अंधे की लाठी समझ उसी को पकड़ कर चलने लगे। और इसके विशेषज्ञ की तलाश में हमेशा रहे। 'जीवन-सखा' एक लायब्रेरी में देखने को मिला, बड़ी प्रसन्नता हुई। घर आकर पिता जी से जिक्र किया। दूसरे ही दिन कुछ पुस्तकों का आर्डर दिया गया, और पत्र व्यवहार द्वारा क़रीब दो माह तक प्राकृतिक चिकित्सा भी की गई। इससे कुछ लाभ जान पड़ा। तीसरे महीने अपने भाई को लेकर मैं इलाहाबाद गया। इलाहाबाद स्वास्थ्य-गृह में हम लोग ६ माह रहे। अब मेरा भाई स्वस्थ है।

इलाज़ इस प्रकार चला। यह तो ऊपर में कह चूका हूं कि डा० कुहने के अनुसार इलाज़ शुरू कर दिया था। उस समय सिर्फ़ बाथ देते थे, आर चोकरदार आंटे की रोटी। इसके बाद डा० बालेश्वरप्रसाद सिंह जी से पत्र व्यवहार द्वारा कुछ दिनों तक इलाज़ किया। उसमें भी अधिकतर बाथ ही चलता रहा। तब प्राकृतिक स्वास्थ्यगृह में आये। यहाँ आने पर एक सप्ताह सिर्फ़ संतरा का रस भोजन में दिया गया। कभी-कभी प्यास लगने पर नीबू का रस पानी के साथ देते थे। इलाज़ में सुबह-शाम मट्टी की पट्टी और एनिमा दिया जाता था, रात में सोते समय पैरों को गर्म पानी में क़रीब पन्द्रह मिनट तक रखते। दूसरे सप्ताह संतरा के रस, दो सेब, टमाटर के सूप, और लौकी की तरकारी दिया जाने लगा। इलाज उसी तरह चलता गया। सिर्फ़ दोपहर में रीढ़ पर मिट्टी की गीली पट्टी पन्द्रह मिनट के लिए दी जाती थी। तीसरे सप्ताह में चोकरदार आँटे की एक रोटी दी जाने लगी। इसके अलावा जो पहले चलता था, चलता गया। इलाज में भी कोई परिवर्तन नहीं हुआ। चौथा सप्ताह एक छटांक आटे की रोटी दी जाने लगी। अब शाम को एनिमा बन्द कर दिया गया, और उसके जगह पेडू पेडू स्नान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिया जाने लगा। पांचवें सप्ताह में पेडू स्नान दो बार दिया जाने लगा। और सब उसी तरह चलता गया। छठा सप्ताह, भोजन उसी तरह रहा, इलाज भी क़रीब वही रहा। दोपहर में पट्टी के बाद मेहन स्नान दिया जाने लगा। सातवें सप्ताह, सब इलाज़ बन्द कर दिया गया सिफ मिट्टी की पट्टी और सुबह में ऐनिमा। नवां सप्ताह, इलाज का क्रम वैसा ही चलने लगा जैसे चलता था। नीले रंग की रोशनी सिरपर शुबह के धूप में दिया जाने लगा। दसवां सप्ताह, में नेती का प्रयोग। पहले जल बाद को सूत नेती दिया जाने लगा। इसी तरह सारा प्रोग्राम चलता गया। बारहवें सप्ताह में उभांड़ आया। नाक से ख़ून गिरने लगा और कुछ फिर भी, जो पहले कम हो गया था, बढ़ गया। इलाज सब बन्द कर दिया गया। भोजन में सिर्फ़ तीन दिनों तक संतरा के रस, और सुबह-शाम मट्टी और ऐनिमा चलता गया। इससे ख़ून आना बन्द होगया। इलाज का क्रम वही था जैसा कि ऊपर बता चुके हैं। ६ माह तक इलाज़ उसी तरह चलता गया। नमक आज तक नहीं दिया गया है। इलाज करते क़रीब बीसवां माह है। फिर आना तो बन्द हो गया, परन्तु अभी तक खान-पान उसी तरह चल रहा है।

मेरा भाई ऊधो किस तरह अच्छा हुआ, यह सिर्फ़ इसलिए दे रहे हैं कि 'जीवन-सखा' के पाठक इससे लाभ उठावें।

गठिया के कारण और उसकी सुलभ चिकित्सा

ले० श्रीयुत श्रीकृष्ण शर्मा

गठिया के रूप और कारण :—गठिया एक व्यापक रोग है। यह अपने जाल में बालक, वृद्ध, स्त्री-पुरुष तथा युवका तक को समेटे हुए हैं। ऋतुओं के चक्र को भेदता हुआ निष्कंटक चला जाता है। परन्तु शिशिर में उसका वेग विशेष रूप से रहता है। किसी भा श्रेणी के मनुष्य को नहीं छोड़ता। अमीर और ग़रीब सभी इसका लोहा मानते हैं। कितनी कुटिलता के साथ अकस्मात ही आक्रमण कर देता है मानों मनुष्य के अभिमान के तोड़ने का बीड़ा इसी ने उठाया हो। मनुष्य के सदैव गतिशील उपांगों में सबसे कठोर जगह पर आघात करनेवाला रोग गठिया ही है। मनुष्य के सुरक्षित किले के चारों ओर पड़ाव डालता है। जो अन्दर से लोहे के समान कठोर हड्डी से सुरक्षित है तो बाहर की ओर मासपेशियों तथा (Teudvis and Cartilage) की दीवारों से घिरा हुआ है। वह स्थान है जोड़ या सन्धियाँ। कभी-कभी जब उग्र रूप धारण करता है तो कोमल मांसपेशियों तथा सूक्ष्म स्नायुओं तक को नहीं छोड़ता। उसके अस्त्र भी तेज और पैने होते हैं। गला देने और क्षीण कर देनेवाली एसिड जिनमें युरिक और आक्साइड एसिड प्रधान हैं काम में लाई जाती है। खुराक पहुंचाने वाले तथा सहायक मार्ग बन्द से हो जाते हैं। हाहाकार मच जाता है। किले में घुसा हुआ चोर हड्डियों में निहित क्षारयुक्त चूना है जिसके लिये यह सारा बखेड़ा खड़ा हो जाता है। आखिर यह क्रान्ति क्यों ?

गठिया ! रोगी के उस विख्यात परिवार में से एक है जो अम्लता की अधिकता से पैदा होते हैं। इस तरह पथरी, मधुमेह, हृदयरोग आदि सब इनके सहोदर भाई हैं। यों तो यह अम्ल पदार्थ शरीर में बनते रहते ही हैं परन्तु निश्चित अनुपात अधिक हो जाने पर रोग का कारण बन जाते हैं। प्रकृति सदैव सहायक और हितकारी संकेत देती है। रक्त में अधिक अम्लता बढ़ जाने के फलस्वरूप यह पदार्थ जोड़ों में, हड्डियों के चारों ओर जमा होते हैं। क्योंकि रासायनिक स्नेह के कारण वे हड्डी में विद्यमान क्षार चूना की तरफ आकर्षित होते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गठिया कई प्रकार का होता है। जब यह जोड़ों पर व्याप्त होता है तो इसे Articular Rheumatism) या जोड़ों वाला गठिया कहते हैं। इसी प्रकार मांसपेशियों वाले गठिया को (Muscular Rheumatism) या मांसपेशिक गठिया कहते हैं। स्नायुओं पर हमला होने पर यह स्नायुविक (Nervous) गठिया कहलाता है। पहले यानी जोड़ वाले गठिया के तीन रूप हैं—१. साधारण; २. छोटे जोड़ों का दर्द या गाउट (Gout) और ३. जोड़ों का पथराना।

साधारण गठिया में रोग का एक जोड़ से दूसरे, दूसरे से तीसरे और कभी एक ही जोड़ पर दो या ज्यादा बार हमला होता है। तीव्रावस्था में ज्वर और बदबूदार पसीना और बड़े जोड़ों में दर्द और सूजन हो जाती है। इस में जोड़ों की शकल नहीं बिगड़ती। जोड़ों के पथराने या रूमेटायड आर्थराइटिस में जोड़ों की शकल बिगड़ जाती है। वे पत्थर की तरह कड़े और टेढ़े पड़ जाते हैं और अंत में अपना लोच और गति तक खो देते हैं। दर्द जोरों का होता है वज़न और ताकत घट जाती है। इसका आरम्भ बहुधा हाथ और कलाई से होता है और हाज़मा की गड़बड़ी के फलस्वरूप दौरा होता है।

गाउट में इसके विपरीत पैरों से और विशेष कर पैर के अंगूठे से आक्रमण शुरू होता है और बाद में अन्य छोटे जोड़ों में फैल जाता है। इसमें जोड़ों के ऊपर युरेटस आफ़ सोडा की गांठें सी उभर आती हैं। (Chally deposits) यह रोग बहुधा ख़ानदानी (Heriditary) होता है और अति भोजन करने वाले अमीर आदमी अक्सर ग्रसित होते हैं। दिये हुए तीनों रूप तीव्र और जीर्ण अवस्था में परिणत हो सकते हैं। और वे ही जोड़ों को घेरते हैं। मांस पेशियोंवाला गठिया भी दो प्रकार का होता है। जब यह गर्दन की मांस पेशियों पर होता है तो इसे अंग्रेजी में राई नेक (Wry neck) या गर्दन में बल पड़ना कहते ह। कमर की मांसपेशियों के सहित होने पर लम्बेगो (Lumbago) या कमर का दर्द कहते हैं।

स्नायुविक गठिया में एक तो सर्वपरिचित (Sciatica) स्नायुशूल है और दूसरा न्यूराइटिस (Neuritis) है।

गठिया के चाहे जितने नाम और रूप हों लेकिन मूल में रोग एक है। और कारण भी एक है। ऊपर कहा गया है कि शरीर में अम्लता के बढ़ जाने से ही यह रोग होता है। प्रश्न यह उठता है कि यह अम्लता आती कहाँ से है ?

यह अम्ल पदार्थ कहीं बाहर से नहीं आते वरन् हमारे शरीर ही में हमारे गलत भोजन से ही पैदा होते हैं। इसके अर्थ यह नहीं कि इनका होना ही हमारे लिये हानिकारक है। अगर यह २० प्रतिशत हमारे रक्त में रहें तो हमारा स्वास्थ्य ठीक रहेगा, क्योंकि ८० प्रतिशत रक्त के रासायनिक संतुलन को बिगड़ने न देगा। परन्तु जब यह रक्त में इस अनुपात से अधिक हो जाते हैं तो रोग के लिये जमीन तैयार हो जाती है।

सब से बड़ी ग़लती मनुष्य भोजन के चुनने में करता है। वह भोजन का प्रधान भाग पुत्तनक (Protein) श्वेतसार और शर्करायुक्त खाद्य वस्तुओं से लेता है जिसके फलस्वरूप पाचन प्रणाली में अत्यधिक अम्ल उत्पन्न होता है। शाकाहारी कहता है वह मांस-मदिरा सेवन नहीं करता फिर भी वह क्यों रोगी होता है। इनसे जाकर जरा पूछिये कि वह उसके पहले कितना प्रोटीन, स्टार्च और शर्करा खाता था ? इसके अतिरिक्त वह उस भोजन को कितना कृत्रिम बना देता है। अगर वह उसी भोजन को समुचित और स्वाभाविक रूप में खाय तो प्राकृतिक लवण, विटामिन और पुत्तनक ऐसी भी उपयोगी चीज़ें मिल सकेंगी। स्वास्थ्य का रहस्य सजीव या प्रकाशयुक्त भोजन में है जो हमें कच्चे फल-तरकारियों में मिलता है।

अगर स्वास्थ्यप्रद भोजन भी मात्रा से अधिक किया जाय तो हानिकारक सिद्ध होगा। गठिया ज्यादा भोजन करने वालों का रोग है। अगर हम केवल इस बात का ध्यान रखें कि ईश्वर ने हमें खाने के लिये केवल एक मुँह दिया है, लेकिन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मल विसर्जन के चार (त्वचा, कोष्ठ, फेफड़ा और गुर्दा) यंत्र दिये हैं तो शायद हम ज्यादा न खायें। अगर जिस मात्रा में हम खाते हैं उसी मात्रा में मल निकाल नहीं पाते तो इसका मतलब है कि शरीर में मल का जमाव हो रहा है जो रोग का मूल कारण है।

गठिया केवल गलत खाने ही का नहीं, वरन् पीने का भी रोग है। जितना पानी शरीर में व्यय होता है हम उसके अनुसार उसकी पूर्ति नहीं कर पाते। पानी सब रसायनिक क्रियाओं का आधार है और विशेष कर विसर्जन क्रिया का तो मूल आधार है। चर्म, गुर्दे, कोष्ठ—कोई विना पानी के अपना काम ठीक तरह नहीं कर सकते। गुर्दे विना पानी के युरिक ऐसिड नहीं निकाल सकते। इसलिये गठिया वाले रोगी को पानी काफी पीना चाहिये।

गठिया का तीसरा कारण है कोष्ठबद्धता या कब्ज। बड़ी आंतों में जो मल सड़ता है वह रक्त को विकारयुक्त कर देता है। इससे अन्य अवयव जैसे-लीवर, गुर्दे तथा चर्म पर काम अधिक हो जाता है। गठिया से पीड़ित भली प्रकार जानते हैं कि पेट साफ रहने पर गठिया के हमले की सम्भावना बहुत कम रहती है।

व्यायाम का अभाव गठिया का चौथा कारण है। एक जगह बैठे रहने वाले तथा आराम तलब व्यक्तियों को इससे विशेष भय रहता है। इसके विपरीत परिश्रमी, चलने-फिरने वाले पुरुषों को बहुत कम होता है। जो नित्य थोड़ा बहुत व्यायाम करते हैं उनका रक्त-संचालन ठीक रहता है। पाचन अच्छा रहता है और विसर्जन-यंत्र अपना काम सुचारु रूप से करते रहते हैं।

अंत में रोग की जड़ है स्नायुविक दुर्बलता या शक्तिहीनता। हर प्रकार की अति चाहे वह खाने-पीने, काम करने या मैथुन में हो और हर प्रकार की उत्तेजना, भय, चिन्ता, ईर्ष्या, क्रोध, आत्मग्लानि इत्यादि सब शरीर की शक्ति का ह्रास कर के रोग को निमंत्रण देते हैं।

अनियमित जीवन, समय-असमय भोजन, निद्रा और विश्राम का अभाव, उत्तेजक या नशीले पदार्थ जैसे मदिरा, चाय, तम्बाकू, मांस इत्यादि से स्नायु कमजोर हो जाते हैं जिसके फलस्वरूप मल विसर्जक यंत्र अपना काम ठीक नहीं कर पाते और शरीर में विजातीय द्रव्य इकट्ठा होने लगते हैं।

मानसिक कारणों में आलस्य और भय मुख्य हैं। आलस्य से शरीर में प्राण-शक्ति गतिशील नहीं होती। इसके विपरीत शरीर से भी ज्यादा परिश्रम करने से यह रोग हो जाता है जब प्रकृति मनुष्य को विश्राम करने के लिये बाध्य करती है।

डाक्टरों ने इस रोग का कारण टांनसिल का बढ़ना, पाइरिया बताया है। इनके उपचारों में इनको निकलवा देने का भी विधान है जिससे रोगी को कोई लाभ नहीं होता। यह रोग को स्थानिक समझ कर लक्षण दबाने की चेष्टा करते हैं। उससे क्षणिक लाभ तो होता है, परन्तु रोग अन्दर दब जाता है और जीर्ण बन जाता है। जोड़ों का पथराना साधारण गठिया को दबा देने से भी हो जाता है।

जब तक हम गठिया को स्थानिक समझते रहेंगे और अपने वातावरण या जलवायु को ही इसका कारण समझेंगे तब तक यह रोग हमारा पीछा नहीं छोड़ेगा। गठिया एक सार्वजनिक रोग है जिसका सम्बन्ध सारे शरीर से है (Coustitutional)। यह हमारे ग़लत रहन-सहन और खान-पान से होता है। सर्दी और नमी तो केवल निमित्त कारण मात्र हैं। हमारे सामने एक ही रास्ता और उपाय है जिसका आश्रय हमें लेना पड़ेगा। वह है प्राकृतिक नियम। यह ही हमें स्वास्थ्य के स्वाभाविक और सत्य मार्ग की ओर ले जायगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आसन-व्यायाम की वैज्ञानिक विशेषता

ले० श्रीयुत गणेशप्रसाद द्विवेदी, एम० ए० एल० एल० बी०

इस लेख में हम विशेष रूप से इस प्रश्न पर विचार करेंगे। हमारा लक्ष्य है वैज्ञानिक व्यायाम की दृष्टि से इन आसनों की श्रेष्ठता सिद्ध करना।

हम इन आसनों को दो भागों में विभक्त कर चुके हैं ध्यानात्मक और व्यायामात्मक। पद्मासन आदि चार ध्यानात्मक आसन हैं और शेष सब व्यायामात्मक। व्यायामात्मक आसनों में भी कुछ दो तरह के हैं। एक तो ऐसे हैं जिनका आध्यात्मिक महत्व कुछ भी नहीं है जैसे चक्र या मयूर या शलभ। ये करारी कसरत के (पेशियों के) आसन हैं और अनेकों तगड़ा कसरती लगानेवालों को भी अक्सर एँड़ी चोटी का पसीना एक कर देना पड़ता है पूर्णावस्था तक पहुंचने में। पर कुछ व्यायामात्मक आसन ऐसे भी हैं जिनमें आध्यात्मिक और शारीरिक उत्कर्ष दोनों घुले मिले हुये हैं जैसे हल, पश्चिमोत्तान आदि। इसी प्रकार ध्यानात्मक आसन तथा जालंधर आदि बंधों में भी दोनों उत्कर्ष (शारीरिक और मानसिक) एक साथ घुले मिले हैं, पर मानसिक अधिक, शारीरिक कम। हम दूसरे शब्दों में इस प्रकार कह सकते हैं कि कुल आसन तीन प्रकार के हैं—

(१) मानसिक उत्कर्ष प्रधान; (जैसे पद्मासन आदि)

(२) शारीरिक उत्कर्ष प्रधान, (जैसे मयूर, चक्र, शलभ आदि)

(३) मिश्रित (अर्थात जिनके द्वारा शारीरिक तथा मानसिक दोनों प्रकार का उत्कर्ष साधन एक साथ होता है; जैसे हल, पश्चिमोत्तान आदि)। ध्यान से देखने पर स्पष्ट हो जायगा कि इन क्रियाओं, बंधों तथा आसनों के आविष्कर्त्ता प्राचीन हठ योगाचार्यों ने शरीर तथा मन दोनों की उन्नति का बराबर तथा पूरा ध्यान रक्खा है।

स्वास्थ्य का सब से बड़ा आधुनिक सिद्धांत यह है कि बिना मानसिक अवस्था निर्दोष हुये आप हजार कसरत कीजिये कुछ फायदा नहीं हो सकता। वैज्ञानिक व्यायाम वही है जो पहले मन ('मेंटल एटीट्यूड') के दृष्टिकोण को ठीक करे। यह आज के पाश्चात्य विज्ञान धुरंधरों का निष्कर्ष है, पर हमारे प्राचीन योगी इस परम महत्वपूर्ण निर्णय पर आज से कम से कम एक हज़ार वर्ष पहले पहुंच चुके थे। वह यह भली भांति समझ चुके थे कि शरीर और मन दोनों का अन्योयाश्रय भाव तो है ही, यानी एक के अच्छा रहे बिना दूसरा अच्छा नहीं रह सकता, पर मन का स्थान पहले है। मन को पहले ठीक करना होगा। मन को काबू में कर लेने पर शरीर को निर्दोष करना बहुत आसान बात हो जाती है। यों तो मन और शरीर दोनों ही आत्मारूपी मालिक के नौकर हैं, पर तो भी मन बड़ा (हेड आफ दि स्टाफ) या 'मेठ' है और शरीर उसके अधीन है।

मानसिक स्वास्थ्य पहले

आजकल बहुत से लोग आत्मा का अस्तित्व ही नहीं मानते या मन और आत्मा दोनों को एक ही वस्तु समझते हैं, या आत्मा तक पहुंच ही नहीं पाते। पर यह तो जरा सा सोचते ही सब समझ सकते हैं कि मन को नियंत्रित करने वाली एक शक्ति (कोई एजेंसी) है ज़रूर मनुष्य के अन्दर और निश्चय ही वह शक्ति शारीरिक नहीं है। मन के जितने आवेग, क्रोध, शंका, भय, हर्ष आदि हैं, वे सभी प्रयास करने पर दबाये या उभाड़े जा सकते हैं। तो इन पर इस प्रकार का प्रभुत्व करने वाला आख़िर कौन है? या तो आत्मा रूपी एक 'एजेंसी' का अस्तित्व स्वीकार कीजिये जो कि सदा अजर अमर और आनन्दमय तथा निर्दोष है या यों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कह दें कि मन स्वयं अपने ऊपर इस प्रकार का प्रभुत्व या हुकूमत करता है और इसका व्यापार दोहरा है यानी वह 'शासक' और 'शासित' दोनों एक साथ ही है।

जो भी हो, इस विषय में ज्यादा गहरे जाने पर फिर मामला जरा दार्शनिक हो जायगा, और फिल हाल हमारा मकसद केवल स्वास्थ्य सुधार से है और जिस महान् वैज्ञानिक तथ्य का हम प्रतिपादन करना चाहते हैं वह यह है कि सर्वश्रेष्ठ वैज्ञानिक व्यायाम पद्धति वही है जो मन को पहले निर्दोष करती हुई उसे इच्छानुसार प्रबल शक्ति-संपन्न बनावे।

अब हमें देखना है कि आसन-व्यायाम पद्धति कहां तक इस कसौटी पर खरी उतरती हैं।

हम कह चुके हैं वैज्ञानिक व्यायाम वही है जो पहले मन को निर्दोष और प्रबल शक्ति-संपन्न बनावे। ध्यान से देखने पर स्पष्ट हो जाता है कि ये सभी यौगिक आसन वास्तव में मानसिक बल लाने की पहली सीढ़ी के रूप में ही हैं। इनका आम उद्देश्य शारीरिक स्वास्थ्य से बहुत ऊँचा है। इनका लक्ष्य है 'सोऽहं' का प्रतिपादन अर्थात् मनुष्य को इस महान् सत्य का पूर्ण अनुभव हो जाय कि 'मैं वही (अर्थात् ईश्वर) हूँ'। इतने ऊँचे उठाने की चेष्टा की गई है इन क्रियाओं के अंतर्गत।

पर मनुष्य की ऊँची शक्तियां पहले मन के निर्दोष होने पर ही जाग्रत हो सकती हैं। मन को निर्दोष करने के लिये कुंडलिनी को जाग्रत करना पड़ता है और यह मेरुदंड को सजीव और मस्तिष्क को निर्दोष करने के द्वारा ही संभव है। सुषुम्ना नाम की नाड़ी से जब श्वास-क्रिया चलनी आरंभ हो जाती है तभी मनुष्य की कुंडलिनी शक्ति जाग्रत होने लगती है और फिर क्रमशः सब सिद्धियां इस के वश में आने लगती हैं।

कुंडलिनी

पर यह कब संभव है? जब कि मेरुदंड या रीढ़ निर्दोष हो और तभी सब संस्थान अपने-अपने ठिकाने लग जाते हैं और तभी सुषुम्ना सक्रिय होकर कुंडलिनी को सचेत कर देती है। ध्यान से देखने पर स्पष्ट हो जाता है कि कम से कम तीन चौथाई आसन मेरुदंड (रीढ़) को सब तरह से तोर मरोर कर इसको निर्दोष बना देने की चेष्टा करते हैं। रीढ़ का घनिष्ठ संपर्क मस्तिष्क तथा स्नायु संस्थान और पाचन संस्थान से है। रीढ़ के निर्दोष होते ही ये सब निर्दोष हो उठते हैं और सुषुम्ना को अपना काम करने का अवसर मिलता है। और तब कुंडलिनी धीरे-धीरे जगने लगती है।

ध्यानात्मक आसनों में घण्टा आध घन्टा चित्त एकाग्र कर बैठते-बैठते यह स्थिति आने लगती है। पद्मासन आदि (जालंधर बंध के साथ) आसनों की स्थिति ही ऐसी है कि रीढ़ को बिलकुल सीधी रखना ही पड़ेगा और भ्रूमध्य या नासाग्र दृष्टि का प्रभाव ही यही है कि चित्त को एकाग्र होना ही पड़ेगा। लगे रह कर साल दो साल अभ्यास करने पर निश्चय ही चित्त एकाग्र होने लगेगा और कुंडलिनी जग जायगी। इन आसनों द्वारा चित्त को शांत करने तथा रीढ़ के व्यायामों द्वारा सुषुम्ना को सक्रिय करने की दोहरी क्रिया इस आसन-व्यायाम पद्धति में ही है।

कुंडलिनी शब्द के अर्थ होते हैं सिमटी हुई नागिन। योगियों के अनुसार यह १६ अंगुल की एक सांपिन है जो महाप्राचीरा के पास फन समेटे सोई हुई रहती है। योग बल से यह जगती है और फन सीधा कर ऊपर की ओर चढ़ने लगती है जिससे मनुष्य उर्ध्वरेता होता है।

वास्तव में वहाँ कोई सांपिन या नागिन नहीं है। इस कथन का सारांश केवल इतना ही है कि चित्त वश में हो जाने और शरीर निर्दोष हो जाने पर मनुष्य के अंदर एक गुप्त शक्ति जो है उसे प्रगट होकर अपना जौहर दिखाने का मौका मिलने लगता है। उर्ध्वरेता से मतलब है मनुष्य की चित्त-वृत्ति 'ऊंची' हो जाती है। जब मस्तिष्क की इतनी उन्नति हो जाती है तब फिर शरीर को ठीक करते देरी नहीं लगती। वह स्वतः तब तक या तो ठीक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो चुका होता है या तो कुछ ही दिनों में प्रबल शक्ति-संपन्न मन उसे ठीक कर लेता है।

स्नायु-संस्थान

मस्तिष्क और स्नायु-संस्थान साथ ही साथ ठीक होते हैं। मेरुदंड एक साथ ही मस्तिष्क तथा-समूचे स्नायुमंडल की कुंजी है। जिस व्यायाम पद्धति में मेरुदंड को हद दर्जे तक लचीला, सब ओर मुड़ने वाला बनाने का ध्येय पहले रक्खा है वह निश्चय ही मस्तिष्क और स्नायुमंडल को सदा निर्दोष रक्खेगी। जिसकी रीढ़ में कोई दोष नहीं है वह सदा नीरोग और युवक रहेगा। अधिकांश आसन रीढ़ पर ही ज्यादा जोर देते हैं। पश्चिमोत्तान, हल, अर्धमत्स्य आदि रीढ़ को निर्दोष बनाते हैं।

कंठमणि तथा अंतस्रवा ग्रंथियां

जिसकी कंठमणि तथा अन्य अंतः स्रवा ग्रन्थियां स्वस्थ हैं उसका सारा शरीर स्वस्थ है। सर्वाङ्ग तथा मत्स्य कंठमणि को सादा ताजा रखते हैं। फिर उतरकर खड़े होने वाले तीनों आसन (शीर्ष, सर्वाङ्ग तथा विपरीत करणी) मस्तिष्क को ताजा रस पहुंचाने के साथ ही सारी अंतः स्रवा ग्रन्थियों को ताजा कर देते हैं। ये अधिकांश ग्रन्थियां महा-प्रचीरा तथा गले के बीच में हैं। और वह प्रदेश (मय दिल तथा फेफड़ों के) उलट कर रखे जाने पर पूरी मात्रा में रक्त संचार तथा उत्फुल्लता प्राप्त कर लेता है।

श्वास-संस्थान

व्यायाम का घनिष्ठ संबंध श्वास क्रिया से है। कोई भी व्यायाम श्वास क्रिया को बढ़ा देता है। दौड़ना, खेलना, कूदना आदि सभी हँफा देते हैं। पर वैज्ञानिक व्यायाम वही है जो दिल और फेफड़ों को इतनी ही हरकत दे जितने से उनको ताजा रक्त मिल जाय, फेफड़ों का हर एक तंतु ('रीशू') लचीला बन जाय और इन सुकुमार अंगों पर ज्यादा जोर भी न पड़े। ध्यान से देखने पर स्पष्ट हो जाता है कि आसन व्यायाम से ठीक इसी उद्देश्य की सिद्धि होती है। न इससे कम न ज्यादे। क्योंकि ज्यादा होने पर खतरा भी है। आप सारी उम्र फुटबाल नहीं खेल सकते, कुश्ती आप २/४ वर्ष ही लड़ सकते हैं। पर आसन आप सदा कर सकते हैं और नीरोग रह सकते हैं। खिलाड़ी और पहलवान उम्र ढलने पर संग्रहणी, अजीर्ण या दिल या फेफड़ों की किसी बीमारी से ग्रस्त देखे जाते हैं। पर आसन व्यायाम में यह भय नहीं है।

शलभ आसन फेफड़ों का सर्वश्रेष्ठ व्यायाम है। इसी प्रकार अर्ध शलभ, धनुष और भुजंग में दिल तथा फेफड़ों की मीठी मालिश और कसरत दोनों एक साथ हो जाती है। पर सबसे मजे की बात जो इनमें है वह यह है कि इनके द्वारा व्यायाम और शिथिलीकरण (आराम) दोनों बातें एक साथ होती चलती हैं जो अन्य किसी पद्धति में संभव नहीं है। भुजंगासन में जब आपका सिर ऊपर उठता है तो व्यायाम (पेट, पीठ तथा फेफड़ों का) और जब सिर नीचे आता है तो आराम। यही बात अधिकांश आसनों में है।

पाचन-संस्थान

शरीर के अंदर पाचन-संस्थान का महत्व शायद ही किसी संस्थान से कम हो। दिल दिमाग और हाज़मा यही तो कुल तीन चीजें हैं इन्सान की तन्दुरुस्ती के लिये। पहली दोनों को आसन कहां तक ठीक करते हैं यह हम कह चुके। दुनियां की कोई कसरत दिल, दिमाग़ के लिये इतनी मुफीद नहीं सिद्ध हुई (वैज्ञानिक प्रयोग शालाओं में) जितना कि यह।

अब रह गया कि हाजमा। वास्तव में उक्त तीनों ही का पूरा ख्याल रक्खा गया है इस पद्धति में। यह कहना कठिन है कि किस पर ज़्यादा ज़ोर है कि किस पर कम। इस पद्धति की आश्चर्यजनक विशेषता यही है कि सभी संस्थानों को यथोचित रूप से ठीक करने और फिर सदा ठीक रखने की व्यवस्था की गई है। अन्य पद्धतियां मुख्यतः केवल थका डालती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भुजंग, शलभ, हल, धनुष, पश्चिमोत्तान, और मयूर—ये देखे हैं कि एक साथ ही अजीर्ण नाशक, क्षुधावर्धक और मल शोधक हैं। सुप्तवज्रासन तथा योगमुद्रा कब्जियत की दवायें हैं। मयूरासन तथा भुजंगासन करने वाला पत्थर भी हजम कर सकता है। महामुद्रा (प्राणायाम के साथ जानुशिरासन) करने वाला यदि विष भी खाय तो वह अमृत का काम करता है।

यौगिक क्रियाओं की इन विशेषताओं पर ध्यान देने से आश्चर्य चकित रह जाना पड़ता है। वास्तव में स्वास्थ्य के लिये श्रेष्ठ व्यायाम पद्धति यही है।

078735

शारीरिक विकास में मनोविनोद

लेखक—श्रीयुत कीर्ति 'कुमार'

स्वस्थ और सुखी जीवन व्यतीत करने का मनोविनोद भी एक बहुत बड़ा साधन है। मनोविनोद किस प्रकार का हो, यह एक बड़े महत्व का प्रश्न है। सच पूछिए तो मनुष्य और जानवरों की मनोवृत्ति और उनके स्वभाव के अनुसार, इसका अनेक तरह का अलग-अलग रूप बताया जा सकता है। जैसे किसी को दौड़ने का शौक है, तो किसी को शराब पीने में ही आनन्द मिलता है। कोई पहाड़ों या जंगलों की प्राकृतिक छटा देखकर मुग्ध होता है, तो कोई अश्लील नाच-गाने में ही आकर्षन का केन्द्र-विन्दु पाता है।

आज हमारे देश में तो मनोविनोद का वास्तव में स्वास्थ्य से कोई संबंध ही नहीं नज़र आता, जब कि अन्य देशों में मनोविनोद ही मनुष्य के शारीरिक-विकास का एक मात्र साधन बन रहा है। हर्ष की बात है कि इधर अब हम लोगों का भी ध्यान मनोविनोद की उपयोगिता की तरफ आकर्षित होने लगा है।

यदि हम मनोविनोद की उपादेयता पर सम्यक विचार करें तो हमें पता लगेगा कि इसका शारीरिक और मानसिक श्रम से घना संबंध है। पशुओं में भी मनोविनोद भावना देखने में आती है। अक्सर हम जब कभी एक जाति के पशु या पक्षी को सामूहिक रूप में देखते हैं तो उस समय हमें उसके मनोविनोद के विभिन्न प्रकार रूप भी देखने को मिलता है। कुत्ते आपस में दौड़ने की प्रतिद्वंदिता करते हैं। उनका एक दूसरे पर झपटना-चिपटना आदि उनकी मनोविनोद की साधना के ही परिचायक हैं। इसी तरह अन्य जानवरों में भी उनके स्वभाव के अनुसार मनोविनोद की क्रिया संपादित होती है। चिड़िया चूँ-चूँ कर या कभी उड़ने की प्रतिद्वंदिता कर अपना मनोविनोद करती हैं। कहने का तात्पर्य यह कि सभी पशु-पक्षी किसी न किसी रूप में मनोविनोद कर लेते हैं। इनका मनोविनोद ज़्यादातर शारीरिक परिश्रम के रूप में होता है। छोटे-छोटे बच्चों के जन्म से ही अगर हम उनकी तमाम बातों पर ग़ौर करें, तो देखेंगे कि उनकी समस्त चेष्टाएं तथा शारीरिक क्रियाएँ, उनकी मनोविनोद की भावना की पूर्ति के ही लिए होती हैं। किन्तु उनके अधिकांश मनोविनोद का संबंध उनके शारीरिक श्रम से ही होता है! मनोविनोद की इन क्रियाओं में वे मानसिक श्रम भी करते हैं। यह भी देखा गया है कि लड़कों को अगर मनोविनोद में ही कुछ शिक्षा दी जाती है, तो वे उसे जल्दी ग्रहण कर लेते हैं। इनका मस्तिष्क कुछ इसी तरह का होता है। खेल में बहुत ज़्यादा शारीरिक या मानसिक परिश्रम करने पर भी इन्हें थकावट नहीं मालूम होती और इसलिए वे चाहे जितनी भी मेहनत करें, लेकिन उसका उनके स्नायुओं पर कोई कुप्रभाव नहीं पड़ता, बल्कि इसके बिपरीत उनका विकास होता है और वे मज़बूत होते हैं। बच्चों का शारीरिक और मानसिक विकास इसी प्रकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होता है। अतः हम समझ सकते हैं कि मनुष्य के जीवनमें मनोविनाद का एक बड़ा ही महत्वपूर्ण स्थान है। प्राण रक्षा के लिए भोजन के अलावा कई चीज़ों की आवश्यकता है जिनमें मनोविनोद का सबसे अधिक महत्व है।

यदि प्राचीन भारत के इतिहास के पृष्ट उलट कर देखें तो पता चलेगा कि उस समय बालकों के पढ़ाने-लिखाने (बौद्धिक विकास) की अपेक्षा उनके शारीरिक विकास की ओर अधिक ध्यान दिया जाता था। उस समय बालकों के लिए सभी प्रकार की शिक्षा की व्यवस्था जंगलों में ही की जाती थी। वहाँ उन्हें मनोविनोद के ही रूप में जीवन में आने वाली सभी तरह की कठिनाइयों का सामना करना सिखाया जाता था। हमारे धार्मिक ग्रंथों में भी अनेक तरह के उल्लेख मिलते हैं जिनका हमारे शारीरिक तथा मानसिक श्रम से विशेष संबंध है। दौड़-दौड़ कर जंगलों में हिरण को पकड़ना, उस समय के मनोविनोद का एक प्रमुख साधन समझा जाता था। बालक भरत को शेर के बच्चे के दाँत गिनने में ही आनन्द मिलता था। हमारे यहाँ के प्राचीन ग्रंथों में इस तरह के अनेक उदाहरण भरे पड़े हैं। किन्तु कालान्तर से भारत की राजनीतिक तथा आर्थिक स्थितियों में परिवर्त्तन होनेके साथ ही यहां के लोगों के रहन-सहन, शिक्षा-दीक्षा आदि सभी बातों में परिवर्त्तन होता गया। और आज-कल तो खेल-कूद आदि मनोविनोद और पढ़ने-लिखने के बीच कोई संबंध ही नहीं समझा जाता।

आजकल मनोविनोद के जो साधन हमारे यहाँ पाए जाते हैं उनसे न तो शारीरिक उन्नति होती है और न मानसिक। फलतः हमारे देश का सार्वजनिक स्वास्थ्य शोचनीय हो रहा है। हम अपना शारीरिक विकास करने के विपरीत अधिकाधिक रोग-शोक-ग्रस्त बनते जा रहे हैं। यदि हम भारतीयों की आयु का अन्य देशवासियों की आयु से मिलान करें तो मालूम होगा कि ऐसी शोचनीय अवस्था संसार के अन्य किसी देश में नहीं है। हमारे यहाँ की औसत आयु केवल २४ वर्ष है, जब कि अन्य देशों की जैसे न्यूज़ीलैन्ड वालों की औसत आयु ७० वर्ष। इसमें संदेह नहीं कि हमारे देश की गुलामी का भी इसमें बहुत कुछ हाथ है। पर सबसे अधिक उत्तरदायित्व, हमारे यहाँ के उन जिम्मेदार व्यक्तियों पर है जो समाज को आगे बढ़ाने का भार तो ले लिया है लेकिन वे इस चिन्तनीय समस्या की ओर से उदासीन रहा करते हैं, या शायद कभी ध्यान भी देते हैं तो नहीं के बराबर। वे यह नहीं समझते कि किसी देश का राजनैतिक अथवा आर्थिक अभ्युत्थान. शारीरिक और मानसिक शक्ति को उन्नत बनाकर ही किया जा सकता है। अगर हम दूसरे देशों की ओर अपना नज़र दौड़ायें तो हमें पता चलेगा कि जो मुल्क आज़ाद हैं, वहाँ के लोगों ने आज़ादी को क़ायम रखने के लिए अन्य प्रकार के साधनों के अलावा शारीरिक विकास की तरफ़ बहुत अधिक ध्यान दिया है, और इसके लिए मनोविनोद को एक अत्यंत आवश्यक अंग समझा है। यहाँ पर कुछ प्रमुख देशों के उदाहरण दिए जाते हैं।

जर्मनी

जर्मनी में प्राथमिक शिक्षा १४ साल तक की उम्र वाले लड़के लड़कियों के लिए अनिवार्य है, पर व्यायाम १८ साल तक के उम्रवालों के लिये। इसके अलावा जनसाधारण के शारीरिक विकास के लिए अनेक तरह के व्यायाम के साधन तथा सामूहिक ढंग के मनोविनोद का प्रबंध किया गया है।

रूस

सन् १९३७ में रूस ने एक करोड़ से अधिक रुपया व्यायाम शिक्षा और शारीरिक विकास संबंधी मनोविनोद के साधनों के लिए ख़र्च किया। वहाँ बड़े-बड़े पार्क बने हुए हैं, जहाँ जनसाधारण सामूहिक ढंग से शारीरिक विकास वाले मनोविनोद किया करते हैं। सोवियट सरकार ने तो स्वास्थ्य सुधार के लिए यहाँ तक किया है कि १८ वर्ष से कम उम्र वाले लड़के या लड़कियाँ सिनेमा नहीं देख सकतीं। सोवियट सरकार ने तो यह भी प्रतिबंध लगा रखा है कि नौ बजे रात्रि के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाद सिनेमा या किसी प्रकार के खेल-तमाशे नहीं हो सकते।

इंग्लैण्ड

इंग्लैण्ड की शिक्षा कमेटी ने तो एक अलग कमेटी मनोविनोद के लिए क़ायम की है, जो दूसरे-दूसरे देशों के शारीरिक विकास-संबंधी साधनों को अध्ययन कर अपने यहाँ के मनोविनोद के साधन स्थापित किए हैं। कुछ दिन पहले, जब कि यहाँ के मनोविनोद के साधनों में सुधार नहीं हुआ था तो उस समय वहाँ के लोगों ने एक आन्दोलन खड़ा किया था, जिसमें 'स्वस्थ रहो' (Keep Fit) के नारे लगाये गये थे और इस प्रकार वहाँ की सरकार व्यायाम और मनोविनोद में काफ़ी सहायता देने लगी।

फ़्रान्स

१६३४ में फ़्रान्स में इसी बात के लिए एक आन्दोलन शुरू हुआ। आखिर सरकार ने इसमें हाथ बँटाया। इसके लिए एक अलग विभाग क़ायम किया गया और एक मिनिस्टर की बहाली हुई। इस विभाग का काम छोटे-छोटे क्लबों या व्यायाम संबंधी और नाना के प्रकार की प्रवृतियों को आगे बढ़ाना है।

इटली

यहाँ तो सबसे ज़्यादा ध्यान सामूहिक ढंग के शारीरिक विकास की प्रवृति की ओर दिया गया है। ६ साल से ८ साल तक के लड़कों का अलग दल क़ायम कर, इन्हें ड्रील या और दूसरी कवायतें जिनसे शरीरिक विकास होते हैं, दी जाती हैं। इस प्रकार सारे मुल्क के बच्चों और जवानों में वीर रस का संचार किया जाता है अथवा यों कहिए कि उन्हें देश की स्वतंत्रता की रक्षा के लिए कुशल सैनिक बनाया जाता है: और हो भी क्यों नहीं, जब कि मुसोलिनी स्वयं इसमें दिलचस्पी लेता है।

जापान

जापान के विषय में जो कुछ भी कहूँगा, वह नहीं के बराबर होगी। क्योंकि अगर हम उसे एशिया के नक़्शे में आँख फाड़ कर देखें तो हमें पूर्व भाग में एक उड़ते हुए चील सा दिखलाई पड़ता; और जो दिन-रात ज्वालामुखी पर्वत के मायावी भूकम्प से खेला करता, जो चिड़ियों के सदृश अपना काठ का घोंसला बनाकर पर्वत पर अपना डेरा रखता है, वही आज इतनी उन्नति के शिखर पर? क्या यह असंभव है? क़दापि नहीं। वहाँ के बच्चों को शारीरिक परिश्रम, मनोविनोद द्वारा कराये जाते हैं। इसमें उन्हें कठिन से कठिन कठिनाइयों का सामना करने की शिक्षा दी जाती है। शिक्षक गण, अपने विद्यार्थियों को साथ लेकर पहाड़ों, जंगलों में जाते हैं। बचपन से ही उन्हें जीवन में आनेवाले मुसीबतों का परिचय खेल द्वारा कराया जाता है। जिसका परिणाम होता है कि वे ही बच्चे मुल्क़ के लिए अपने को अर्पण करने में आनन्द का अनुभव करते हैं। कहा जाता है कि फौजों में सिपाही तथा यों कहिए कि जापानी वीर अपने अफसरों को रिश्वत देते हैं ताकि वे अगले कतार में रक्खे जायँ; अगले कतार का यह मतलब नहीं कि वे अपना नाम आगे रक्खें, बल्कि यह कि देश की रक्षा के लिए सबसे पहले वे ही अपने प्राणों की आहुति देना चाहते हैं। इस प्रसंग के साथ में उन वीर सैनिकों की एक सैनिकता का परिचय दे देना अच्छा समझता हूँ, जो शायद हममें से बहुत लोग जानते होंगे।

यह घटना है उस समय की जब कि रूस और जापान में युद्ध छिड़ा हुआ था। जिस समय लड़ाई हो रही थी, उसी समय जापानी बहादुरों को एक खाड़ी पार करना था, जहाँ कि पार होने के लिए कोई उपाय सामने न दीख पड़ा। पर 'जहाँ चाह है वहाँ राह है' (Where there is Will there is way)। अतएव उन वीर सैनिकों ने अपने आप को उस खाड़ी में पाटना शुरू किया और इस प्रकार अपना काम निकाला। जिसका परिणाम आप जानते ही होंगे और आज भी देख रहे हैं।

ऊपर हमने संक्षेप में कुछ देशों के शारीरिक विकास संबंधी प्रवृत्ति बताने की चेष्टा की है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब रही बात हमारे भारतवर्ष की। वही हमारा भारतवर्ष, जिसके सिर पर प्रकृत हिमालय का मुकुट सुशोभित होता है और जिसके चरणों को विश्व का अगम्य और अगाध सागर, अपनी लोल-लहरियों से चूमता है आज मनोरंजन से उदासीन है। उपरोक्त देशों में मनोविनोद का साधन खेल पर ही अधिकतर निर्भर करता है। हमारे देश में भी कुछ नक़लचियों ने अपना काम शुरू किया है। पर उन्हें समझना चाहिए कि सब बातें सभों के लिए उपयुक्त नहीं होतीं। यहाँ भी कुछ क्लबें स्थापित हुई हैं और हो रही हैं। ये क्लब अधिकतर शहरों में ही स्थापित हुए हैं और होते हैं, और कुछ इनके नियम भी इस तरह के हैं, जिनसे जनसाधारण सदा वंचित ही रहते हैं। यहाँ भी वही राग। जिन पेचीली कसरतों को करने तथा जिस मनोविनोद के साधनों को अपनाने में अधिक खर्च की ज़रूरत होती है, उसे ही हम अच्छा समझते हैं, बनिस्बत उसके जिसे हम आसानी से कर सकते, और जिसमें खर्च की आवश्यकता नहीं होती है। यह धारणा सर्वथा असत्य है, हम कभी भी अपने मनोविनोद के इस तरह के साधनों से अग्रसर नहीं हो सकते। हम तो तभी आगे बढ़ेंगे जब हम 'अपनी डफली और अपनी राग' को अपनायें।'

हमारा देश मनोविनोद का घर माना जाता है। ईश्वर की लीला है। कोई भी ऐसा देश नहीं है जो हमारे-जैसा सब ऋतुओं को प्राप्त करे। फिर भी हम उसका उपभोग नहीं कर पाते। हमें तो चाहिए कि हम सामूहिक ढंग से पिकनिक करें। गाँव के लोग मिलकर किसी रमणीक स्थान की सैर करें। शिक्षकों को चाहिए कि वे अपने लड़कों को साथ लेकर पहाड़ों की सैर, गावों की सैर करें तथा उन्हें कैम्प जीवन बिताना सिखावें। उन्हें उसी तरह का खेल सिखाया जाय, जिससे वे जीवन में आने वाली मुसीबतों का सामना धैर्यपूर्वक कर सकें। जैसा कि और-और देशों में किया जाता है।

हर्ष का विषय है कि इधर हममें से कुछ एक का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ है, पर वे इतने ही हैं जिन्हें हम उँगलियों पर आसानी से गिन सकते हैं। यह संतोषजनक नहीं कहा जा सकता। अतएव हमारी प्रार्थना तो उन लोगों से है, जिनके ऊपर समाज देश और जाति का भार अवलंबित है।

आवश्यक सूचना

विदित हो, कि कागज़ का कोटा मिल गया है। अब से 'जीवन-सखा' का प्रकाशन नियमित रूप से प्रत्येक मास हुआ करेगा। आकार पूर्ववत तीन फर्मे का होगा। मूल्य केवल ३) रुपया।

व्यवस्थापक,
मैनेजर,
'जीवन-सखा' लूकर गंज, इलाहाबाद।

Printed at the Mission Press Allahabad,
Published by Dr. Baleshwar Prasad Singh, 11, Lookerganj, Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पढ़िये ! लाभ उठाइये !!

सुन्दर, स्वस्थ और सुखी जीवन के इच्छुकों को ये पुस्तकें पढ़नी चाहिए

(१) रोगों की अचूक चिकित्सा (चतुर्थ संस्करण) : श्री जानकीशरण वर्मा, बी० ए० ५)
(२) मठा उसके गुण तथा उपयोग (परिवर्द्धित संस्करण) : श्री महेन्द्रनाथ पांडेय ।=)
(३) स्वास्थ्य और व्यायाम; केदारनाथ गुप्त ... ... २।)
(४) स्वास्थ्य के नुस्खे : 'जीवन सखा' कार्यालय ... ... ।)
(५) क्या और कैसे खायें : डा० बालेश्वर प्रसाद सिंह ... ... ।=)
(६) ब्रह्मचर्य ही जीवन है : श्री स्वामी शिवानन्द ... ... १॥)
(७) सचित्र हठयोग : श्री स्वामी शिवानन्द ... ... १।)
(८) कब्ज या कोष्ठबद्धता : डा० बालेश्वर प्रसाद सिंह ... ... १)
(९) शक्ति दर्शन; शंकरलाल तिवारी ... ... ॥)
(१०) आँख का अचूक इलाज : श्री महेन्द्रनाथ पांडेय ... ... २)
(११) जुकाम : श्री महेन्द्रनाथ पांडेय ... ... १॥)
(१२) शहद के गुण : और उपयोग श्री महेन्द्रनाथ पांडेय ... ... ॥।)
(१३) आकृति निदान : लुई कूने ... ... २)
(१४) जलचिकित्सा : राखाल दास पहला भाग ... ... १॥।)
" दूसरा भाग ... ... १॥)
" तीसरा भाग ... ... १॥)
(१५) स्वास्थ्य के लिये शाक तरकारियां : श्री महेन्द्रनाथ पांडेय ... १॥)
(१६) मन की अपार शक्ति : श्री केदारनाथ गुप्त ... ... ।=)
(१७) विचारों का प्रभाव : श्री रामसहाय अग्रवाल ... ... ।)
(१८) हम सौ वर्ष कैसे जीवें : केदारनाथ गुप्त, एम० ए० ... ... १॥।)
(१९) सूर्य-नमस्कार : श्री भगवती प्रसाद पांडे, बी० ए० ... ... १।)
(२०) स्वास्थ्य और जल चिकित्सा : प्रिन्सिपल केदारनाथ जी गुप्त ॥)
(२१) आहार ही औषध है : डा० एल० एन० रतरा ... १॥।)
(२२) फलाहार चिकित्सा : श्री महेन्द्रनाथ पांडेय ... ... २।)
(२३) Nature Cure by H. Lindlahr, M.D. 7 8
(२४) Practical Nature Cure by Dr. K. L. Sharma, N.D. 7 8
(२५) Fasting Cure by Dr. L. Sharma N.D. ... 0 6
(२६) Drugless Healing by Dr. L. Kameshwar Sharma, M.A., N.D. 0 8
(२७) Food-de Medicine by Dr. L. N. Ratra, H.M.B. ... 1 4
(२८) Universal un-cooked food 3 8
(२९) Nature Cure of Eyedefect By Dr. K. L. Sharma. ...

स्वास्थ्य सम्बन्धी पुस्तकें मिलने का पताः—मैनेजर, स्वास्थ्य ग्रंथ-भंडार, लूकरगंज, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तरी भारत में प्राकृतिक चिकित्सा का प्रमुख केन्द्र

'प्राकृतिक स्वास्थ्य गृह' प्रयाग

जहाँ अब तक न जाने कितने तथाकथित असाध्य रोगों से पीड़ित होने वाले रोगियों ने प कर अपने को नीरोग और स्वस्थ बना लिया—यही कारण है, जो यह चिकित्सा-केन्द्र लगा उन्नति करता जा रहा है।

यदि आप किसी भयानक रोग से पीड़ित हो रहे हैं, डाक्टरों और वैद्यों की दवा निराश हो चुके हैं, तो आप फ़ौरन यहाँ पधारें या पत्र देकर चिकित्सा के सम्बन्ध में विव प्राप्त करें।

स्वास्थ्य-गृह में किन रोगों की चिकित्सा सफलता-पूर्वक होती है ?

साधारण दुर्बलता, स्नायु-दौर्बल्य, सभी तरह के चर्म-रोग, रक्ताभाव, पुराना जुकाम, खां क़ब्ज़, संग्रहणी, प्लुरिसी, दमा, बवासीर, निद्राभाव, आमाशय का ज़ख्म, आँतों की ख़राबी, स तरह के ज्वर, घेघा, धमनियों का कड़ा हो जाना (Arteriosclsrosis), रक्त चाप का बढ़ना अ कम होना (High and Low Blood Pressure), उपान्त्रदाह, (Appendicitis), ज़हरब (Carbuncle), गठिया, पित्ती उछलना, पेचिश, सब तरह के दर्द और सूजन, गुर्दे की बीमा यकृत की बीमारियां, नपुंसकता, मधुमेह (बहुमूत्र), मोटापा, दुबलापन, यक्ष्मा, कर्णरोग, उन्म सभी तरह के स्त्री-रोग इत्यादि इत्यादि।

यहाँ जिस चिकित्सा विधि से रोगी का इलाज किया जाता है उनमें यौगिक क्रिय आसन, प्राणायाम, मालिश, सूर्य-रश्मि-चिकित्सा, जल-चिकित्सा, मिट्टी तथा वाष्प-चिकित आहार चिकित्सा, उपवास, मानसोपचार आदि सम्मिलित हैं।

विशेष जानकारी के लिए नीचे लिखे पते से पत्र व्यवहार करें :—

रोगियों की सुविधा का विशेष प्रबन्ध

रोगियों के आराम और सुविधा के ख़्याल से स्वास्थ्य-गृह में इस साल से कुछ परिव कर दिया गया है जिसमें खासकर स्त्रियों की परिचर्या का विशेष प्रबन्ध है। इस वर्ष से इसकी त श्रेणियां कर दी गई है। प्रथम श्रेणी वाले रोगियों से १००) मासिक, द्वितीय श्रेणी के रोगियों ६५) और तीसरे श्रेणी के रोगियों से ४०) मासिक लिये जायंगे। सुविधाओं का विवरण लिख कर मंगाइए। पत्र के साथ टिकट भेजना ज़रूरी है।

नोट—संक्रामक रोगों से पीड़ित रोगियों के रखनेका प्रबन्ध यहां नहीं है

मैनेजर—प्राकृतिक स्वास्थ्य-गृह लूकरगंज इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन सखा

शारीरिक, मानसिक और नैतिक स्वास्थ्य का
पथ-प्रदर्शक

संयुक्त प्रान्त, मध्य प्रान्त तथा बिहार के शिक्षा विभागों द्वारा स्वीकृत

इस अंक में पढ़िये

१—प्राकृतिक चिकित्सा ही क्यों !—[ले० श्री कामताप्रसाद अग्रवाल एम० ए० एन० डी० डी० वाई०, विशारद] .. ...

२—स्वास्थ्य और योग—[लेखक—श्री विजय बहादुर सिंह बी० ए०] ... ...

३—शारीरिक ह्रास और उसके कारण—[लेखक—श्रीयुत कीर्ति 'कुमार'] ... ...

४—गठिया के कारण और उसकी सुगम चिकित्सा—लेखक—श्रीयुत श्रीकृष्ण शर्मा] ...

५—चेचक—[लेखक—डाक्टर बालेश्वर प्रसाद सिंह] ... ...

६—तुलसी—[लेखक—श्रीयुत श्रीनाथ दास अग्रवाल] ... ...

७—प्राकृतिक चिकित्सा का प्रचार कार्य—[लेखक—एक दर्शक] ....

८—तत्व चिकित्सा का पुनरुत्थान—[श्री गंगाप्रसाद गौड़ (नाहर)] ... ...

९—भोजन-विज्ञान—[लेखक—श्रीयुत पं० महेन्द्रनाथ पांडेय वैद्यरत्न] ... ...

वार्षिक मूल्य
३)

प्रति अंक
।=)

सम्पादक
डा० बालेश्वरप्रसाद सिंह

११ जून १९४५ ई० को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवश्य लाभ उठाइये

प्राकृतिक चिकित्सा के सीखने का अनुपम अवसर

आगामी अक्टूबर सन् १९४५ को प्राकृतिक चिकित्सा के शिक्षण योजना का प्रथम क्लास एक मास तक लिया जायगा। इसमें प्राकृतिक चिकित्सा के मूल-सिद्धान्तों तथा उसकी व्यावहारिक शिक्षा का पूर्ण आयोजन होगा। एक-एक मास का इस तरह वर्ष में तीन बार क्लास लिया जायगा। अक्टूबर मास के बाद वाले क्लास की सूचना समय आने पर दी जायगी। जो शिक्षार्थी इससे लाभ उठाना चाहें वे कृपया आवेदन पत्र सितम्बर मास तक अपने नाम पता व अपनी शैक्षिक योग्यता (Educational Qualification के साथ भेज दें।

नोट—प्रत्येक शिक्षार्थी को १०) मासिक फीस और १५) प्रतिमास निवास स्थान के लिये देना होगा। ट्रेनिङ्ग लेने के लिए वैसे भी विद्यार्थी किसी मास में आ सकते हैं और जिस महीने तक चाहें, स्वास्थ्यगृह में व्यावहारिक शिक्षा प्राप्त करने के लिए अपनी इच्छानुसार रह सकते हैं। पर उनको उपर्युक्त फीस प्रत्येक मास के लिए अवश्य देनी पड़ेगी।

प्राकृतिक चिकित्सालय

रामगढ़ जैपुर

यहाँ आपको राजपूताने के प्रमुख प्राकृतिक-चिकित्सक डा० सत्यनारायण अग्रवाल की देख-रेख में, हरेक रोग से निश्चित रूप से राहत मिलेगी। प्राकृतिक चिकित्सा के समस्त साधनों—जैसे जल, मिट्टी, धूप, वायु, व्यायाम, उपवास, युक्ताहार, मालिश, सूर्य-चिकित्सा, दुग्ध-चिकित्सा, बिजली, मानसोपचार आदि से आप पूर्णतया परिचित हो, दूसरों को भी इन्हीं साधनों से रोग दूर करने की सलाह देने क़ाबिल हो जायेंगे।

पूरी जानकारी के लिये डाक टिकट सहित लिखें—

प्राकृतिक चिकित्सालय,

रामगढ़ (जैपुर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Reg. No. A-172

शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्
NATURE ONLY HEALS

जीवन सखा

सम्पादक,
डा० बालेश्वरप्रसाद सिंह

वर्ष १०] अप्रैल, १९४५ [अङ्क ४

प्राकृतिक चिकित्सा ही क्यों ?

ले०—श्री० कामताप्रसाद अग्रवाल एम. ए. एन. डी. डी. वाई., (विशारद)

१—क्योंकि यदि कोई चिकित्सा प्रणाली रोग को 'जड़ से' दूर करती है और कर सकती है तो वह प्राकृतिक चिकित्सा ही है। अन्य चिकित्सा पद्धतियाँ रोग के लक्षण मात्र को शरीर के अन्दर दबा देने में ही अपने को कृतकृत्य मानती हैं। उतने में ही उनके चिकित्सा की इतिश्री हो जाती है। पर प्राकृतिक चिकित्सा ही को क्यों यह श्रेय प्राप्त होता है—इस लिये कि यह ही तो रोग के जड़ तक पहुंचती है, रोग के असली कारण को सच्चाई से प्रकाश में ला देती है। कीटाणुवाद का हवा नहीं खड़ा करती, कीटाणुओं को रोग का मुख्य और असली कारण नहीं बताती—जैसा कि औषधियों पर निर्भर करने वाली अन्य प्रचलित चिकित्सा प्रणालियाँ आज दिन कर रही हैं। प्राकृतिक चिकित्सा कहती है—नहीं भाई, भ्रम में मत पड़ो। दिमाग़ रहते उसे काम में लाओ आँख रहते खोलकर देखो—प्रकृति की ओर नजर दौड़ाओ—देखोगे कि मक्खी, मच्छड़ कीड़े-मकोड़े जीव-जन्तु वहीं पहुंचते हैं जहाँ गन्दगी कूड़े-करकट आदि का ढेर लगा होता है जहाँ उनके उपयुक्त आहार मिलता है। ऐसी दशा में हम क्या करते हैं? यही न कि गन्दगी को उठवाकर अपने स्थान से दूर फिकवा देते हैं या उसे जलवा देते हैं, स्थान को साफ़ करा देते हैं। और फिर कीड़े-मकोड़े, मच्छड़ इत्यादि सब जाने कहाँ उड़न-छू हो जाते हैं। हम यह नहीं करते कि उन पर विषैले पदार्थ डालकर उनको मारने की कोशिश करें जिससे एक तो गन्दगी पहिले थी ही अब उन कीड़े-मकोड़ों की लाशों से पट जाने से वह और भी बढ़ जाय! गन्दगी तो उस स्थान पर रहेगी ही जिससे कालान्तर में फिर उसी तरह के कोड़े-मकोड़े तथा जीव-जन्तुओं का आगमन होगा। यही बात प्राकृतिक चिकित्सा करती है जिससे रोग की जड़ पर तुरत कुठाराघात होता है—अर्थात् वह यह प्रयत्न करती है कि रोगी के शरीर से गन्दगी, कूड़े-कचड़े तथा विजातीय पदार्थ को एनीमा तथा यौगिक क्रियाओं द्वारा शीघ्र से शीघ्र निकाल दिया जाय जिससे कीटाणुओं को आहार न मिलने के कारण वे आप ही आप गायब हो जायं। इसके विपरीत अन्य उपचार-पद्धतियाँ शरीर में इन्जेक्शनों के द्वारा विषैली औषधियों को प्रवेश कराकर कीटाणुओं को नष्ट करने में अपना बहुमूल्य समय धन व रोगी की जीवनी शक्ति व्यर्थ गंवाया करती हैं, जिस बात से कीटाणु उत्पन्न हुए उसको दूर करती नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिणाम वही होता है जो आज साफ़ दिखलाई पड़ रहा है।

२—क्योंकि इसके उपचार के सिद्धान्त अटल हैं, अचूक हैं, अपरिवर्तनशील हैं। प्राकृतिक चिकित्सा में आज जिन तत्वों को उपकारी व गुणकारी समझ कर काम में लाया जाता है, वे कल भी—दूर भविष्य में भी—उपयोग में लाये जाते रहेंगे। उनके प्रयोग के तरीक़ों में संशोधन हो सकता है—समयानुसार, रोगी की अवस्थानुसार—यह ध्रुव सत्य है। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। इसके विपरीत अन्य चिकित्सा-प्रणालियाँ यदि आज किसी रोग के उपचार के लिए एक सिद्धान्त (थ्योरी) को सामने रखता हैं, जिसका बड़े ज़ोर-शोर से विज्ञापन किया जाता है, तो फिर कालान्तर में उसी को वे ही स्वयं हानिकर व अनुपयोगी सिद्ध करती हैं, और फिर परिणामतः एक दूसरा ही नवान आविष्कार किया जाता है। कुछ दिन उसके 'अमृतोपम' गुणों का अधाधुन्ध दिन दूना रात चौगुना प्रचार किया जाता है। पर वह दिन शीघ्र ही आ जाता है जब उसे अचानक 'विषमय' करार देकर उसके प्रयोग पर रोक लगायी जाती है। इस तरह आज की प्रधान चिकित्सा पद्धतियों में महज 'प्रयोग' किये जाते हैं। और प्रयोग के ही रूप में चिकित्सा-क्रम चलता रहता है; चिकित्सा के साथ व्यवसाय किया जाता है और व्यवसाय से ही चिकित्सा चलायी जातीहै।

प्राकृतिक चिकित्सा मानती है कि हमारे शरीर का निर्माण पाँच तत्वों से हुआ है—"क्षिति जल पावक गगन समीरा" और जिन तत्वों से शरीर का निर्माण हुआ है वे ही तत्व हमारे शरीर के लिए अपने प्रकृत रूप में उपयोगी हो सकते हैं और होते हैं, उन्हीं से शरीर के रोगी होने पर भी उसे लाभ पहुंच सकता है और उन्हीं को शरीर सदैव ग्रहण करने व अपनाने में समर्थ हो सकता है। इसीलिए रोग के उपचार में भी इन्हीं तत्वों को शरीर में उनके प्रकृत रूप में पहुंचाने की भरसक कोशिश करनी चाहिए। इनके अलावा जो कुछ होगा, वह शरीर को हानि पहुंचावेगा जल्दी में या देर में, शरीर के लिए विजातीय पदार्थ होगा और उसमें विकृति उत्पन्न करेगा। रोग को दूर करना तो दूर रहा, उसे तो वह किसी-न-किसी रूप में बढ़ावेगा ही।

३—क्योंकि प्राकृतिक चिकित्सा में रोगी बहुधा उपचार तो एक रोग का कराने आता है, पर साथ-ही-साथ उसके अन्य तमाम छोटे-मोटे विभिन्न नामधारी रोग भी सदैव के लिए उससे बिदा हो जाते हैं। ऐसा क्यों? इस लिए कि प्राकृतिक चिकित्सा आपके शरीर की यथार्थ रूप में पूर्ण शुद्धि कर देती है। आपके शरीर में वर्षों से जो भी कूड़ा-कचरा, विजातीय पदार्थ आदि भरा रहता है जिससे किसी समय भी अनेकानेक रोगों के लक्षण उदय हो सकते हैं उसे हमेशा के लिए बाहर निकाल फेंकता है और फिर मानों आपका शरीर एक बार नया-सा हो जाता है। यह आपके किसी विशेष अवयव, अङ्ग या भाग के रोगी होने का विशेष इलाज नहीं करती, बल्कि समूचे शरीर को स्वच्छ कर देती है, आपका पाचन-संस्थान फिर से क्रियाशील हो जाता है, निर्मल रक्त का अबाध गति से परिभ्रमण होने लगता है आपका स्वास्थ्य उन्नत हो जाता है, आप अच्छे हो जाते हैं और आपकी सारी शिकायतें काफ़ूर हो जाती हैं। लेकिन आज की प्रचलित चिकित्सा प्रणालियों का क्या राग है? क्या वे ऐसा करती हैं? कदापि नहीं। तभी तो वे रोगोपचार में असफल हो रही हैं। वे तो शरीर को स्वच्छ करने के बजाय उसे विषैली औषधियों से भरकर और भी गन्दा करती हैं। इस तरह रोगी तो बेचारा अपने किसी एक रोग का उपचार कराने आता है पर अनजान में वह अन्य घातक रोगों के बीज लेकर जाता है!

४--क्योंकि यह आपके रोगों की केवल चिकित्सा ही नहीं करती वरन् एक बार आपका रोगोपचार कर आपको 'सदैव ही स्वस्थ रहने का' ज्ञान व सन्देश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी देती है। 'स्थायी स्वास्थ्य' का जो प्रशस्त राज-मार्ग है उसमें आपको ला खड़ा करती है। कहती है—देखिये, यदि स्वस्थ व सुखी रहना चाहते हैं अपनी आयु को बढ़ाना चाहते हैं, समाज व राष्ट्र के लिए अपने मस्तिष्कीय शक्ति से चिर सम्पत्ति बनना चाहते हैं, तो प्रकृति के इन कतिपय अटल, अचूक व सर्व हितकारी नियमों का पालन करते चले जाइए। कभी बीमार पड़ेंगे ही नहीं। डाक्टर के हाथ में आप की नब्ज़ कभी आवेगी ही नहीं। अपना भला करेंगे, अपने परिवार का भला करेंगे, समाज व राष्ट्र का भला करेंगे। अन्य चिकित्सा प्रणालियाँ आप की एक बार चिकित्सा कर आपको सदैव के लिए अपना तथा औषधियों का गुलाम बना लेती हैं, कारण वे तो केवल रोग का तथा कथित उपचार ही करती हैं, रोग से मुक्ति दिलाना उनके बस का काम नहीं है। आप सदैव उनके चक्कर में पड़े रहते हैं तन, मन, धन तीनों को खोते हुए। सुन्दर व स्थायी स्वास्थ्य के निर्माण व रक्षण के लिए उनके पास कोई आदर्श रहता नहीं जिसे वे आपके सामने रख सकें। स्वास्थ्य के सरल नियम जानने की वे कोशिश नहीं करतीं फिर वे आपको कैसे बता पावें। पर प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली आपके लिये स्थायी—और आदर्श स्वास्थ्य निर्माण के लिए—अपना एक सन्देश रखती है जिसे वह सदैव बुलन्द करती रहती है। वह आपको एक बार अपना रोगी रखकर कह देती है कि जिन नियमों अथवा उपचारों द्वारा आपने रोग मुक्ति पायी है उन्हीं नियमों का सतत पालन कर अब आप स्वयं अपने चिकित्सक, अपने उपचारक, अपने डाक्टर बन जाइये। आपका अब मैं रूप परिवर्तित करती हूं—रोगी से डाक्टर

५—क्योंकि यह आप में आत्म-विश्वास (Self-Confidence), आत्म-निर्भरता व स्वावलम्बन के भाव जाग्रत कर देती है। जब आप प्राकृतिक जीवन व रहन-सहन से परिचित हो जाते हैं—आप सात्विक भोजन उचित मात्रा में करते हैं, नियमित रूप से शुद्ध वायु का सेवन करना नहीं भूलते, सूर्य-रश्मियों का प्रतिदिन आलिङ्गन भी करते हैं, जिह्वा व स्वाद ग्रन्थियों को ज्ञान-वश काबू में किये रहते हैं, शारीरिक व्यायाम की उपेक्षा अपने दैनिक-क्रम में नहीं करते तथा गाहे-ब-गाहे आवश्यकतानुसार एनिमा अथवा योग की क्रियाओं द्वारा आन्तरिक आवश्यकीय अवयवों को स्वच्छ कर लिया करते हैं—फलतः आपका स्वास्थ्य उन्नत रहता है—आप शरीर से बलवान व सशक्त दिखते रहते हैं—तब भला 'हीनता' की भावना कैसे आप में घर बनाये रह सकती है? वह तो विदा हो ही जायगी। आपकी निरोधक शक्ति खूब बढ़ी रहती है। आप में भय लेश-मात्र को नहीं रहता। आप में आत्म-विश्वास की भावना घर कर लेती है। आप जरा-जरा सी कठिनाइयों से घबड़ाते नहीं। आप में जीवन की प्रत्येक परिस्थितियों का सामना करने की भावना सजग रहती है। सफलता की आप चिन्ता नहीं करते, वह तो अपने आप आपके पास आ जाती है; क्योंकि शरीर के स्वस्थ होने पर मस्तिष्क सुकरता से परचालित होता है और मस्तिष्क की स्वस्थ क्रिया-शीलता पर शरीर का स्वस्थ परिचालन निर्भर करता है।

६—क्योंकि प्राकृतिक चिकित्सा ही एक ऐसी प्रणाली है जो 'आपको' ही अपने रोगी होने का ज़िम्मेदार ठहराती व मानती है। अनेकानेक प्रयोगों द्वारा उसने इस तथ्य को ढूंढ़ निकाला है कि अधिकांशतः रोगी ही अपने रोग का उत्तरदायी होता है, रोग उसकी अपनी करनी का फल होता है। इस चिकित्सा प्रणाली की स्पष्ट घोषणा है कि जो व्यक्ति अपने खान-पान में, अपने रहन-सहन में संयम न रक्खेगा या ग़लती करेगा, प्रकृति के तत्वों का उचित उपयोग न करेगा अथवा उन का दुरुपयोग करेगा, उसे अवश्य अपने कर्मों का फल भुगतना पड़ेगा और भुगतना पड़ेगा इस जीवन में तो अवश्य ही (चाहे दूसरे जीवन में भी भुगतना पड़े) अपनी भूल का, प्रकृति की अवहेलना का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसे प्रायश्चित करना ही पड़ेगा जो प्राकृतिक चिकित्सा में प्रधानतः 'उपवास' के रूप में होता है। पर अपनी ग़लती को महसूस कर लेना ही प्राकृतिक चिकित्सा में स्वस्थता की पहिली सीढ़ी पर पैर रख देना है और इस प्रथम सोपान की ओर क़दम बढ़ाना ही स्थायी स्वास्थ्य के प्रशस्त राजमार्ग की आधी दूरी को तय कर लेना है।

७—क्योंकि यह इतनी सरल, सुलभ व सुगम तथा शीघ्र ही समझ में आने वाली चीज़ है। यह आप को अपने विषय में—अपनी चिकित्सा पद्धति के विषय में—'रहस्य' में नहीं रखती—जैसे कि अन्य चिकित्सा-प्रणालियाँ (जो अधिकतर औषधियों के प्रयोग पर ही निर्भर करती है) आपके रोगों को बड़े-बड़े नाम देकर आपको अपनी चिकित्सा के विषय में बिलकुल अंधकार में रखती हैं, बस नाम ही आपके पल्ले पड़ता है, अन्य ज़रूरी वा आधारभूत बातों से आप कोसों दूर रह जाते हैं। प्राकृतिक चिकित्सा के लिये तो रोग का एक ही कारण होता है-शरीर में विजातीय पदार्थ (Foreign matter) का जमा होना। यह कई तरह से जमा हो सकता है—अत्यधिक औषधियों के सेवन से अथवा भीषण कब्ज के डेरा जमा लेने से जो कि स्वयं अनुपयुक्त और अनुचित मात्रा में भोजन करने से होता है। यह 'कोष्ठवद्धता' को सब रोगों की 'नानी' मानती है। यह अपना अमूल्य समय 'निदान' में नहीं खोती—जैसा कि अन्य चिकित्सा-प्रणालियाँ करती हैं। वे मूत्र-रक्तादि की परीक्षा में ही रोगी का जाने कितना बहुमूल्य व एक-एक क्षण भारू रहने वाला समय व्यतीत कर देती हैं—इसी बीच में यदि रोगी चल बसा तो उनकी बला से। उन से कोई मतलब नहीं। उनका कोई उत्तरदायित्व नहीं। 'निदान' प्राकृतिक चिकित्सक भी करता है, पर उस में अत्यधिक समय नष्ट न कर रोग का उपचार तुरन्त आरम्भ कर देता है—ऐसा करने में उसके लिये किसी विशेष विपद अथवा कठिनाई का सामना करने की सम्भावना नहीं होती। उपचार के अटल सिद्धान्त, उसके अचूक नियम रहस्यावरण से मुक्त होने के कारण सब की समझ में आसानी से आ जाते हैं। इस चिकित्सा में सिद्धान्तों व नियमों का जान लेना कोई बड़ी बात नहीं है—उनको प्रयोग में लाना, उनका अभ्यास करना, दैनिक जीवन-क्रम में उनका नियमित रूप से पालन करना ही विशेष बात है। इसके अतिरिक्त प्राकृतिक चिकित्सक जिन साधनों व तत्वों को बहुलता से उपयोग में लाता है वे सर्व सुलभ व सर्वत्र प्राप्य होते हैं और प्राप्य होते हैं बहुतायत से।

८—क्योंकि यह अन्य चिकित्सा-प्रणालियों की अपेक्षा बहुत कम खर्चीली है। इसलिए कि यह आपको औषधि देती है भोजन के रूप में और भोजन ही चलता है इसके चिकित्सा-क्रम में औषधि के स्थान पर। आपके 'स्वस्थ' आहार करने में जो खर्च पड़ता है सो ही असल खर्च है—उससे आपका शरीर स्वच्छ होता चलता है, रोग से आपकी मुक्ति होती चलती है और साथ ही साथ होता चलता है आपके स्वस्थ आहार स्वरूप स्वस्थ शरीर का निर्माण। और फिर आपको तो यह सदैव के लिये रोग से मुक्ति प्रदान करती है। आपको अपना, अपने परिवार का चिकित्सक बना देती है। आप को सुन्दर स्थायी स्वास्थ्य निर्माण करने के स्वर्ण-सूत्र मिल जाते हैं। आप अपने स्वास्थ्य की रक्षा करने में पूर्णतया समर्थ होते हैं। सोचिये तो जीवन में आप कितने बार रोगी होते हैं, कितने इंजेक्शन आपको लेने पड़ते हैं, कितनी औषधियाँ आपको ठूसनी पड़ती हैं, इसके लिये आपको कितना-कितना खर्च उठाना पड़ता है, डाक्टर को कितनी फ़ीस देनी पड़ जाती है! फिर आपके बीमार पड़ने पर आपके व्यवसाय की हानि, आपको तथा आपके परिवार की बेहद परेशानी व उलझन, अन्त में निराशा का संचार सो अलग! इनका तो मूल्य ही नहीं आंका जा सकता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

९—क्योंकि इसमें कोई रोग 'असाध्य' या ला—इलाज नहीं होता। हरएक रोग अच्छा हो सकता है, पर हर एक रोगी नहीं। हरएक रोगी इसलिए नहीं क्योंकि रोगी का अच्छा होना उसके अवशेष 'जीवनी-शक्ति' पर निर्भर करता है। यदि विषैली औषधियों का बहुत अधिक प्रयोग कर अथवा खान पान में शरीर के साथ अत्यधिक अत्याचार कर जीवनी शक्ति को इतना क्षीण कर लिया जाता है कि प्राकृतिक चिकित्सा में उपचार होते समय जो 'उपचारात्मक उभाड़ (Healing Crise's) आते हैं उनका सामना करने में शरीर असफल होता है तब रोगी का अच्छा होना असम्भव ही होता है। यदि शरीर के भीतरी आधार भूत उपयोगी अवयवों (Vital organs) का इतना ह्रास व विनाश हो चुका होता है कि उनके फिर से स्वस्थ, समुन्नत व क्रियाशील होने के लिए उनका एक तरह से 'पुनर्निर्माण'-सा होना आवश्यक होता है, तब—ऐसी दशा में—प्राकृतिक-चिकित्सा अपने को असहाय पाती है; उस समय रोगी को जीवन-दान देने में वह अपने को असमर्थ मानती है क्योंकि वह सर्वशक्तिमान ईश्वर नहीं है जिसके अधिकार में ही नये अङ्गों व अवयवों का निर्माण करना है। पर यह भी निश्चित है कि ऐसे रोगी की प्राण-रक्षा दुनिया की कोई भी चिकित्सा-प्रणाली नहीं कर सकती। जहाँ तक मैं समझता हूं प्राकृतिक चिकित्सा शरीर के बाहर व भीतर के विकार-ग्रस्त अवयवों की रुकी हुई क्रियाशीलता को अपने उपचारों द्वारा अवश्यमेव सजग कर सकती है और इसमें सदैव सफल ही होती है पर किसी क्षय-प्राप्त आधारभूत परमोपयोगी (vital organs) अवयव या अङ्ग का एकदम नये सिरे से निर्माण करना उसके लिए असम्भव-सा है।

१०—क्योंकि यह प्रणाली हमारे देश के लिए सर्वथा उपयुक्त है—उस हमारे देश के लिए जो आज इतना निर्धन है, इतना अशिक्षित है, जहाँ मृत्यु-संख्या आज विश्व के 'रिकार्ड' की वस्तु है और जहाँ की सामान्य आयु आज अपने प्राचीन आदर्श की चौथाई भी नहीं रह गयी। आज हमारे देश के लिए यही एक चिकित्सा-प्रणाली है जिस को हमारे ग्रामीण भाई जो प्रतिवर्ष लाखों की संख्या में हैजा मलेरिया, शीतला तथा प्लेग से पीड़ित हो अचानक ही अल्पायु में काल के गाल में चले जाते हैं, सहज अपनाकर अपना उद्धार कर सकते हैं। उसके अतिरिक्त यह चिकित्सा प्रणाली तो हमारी चीज है, हमारे ही संस्कृति की उपज है, हमारे ही ऋषियों-मुनियों की चिर-परीक्षित वस्तु है जिसे हम सदियों से पराधीन रह कर तथा पाश्चात्य सभ्यता के कृत्रिम वातावरण में पल कर एक दम भूल गये थे और जिसके पुनरुद्धार का सन्देश आज हमें जर्मनी से प्राप्त हुआ है। अपनी इस वैज्ञानिक तथा अनन्त—कालीन तथ्यों पर आधारित चिकित्सा प्रणाली को हमें सामूहिक रूप से अपनाना ही पड़ेगा, आज नहीं तो कल-कल नहीं तो परसों, यदि हमें सार्वजनिक स्वास्थ्य को सुधारना है, राष्ट्र का अभ्युत्थान करना है, देश को स्वतन्त्र करना है, और स्वतन्त्रता प्राप्त कर उसे सुरक्षित रखना है।

निवेदन

'जीवन सखा' के प्रेमी ग्राहकों से हमारा निवेदन है कि अपना ठीक पता (Postal adress) फिर से लिखकर कार्यालय में शीघ्र से शीघ्र भेज दें। बहुधा पता की ही गलती से हमारे मासिक पत्र के पहुँचने में अव्यवस्था हो जाती है। अतः पता साफ साफ लिखने की कृपा करें। और पत्र व्यवहार के समय अपना ग्राहक नम्बर लिखना न भूलें।

व्यवस्थापक

'जीवन सखा'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वास्थ्य और योग

लेखक – श्री विजय बहादुर सिंह बी० ए०

मनुष्य संसार का सब से सचेतन प्राणी है। सभ्यता के विकास के साथ-साथ मनुष्य ने अपने जीवन को सुखमय बनाने के लिए नये-नये साधनों का आविष्कार कर रखा है और नित्य प्रति अन्वेषण करता जा रहा है। सर्वप्रथम मनुष्य चाहता है दीर्घ जीवन, स्थायी यौवन और पूर्ण आरोग्यता। जीवन और शरीर समान धर्मी हैं; जब तक जीवन है तब तक शरीर है। शरीर से जीवन-ज्योति के अन्तर्हित होते ही जीवन-यात्रा समाप्त हो जाती है और शरीर निष्प्राण हो जाता है। शरीर नश्वर है। बाल, युवा, वृद्ध-तीनों शरीर की उत्तरोत्तर अवस्थाएं हैं। मनुष्य के लिए चिर जीवन प्रकृति-विधान के प्रतिकूल है।

भारत के गौरव काल—आध्यात्मिक युग में महर्षियों ने जीवन को चिरजीवी एवं स्वस्थ बनाने में योग को ही सर्वश्रेष्ठ साधन पाया। उनका आदर्श आध्यात्मिक सुख था। योग से शरीर अनश्वर बन जाता है—इस सत्य को उन लोगों ने अपने तपोमय जीवन से प्रत्यक्ष कर दिखाया है। योगियोंके शरीर पर जरा एवं व्याधि का आक्रमण नहीं होता। पर वह आध्यात्मिक—राजयोग विश्व के इस संघर्षात्मक काल में सर्वसाधारण के लिए अलौकिक एवं दुःसाध्य बन गया है।

आध्यात्मिक योग की सफलता के लिए बहुत ही शान्त वातावरण की आवश्यकता है। यह देश के स्वतंत्र वायु मण्डल में ही विकसित हो सकता है। प्राचीन भारत के स्वर्ण-युग में जब देश स्वराज्य का सुख उपभोग करता था—देश का शासक आध्यात्मिक योग में अनुरक्त साधक वर्ग को योग-साधन की आवश्यक वस्तुओं को स्वयं ही आयोजित करता था तब साधक श्रेणी को जीवन-यात्रा के लिए दूसरों के साहाय्य की अपेक्षा नहीं रहती थी। वर्तमान काल में शासक वर्ग से आध्यात्मिक योग के विकास में साहाय्य की उपलब्धि असाध्य है।

आधुनिक काल में मानव जाति संसार-योग की ओर प्रवृत्त हो रही है। आध्यात्मिक योग केवल व्यक्ति विशेष का धर्म रह गया है। संसार में आज भी योग विभूति सम्पन्न अनेक महात्मा और साधक अपने अध्यात्म-साधन में रत एवं संलग्न हैं जो मानव-कल्याण के लिए समय-समय पर अपने उपदेशों से पथ-प्रदर्शन किया करते हैं। इस प्रकार आध्यात्मिक योग, जीवन का सर्वश्रेष्ठ ध्येय होने पर भी व्यवहारतः सर्व जन सुलभ नहीं है। तथापि चिरयौवन एवं पूर्ण आरोग्यता की उपलब्धि के लिए योग से अधिक उपयोगी साधन संसार की किसी भी प्रयोगशाला में अब तक उपलब्ध नहीं हुआ है।

वर्तमान काल में आध्यात्मिक योग की असाध्यता को देखते हुए भी संसार-सुख की अभीष्ट सिद्धि के लिए योग ही एक मात्र उपयुक्त साधन है। यह आध्यात्मिक न होकर शरीर को स्वस्थ, नीरोग एवं बलिष्ट बनाता है। इसे 'हठयोग' के नाम से अभिहित किया जाता है। इसकी चार श्रेणियां हैं; १—यम, २—नियम, ३—आसन और ४—प्राणायाम। इन्हें हठ योग का अंग कहते हैं। साधारण पाठक यह समझते हैं कि हठ-योग की सिद्धि के लिए इनमें से किसी भी अंग का साधन उपयोगी सिद्ध हो सकता है; पर यह भ्रामक है। यम, नियम, आसन का यथा विधि अभ्यास किये बिना प्राणायाम की सिद्धि असाध्य ही प्रमाणित होती है। इसी प्रकार आसन सिद्धि के लिए यम, नियम का शास्त्र-निर्दिष्ट पथ ही सुलभ एवं सुगम साधन है। यम-नियम का साधन मानसिक आरोग्यता के लिए अनिवार्य है। मानसिक शान्ति ही शारीरिक आरोग्यता की जन्मभूमि है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संसार के महान आत्माओं का यह अनुभूत सिद्धान्त है कि मनुष्य जैसा सोचता है वैसा ही बन जाता है। यह अभ्यास साध्य है। यम, नियम के विविध अंग-उपांगों की आलोचना में न पड़कर हम यहां उनके आभ्यन्तरिक सिद्धान्तों का अनुशीलन करना चाहते हैं। यम और नियम को आत्मशुद्धि का मेरुदण्ड मानते हैं। आचार-धर्म का यथाविधि पालन आत्मशुद्धि का प्रथम सोपान है। पवित्रता वह भूमि है जहाँ आरोग्यता का बीज सरलता से अंकुरित होता है। और उत्तरोत्तर विकास को प्राप्त होता रहता है। पवित्रता का दूसरा नाम सदाचार है। सदाचार आध्यात्मिक जीवन का ही नहीं, अपितु सांसारिक जीवन की सफलता का भी आधारशिला है। सदाचार की नींव पर सांसारिक-यात्रा अधिक सुरम्य एवं सुरक्षित रहती है। वाह्य एवं आभ्यन्तरिक—दोनों प्रकार की पवित्रता का होना अनिवार्य है। शुचिता स्वास्थ्य की वह कुंजी है जो मनुष्य को पूर्ण आरोग्यता प्रदान करती है और उसे दीर्घ जीवी बनाती है। यह पवित्रता—मनसा-वाचा और कर्मणा होनी चाहिए। शरीर की वाह्य शुद्धि के साथ मानसिक शुद्धि परम आवश्यक है। इन्द्रिय-जय मानसिक शुद्धि के लिए परम उपयोगी है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद एवं मत्सर आदि शत्रुओं पर विजय प्राप्त करना ही इन्द्रिय-जय या संयम कहलाता है। इसे ही आन्तरिक शुद्धि कहते हैं। कहा है :—

आत्मा नदी संयम पुण्यतीर्था
सत्योदका शीलतटो दयोर्मिः।
तत्राभिषेकं कुरु पाण्डुपुत्र
न वारिणा शुध्यति चान्तरात्मा॥

शरीर की वाह्य शुद्धि स्नानादिक से परिपूरित होती है। हित, मित वाणी का धर्म होना चाहिए। अहिंसा भी शारीरिक एवं मानसिक होनी आवश्यक है। इस प्रकार की वाह्य और आभ्यन्तरिक शुद्धि से मन स्वस्थ, शान्त एवं प्रसन्न रहता है और फलतः शरीर भी आरोग्यता का सुख उपभोग करता है। शरीर को पुष्ट एवं सबल बनाने के लिए जितने भी व्यायाम जगत में प्रचलित हैं; उन से न तो आन्तरिक बल की वृद्धि होती है और न मन तथा शरीर की समस्थिति उपलब्ध होती है। आन्तरिक शक्ति, शारीरिक शक्ति से अधिक बलशालिनी है। और कठिन अवसरों पर यही मनुष्य को धैर्य, साहस, सहिष्णुता, प्रदान कर उसे महान शक्तिशाली बना देती है। पवित्रता और सदाचार जीवन की वे आधार-शिलाएँ हैं जिनपर आरोग्यता का भव्य भवन स्थापित होता है और मनुष्य जीवन सरलता से गतिशील होता रहता है। साधना—अभ्यास से धीरे-धीरे संयम का संग्रह किया जाता है। यह अभ्यास-साध्य है। सदाचार, सत्य, ब्रह्मचर्य और अहिंसा आदि के क्रमिक अभ्यास-साधन से जीवन में एक नवीन प्रकार की ज्योति अनुभूत होने लगती है जो निरन्तर सन्मार्ग की ओर प्रवृत्त करती हुई जीवन को सुख और शान्ति से परिपूर्ण कर देती है।

यम-नियम की विधियों का अनुसरण करते हुए आसन का अभ्यास किया जाता है। आसन-सिद्धि बड़ी कठिन तपस्या है; पर है अभ्यास-साध्य। योगासन एक ऐसा व्यायाम है जिसके अभ्यास से शरीर सुडौल, सुन्दर, सुगठित एवं स्वस्थ रहता है। इनके अभ्यास से रक्ताभिसरण की क्रिया सुन्दररूप से संचारित होती रहती है और शरीर के अंग और उपाङ्ग उचित मात्रा में परिपुष्ट होकर अपना कार्य संपादित करते रहते हैं। इनके साधन से शरीर पर व्याधियों का आक्रमण नहीं होता और यदि दैव योग से शरीर में कोई व्याधि प्रवेश भी कर लेवे, तो इनके साधन से उनका निराकरण सरलता से किया जा सकता है। संसार के चिकित्सक जिन व्याधियों को असाध्य प्रमाणित कर देते हैं; उनमें बहुतों को यौगिक उपचार से साध्य होते देखा जाता है। श्वास सम्बन्धी भयानक व्याधियों को प्राणायाम से उन्मूलन होते प्रायः पाया जाता है। मस्तिष्क-विकार, बात, प्रमेह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और स्नायु-दौर्बल्य आदि व्याधियों पर, जहां संसार की अन्य चिकित्सा पद्धतियाँ विफल हो गई हैं, केवल आसन-साधन और प्राणायाम से अतुलित लाभ होते देखा जाता है। पर आसन और प्राणायाम सिद्धि के लिए योग्य पथ-प्रदर्शक का होना अनिवार्य है। पोथियों और आसन के चार्टों की सहायता से लाभ न होकर बहुधा अनिष्ट ही बहुत होते हैं।

प्राणायाम के उपयुक्त चार ही पांच प्रमुख आसन हैं जिनमें किसी एक की सिद्धि हो जाने पर प्राणायाम सरलता से अभ्यास किया जा सकता है। योगाचार्यों ने शरीर के भीतर रहने वाली वायु को उनके गुणानुसार अनेक नाम दे रखे हैं जिन में पांच प्राण वायु प्रधान हैं; जैसे—प्राण, अपान, उदान आदि। प्राणायाम से इन पांचों को यथा स्थान उचित मात्रा में रखने में सहायता मिलती है जो जीवन-शक्ति के मूल आधार हैं। इनके उचित अभ्यास से हृदय, फुप्फुस और मस्तिष्क शुद्ध और बलशाली बनते हैं और नाड़ियों में शुद्ध रक्ताभिसरण होने लगता है। प्राणायाम से चित्त-वृत्तियों का अबाधित प्रवाह रुकने लगता है और मनो-निग्रह होते-होते हृदय में एक प्रकार की आनन्दमयी शान्ति विराजने लगती है।

शारीरिक ह्रास और उसके कारण

लेखक—श्रीयुतकीर्ति 'कुमार'

मानव-जाति के इतिहास में यह देखा गया है कि जिस व्यक्ति अथवा समाज के पास जितना ही प्रचुर धन है वह उतना ही विलासप्रिय है। विलासप्रियता के बढ़ जाने से जीवन ढीला पड़ जाता है, कष्ट सहने की मनोवृत्ति नष्ट हो जाती है और साहस का लोप-सा हो जाता है। विलासी जीवन अनेक ऐसी बीमारियों का जन्मदाता बन बैठता है जिसके पंजे से मुक्त होना शक्ति के बाहर की बात हो जाती है और अन्त में परिणाम यह होता है कि विलासी मनुष्य न तो उस विलास से ही मुक्त हो पाता है और न उन रोगों से ही।

धन के अभाव से जीवनदायक पदार्थों को प्राप्त करना असंभव है और जहां पोषण शक्तिदायक पदार्थ न मिले वहाँ और उस परिस्थिति में जीवन का अपने असली रूप में रहना भी दुष्कर है। जीवन का आधार पोषण शक्तियुक्त पदार्थों के सेवन पर ही निर्भर है। और जहां पदार्थों में पोषण शक्तिदायिनी वस्तुओं का अभाव हो वहाँ जीवन न तो अपनी शोभा ही रखता है और न शोभा देनेवाले सद्गुण ही। अतः हम देखते हैं कि धन की प्रचुरता और उसके दुरुपयोग से तो जीवन नष्ट होता ही है, पर साथ ही धन के अभाव से जीवन को उससे भी अधिक भयानक आघात पहुंचता है।

आज हमारा समाज दुर्भाग्यवश दो वर्गों में विभक्त है—एक तो वह जिसके पास धन की प्रचुरता है और दूसरा वह जिसके जीवन में रोटी के टुकड़े के लिए भी लाले पड़े रहते हैं। ये दोनों ही वर्ग जीवन का विकास नहीं कर सकते और न जीवन के रहस्य को ही समझ सकते हैं। जब तक समाज इस तरह के दो हिस्सों में इच्छित या अनिच्छित कारणों से विभक्त रहेगा तब तक वह कभी भी सुख-सम्पन्न न होगा। जब तक धन-सम्पन्न मनुष्य धन का संग्रह करते रहेंगे तब तक वे उसके दुष्परिणामों से बच न सकेंगे। वे धनवान रह कर भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन की दृष्टि से निर्धन ही बने रहेंगे और दूसरे वर्ग को निर्धन बना कर उसे मृत्यु का ग्रास बनाते रहेंगे। खेद है कि सदियों का इतिहास जिस बात को पुकार-पुकार कर कहता है, हम उसे आंख फाड़-फाड़कर देखते और कान खोल-खोल कर सुनते हैं फिर भी हम उसकी ओर से न जाने क्यों उदासीन हैं!

हमारा देश सदियों से निर्धन बना हुआ है। और उसके लिए यह कहना कि आज वह निर्धन है, कुछ भी अर्थ नहीं रखता। उन सदियों की निर्धनता का परिणाम हम भयानक रूप से भोग रहे हैं और उस निर्धनता का स्वरूप भी इतना भयावह है कि जिसकी कल्पना नहीं की जा सकती।

आज विश्व में शान्ति का ढिंढोरा पीटा जा रहा है, संस्कृति का पाठ गोलियों की छाया में पढ़ाया जा रहा है, पर क्या यह शान्ति है? नहीं, कदापि नहीं। क्योंकि—

"टाँक रही हो सुई चर्म पर
शान्त रहें हम तनिक न डोलें,
यही शान्ति गरदन कटती हो
पर हम अपनी जीभ न खोलें"

—दिनकर

मनुष्य जाति आज तक एक धन प्राप्त करने के हेतु दूसरा धन बेचती है और प्रचुर वस्तुओं को बेच कर आवश्यक चीज़ खरीदती आई है लेकिन आज हमारे देशवासियों के पास किसी भी प्रकार की सम्पत्ति प्राप्त करने के लिये धन नहीं है और जिस वस्तु की उन्हें जीवन-निर्वाह के लिए आवश्यकता होती है उसके लिए उन्हें अपनी बुद्धि, अपनी ईमानदारी, अपना शील और यहां तक कि अपना सारा जीवन बेचना पड़ता है। सोचने की बात है कि जो मनुष्य अपने जीवन-निर्वाह के लिए अपनी बुद्धि, अपनी ईमानदारी और अपने शील तक को बेच डालता है उसका जीवन किस प्रकार का होगा? ऐसे मनुष्य के लिये जीवन-विकास का प्रश्न क्या महत्व रख सकता है। इसका दुष्परिणाम यह हुआ है कि हम बुद्धिहीन हुए हैं, हमारे जीवन में क्रियात्मक शक्ति का लोप हुआ है, हमारे जीवन का विकास रुका है, जीवन जो एक आनन्ददायक चीज़ होनी चाहिये थी एक बोझ सा बन बैठा है। ऐसी हालत में आज यह प्रश्न खड़ा होता है कि हम मनुष्य की हैसियत से कितने दिन और जी सकेंगे?

इन सब शक्तियों का नाश अनेक कारणों से हुआ है और उनमें सब से जबर्दस्त कारण, जिसके प्रभाव से किसी को बचना मुश्किल है—परवशता है।

अगर हमारे सामने सिर्फ़ यह सवाल होता है कि हमें नष्ट धन की प्राप्ति करनी है, मन्द बुद्धि वालों को जगाना है, जीवन-शक्ति को फिर से हासिल करना है, तो इसे हम शायद कर लेते लेकिन सवाल तो आज यह खड़ा होता है कि जिस समाज के व्यक्ति अपनी सारी जीवन-शक्तियों को जान बूझकर लुटाने या नष्ट करने में लगे हों उनके लिए खोई हुई शक्ति का पुनः प्राप्त कर लेना कैसे संभव हो सकता है?

भारत के परतन्त्र होने के बाद आज से लगभग एक सौ वर्ष पहले आधुनिक वर्तमान शिक्षा की प्रणाली जारी की गई और इस शिक्षा का इस देश पर इतना बुरा प्रभाव पड़ा कि लाभ के बदले हमने सारी अनमोल चीज़ें गँवा दीं। और यह दुष्परिणाम इस हद तक पहुँच गया कि हमारा धन, हमारी बुद्धि, हमारी सृजन-शक्ति का नाश हो गया। सब कुछ नाश हो जाने पर भी जो कुछ थोड़ी बहुत सामग्री हमारे पास बच रही है उसे भी हम बराबर गँवाते जा रहे हैं और अब सामाजिक जीवन, आर्थिक, राजनीतिक और नैतिक दृष्टि से इतना गिर गया है कि उसका चित्र खींचना तो एक चित्रकार के लिए भी कठिन है। यह सब देखते और जानते हुए अब सवाल यह पैदा होता है कि क्या हमारे जीवन में ऐसी सुनहरी घड़ी आ सकती है जब हम अपने पतन के कारणों को समझें और इन उलझनों से निकलने का यथाशक्ति प्रयत्न करें?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी कार्य के करने के पहले उसकी सफलता पर विचार करना आवश्यक हो जाता है। सफलता तीन बातों पर निर्भर करती है—प्रथम तो यह कि क्या कार्यकर्त्ता की बुद्धि इस योग्य हो कि वह कार्यारंभ करे; दूसरा यह कि जिन यन्त्रों अथवा साधनों से वह कार्य करना चाहता है, उनका उचित रीति से उपयोग हो और तीसरा यह कि क्या वे दशायें जिनमें रहकर वह कार्य करना चाहता है, अनुकूल हैं। आज सब कुछ खो देने के बाद जब हमारे अन्दर यह इच्छा उत्पन्न होती है कि हम फिर से खोई हुई वस्तुएँ प्राप्त करलें तो यह देखना जरूरी हो जाता है कि क्या अब भी हमारे पास कोई ऐसी चीज़ बच रही है जिसके बल पर हम अपनी इस महत्वकांक्षा की प्राप्ति कर सकेंगे? हाँ, हमारे पास कोई चीज़ बच रही है—तो वह है हमारा आत्मविश्वास। संसार में जितने भी महापुरुष हुए हैं, उनके जीवन के दो बड़े-बड़े सिद्धांत यही रहे हैं—(१) अटल ईश्वर श्रद्धा और (२) अडिग आत्म विश्वास क्योंकि—Patience and preservanceare the price of success.

गठिया के कारण और उसकी सुगम चिकित्सा

गतांक से आगे

(लेखक—श्रीकृष्ण शर्मा)

२—गठिया की चिकित्सा—रोग के दो कारण होते हैं—पहला सार्वजनिक जिसे हम मोटे तौर पर प्राकृतिक नियमों की उपेक्षा अथवा उल्लंघन कह सकते हैं और जिसका उल्लेख पिछले लेख में किया गया है। दूसरा कारण वैयक्तिक होता है। रोग की जड़ एक है, परन्तु उसकी शाखायें अनेक हो जाती हैं। एक विकार अनेक रूप धारण कर लेता है। इसका रहस्य बहुत गूढ़ है। परन्तु इतना कहा जा सकता है यह व्यक्ति की शारीरिक और मानसिक विशेषता पर जो परम्परागत उसे माता-पिता से मिलती है, निर्भर है। दूसरे व्यक्ति विशेष के आदर्श और इच्छाओं का उसके निजी सामाजिक अथवा पारिवारिक जीवन में संसर्ग होने के फलस्वरूप जो प्रति-क्रिया होती है उसका प्रभाव भी मनुष्य के स्वास्थ्य पर अधिक होता है। आदर्श और परिस्थिति में विरोध होने से संघर्ष होता है जो आंतरिक शान्ति को नष्ट कर देता है। अंत में यह मानसिक व्याधि के रूप में शारीरिक स्वास्थ्य पर कुप्रभाव डालता है। विचार-भाव-कर्म के पारस्परिक सामंजस्य के बिगड़ने से ही मनुष्य मानसिक या शारीरिक रोगी होता है।

मनुष्य के व्यक्तिगत पहलू का उसकी चिकित्सा से क्या संबंध है—यह प्रश्न हो सकता है इसका उत्तर बहुत सरल है। प्राकृतिक चिकित्सा में उपचार रोग का नहीं वरन् रोगी का होता है। वैयक्तिक दृष्टि से रोग को देखना चिकित्सक के लिये मनुष्य के अधिकार पर हस्तक्षेप करना नहीं है, क्योंकि वह तो चिकित्सक का क्षेत्र है। मनोविज्ञान ने स्पष्ट रूप से सिद्ध कर दिया है कि मनुष्य के मन का उसके शरीर से बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है। अतएव सफल चिकित्सक को रोगी की शारीरिक स्थिति के अतिरिक्त मानसिक स्थिति पर ध्यान देना होगा।

चिकित्सा आरम्भ करने के पहले निदान आवश्यक है, परन्तु निदान किसका होना चाहिये यह विचारणीय है। डाक्टर और वैद्य रोग का निदान बड़ी कुशलता से करते हैं। बड़े-बड़े यंत्र भी काम में लाये जाते हैं। प्राकृतिक चिकित्सक केवल रोगी का निदान करता है। रोगी से पृथक रोग की कोई सत्ता नहीं है। अतः रोग को अधिक महत्व देने की कोई आवश्यकता ही नहीं। निदान का विषय है रोगी का निजी जीवन, उसका रहन-सहन खान-पान इत्यादि। रोग का कारण इन्हीं बातों में मिल सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निदान करते समय तीन बातों का ध्यान रखना आवश्यक है। पहला रोगी का इतिहास, दूसरे उसकी बुरी आदतें (जैसे चाय, तम्बाकू पीने की लत) और तीसरे उसकी जीवन शक्ति। रोगी के इतिहास में मनुष्य के विकार की स्थिति का पता मिल जाता है। किस रूप में विद्यमान विकार ने निकलने का प्रयत्न किया और कैसे उनकी चेष्टा विफल या सफल की गई। दुर्व्यसनों से मनुष्य की सब से बड़ी दुर्वलता का पता मिलता है जो सदैव उसके रक्त को दूषित करती रहती है। चाय-तम्बाकू एक प्रकार के विष हैं। शरीर में एकत्रित विष तभी निकाला जा सकता है जब कि अन्य किसी प्रकार का विष शरीर में जाना बन्द हो जाय। जीवन-शक्ति मापी नहीं जा सकती। परन्तु अनुभवी चिकित्सक यह अनुमान अवश्य कर लेता है कि अमुक रोगी में अमुक रोग को दूर करने की पर्याप्त शक्ति है या नहीं।

गठिया की तीव्र अवस्था बहुत कष्टदायक होती है। जोड़ों में सूजन और दर्द, जरासी हरकत से भी तकलीफ़, ज्वर, अमलुक्त स्वेदन इत्यादि लक्षण पाये जाते हैं। दर्द एक जोड़ से दूसरे जोड़ में, दूसरे से तीसरे में दौड़ता हुआ सा प्रतीत होता है। या किसी एक ही जोड़ में व्याप्त हो जाता है। रोगी को सर्दी से भय मालूम पड़ता है। ये तीव्र लक्षण उचित उपचार से थोड़े दिनों में ठीक हो जाते हैं और रोगी अपने को पहले से अधिक स्वस्थ अनुभव करता है, परन्तु यही अवस्था अगर तेज़ दवाओं से या इन्जेकशन से दबा दी गई तो क्षणिक लाभ दिखाकर अंत में जीर्ण रूप में बदल जाती हैं।

ऐसी अवस्था में प्रकृति का स्पष्ट संकेत उपवास की ओर होता है जैसा कि रोगी की अरुचि और जबान की सफेदी बताती है। यह उपवास इन तीव्र लक्षणों के रहने तक चलना चाहिये। उपवास तोड़ने में सावधानी रखनी चाहिये। फलों और तरकारी के रस से उपवास तोड़कर ३ या ४ दिन में साधारण भोजन पर आना चाहिये।

उपवास की दशा में पानी, रोगी को उसके इच्छानुसार दिया जा सकता है। अगर रोगी बहुत दुर्बल है तो पानी अधिक देना उचित नहीं। नीबू या संतरे का रस मिलाने से पानी अधिक गुणकारी हो जाता है। प्यास ज्यादा नहीं सताती और गुर्दे भी अपना काम अच्छी तरह करते हैं। जाड़े के दिनों में पानी को जरा गर्म कर लेना चाहिये लेकिन अन्य ऋतुओं में ठंडा पानी ही उत्तम है।

रोगी को विश्राम करने के लिये कमरा स्वच्छ और हवादार होना चाहिये। जाड़े में भी खिड़की बन्द न करना चाहिये, क्योंकि रोगी को स्वच्छ-वायु की बहुत आवश्यकता होती है। फेफड़े उस की सहायता से अत्यधिक गंदगी शरीर से श्वास द्वारा निकाल सकेंगे।

पेट की सफ़ाई के लिये एनीमा का प्रयोग करना चाहिये। कोष्ठ में पुराना एकत्रित मल शरीर के लिये विशेष कर उपवास की अवस्था में बहुत हानिकारक है। दो या तीन दिन के प्रयोग से संचित मल निकलते ही लाभ दिखाई देगा। दस्तों के लिये दवा खाना बिलकुल ठीक नहीं। इससे कमज़ोरी बढ़ती है।

स्थानिक उपचारों में गरम सेंक मुख्य है। गर्म पानी में कपड़े को निचोड़ कर जोड़ों या अन्य पीड़ित स्थानों पर रखना चाहिये। गर्म और ठंडा सेंक रक्त-संचालन क्रिया को उत्तेजित करने में स्थायी लाभ दिखाता है। स्थानिक उपचार में ठंडे पानी की पट्टी का भी प्रयोग किया जाता है, परन्तु जाड़े के मौसम में कमज़ोर व्यक्ति को देना ठीक नहीं।

अगर जोड़ों में सूजन और दर्द जोरों का हो और वह छूने में गर्म मालूम पड़े तो हलका नीला प्रकाश उस स्थान पर डाला जा सकता है। अगर दर्द पुराना हो और जोड़ कड़े पड़ गये हों तो नारंगी या लाल प्रकाश हितकारी होगा।

•गठिया में चर्म की क्रिया को ओर विशेष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ध्यान देना चाहिये। तीव्र अवस्था में शरीर से पसीना के रूप में गंदगी निकलती है। ऐसी दशा में शरीर को हलके गर्म पानी से पोंछना (Sponging) आवश्यक है। ज्वर अगर तीव्र हो जाय तो सर्वाङ्ग शरीर को ठंडा पैक देना चाहिये। लेकिन ज्वर को साधारण अवस्था में कम करने का प्रयत्न ठीक नहीं, वह स्वयं उतर जायगा। कुछ डाक्टरों का मत है कि रोगी को गर्म पानी से स्नान कराना चाहिये। परन्तु गर्म पानी के स्नान से उत्तम न्यूट्रल बाथ (Neutral bath) यानी शरीर के ताप के बराबर गर्म जल (95 से 98 डिगरी) में स्नान कराना होगा। परन्तु इसकी भी विशेष आवश्यकता नहीं पड़ती।

जब तक जोड़ों में सूजन और दर्द रहे, मालिश नहीं करनी चाहिये। जब ये तीव्र लक्षण कम हो जायं तभी धीरे-धीरे हलकी मालिश आरम्भ करनी चाहिये। मालिश में ज्यादा जोर या दबाव डालना ठीक नहीं। मालिश के एक घन्टे बाद मालिश किये हिस्सों को पानी से पोंछ या धो डालना अच्छा है।

अगर उपरोक्त विधि के अनुसार रोगी अपनी चिकित्सा चलाये और भविष्य में नियमित आहार, उचित व्यायाम तथा विश्राम आदि का अनुसरण करता रहे तो वह गठिया के भय से मुक्त होकर पूर्ण आरोग्य लाभ करता है। इस के विपरीत अगर वह अपनी पुरानी आदतों, अप्राकृतिक भोजन आदि पर आरूढ़ रहे तो रोग पुराना हो जाता है और वह जीर्ण गठिया से ग्रसित हो जाता है।

पुराना गठिया दीर्घकाल पर्यन्त अस्वाभाविक जीवन व्यतीत करने का फल है। यह बात-व्याधियों के वेग को रोकने के फलस्वरूप होता है। अगर तीव्र गठिया का दौरा बार-बार हो तो समझ लेना चाहिये कि गठिया समयानुकूल जीर्ण रूप धारण कर लेगा। यह चोर की तरह धीरे-धीरे घर कर लेता है।

पुराने गठिया में मुख्य क्रोष्ट शीर्ष (Gout) और जोड़ों का पथराना (Rheumatoid Athritis) है। यह बहुत भयानक रूप हैं। दूसरे यानी जोड़ों के पथराने को तो डाक्टर बहुधा असाध्य कहते है। अगर जोड़ बिलकुल जकड़ या बँध (Anky-losis) गये हों तो वास्तव में उनका सीधा करना दुर्लभ हो जाता है। प्राकृतिक-चिकित्सा फिर भी लाभ दिखाती है। परन्तु समय और धैर्य की आवश्यकता अवश्य रहती है।

ऐसे रोग को अच्छा करने में कड़े साधनों का अवलम्बन करना पड़ता है। रेचक अवयवों को उत्तेजित करना, रक्त को शुद्ध करना, शक्ति संचय करना, विशेष कसरतों और उपायों से रक्त के संचार को बढ़ाना, मानसोपचार इत्यादि की आवश्यकता होती है।

सब से पहले आहार को ठीक करना चाहिये। मिर्च-मसाले के अतिरिक्त नमक भी बन्द कर देना चाहिये। डा० लिटिल (Dr. Little) का मत है कि नमक के प्रयोग से शरीर में विद्यमान युरिक ऐसिड रक्त के द्वारा घुलनशील रूप में नहीं निकल पाती और वह जोड़ में जमा होने लगती है। कोष्ट शीर्ष में, जोड़ों में चाक की गाँठें उभर आती हैं जो इसी एकत्रित सोडियम (Sodium) के फल स्वरूप उत्पन्न होती हैं।

रक्त की अत्यधिक अम्लता को कम करने के लिये क्षारयुक्त भोजन की विशेष व्यवस्था करनी चाहिये। यह प्राकृतिक लवण फलों और तरकारियों में प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। अतएव अन्न की मात्रा कम करके इन्हीं फलों का उपयोग करना पड़ेगा। फलों में संतरा, मौसम्मी, चकोतरा और नीबू के जाति के फल सब से श्रेष्ठ हैं। इसके अतिरिक्त अनन्नास का रस भी इस रोग में हितकर है। चिकित्सा इन्हीं फल के रस से आरम्भ करनी चाहिये। इसके बाद सेब, अमरूद आदि फलों का उपयोग करना चाहिये। मौसमी फलों में खरबूजा, आम भी दे सकते हैं अगर वह स्वभाव के अनुकूल सिद्ध हों।

तरकारियों में पत्तीदार हरे शाक, लौकी, परवल इत्यादि दे सकते हैं। टमाटर और गाजर का रस अवश्य देना चाहिये। ये पेट को साफ रखेंगे। और प्राकृतिक लवण की पूर्ति भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करेंगे। दिन में एक बार कच्ची तरकारियों में से एक या उससे अधिक का सलाद बहुत गुणकारी होगा।

एनीमा का प्रयोग क़ब्ज दूर करने के लिये निश्चय होना चाहिये, परन्तु जब दस्त साफ़ होने लगे तो उसकी कोई जरूरत नहीं।

पेट के अवयवों को दृढ़ और सशक्त करने के लिये कटि-स्नान अनिवार्य है। स्नायु-प्रणाली को उत्तेजित करने के लिये मेहन-स्नान से बढ़ कर कोई साधन नहीं। जीर्ण अवस्था में यह स्नान बहुत लाभदायक सिद्ध होता है। गठिया में यह स्नान कुछ दिनों तक कटि-स्नान लेने के बाद एक समय (प्रातःकाल) यथाशक्ति अवश्य लेना चाहिये।

जैसा कि तीव्र गठिया के लिये कहा गया है वैसे ही पुराने गठिया के लिये चर्म को सजीव और चुस्त रखना चाहिये, क्योंकि शरीर में इस अवयव का विस्तार सब से अधिक है। घर्षण-स्नान (Friction Bath), सर्वाङ्ग-वाष्प स्नान, सूर्य-स्नान इत्यादि का यथा उचित प्रयोग करना चाहिये। केले के पत्ते से ढँक कर स्वेदन विधि अति सुन्दर और गुणकारी सिद्ध हुई है। इस विधि से स्वेदन करने से शरीर में से काफ़ी विष निकलता है। परन्तु इसके पश्चात् ठंढे पानी से नहाना आवश्यक है।

पुराने गठिया के रोगी की चिकित्सा में एक कठिन समस्या होती है व्यायाम की। जिस रोगी का चलना-फिरना और करवट लेना तक मुहाल है उसे भला व्यायाम कैसे कराया जा सकता है। सक्रिय-व्यायाम के अभाव में हमें क्रियाहीन-व्यायाम (Passive Exercise) ही तक सीमित रहना पड़ता है। मालिश इसी श्रेणी में आती है। परन्तु मालिश में रोगी स्वयं उद्योग या प्रयत्न नहीं करता जिसके बिना उसके जोड़ों का खुलना और ऐच्छिक मांस पेशियों का उपयोग करना सम्भव नहीं होता। बिना इच्छा शक्ति के ये अंग गतिशील नहीं हो सकते। सुस्ती, जड़ता, और विवशता को दूर करने के लिये कुछ विशेष कसरतों की आवश्यकता पड़ती ही है। हाथ पैर को फैलाव (Streching), मोड़ना, प्रत्येक जोड़ और मांस पेशियों को पुनः क्रियाशील करना एक प्रकार की Training है।

पानी के अंदर उपरोक्त हरकतें (Movements) जरा से प्रयत्न से सीखी जा सकती हैं और वशेषकर फैलाने और मोड़ने की क्रिया। किसी पक्के तालाब पर इसकी व्यवस्था हो सकती है। कुछ आदमियों के सहारे जो रोगी कभी चला भी न हो, पानी में चल सकेगा। पहले उसे सहारा लेना होगा और बाद में वह स्वतः प्रसन्नता और उत्सुकता के साथ सब कुछ करेगा—चले-फिरेगा-तैरेगा-हाथ-पैर फेंकेगा। यह कोरी कल्पना नहीं वरन् आजमायी हुई बात है और स्वयं डाक्टर बालेश्वर प्रसाद जी ने ऐसा प्रयोग कर के प्रत्यक्ष देखा भी है। इस में व्यायाम के अतिरिक्त मनोरंजन का आनंद भी प्राप्त होगा!

ज्यों-ज्यों रक्त की अम्लता कम होगी और क्षारता बढ़ेगी, शुद्ध रक्त का प्रवाह अबाध्य रूप से होने लगेगा, जीवन शक्ति का प्रादुर्भाव होगा मानसिक शिथिलता और जड़ता का ताला इच्छा-शक्ति के द्वारा टूटेगा! रोग के बंधन भी टूटते जायेंगे। प्रत्येक कोष नव जीवन से प्रफुल्लित होकर सफ़ाई का काम करेगा। तब यह गठिया का काया पलट होकर वह व्याधि मन्दिर पुनः-पुनः देव मन्दिर में बदल कर सुख, शान्ति और स्वास्थ्य का संदेश सुनायेगा।

यह चिकित्सा-क्रम बहुत सार्वजनिक रूप में दिया गया है। मनुष्य की आयु, स्वभाव व स्थान या परिस्थिति के अनुसार बदला जा सकता है। मूल सिद्धांत वही है। और जैसा कि पहले कहा गया है कि व्यक्ति अपने आप के लिये एक पृथक् समस्या है और वैयक्तिक भेद और विशेषता के अनुसार परिवर्तन करना भी परम आवश्यक है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चेचक

(ले० — डाक्टर बालेश्वर प्रसाद सिंह)

यह एक बहुत भयानक व्याधि है जिससे प्रति-वर्ष मनुष्य जाति का भयावह संहार होता रहता है। संसार का कोई भाग इससे अछूता नहीं बचा है। उचित उपचार की अनभिज्ञता के कारण लाखों व्यक्ति हर साल मृत्यु-मुख में चले जाते ह और बहुतेरे काने, अंधे और पंगु होकर दुखमय जीवन व्यतीत करते हैं। अतीत काल से यह रोग संसार में व्यापक रूप से प्रचलित पाया जाता है।

यह एक संक्रामक रोग है। जहां भी, जिस गाँव में, जिस घर में यह व्याधि पदार्पण करती है, वहाँ अनेक रोगी बीमार पड़ जाते हैं। इस रोग का प्रधान कारण है विजातीय द्रव्यों का शरीर में संचय। वे हमारी असावधानता और प्रमुखतः असंयम के कारण शरीर में धीरे-धीरे संचित होते रहते हैं और काल पाकर शरीर के ऊपरी भाग — चमड़े पर दाने के रूप में निकल पड़ते हैं। देखने में यद्यपि शरीर का चमड़ा ही आक्रान्त दिखाई पड़ता है, पर इसका प्रभाव हृदय, फेफड़ा, मस्तिष्क और सारी आँतों पर भी पड़े बिना नहीं रहता।

देश, काल और जलवायु की विभिन्नता के कारण चेचक की चिकित्सा में भी अन्तर दिखायी पड़ता है। कुछ लोग अज्ञानता के कारण इस रोग में चिकित्सा करने से भयभीत होते हैं; पर यह उनकी बड़ी भूल है। चिकित्सा प्रत्येक दशा में होनी आवश्यक है। आइये, हम विचार करें कि हमारे देशवासियों के लिये सर्वोत्तम और सर्व सुलभ चिकित्सा क्या है। इस समय एलोपैथिक का टीका ही व्यापक रूप से प्रचलित है। यह एक Preventive Measure अवरोधक उपाय माना जाता है। परन्तु यह सफल होते नहीं पाया जाता। कारण लाखों व्यक्ति जिन्होंने टीका ले रखा है, इस रोग से आक्रान्त होते देखे जाते हैं। इस प्रकार एलोपैथिक की निष्फलता ही प्रमाणित होती है। हमारे देश के लिये प्राकृतिक चिकित्सा ही सर्वश्रेष्ठ और सर्व सुलभ चिकित्सा है। विशेष कर इस चेचक की बीमारी में तो उससे अधिक उपकारी, सुगम और तात्कालिक चिकित्सा कोई संभव ही नहीं है।

प्रायः ऐसा देखा जाता है कि यह रोग अचानक ही नहीं आक्रमण कर देता। चेचक निकलने के पूर्व व्यक्ति के शरीर में ऐंठन, कोष्ठबद्धता, अरुचि अवसाद, अवयवों में हलका दर्द, तृषा एवं दाह की वृद्धि दिखाई पड़ती है। धीरे-धीरे ये लक्षण बढ़ जाते हैं। दो-तीन दिन ज्वर जोरों पर रहता है और ताप मान १०३ से १०५ पहुंच जाता है। पश्चात् चेचक के दाने निकल आते हैं। दानों के निकलने के बाद ज्वर का तापमान कम हो जाता है और दो एक दिन ऐसा रहता है। बाद, जब से दानों में जल भरने लगता है और उन का जल निकल नहीं जाता तब तक ज्वर का तापमान बढ़ता रहता है और प्रायः १०३ से १०७ डिग्री तक पहुंच जाता है।

चेचक में ज्वर की विशेषता यह देखी जाती है कि दाने निकलने के पूर्व ज्वर का वेग अधिक रहता है। दाने निकल जाने के बाद यह शमन हो जाता है। और फिर जब दानों में जल भरने लगता है, उस समय ज्वर फिर उभड़ आता है। यह भी तीव्र होता है और जब दानों में से पानी निकलने लगता है तो ज्वर भी शमन होने लगता है।

दानों में जब तक भली प्रकार जल नहीं आ जाता तब तक बड़ी ही भयावह दशा रहती है। जल ढलने से कष्ट कम होने लगता है। जब तक दाने उभड़ते नहीं और चमड़े पर बाहर पानी से भरे जैसे नहीं दिखाई पड़ते, तब तक वे दाने नीचे की ओर झुकते हैं और कंठ, हृदय, फेफड़ों और गले में पहुंच जाते हैं जिससे गला बैठ जाता है; बोला नहीं जाता, रोगी जल तक नहीं पी सकता। कभी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कभी चेचक के दाने जब आँतों में पहुँच जाते हैं तो वे उनमें घाव कर देते हैं और पाखाने से खून जाने लगता है। फेफड़ों में चेचक के दानों के पहुँचने से निमोनिया तक हो जाता है।

चेचक से बचने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को पेट साफ रखना चाहिए। रात में सोते वक्त पेट पर मिट्टी की पट्टी रखनी चाहिए। बदन में दर्द आरंभ होना समझ कर भोजन बंद कर दें और Tub टब में बैठें। इस समय फल का रस देना चाहिए। फलों के रस के अभाव में दूध-फाड़ा हुआ पानी लिया जाय। केले का बीज भी खाने के लिये दिया जा सकता है। इससे रोग बढ़ेगा नहीं; यदि चेचक निकल भी आवे तो वह सरलता से अच्छा हो जाता है।

चिकित्सा

यदि रोगी को कब्ज हो तो एनीमा देना चाहिए। यदि पतला दस्त आता हो तो पेट पर मिट्टी की पट्टी देनी चाहिए। यदि दाने से निकल रहे हों तो गर्म पट्टी और भाप-स्नान देना चाहिए। आहार के लिए फल का रस ही सर्वोत्तम है। रोगी को थोड़ा-थोड़ा गर्म जल पर्याप्त मात्रा में बराबर पिलाते रहना चाहिए। कमर में दर्द हो तो उसे (Foment) सेंकना चाहिये। धड़ पर गीली पट्टी तीन-तीन घंटे के अन्तर पर रखते रहना चाहिए। यदि वमन होता हो तो धड़ पर गर्म पट्टी का व्यवहार करना चाहिए। विशेष ज्वर होने पर गीली पट्टी चढ़ा कर कम्बल से ढंक देना चाहिये। स्पांज, गीली पट्टी, गर्म जल से पांव-स्नान, भी उपकार करता है। ज्वर होने पर टब स्नान कराना उचित है। उसे टब में बैठा देना चाहिये। ध्यान रहे, जल न गर्म हो न सर्द; सम शीतोष्ण हो। आँखें लाल होने पर उसमें नीम की पत्ती का रस डालने से अथवा उसकी पत्ती गर्म कर उसी से आँखों को सेंकने से लाभ होता है। सिर दर्द होने पर या प्रलाप की अवस्था में शिर पर गीली ठंढी पट्टी और पेड़ू पर गीली पट्टी रखनी चाहिये। नीले बोतल में ६० दिन तक रखा तिल का तेल मालिश करने से शिर का दर्द मिटता है और आराम मिलता है Lungs Affected फेफड़े के आक्रान्त होने पर छाती और पीठ-दोनों पर Foment सेंक देना चाहिये।

विशेष ज्वर की दशा में पेट पर जल की पट्टी बार-बार रखनी चाहिए। Extreme Cases विकट दशाओं में सिवा इसके दूसरा उपाय नहीं है। इससे ज्वर नार्मल हो जाता है। मेरी लड़की की दशा बड़ी ही भयावह हो उठी थी। चेचक निकलने के पूर्व तीन चार दिनों तक उसे बहुत तेज ज्वर हो रहा था। पश्चात् वह शमन हो गया। इसके बाद दानों में जब जल भरने लगा तो ज्वर भी बहुत बढ़ गया और तापमान १०३ से १०७ डिग्री तक पहुंच गया। इस अवस्था में उसके पेट पर हर पाँच-पाँच मिनट के अन्तर पर जल की पट्टी रखी जाने लगी। तीन दिन तक लगातार यही क्रम जारी रहा। जहाँ कहीं दस मिनट का अन्तर पड़ जाता तो बेचैनी बहुत बढ़ जाती थी। निरन्तर जल की पट्टी के प्रयोग ने अंत में ज्वर पर विजय पायी और वह नार्मल हो गया। लड़की धीरे-धीरे स्वस्थ हो गई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुलसी

(फरवरी के अंक के बाद)

(लेखक—श्रीयुत श्रीनाथ दास अग्रवाल)

वात पित्त के वमन पर—छोटी इलायची खूब महीन बूककर तुलसी के रस में पिलाना चाहिए।

बालकों की बल बृद्धि के लिए—थोड़ी सी चीनी के साथ ५-१० बून्द तक तुलसी का रस पिलाने से अतीत लाभ होता है। बालकों के जोड़ सुदृढ़, बलवान तथा सुन्दर होते हैं।

बालकों की दुर्बलता दूर करने के लिए—तुलसी और आदि का रस गरम करके शहद के साथ बराबर देने से अतीव लाभ होता है।

बालकों के श्वास पर—तुलसी के रस में शहद मिलाकर देना चाहिये। मात्रा १ से ३ माशे तक अवस्थानुसार।

(२) तुलसी की पत्ती और उसकी मंजरी उबाल कर गुड़ के साथ दें।

दस्त लाने के लिए—तुलसी के पत्ती की चाय पिलानी चाहिए।

बालकों के प्रायः सभी रोगों पर पर—तुलसी का बीज, अतीस, काकड़ासिंगी, कंटकारी (भटकटैया) के फूल की केशर, नावीरंग, सफेद जीरा भून कर, छोटी पीपल, बंशलोचन, केशर, सब को समान भाग लेकर पानी के साथ खूब महीन पीसें और मूग के बरावर छोटी-छोटी गोलियाँ बना का सुखा कर रख लें। रात दिन में ४ गोली शहद के साथ सेवन कराने से बालकों के सभी रोग जैसे, ज्वर खाँसी, दूध फेंकना, पीनस, श्वाँस, हब्बा-डब्बा मन, अतिसार आदि रोग दूर होते हैं।

बालकों के पेट में कृमि होने पर—तुलसी का रस गरम कर देने से तुरंत लाभ होता है।

कोढ़ पर—तुलसी की पत्ती खाना और रस लगाना चाहिए। इससे कष्ट कुछ दिनों में आराम हो जाता है।

कोढ़, रक्त विकार और त्वचा रोग पर—एक वर्ष तक तुलसी का रस नियमित रूप से सेवन करना चाहिए।

सफेद कोढ़ पर—तुलसी के जड़ की मिट्टी में तुलसी की पत्ती महीन-पीस एवं मिलाकर जहाँ कोढ़ का दाग हो लगावें। साथ ही सुवह, दोपहर और शाम को तुलसी के चूर्ण का भी सेवन करें।

दाद पर (१)—तुलसी का रस लगावें।

(२)—दो तोले तुलसी की पत्ती और एक कली लहसुन साथ पीसकर आक्रान्त स्थान पर लगावें।

(३) तुलसी की पत्ती दाद के स्थान पर रगड़े।

(४) तुलसी की पत्ती और लाल मिट्टी बराबर लेकर पीसकर लगावें।

(५) तुलसी का रस, गाय का घी और चूना कांस के बर्तन में घोटकर, दाद के स्थान पर दिन में ३-४ बार लगावे।

सिर के दाद पर—तुलसी और नींबू का रस लगावें।

खुजली पर—तुलसी और नीबू का रस लगावें तथा तुलसी और माजूफल खाना भी चाहिये।

बिच्छू के काटने पर—तुलसी का रस लगाना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) तुलसी की पत्ती खिलाना चाहिए। तुलसी के रस में नमक मिलाकर काटे हुए स्थान पर लगाना चाहिए।

(३) दो तोला तुलसी और १५ दाना काली मिर्च पीस कर पिलाना चाहिए। पत्ती और जड़ पीसकर काटे हुए स्थान पर लगाना चाहिए।

साँप के काटने पर—दो तोला तुलसी की पत्ती और १५ दाना काली मिर्च पीसकर आध-आध घंटे के अन्तर से पिलाना चाहिए। तुलसी की पत्ती और जड़ पीसकर काटे हुए स्थान में लगाना चाहिए।

(२)—तीन चार तोला तुलसी की पत्ती खिलाना चाहिए। तुलसी की जड़ को घी में या मक्खन में पीसकर काटे हुए स्थान में लगाना चाहिए। काटे हुए स्थान पर मलहम थोड़ी देर में विष के प्रभाव से काला हो जायगा। जब मलहम काला हो जाय तब उसे बदल देना चाहिए मलहम को बदलने और तुलसी की पत्ती खिलाने से विष दूर होता है।

(३)—तुलसी का रस आँख और कान में भर देना चाहिए तथा तुलसी का रस भी पिलाना चाहिए। तुलसी की जड़ को घिसकर काटे हुए स्थान पर लगाना चाहिए।

विष खाने पर—किसी प्रकार का विष पेट में चला गया हो तो पेट भर तुलसी का रस पीना चाहिए। इससे विष दूर हो जाता है मरणासन्न मनुष्य की भी रक्षा हो जाती है।

वात रोग में—तुलसी के रस में काली मिर्च खूब महीन पीसकर और घी मिलाकर सेवन करना चाहिए।

शोथ पर—तुलसी की पत्ती को पीसकर लगाना चाहिए।

घाव पर—तुलसी की पत्ती की बुकनी छिड़कने से घाव जल्दी भर जाता है।

हरताल की कच्ची भस्म इस्तेमाल से पैदा हुए विकार पर—एक छटांक सूखी पत्ती लेकर खूब महीन पीस लें फिर उसकी वह पुड़िया बनाकर रख लें। एक सप्ताह तक सुबह शाम इस्तेमाल करने से अपूर्व लाभ होता है।

(२)—तुलसी को पाँच तोला प्रतिदिन इस्तेमाल करने से अपूर्व लाभ होता है।

अपस्मार में—सेंधा नमक और तुलसी का रस नाक में डालना चाहिए।

मूत्र रोगों में—तुलसी के रस के साथ नीबू का रस मिलाकर इस्तेमाल करना चाहिए।

मस्तक में कीड़ा पड़ने पर—तुलसी का रस नाक में एक माशा डालना चाहिए।

तुलसी का अरिष्ट—तुलसी की पत्ती और बीज का चूर्ण २½ औंस लेकर एक पाइंट शुद्ध मद्य (शराब) में मिलाकर रख दें। एक सप्ताह तक इसी प्रकार भींगा रहने दें। फिर उसे छानकर शीशी में भरकर रख लें। मात्रा आधे ड्राम तक पानी के साथ।

तुलसी का शर्बत—तुलसी की पत्ती का स्वरस १२ तोले खाड़ १ सेर पावभर पानी के साथ तुलसी का रस मिलाकर आध घंटे तक मध्यम आँच पर पकावें। थोड़ी देर बाद ही खाँड़ भी डाल दें। जब चासनी में तार बँधने लगे तब उतार कर रख लें। मात्रा एक माशे से २ माशे तक इस शर्बत के इस्तेमाल से बालकों की सर्दी और खाँसी आराम होती है।

तुलसी की चाय—ज्वर, आलस्य, अरुचि, दाह, वात विकार आदि लक्षणों में तुलसी की चाय बड़ा लाभ पहुंचाती है। यह चाय क्षुधावर्द्धक और वातपित्त एवं कफ नाशक है।

(१)—एक तोले तुलसी की पत्ती आधा सेर जल में पकावें। जब तीन चौथाई पानी रह जाय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और एक चौथाई जल जाय तब उतार कर छानकर पी लेना चाहिए।

(२) उपरोक्त प्रयोग में आधा सेर दूध, दो तोले मिश्री और एक पिसी हुई इलायची मिलाकर पीना चाहिए।

(३) तुलसी, कटारी, बेलपत्र, लजवन्ती, और आम इन पांचों वृक्षों की पत्तियों को लेकर छाये में सुखाकर चूर्ण बना लें। आवश्यकता पड़ने पर छः माशे एक तोले तक आध सेर जल में उबाल कर पीयें। [इस चाय के इस्तेमाल से रक्त के दोष दूर होते हैं और भूख खूब बढ़ती है।]

(४) तीन माशे तुलसी की सूखी पत्ती और ६ माशे आदी दोनों को चाय की भाँति उबालकर उसमें दूध चीनी डाल कर रोगी को पिला दें।

(५) तीन माशे तुलसी की सूखी पत्ती, छोटी इलायची ३ दाना, केशर और दालचीनी तीन-तीन रत्ती सभी वस्तुओं को डेढ़-पाव खौलते हुए जल में डालकर ढाँक दें। २-३ मिनट के बाद उतार कर छान लें और दूध मिश्री मिलाकर काम में लावें।

(६) तुलसी, आम, जामुन, बेल, बिजौरा, नीबू और अशोक की कोमल पत्तियाँ लेकर छाया में सुखाकर रख लें। जब इच्छा हो सभी पत्तियों को बराबर-बराबर लेकर चाय की भाँति उबाल लें। फिर छानकर दूध चीनी मिलाकर इस्तेमाल करें। इसे बराबर पीने से बात-पित्त और कफ तीनों शांत रहता है। साथ ही यह चाय पाचन करने वाली है। इससे मूत्रावरोध, प्रदर और रक्तज दोनों में भी लाभ होता है।

नोट—तुलसी की पत्ती को सुखाकर गरम तवे पर कौर लेने से चाय की पत्ती के समान तुलसी की पत्ती हो जाती है।

पौष्टिक पाक—तुलसी की पत्ती १० तोले, चोपचीनी २ तोले, तालमखाना २ तोले, पिपलामूल २ तोले, नागकेशर २ तोले और असगंध २ तोले लेकर, सबको खूब महीन कूटकर कपड़ छानकर लें। फिर छानी हुई बारीक औषधियों में २० तोले पुराने शहद में अच्छी तरह मिलाकर २४ घन्टे पड़ा रहने दे। २४ घन्टे के बाद ५० तोले चीनी की चाशनी बनाकर उक्त दवाओं को उसमें छोड़ दे। बाद में केसर, इलाइची दाना और जावित्री एक-एक तोले कूट-छानकर छोड़ दें और सब खूब अच्छी तरह मिलाकर किसी मिट्टी या शीशे के बर्तन में रख लें। इस पाक को प्रतिदिन एक से दो तोले तक अपनी शक्ति के अनुसार प्रातः सायंकाल इस्तेमाल करें और ऊपर से आधा सेर गाय का दूध गरम किया हुआ पीयें। इसके सेवन से धातुक्षीणता और अन्य रोग दूर होते हैं। इस पाक को बरसात या जाड़े के दिनों में इस्तेमाल करना चाहिये। और जब तक इस्तेमाल करें तब तक ब्रह्मचर्य पालन करना चाहिये।

प्राकृतिक चिकित्सा का प्रचार-कार्य

प्रयाग के प्रसिद्ध 'प्राकृतिक चिकित्सा गृह' के अधिष्ठाता एवं यशस्वी चिकित्सक डाक्टर बालेश्वरप्रसाद सिंह जी का शुभागमन जमशेदपुर में फरवरी के दूसरे सप्ताह में हुआ था। उनकी संरक्षता में चिकित्सा कराने वाले कुछ रोगियों ने उनको यहाँ पर आमंत्रित किया था जो बड़े कष्टसाध्य व्याधियों से त्राण पाकर पुनरुज्जीवित हो चुके थे।

यहाँ आने पर डाक्टर साहब ने टाटा कम्पनी के सुयोग्य सुपरिन्टेन्डेन्ट श्रीयुत श्री डी. सी. अहूजा जी के यहां आतिथ्य ग्रहण किया। स्थानीय आर्य-समाज की ओर से यहाँ के कुछ प्रमुख नागरिकों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और श्रीयुक्त डी. सी. अहूजा साहेब की इच्छानुसार जमशेदपुर में प्राकृतिक चिकित्सा सम्बन्धी शिक्षित स्त्री-पुरुषों की एक स्थायी संस्था संस्थापित की गई जिसमें नेचर-क्योर की उपयोगिता पर भाषण देने के लिए डाक्टर साहेब से अनुरोध किया गया। उदारमना डाक्टर साहेब ने सहर्ष इस प्रस्ताव को स्वीकार किया और तदनुसार दो सप्ताह का अपना अमूल्य समय (८ फरवरी से २१ फरवरी तक) योगासन और स्वास्थ्य-सम्बन्धी अन्य गंभीर विषयों पर बड़ी ही विवेचनात्मक रीति से लोगों को समझाने में लगाया। इस शिक्षा-संस्था ने क्लास का रूप धारण कर लिया जिसमें ४५ शिक्षित पुरुष और १५ भद्र महिलाओं ने आरंभ से अन्त तक उचित रूप से शिक्षा ग्रहण की। प्रत्येक दिन सर्वसाधारण की उपस्थिति पर्याप्त मात्रा में होती थी। यहां के लोगों ने इस शिक्षण-संस्था को स्थायी बनाने का निश्चय कर लिया है। और प्रत्येक मास में चार दिन एकत्र होकर प्राकृतिक चिकित्सा सम्बन्धी साहित्य के पठन-पाठन और तत्सम्बन्धी जन-वर्ग के हितार्थ अन्य साधन भी संग्रह करने का निर्णय किया है। इस संस्था के उत्साही कार्य-कर्त्ताओं ने डाक्टर साहेब से यह भी अभिवचन ले लिया है कि यदि प्रत्येक मास संभव न हुआ तो प्रायः तीसरे मास "Nature cure" नेचर-क्योर पर उनका भाषण कराया जाय और उनकी अनुभव-शीलता का सर्वसाधारण में उचित प्रचार कर उसकी उपयोगिता को प्रसारित एवं प्रचारित किया जाय। इससे योग्य कार्य-कर्त्ता सुलभ हो जायेंगे और प्रचार-कार्य सरलता से संचालित होने लगेगा। स्थानीय आर्यसमाज के तत्त्वावधान में २० फरवरी को प्राकृतिक-चिकित्सा प्रणाली पर श्रीयुत डाक्टर साहेब ने सार्वजनिक सभा में भाषण दिया जिसे लाउड स्पीकर ने सर्व-साधारण के लिए सुलभ कर दिया था। इस अवसर पर टाटा कम्पनी के सुयोग्य एवं विद्वान सुपरिन्टेन्डेन्ट मिस्टर कुठार ने सभापति का आसन ग्रहण किया था।

डाक्टर साहेब ने योगासन के प्रमुख अंगों को स्वयं प्रदर्शित किया और स्वास्थ्य और उसके संरक्षण पर बहुत विशद एवं सरस अभिभाषण दिया। "रोगों से बचने के उपाय—"Preventive measures" तथा रोगियों की संकटापन्न अवस्था में सरल उपायों द्वारा चिकित्सा एवं संयम तथा आहार-विहार पर बहुत ही गवेषणापूर्ण भाषण हुआ। उस दिन का आयोजन बहुत सफल हुआ। जनता ने डाक्टर साहेब को बहुत धन्यवाद दिया। आज की सभा के माननीय सभापति महोदय ने महिलाओं से विशेष रूप से अपील की और कहा कि स्त्रियां यदि इस कार्य में पूर्ण सहयोग दें और पथ-प्रदर्शक बन जांय और आहार तथा स्वास्थ्य विषयक शिक्षा को हृदयंगम कर लें तो प्राकृतिक चिकित्सा सम्बन्धी शिक्षा का बहुत ही सरलता से प्रचार एवं प्रसार हो सकता है।

डाक्टर साहब के सरल एवं साधुमय प्रकृति का जनसाधारण पर बहुत ही उत्तम प्रभाव पड़ा और सब लोग उनकी सरलता पर अधिक श्रद्धा करने लगे हैं। इतने थोड़े समय में ही डाक्टर साहेब ने लोगों को प्राकृतिक चिकित्सा का प्रेमी बना दिया है!

(स्थानीय)
एक दर्शक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तत्व-चिकित्सा का पुनरुत्थान

लेखक—श्री गंगाप्रसाद गौड़ (नाहर)

[गताङ्क से आगे]

सीलाश ओ० ग्लीसन (Silaso. Gleason)

डाक्टर विनसेज़ प्रिसनिज़ के शिष्य, डाक्टर सीलास ओ० ग्लीसन (Silaso Gleason) थे, जिन्होंने अमेरिका में जल चिकित्सा गृह खोला था। मगर ऐसा कहा जाता है कि प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली का प्रथम अमेरिकन उन्नायक जेम्स सी० जैक्सन थे।

जेम्स सी० जैक्सन James C. Jackson

इनका जन्म सन् १८११ ई० में हुआ था। ३५ साल की अवस्था में एक भयानक रोग से यह आक्रान्त हुए। बहुत दवा-दारू किया, परन्तु अच्छे न हुये। अमेरिका के सभी कुशल डाक्टरों ने रोग को असाध्य बनाकर जवाब दे दिया। चारों तरफ से निराश होकर अंत में इन्होंने उस समय के प्रसिद्ध अमेरिकन प्राकृतिक चिकित्सक डा० सीलान ओ० ग्लीसन, की शरण ली। वहाँ पर एक साल के भीतर ही इनकी दशा में काफ़ी सुधार हुआ। उसके बाद तो यह डा० ग्लीसन के साझीदार ही बन गये और सिराक्यूज़ मेडिकल कालेज (Syracuse Medical college) से डाक्टरी का लाइसेंस भी प्राप्त कर लिया। बाद में इन्होंने स्वतंत्र रूप से डैन्सविली (Dansvilli) न्यूयार्क में 'जैक्सन सेनीटोरियम' की स्थापना की जिसकी गणना आगे चल कर, अमेरिका की सर्व प्रसिद्ध स्वास्थ्य-संस्थाओं में की जाने लगी। जैक्सन, दवाओं का बहिष्कार करके, जल, विश्राम, आहार मानसोपचार, तथा अन्य कई प्राकृतिक साधनों, का प्रयोग रोगोपचार में करते थे। उनका आदर्श वाक्य था 'उचित रहन-सहन के द्वारा स्वास्थ्य प्राप्त करो।' इनकी मृत्यु ८५ वर्ष की अवस्था में हुई। इनके मरने के बाद, इनके सुपुत्र डा० जेम्स एच० जैक्सन, 'जैक्सन सेनीटोरियम' के मालिक हुए। सुना जाता है, यह संस्था अब अमेरिका के वर्तमान सुप्रसिद्ध प्राकृतिक चिकित्सक बरनर मैकफ़ेडन की संरक्षता में आगयी है।

डा० हरगार्शेन, डा० ब्लिज़, डा० फ़ेल्के

जर्मनी के तीन प्राकृतिक चिकित्सा के आचार्य—डा० हरगार्शेन, डा० ब्लिज़ तथा, डा० फेल्के भी बड़े नामी हो गुज़रे हैं, जिन्होंने प्राकृतिक चिकित्सा के प्रवर्त्तन में कम सहायताएँ नहीं पहुंचाई हैं।

जाहन्स स्क्राथ Johaunes Schroth,

इस डाक्टर ने भी प्राकृतिक-चिकित्सा पद्धति का पुनरुद्धार, प्रिस्निज़ की भाँति ही, उसके ही काल के लगभग, एवं स्थान के आस पास, किया, किन्तु सर्वथा स्वतन्त्र रूप से। इसका जन्म प्रिस्निज़ के जन्म-स्थान से कुछ ही मील की दूरी पर हुआ था। यह व्यक्ति पहले आस्ट्रिया, वर्तमान ज़ेकोस्लोवाकिया के अन्तर्गत लिन्डविज़ नगर में कोचवानी का काम करता था। एक बार इसके घुटने में इतनी कड़ी चोट लगी कि अनुमान होता था कि यह सदा के लिए लंगड़ा हो जायेगा। चोट को अच्छा करने के लिये इसने बड़ी कोशिशें कीं। अच्छी-से-अच्छी दवाइयाँ लगाईं, किन्तु फल कुछ भी न हुआ। सब दवाओं से हार कर इसने अंत में पानी का इलाज करना विचारा, और एक साधू द्वारा उत्साहित किये जाने पर इसने अपनी चोट पर ठंढे जल की पट्टियां देनी आरम्भ कीं, और कई अन्य प्राकृतिक उपचार भी किये। फल यह हुआ कि कुछ ही सप्ताह के बाद यह भला चंगा हो गया। बाद को इसने अपने इस आजमाये हुए अचूक प्रयोग को मनुष्यों के बजाय घायल कुत्तों और घोड़ों पर करके सफलता प्राप्त की, तत्पश्चात् इस कार्य में सिद्धहस्त हो जाने पर रोगी मनुष्यों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को आमतौर से अच्छा करने लगा। प्रिसनिज़ की भाँति ख्याति बढ़ने पर, औषधि-विज्ञान के भक्तों ने इसकी भी खूब निन्दा की। बीस साल तक उन लोगों ने इसे खूब सताया, और अंत में जाल रच कर उसे जेल भी दिलवा दिया। जेल से निकलने के बाद, एक घटना ऐसी घटी जिसने स्कॉथ के जीवन की काया ही पलट कर दी! अर्थात्, १८४८ ई० में वेर्टम्बर्ग (Wurtemburg) का ड्यूक लड़ाई में बुरी तरह घायल हुआ। सारा शरीर जगह-जगह पर ज़ख्मी हो गया था। बड़े-से-बड़े डाक्टरों ने तीन मास तक उसकी चिकित्सा की, परन्तु लाभ कुछ भी न हुआ। वह अपने जीवन से निराश-सा हो चुका था कि उसके दिल में आया कि वह एक बार अपने को स्कॉथ को भी दिखा ले। अंत में उसने स्कॉथ की शरण ली, जिसने उसको कुछ ही महीनों में भला चंगा कर दिया। अब तो स्कॉथ के शत्रुओं का कहीं पता न रह गया। ड्यूक ने स्कॉथ की ख्याति सारी आस्ट्रियन फ़ौज में फैला दी, जिसके फलस्वरूप उसके लिन्डविज़ के स्वास्थ्य-गृह में, सारे संसार के रोगियों की असाधारण भीड़ रहने लगी। स्काथ, अपनी चिकित्सा-प्रणाली में, गीली पट्टी के नम गर्म रोगानिवारक-प्रभाव को भी अधिक महत्व देता था, और साथ-साथ प्राकृतिक आहार का भी प्रयोग करता था। इनकी चिकित्सा को लोग 'स्काथ-चिकित्सा' (Schroth cure) के नाम से पुकारते हैं।

इमेन्युल स्कॉथ Emanuel Schroth

यह, उपर्युक्त सुप्रसिद्ध प्राकृतिक चिकित्सक जे० स्काथ का लड़का था, जिसने अपने बाप के बाद उसकी चिकित्सा-विधि को अपना कर, उसके द्वारा अगणित रोगियों का उपकार किया था।

(क्रमशः)

भोजन-विज्ञान

[लेखक—श्रीयुत् पं० महेन्द्रनाथ पाण्डेय वैद्यरत्न]

भोजन शास्त्रियों में दोपहर और शाम के भोजन में बड़ा मत भेद है। कुछ लोग यह कहते हैं कि दोपहर का भोजन हलका होना चाहिए और शाम को डट कर, भोजन करना चाहिए। इस विचार के पोषक डाक्टर डिवी, दक्षिण के डाक्टर शर्मा हैं। कुछ लोगों के विचार हैं कि दिन में दोपहर को अच्छी तरह भोजन करना चाहिए और शाम को हलका भोजन करना चाहिए। इस मत के पोषकों में जल—चिकित्सा के प्रवर्तक लुई कोने का खास स्थान है। दोनों मतों के समर्थक अपने-अपने मतों के समर्थन में अनेक युक्तियां पेश करते हैं। दोनों के कथन में सार और सत्यता है।

जो लोग स्वस्थ हैं उनको दोपहर को ही अच्छी तरह भोजन करना चाहिए। रात को हलका भोजन करना चाहिए। भोजन एसिमिलेशन (Assimilation) या सात्मीकरण रात को ही होता है ऐसा डाक्टर लोग मानते हैं; ऐसी अवस्था में रात को पाचक यंत्रों को विश्राम मिलना चाहिए जिसमें एसिमिलेशन या सात्मीकरण की क्रिया में अन्तर न पड़े।

जो लोग रात को या शाम को अच्छी तरह भोजन करने की राय देते हैं वे कहते हैं कि स्कूल कालेज और दफ़्तर के लिए जल्दी होने के कारण ठीक तरह भोजन नहीं किया जा सकता। कुछ लोग कहते हैं कि प्रातःकाल भोजन की जरूरत रहती ही नहीं, क्योंकि हमें शक्ति प्रकृति से मिल जाती है। दूसरे पक्ष के लोग यह दलील पेश करते हैं कि प्रातःकाल सारे विश्व में चैतन्यता अधिक रहती है, चिड़िया चहचहाती है, कलियां खिलती हैं, चारों ओर जागृति रहती है इसलिए हमारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाचकाग्नि भी तेज रहती है जैसे पक्षियों को प्रातःकाल भोजन की आवश्यकता रहती है। हमारी राय अथवा आयुर्वेद की राय से दोनों पक्ष गलत दलील पेश करते हैं। हमको प्रातःकाल सो कर उठते ही भोजन की जरूरत नहीं है। प्रातःकाल कफ का समय रहता है, कफ के समय में योंही तृप्ति रहती है, हमें शक्ति प्राप्त होती है। दोपहर को कफ क्षीण होने पर और पित्त के बढ़ने पर हमें भोजन की जरूरत पड़ती है। इसीलिए आयुर्वेद ने कहा है—

याम मध्ये रसोत्पत्ति याम युग्माद् बलक्षयः।

अर्थात् यदि एक पहर दिन के अन्दर तीन घंटा दिन चढ़ने के पहले भोजन किया जाय तो कच्चा रस बनेगा और यदि दोपहर या ६ घंटा दिन चढ़ने के बाद भोजन न किया जाय तो बल की हानि होगी।

चाहे प्रातःकाल हो चाहे दोपहर हो जिस समय सच्ची भूख लग जाय भोजन का असली समय वही है घड़ी देखकर भोजन के थाल पर बैठ जाना स्वास्थ्य की दृष्टि से उचित नहीं है। कच्चा रस (आम दोष) और वातादि दोष (वात, पित्त और कफ) के पच जाने पर ही भूख लगती है, समय पर या देर सबेर जिस समय असली भूख लग जाय वही भोजन करने का समय है। अकसर हम लोग कच्ची भूख में ही खाया करते हैं इसीलिए अधिक कष्ट उठाते हैं। खाने की इच्छा होना यह बिलकुल दूसरी चीज है और भूख का लगना दूसरी चीज। खाने की इच्छा होना भूख की निशानी नहीं है। खाने की कोई चीज सामने आने पर उसे खाने की इच्छा हमें हो जाती है, परन्तु भूख तो नहीं लग जाती। भूख और इच्छा का अन्तर समझना चाहिए। जब हमें अच्छी तरह भूख लगी रहती है तो किसी तरह का भोजन हो उसका स्वाद मिलता है, खाने में मजा आता है। जब भूख नहीं लगी रहती तब अच्छे से अच्छा भोजन भी नहीं खाया जाता, न उसमें कोई स्वाद ही मिलता है। एक बार किसी ने एक चिकित्सक से पूछा कि एक बार भोजन करने के कितनी देर बाद दूसरी बार भोजन करना चाहिए। उसने जवाब दिया कि दूसरी बार तब भोजन करना चाहिए जब ऐसा मालूम होने लगे कि अब यदि भोजन नहीं करूँगा तो उठा ही नहीं जायगा। यह है भूख की परिभाषा और यही है भोजन का काल।

ज्वर के रोगियों या ज्वरमुक्त लोगों के भोजन का समय दूसरा है। इन लोगों को दो बार भोजन देने की जरूरत नहीं है। क्योंकि ज्वर उपवास से दूर होने वाला रोग है, इसमें कफ को पहले दबाना पड़ता है। भोजन से कफ की, आम दोष की वृद्धि होती है। इसलिए कफ क्षीण करने के लिए भोजन का कम किया जाना आवश्यक है। ज्वरी या ज्वर युक्त रोगी की अग्नि भी कमजोर रहती है, उसे ठीक भूख भी नहीं लगती और अच्छी तरह भोजन पचता भी नहीं इस कारण भी इनको दो बार भोजन देने की आवश्यकता नहीं। ऐसे लोगों को दिन के अन्त में अर्थात् ४-५ बजे शाम को कुछ हलका भोजन देना चाहिए। इसका कारण यह है कि सुबह भोजन न मिलने से कफ क्षीण हो जाता है और पित्त के बढ़ जाने से पाचकाग्नि तेज हो जाती है और जो हलका भोजन इस समय दिया जाता है वह ठीक पच जाता है। उसका रस और रक्त बनता है।

यह हमेशा याद रखने की बात है कि भोजन हमेशा समय पर किया जाय। समय वही है, जब भूख लगे। साथही यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि प्रातःकाल तीन घंटे तक तो भोजन का समय है ही नहीं। आयुर्वेद में स्पष्ट उल्लेख है—

अप्राप्त काले भुंजानो, ह्यसमर्थ तनुर्नरः।
तांस्तान् व्याधीनवाप्नोति मरणं चाधि गच्छति।
कालेतीतेऽश्नतो जन्तोर्वायुनापहतेऽनले।
कृच्छ्रा विपच्यते भुक्तं न स्याद् भोक्तुं पुनःस्पृहा।

अर्थात्—भोजन के समय के पहले यदि भोजन किया जाय तो बल की हानि होती है और शरीर दुबला होता है, अनेक प्रकार के मन्दाग्नि अजीर्ण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के रोग उत्पन्न होते हैं और मनुष्य मरण को भी प्राप्त होता है। यदि भोजन का समय बिताकर भोजन किया जाय तो वायु बढ़ कर अग्नि को मन्द कर देता है, इस कारण खाया हुआ भोजन देर में पचता है, और दुबारा भोजन करने की इच्छा नहीं होती। इस प्रकार हमने देखा कि देर और सबेर दोनों तरह का भोजन स्वास्थ्य को हानि पहुँचाने वाला है। उचित यही है कि यथोचित समय पर भोजन किया जाय।

भोजन का स्थान

भोजन करते समय स्थान का ख्याल रखना स्वास्थ्य की दृष्टि से बहुत ही महत्त्व रखता है। हलवाई की दूकान पर, सड़क पर, रास्ता चलते हुए, भीड़ भाड़ में भोजन करने से अनेक बुराइयाँ पैदा हो सकती है। दूकानों पर, सड़क पर रास्ते में रोग के अनेक कीटाणु हवा में विद्यमान रहते हैं, वे भोजन के साथ पेट के अन्दर जाकर कितने ही रोग पैदा कर सकते हैं। दूसरे, भिखारी, कोढ़ी, लालची, सूम, कुत्ते बिल्ली की दृष्टि उस भोजन पर पड़ती है। ऐसा भोजन स्वास्थ्य के लिए हानिकारी होता है। आजकल के शिक्षित दृष्टि दोष को मानने में एतराज करेंगे, परन्तु मानस-शास्त्रियों ने इस बात को साबित कर दिया है कि हमारे सभी कार्यों पर मनुष्य की इच्छा का प्रभाव पड़ता है। ऊपर जिनकी दृष्टि बचाने को लिखा गया है, भोजन देखकर उन सब के मन में भोजन करने की इच्छा हो जाती है, और इच्छित भोजन न पाने पर उनके मन में विकार पैदा होता है। उस विकृत इच्छा का असर भोजन पर और भोजन करने वाले पर पड़ना असम्भव नहीं। इसी बात को नये ढंग से इस प्रकार कहा जा सकता है कि ऊपर लिखित व्यक्तियों और पशुओं के नेत्रों में इच्छित भोजन-जिसे वे देख रहे हैं—न पाने से एक खास ढंग की बिजली पैदा हो जाती है और ईथर द्वारा भोजन तक उसका असर पड़ जाता है।

भोजन का स्थान एकान्त में होना चाहिए, और भोजन करते समय परसने के लिए माता, स्त्री, या लोग जो अपने को प्यार करते हों, रहने चाहिए भोजन के समय मनोरंजन के लिए थोड़ा वार्तालाप करना चाहिए, परन्तु कोई बहस, या क्रोध उत्पन्न करने वाली बात न होनी चाहिए। जहां तक सम्भव हो बात करते समय भोजन न किया जाय, भोजन के पहले या पीछे बात कर लेना अच्छा है। बुद्ध भगवान भोजन कर चुकने के बाद अपना उपदेश सुनाया करते थे। आजकल अंग्रेजी ढंग की दावतों में बहुत सी आवश्यक बातें हुआ करती हैं, बातचीत के लिए वही उपयुक्त समय समझा जाता है।

घाव के लिए मिट्टी और जल का प्रयोग

(लेखक—गोपाल कृष्ण मल्लिक)

एक भाई जले हुए घाव से काफी पीड़ित होने पर और अन्य चिकित्सा से थक कर हमारे पास आये। प्राकृतिक-चिकित्सा पर पूरा-पूरा विश्वास नहीं होने पर भी उन्होंने प्रयोग करने की राय जाहिर की। घाव पुराना और खराब होने से हमें उसके सफ़ाई के लिए अधिक समय लगाना पड़ता था। गर्म पानी से दिन में तीन बार धो डालता था, बाद में उस पर गीले कपड़े की पट्टी लगाए रखता था। इस उपचार से करीब दो सप्ताह में उनका घाव आराम हो गया। पीड़ा आदि में तो एक दो दिन में ही फायदा मालूम होने लगा। वे सीधा भी चलने लगे। क्योंकि घाव-पांव में था और चलने-फिरने की सुविधा के लिए टेढ़ा चलने लगे थे। जिससे लोगों ने अनुभव कर लिया था कि अब ये लंगड़े हो गये, लेकिन बाद में यह शिकायत जाती रही।

चूंकि जले हुए घाव के लिए यह हमारा प्रथम प्रयोग था। इसलिए कटे और छिले हुए घाव पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैसा प्रयोग करता रहा था वैसा ही इस पर भी किया। बाद में एक दूसरे भाई के जले घाव के लिए सेवा और प्राकृतिक-चिकित्सा का प्रयोग किया। उस में जो अनुभव हुआ वह नीचे दे रहा हूं। इस बार मैंने जले हुए घाव पर मिट्टी का लेप लगाया। इससे यह जान सका कि जले घाव में गीले कपड़े की पट्टी से मिट्टी का लेप अधिक फायदे-मन्द है। उसके बाद हमने यह भी प्रयोग किया कि मिट्टी को गर्म कर के लेप दिया जाय तो कहां तक बेहतर होगा। और यह प्रयोग और अधिक सफल निकला। तब इस निश्चित मत पर पहुंचे कि जले हुए पर चाहे वह कितना ही खराब क्यों न हो उस पर गर्म मिट्टी का लेप रामबाण उपचार है। यों तो बिना गर्म मिट्टी के लेप से गीले कपड़े की पट्टी से भी फायदा होता ही है। लेकिन गर्म मिट्टी का लेप अधिक फायदेमन्द है। इन सब प्रयोगों के करने से यह भी जान सका कि जले हुए घाव के लिए ठंडी वस्तु से जितना परहेज रखा जाय उतना ही बेहतर होगा। इसमें पीव अधिक बढ़ने की आशंका रहती है। लेकिन कटे और छिले हुए घाव में ठंडी वस्तु ही अधिक लाभदायक होती है। कटे और छिले हुए घाव को चाहे वह कितना ही खराब हो नित्य दो-तीन बार गर्म पानी से साफ करना और फिर उस पर गीले कपड़े की पट्टी लगाये रखना ही उनका उपचार है। इसके द्वारा मैं कठिन से कठिन घाव को छूटते पाया हूं। हर प्रकार के घाव को मक्खी से अवश्य बचाना चाहिए। इसमें अपना तथा दूसरे का भी उपकार निहित है।

खडड़ा घाव, जो हड्डी का घाव समझा जाता है। साथ ही लोग इसे कठिन रोग भी समझते हैं। लोगों का कहना है कि यह अपंग बना कर छोड़ता है। ऐसा भी सुना है कि अधिकतर लोगों को यह छोड़ता भी नहीं है। एक भाई करीब पाँच छः साल से इस रोग से पीड़ित थे। अन्य चिकित्सा का बहुत प्रयोग किये। जो भी लाभ होता था वह स्थायी नहीं होता था। हमसे इसके लिए उपचार मांगा गया। हमने कभी इसका प्रयोग नहीं किया था। इसलिये मैं पशोपेश में पड़ गया। अपने विश्वास से मैंने उस पर मिट्टी का लेप लगाने के लिए कहा। ऐसा ही किया गया और लगातार करीब दो सप्ताह तक यही उपचार करने के बाद घाव मूल से आराम हो गया। फायदा तो दो तीन दिन के अन्दर में ही मालूम होने लगा। पीब और पानी चलना बन्द होकर घाव में लाली और रक्त का संचार प्रथम सप्ताह में ही दीखने लगा था।

जिस घाव से करीब पांच छः साल से पीड़ित वह था और अन्य चिकित्सा जिसे आराम नहीं कर सकी थीं उसमें सिर्फ मिट्टी का प्रयोग ही कामयाब हुआ। यह मेरे उत्साह को बढ़ाने वाला हुआ। मेरे अन्दर तरह तरह के भाव उठने लगे। तब मुझे गोस्वामी तुलसी दास जी के इस पद्य का याद आया। "छित, जल, पावक, गगन, समीरा पंच रचित यह अधम शरीरा।" इन सब विचारों से मुझे ऐसा लगा कि रामायण सिर्फ धार्मिक और साहित्यिक भाव का ही ग्रंथ नहीं, वरन् उसमें तो जीवन के उन सब व्यावहारिक पहलू का सामंजस्य है, जो हमारे जीवन में रात-दिन गुजरता है। और वह धर्म भी कैसा जिसमें जीवन के सभी विघटन को सुलझाने की वस्तु प्रतिपादित न हो। गोस्वामी जी धर्म के साथ जीवन-द्रष्टा भी थे और रामायण में धर्म के साथ जीवन व्यवस्था की बात भी रखे हैं जिसे धर्म से अलग नहीं किया जा सकता। इस से जान सका कि ये पांच तत्व मिट्टी, हवा, जल, आग और अकाश—प्रकृति की—महान् देन हैं। ये हमारे जीवन के लिये बहुत बड़े सहायक हैं और आवश्यक भी हैं। तात्पर्य यह कि मैं अभी जिस विषय में बात कर रहा हूं उसके लिए यह कह सकता हूं कि हमारे शरीर में जितने प्रकार के भी रोग आये उसे हम इन पांच तत्वों से निवारण कर सकते हैं। लूई-कूने आदि चिकित्सकों ने इसके जरिए जो महान् उपकार कर दिखाए हैं उसका सहारा हमें लेना चाहिए।

Printed at the Mission Press, Allahabad.
Published by Dr. Baleshwar Prasad Sinha. 11 Lookerganj. Allahabad.
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पढ़िये ! लाभ उठाइये !!

सुन्दर, स्वस्थ और सुखी जीवन के इच्छुकों को ये पुस्तकें पढ़नी चाहिए

(१) रोगों की अचूक चिकित्सा (चतुर्थ संस्करण) : श्री जानकीशरण वर्मा, बी० ए० ५)
(२) मठा उसके गुण तथा उपयोग (परिवर्द्धित संस्करण) : श्री महेन्द्रनाथ पांडेय ।|≈)
(३) स्वास्थ्य और व्यायाम; केदारनाथ गुप्त ... ... २।)
(४) स्वास्थ्य के नुस्खे : 'जीवन सखा' कार्यालय ... ... ।)
(५) क्या और कैसे खायें : डा० बालेश्वर प्रसाद सिंह ... ... ।≈)
(६) ब्रह्मचर्य ही जीवन है : श्री स्वामी शिवानन्द ... ... १॥)
(७) सचित्र हठयोग : श्री स्वामी शिवानन्द ... ... १।)
(८) कब्ज या कोष्ठबद्धता : डा० बालेश्वर प्रसाद सिंह ... ... १)
(९) शक्ति दर्शन; शंकरलाल तिवारी ... ... ।।)
(१०) आँख का अचूक इलाज : श्री महेन्द्रनाथ पांडेय ... ... २)
(११) जुकाम : श्री महेन्द्रनाथ पांडेय ... ... १।।)
(१२) शहद के गुण : और उपयोग श्री महेन्द्रनाथ पांडेय ... ... ।।।)
(१३) आकृति निदान : लुई कूने ... ... २)
(१४) जलचिकित्सा : राखाल दास पहला भाग ... ... १।।।)
" दूसरा भाग ... ... १।।)
" तीसरा भाग ... ... १।।)
(१५) स्वास्थ्य के लिये शाक तरकारियां : श्री महेन्द्रनाथ पांडेय ... १।।)
(१६) मन की अपार शक्ति : श्री केदारनाथ गुप्त ... ... ।≈)
(१७) विचारों का प्रभाव : श्री रामसहाय अग्रवाल ... ... ।।)
(१८) हम सौ वर्ष कैसे जीवें : केदारनाथ गुप्त, एम० ए० ... ... १।।।)
(१९) सूर्य-नमस्कार : श्री भगवती प्रसाद पांडे, बी० ए० ... ... १।)
(२०) स्वास्थ्य और जल चिकित्सा : प्रिन्सिपल केदारनाथ जी गुप्त ... ।।।)
(२१) आहार ही औषध है : डा० एल० एन० रतरा ... ... १।।।)
(२) फलाहार चिकित्सा : श्री महेन्द्रनाथ पांडेय ... ... २।)
(२३) Nature Cure by H. Lindlahr, M.D 7 8
(२४) Practical Nature Cure by Dr. K. L. Sharma, N.D. 7 8
(२५) Fasting Cure by Dr. L. Sharma N.D. ... 0 12
(२६) Drugless Healing by Dr. L. Kameshwar Sharma, M.A., N.D. 1 0
(२७) Food-de Medicine by Dr. L. N. Ratra, H.M.B. ... 1 4
(२८) Universal un-cooked food 3 8
(२९) Nature Cure of Eyedefect By Dr. K. L. Sharma. ...

स्वास्थ्य सम्बन्धी पुस्तकें मिलने का पताः—मैनेजर, स्वास्थ्य ग्रंथ-भंडार, लूकरगंज, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तरी भारत में प्राकृतिक चिकित्सा का प्रमुख केन्द्र

'प्राकृतिक स्वास्थ्य गृह' प्रयाग

जहाँ अब तक न जाने कितने तथाकथित असाध्य रोगों से पीड़ित होने वाले रोगियों ने प... कर अपने को नीरोग और स्वस्थ बना लिया—यही कारण है... यह चिकित्सा-केन्द्र लगात... उन्नति करता जा रहा है।

यदि आप किसी भयानक रोग से पीड़ित हो रहे हैं, डाक्टरों और वैद्यों की दवा ... निराश हो चुके हैं, तो आप फ़ौरन यहाँ पधारें या पत्र देकर चिकित्सा के सम्बन्ध में विव... प्राप्त करें।

स्वास्थ्य-गृह में किन रोगों की चिकित्सा सफलता-पूर्वक होती है ?

साधारण दुर्बलता, स्नायु-दौर्बल्य, सभी तरह के चर्म-रोग, रक्ताभाव, पुराना जुकाम, खां... क़ब्ज़, संग्रहणी, प्लुरिसी, दमा, बवासीर, निद्राभाव, आमाशय का ज़ख्म, आँतों की ख़राबी, स... तरह के ज्वर, घेघा, धमनियों का कड़ा हो जाना (Arteriosclsrosis), रक्त चाप का बढ़ना औ... कम होना (High and Low Blood Pressure), उपान्त्रदाह, (Appendicitis), ज़हरबा... (Carbuncle), गठिया, पित्ती उछलना, पेचिश, सब तरह के दर्द और सूजन, गुर्दे की बीमार... यकृत की बीमारियां, नपुंसकता, मधुमेह (बहुमूत्र), मोटापा, दुबलापन, कर्णरोग, उन्मा... सभी तरह के स्त्री-रोग इत्यादि इत्यादि।

यहाँ जिस चिकित्सा विधि से रोगी का इलाज किया जाता है उनमें यौगिक क्रिया... आसन, प्राणायाम, मालिश, सूर्य-रश्मि-चिकित्सा, जल-चिकित्सा, मिट्टी तथा वाष्प-चिकित्... आहार चिकित्सा, उपवास, मानसोपचार आदि सम्मिलित हैं।

विशेष जानकारी के लिए नीचे लिखे पते से पत्र व्यवहार करें :—

रोगियों की सुविधा का विशेष प्रबन्ध

रोगियों के आराम और सुविधा के ख़्याल से स्वास्थ्य-गृह में इस साल से कुछ परिवर्... कर दिया गया है जिसमें खासकर स्त्रियों की परिचर्या का विशेष प्रबन्ध है। इस वर्ष से इसकी ती... श्रेणियां कर दी गई है। प्रथम श्रेणी वाले रोगियों से १००) मासिक, द्वितीय श्रेणी के रोगियों ... ६५) और तीसरे श्रेणी के रोगियों से ४०) मासिक लिये जायंगे। सुविधाओं का विवरण ... लिख कर मंगाइए। पत्र के साथ टिकट भेजना ज़रूरी है।

नोट—संक्रामक रोगों से पीड़ित रोगियों के रखनेका प्रबन्ध यहां नहीं है।

मैनेजर, प्राकृतिक स्वास्थ्य-गृह, मुट्ठीगंज, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन सखा

शारीरिक, मानसिक और नैतिक स्वास्थ्य क
पथ-प्रदर्शक

संयुक्त प्रान्त, मध्य प्रान्त तथा बिहार के शिक्षा विभागों द्वारा स्वीकृ

इस अंक में पढ़िये

१—गर्भाधान—[लेखिका—डाक्टर इन्दुमती सिनहा एल. डी. डी. वाई] ... ...
२—फलों का गुण और उनका उपयोग —[लेखक—श्री "प्रकाश" ... ...
३—गृहस्थाश्रम की कुछ आवश्यक बातें —[लेखक—श्री० बृजमोहन मिहिर] ... ...
३— मन और उसके कार्य—[लेखक—श्री विजय बहादुर सिंह बी. ए.] ... ...
४— दो चित्र—[लेखक—श्री जानकी शरण वर्मा] ... ...
६—स्वास्थ्य-रक्षा—[लेखक—प्रो० "प्रसाद" प्राकृतिक स्वास्थ्य शास्त्रोपाध्याय, कांगड़ी गुरुकुल
पद्य कविता विश्वविद्यालय (हरद्वार)] ... ...
७—कब्ज और उसकी चिकित्सा—[लेखक—श्री चित्तरंजन साह] ... ...
८—अखिल भारतीय प्राकृतिक चिकित्सा सम्मेलन ... ...
९—सम्पादकीय ... ...
१०—अनुभूत प्रयोग—[लेखिका—श्रीमती दयावती देवी] ... ...
११—प्रश्नोत्तरी ... ...

वार्षिक मूल्य ३)

प्रति अंक ।=)

सम्पादक
डा० बालेश्वरप्रसाद सिंह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवश्य लाभ उठाइये

प्राकृतिक चिकित्सा के सीखने का अनुपम अवसर

आगामी अक्टूबर सन् १९४५ को प्राकृतिक चिकित्सा के शिक्षण योजना का प्रथम क्लास एक मास तक लिया जायगा। इसमें प्राकृतिक चिकित्सा के मूल-सिद्धान्तों तथा उसकी व्यावहारिक शिक्षा का पूर्ण आयोजन होगा। एक-एक मास का इस तरह वर्ष में तीन बार क्लास लिया जायगा। अक्टूबर मास के बाद वाले क्लास की सूचना समय आने पर दी जायगी। जो शिक्षार्थी इससे लाभ उठाना चाहें वे कृपया आवेदन पत्र सितम्बर मास तक अपने नाम पता व अपनी शैक्षिक योग्यता (Educational Qualification) के साथ भेज दें।

नोट—प्रत्येक शिक्षार्थी को १०) मासिक फीस और १५) प्रतिमास निवास स्थान के लिये देना होगा। ट्रेनिङ्ग लेने के लिए वैसे भी विद्यार्थी किसी मास में आ सकते हैं और जिस महीने तक चाहें, स्वास्थ्यगृह में व्यावहारिक शिक्षा प्राप्त करने के लिए अपनी इच्छानुसार रह सकते हैं। पर उनको उपर्युक्त फीस प्रत्येक मास के लिए अवश्य देनी पड़ेगी।

प्राकृतिक चिकित्सालय

रामगढ़ जैपुर

यहाँ आपको राजपूताने के प्रमुख प्राकृतिक-चिकित्सक डा० सत्यनारायण अग्रवाल की देख-रेख में, हरेक रोग से निश्चित रूप से राहत मिलेगी। प्राकृतिक चिकित्सा के समस्त साधनों—जैसे जल, मिट्टी, धूप, वायु, व्यायाम, उपवास, युक्ताहार, मालिश, सूर्य-चिकित्सा, दुग्ध-चिकित्सा, बिजली, मानसोपचार आदि से आप पूर्णतया परिचित हो, दूसरों को भी इन्हीं साधनों से रोग दूर करने की सलाह देने क़ाबिल हो जायेंगे।

पूरी जानकारी के लिये डाक टिकट सहित लिखें—

प्राकृतिक चिकित्सालय,

रामगढ़ (जैपुर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन सखा

सम्पादक

डा० बालेश्वरप्रसाद सिंह

शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्

NATURE ONLY HEALS

वर्ष १०] मई, १९४५ [अङ्क ५

गर्भाधान

(लेखिका—डा० इन्दुमती सिनहा एन. डी-डी. वाई)

जब स्त्री नीरोग हो, उसका मासिक धर्म ठीक समय से होता हो और गर्भाशय में कोई गड़बड़ी न हो तब सन्तान की आशा की जा सकती है। इसके लिए ऋतु-स्नान के दिन से लेकर एक हफ़्ते तक गर्भाधान की विशेष सम्भावना होती है, उसके बाद ज्यों-ज्यों समय अधिक बीतता जाता है, यह सम्भावना कम होती जाती है।

गर्भाधान कैसे होता है ?

पिछले अध्याय में हम देख चुके हैं कि वयः संधि (तरुणाई का आरम्भ) हो जाने पर स्त्री के डिम्ब ग्रंथियों (ओवरीज़) से एक बहुत ही सूक्ष्म अण्डा या डिम्ब (एगसेल-Eggcell) निकल कर गर्भाशय (यूटरस-Uterus) में आ जाता है। यह अण्डा या डिम्ब बच्चेदानी में रजोधर्म तक रहा करता है। इसी अवधि के बीच में इसके पति के वीर्य में पास जाने वाले कीटाणु (स्परमेटोजा) से संयोग हो जाने पर यह डिम्ब गर्भान्वित हो जाता है। यदि रजोधर्म के काल तक स्त्री के डिम्ब को पति के कीटाणु से भेंट नहीं होती तो स्त्री का वह डिम्ब रजोधर्म के साथ बाहर निकल जाता है। डिम्ब-ग्रंथियों में हजारों अण्डे या डिम्ब होते हैं और प्रत्येक रजोधर्म के कुछ दिनों बाद दूसरा अण्डा इसी आशा से बच्चेदानी में आकर उपस्थित हो जाता है कि उसकी भेंट पति के कीटाणु (स्परमेटोज़ून) से हो जाय। साधारण तौर से डिम्ब ग्रंथि से एक ही अण्डा या डिम्ब बच्चेदानी में आया करता है। किन्तु जब कभी-कभी दो या तीन अण्डे आ जाते हैं और वे पति के कीटाणु से गर्भान्वित हो जाते हैं तभी जुड़वां या उससे अधिक बच्चे एक साथ पैदा होने के समाचार सुनने को मिलते हैं।

डिम्ब-ग्रंथि या ओवरी स्त्री के दो होती हैं। एक दाहिनी ओर, दूसरी बाईं ओर। अण्डा कभी एक डिम्ब-ग्रंथि से और कभी दूसरी डिम्ब ग्रंथि से बच्चेदानी में आया करता है। कुछ लोगों का कहना है कि एक ओवरी पुरुष-ओवरी होती है और दूसरी स्त्री-ओवरी। पुरुष ओवरी के अण्डे से लड़का और स्त्री-ओवरी से लड़की होती है। इन में से पहली ओवरी दाहिनी ओर और दूसरी बाईं ओर होती है। लोगों का यह भी कहना है कि ये डिम्ब ग्रंथि या ओवरी अलग-अलग काम करती हैं। जब एक ओवरी क्रियाशील होती है या काम करती है तब दूसरी ओवरी सुप्तावस्था में रहती है, सोती रहती है या निश्चेष्ट होती है।

ओवरी के अण्डे का रूप कैसा होता है, इसके बारे में भी कुछ जान लेना आवश्यक है। खुर्दबीन से देखने पर यह एक बहुत ही सूक्ष्म गोल बैग या बोरा सा दिखायी देता है। यह बहुत ही साफ़ सुथरी, इस पार से उस पार तक दिखाई देने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाली झिल्ली का बना होता है। इसके भीतर इसका प्रधान केन्द्र होता है। पुरुष के वीर्य के कीटाणु बहुत ही सूक्ष्म होते हैं। आंखों से ये देखे नहीं जा सकते—खुर्दबीन' से ही देखे जा सकते हैं। ये इतने लघु या छोटे होते हैं कि पुरुष के एक बूंद वीर्य में ये लाखों की संख्या में पाये जाते हैं। इन के केवल सिर और दुम ही होती है। प्रकृति से ये बड़े चंचल होते हैं और बिजली की गति से सीधे भागते हैं। जब इन में से भागता हुआ कोई कीटाणु स्त्री के अण्डे के पास पहुंच जाता है तब स्त्री का अण्डा अपनी आकर्षण या चुम्बक-शक्ति से इसको अपनी ओर खींच लेता है। दोनों एक दूसरे से मिल जाते हैं। और स्त्री का अण्डा या एगशेल गर्भान्वित हो जाता है। गर्भान्वित होने पर यही अण्डा बढ़ कर बच्चा बन जाता है। कीटाणु की गति तेज होती है, फिर भी गर्भाशय तक पहुंचने में इसे २-३ घंटे लग जाते हैं। इसका मतलब यह कि संयोग होने के कम से कम ८ घंटे बाद स्त्री का अण्डा गर्भान्वित हो सकता है या गर्भ की स्थिति हो सकती है।

जैसा कि पहले बताया जा चुका है, स्त्री का अण्डा माहवारी के रक्त के साथ बाहर निकल जाता है। पुरुष के अधिकतर कीटाणु या स्परमेटो जून स्त्री की जननेन्द्रिय में पड़े रह कर या तो बाहर आ जाते हैं या समाप्त हो जाते हैं। किन्तु जो भाग कर भीतर पहुंच जाते हैं वे भी स्त्री के अण्डे के निकट न पहुंचने के कारण १०-१२ दिन तक जिन्दा रहने के बाद अपने आप नष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार यह साफ़ जाहिर है कि अगर ये दोनों किसी तरह से न मिलें तो गर्भ की स्थिति कभी हो ही नहीं सकती। जो स्त्रियां गर्भ धारण करना नहीं चाहतीं वे ऐसे ही उपायों से काम लेती हैं जिनसे स्त्री का अण्डा और पुरुष का कीटाणु इन दोनों का संगम न हो सके। सन्तति-निग्रह या 'बर्थ कन्ट्रोल' का आधार यही है। इस विषय पर मैं एक अलग अध्याय में विचार करूंगी। यहाँ पर मैं यह निवेदन करना चाहती हूँ कि जो स्त्रियां माता बनने की इच्छा रखती हैं उन्हें चाहिए कि सीधी, शान्त पड़ी रह कर पुरुष के कीटाणु को अपने अण्डे के निकट पहुंचने दें। ज्यादा हिलने डुलने से गर्भ की स्थिति होना बहुत कठिन हो जाता है।

स्त्री का अण्डा आमतौर से नालियों, डिम्ब प्रणाली में गर्भान्वित होता है, जहां से होकर वह बच्चेदानी में आता है। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि वह बच्चेदानी में गर्भान्वित नहीं हो सकता या नहीं होता। कभी-कभी होता यह है कि बनावट के दोष के कारण नालियों से अण्डा गर्भाशय में पहुंच ही नहीं सकता। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि जननेन्द्रिय की खराबी की वजह से पुरुष के कीटाणु बच्चेदानी या नालियों तक पहुंच ही नहीं सकते। ऐसी दशाओं में स्त्री बाँझ होती है और वह कभी गर्भ धारण कर ही नहीं सकती।

साधारण स्थिति में पुरुष के कीटाणु और स्त्री के अंडे का संगम इस प्रकार होता है कि कीटाणु का शिरोभाग (सिर) स्त्री के अंडे में घुस जाता है और उसकी दुम लापता हो जाती है। संगम हो जाने पर स्त्री का गर्भान्वित अंडा (ओवम Ovum)—यदि यह संगम नालियों में हुआ है—नालियों से बच्चेदानी में आ जाता है।

रजोधर्म से प्रायः १० दिन पहले से जननेन्द्रिय में कुछ विशेष बातें होने लगती हैं। गर्भाशय का अस्तर (Uterine Lining) या उस के नीचे तह या परत कुछ मोटी हो जाती है। सेलस पहले से कई गुना अधिक बड़े हो जाते हैं। रक्त नाड़ियाँ गर्भान्वित अंडे या ओवम के लिए तैयार रहने के उद्देश्य से रक्त से भर उठती हैं। अगर इसी समय में स्त्री का अंडा गर्भान्वित हो गया तब तो रजोधर्म नहीं होता लेकिन अगर यह अंडा गर्भान्वित नहीं हुआ है तो जमा हुआ रक्त बाहर निकलता है और अण्डा भी रजोधर्म के साथ बाहर निकल जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहले बताया जा चुका है कि रजोधर्म केवल इस बात की सूचना है कि अंडा अभी गर्भान्वित नहीं हुआ। यहां पर जो मैंने बतलाया है उससे यह भी प्रकट हो जाता है कि रजोधर्म इसलिए होता है, क्योंकि अंडा गर्भान्वित नहीं होता है। एक ओर तो यह होता है। और दूसरी ओर गर्भाशय की तह में रक्त बढ़ने लगता है। खून की नालियां रक्त से लबालब भर उठती हैं। एगसेल्स भी बेतहाशा बढ़ जाते हैं। रक्त के इस बढ़ाव और तनाव के बोझ से शिराओं और उपशिराओं की अत्यन्त सूक्ष्म रक्त नाड़ियों की, जिनको केशिका (Capillaries) कहते हैं—दीवारें कमजोर हो जाती हैं और वे फैल जाती हैं और रक्त का प्रवाह शुरू हो जाता है। मासिक-धर्म इसी को कहते हैं। इसका आदि और अंत इतना ही है। जब अंडा गर्भान्वित हो जाता है तब यही अंडा गर्भ की रक्षा में लीन हो जाता हैं और तब रजोधर्म नहीं होता।

जब गर्भान्वित अंडा या ओवम (Ovum) गर्भाशय में टिक जाता है तब इसे गर्भ की स्थिति कहते हैं, क्योंकि अंडा वास्तव में गर्भाशय की विस्तृत फैली हुई अस्तर (lining) में—जिसे गर्भ कला या डेसीडुआ (Decidua) भी कहते हैं, बैठ जाता है। रजोधर्म के बन्द हो जाने, रक्त के न निकलने तथा गर्भान्वित अंडे के प्रति दिन बढ़ते रहने के कारण वह दिन दिन मोटा पड़ता जाता है। नन्हा सा ओवम या गर्भान्वित अंडा भी इसी समय से निरन्तर बढ़ता जाता है। नन्हा सा अंडा दस मास में ही एक बच्चे का रूप धारण कर लेता है।

गर्भान्वित अण्डा बढ़ता कैसे है ?

गर्भान्वित अंडा जब गर्भाशय कला (Decidua), या गर्भाशय के अस्तर (Lining) में जम जाता है, तब यह फैले हुए गर्भाशय के अस्तर (Uterine lining) में एक तरह से छेद कर घुस जाया करता है। अपनी रक्षा के लिए एक दो तह चिकनी मुलायम झिल्ली से यह अपने को ढँक लेता है। इस झिल्ली के पोस्त या छिलके के भीतर एक पानी या रस सा तरल पदार्थ जमा होने लगता है। इसी तरल पदार्थ से गर्भ का विकास या वृद्धि होती है। गर्भ इस रस में डोलता हुआ छिलके से संबद्ध रहता है। जो छिलके या पोस्त से लगी हुई डोर गर्भ को पकड़े रहती है, उसी को हम बच्चे का नारा कहते हैं। छिलके में जहाँ पर नारा होता है, वहीं वह जगह होती है जहां बच्चेदानी में नाली से आकर सब से पहली बार गर्भान्वित अंडा (Uterine lining) गर्भाशय के अस्तर में बैठ-सा जाता है। बच्चा अपने ही भीतर के रस की वृद्धि से बढ़ता रहता है। इस समय यदि इसे हम देख सकें तो हमें दिखाई देगा कि एक झिल्ली की थैली है, जिस में रस भरा हुआ है और यह झिल्ली बच्चेदानी में लटकी हुई है।

आरम्भ में गर्भान्वित अंडा या ओवम (ovum) इतना बड़ा नहीं होता कि यह गर्भाशय के (खोह)-छिद्र या गह्वर को भर दे, यह केवल लम्बी फुनगी में लटके हुए बड़े अंगूर की भांति होता है। ज्यों-ज्यों गर्भान्वित अंडा या ओवम बढ़ता है त्यों-त्यों गर्भाशय भी बढ़ता जाता है और प्रायः तीन मास में अंडा इतना बड़ा हो जाता है कि वह गर्भाशय की सारी जगह को घेर लेता है।

इस के पहले, यानी जब तक कि बच्चा गर्भाशय की पूरी जगह को घेर नहीं लेता, अक्सर जननेन्द्रिय के बाहर कभी-कभी थोड़ा रक्त-प्रवाह हो जाया करता है। यह दशा बहुत ही चिन्ताजनक होती है, क्योंकि ज्यादातर इस रक्त-प्रवाह का नतीजा यह होता है कि गर्भ प्राणहीन होकर रक्त के साथ बाहर की ओर ढुलक आता है। इसके साथ ही साथ यह भी होता है कि गर्भ पहले ही प्राण-हीन हो चुका रहता है और गर्भाशय उसे विजातीय द्रव्य (Foreign matter) की भांति बाहर निकाल फेंकना चाहता है। ऐसी अवस्था में किसी समझदार चिकित्सक से राय लेना बहुत जरूरी होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गर्भाधान का दिन मालूम होने का

जनवरी	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	७	१८
अक्टूबर	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	४	२५
फरवरी	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	७	१८
नवम्बर	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	४	२५
मार्च	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	७	१८
दिसम्बर	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	२	२३
अप्रैल	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	७	१८
जनवरी	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	२	२३
मई	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	७	१८
फरवरी	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१	२२
जून	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	७	१८
मार्च	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	४	२५
जुलाई	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	७	१८
अप्रैल	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	३	२४
अगस्त	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	७	१८
मई	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	४	२५
सितम्बर	१	२	३	४	५	६	७	७	९	१०	११	१२	१३	७	१८
जून	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	४	२५
अक्टूबर	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	७	१८
जुलाई	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	४	२५
नवम्बर	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	७	१८
अगस्त	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	४	२५
दिसम्बर	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	७	१८
सितम्बर	०	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	३	२४

तालिका देखने की विधि—कल्पना करनी चाहिए कि एक स्त्री को पहली अप्रल के ... है तो प्र... हुआ होगा उसकी प्रसव तिथि ७ सितम्बर होगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

होने का दिन जानने की तालिका

१३	७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	जनवरी
२०	४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	१	२	३	४	५	६	७	नवम्बर
१३	७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	०	०	०	फरवरी
२०	४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	१	२	३	४	५	०	०	०	दिसम्बर
१३	७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	मार्च
१८	२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	१	२	३	४	५	जनवरी
१३	७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	०	अप्रैल
१८	२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	१	२	३	४	०	फरवरी
१३	७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	मई
१७	१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	१	२	३	४	६	०	०	मार्च
१३	७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	०	जून
२०	४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	१	२	३	४	५	६	०	अप्रैल
१३	७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	जुलाई
१९	३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	१	२	३	४	५	६	७	मई
१३	७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	अगस्त
२०	४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	१	२	३	४	५	६	७	जून
१३	७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	०	सितम्बर
२०	४	२५	२६	७	२८	२९	३०	१	२	३	४	५	६	७	०	जुलाई
१३	७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	अक्टूबर
२०	४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	१	२	३	४	५	६	७	अगस्त
१३	७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	नवम्बर
२०	४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	१	२	३	४	५	६	०	सितम्बर
१३	७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	दिसम्बर
१९	३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	१	२	३	४	५	६	७	अक्टूबर

त के दि है तो प्रसव तिथि सम्भवतः ६ जनवरी होगी । इसी प्रकार जिसको २८ नवम्बर के दिन गर्भाधान

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गर्भाधान के लक्षण

इस गर्भ-स्थिति का ज्ञान किसी-किसी स्त्री को उसी समय हो जाता है और कइयों को दो या तीन महीने में होता है। गर्भाधान से लेकर जब तक बच्चा बाहर नहीं आजाता तब तक इस अवस्था को 'गर्भावस्था' कहते हैं। यह समय साधारणतः २८० दिन या ९ महीने १० दिन का होता है। कइयों में समय कुछ अधिक या कम भी हो सकता है। इसलिए हम तालिका से प्रसव या बच्चे जानने की तारीख जान सकते हैं। इस तारीख में थोड़ा अन्तर होना सम्भव है। जिस स्त्री को अन्तिम ऋतु जिस तारीख को हुई हो; उस में २८० दिन जोड़ने से वह दिन मालूम हो जायगा। (तालिका अन्यत्र दी हुई है।)

गर्भ की स्थिति हो जाने पर स्त्री के शरीर और मन के अंदर कुछ परिवर्तन आ जाता है। और इन परिवर्तनों के आधार पर यह जाना जा सकता है कि वह गर्भवती हो गई है। यह लक्षण या परिवर्तन कुछ निश्चित और कुछ अनिश्चित होते हैं। उदाहरण के लिए—

१—गर्भाधान हो जाने पर कामेच्छा नहीं रहती, शान्ति और तृप्ति का अनुभव होता है।

२—गर्भाधान हो जाने पर ऋतु-स्राव या मासिक धर्म रुक जाता है।

३—प्रातःकाल सोकर उठने पर मुह से पानी आता है या वमन होता है। मचली या उबकाई आती है। यह लक्षण ज्यादातर दूसरे या तीसरे महीने में प्रगट होता है।

४—स्तनों में वृद्धि होने लगती है, उनमें भारीपन आ जाता है। चूचक के चारों ओर श्यामता (कालापन) छा जाती है। यह अवस्था प्रायः तीसरे महीने में होती है। कइयों में इससे पहले भी हो जाती है।

५—शरीर में भारीपन का अनुभव होने लगता है।

६—उदर में वृद्धि होने लगती है; खास तौर से तीसरे मास में।

७—गर्भ की गतियों का अनुभव होने लगता है, प्रायः चौथे या पांचवें महीने में।

८—गर्भ का हृदय-शब्द सुनाई देने लगता है, चौथे महीने के बाद। यह शब्द तकिये के नीचे रक्खी हुई घड़ी के समान होता है।

९—स्वभाव में परिवर्त्तन, भोजन के लिए विशेष अभिरुचि हो जाती है।

गर्भिणी के लिये यह सब लक्षण प्रायः ३ या चार महीने बाद साफ़-साफ़ दिखाई देने लगते हैं। इस लिए इन लक्षणों के स्पष्ट हो जाने पर गर्भिणी को आहार-विहार पर विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिये।

गर्भिणी और गर्भ का सम्बन्ध

१—खुले मैदान में सोने वाली और रात में घूमने वाली गर्भिणी स्त्री की सन्तान पागल होती है।

२—लड़ाकू, चुगुलखोर और झगड़ालू स्त्री मृगी रोग वाली सन्तान उत्पन्न करती है।

३—सदा कामातुर रहने वाली, भोग-विलास में लिप्त रहने वाली-स्त्री निर्लज्ज एवं स्त्री-स्वभाव वाली सन्तान को जन्म देती है।

४—सदा शोकग्रस्त गर्भिणी की सन्तान अल्पायु (कम आयु वाली) दुर्बल और शुष्क उत्पन्न होती है।

५—ईर्ष्या करने वाली स्त्री की सन्तान ईर्षालु लड़ाकू और दूसरों को दुःख देनेवाली होती है।

६—क्रोधी स्त्रियों की सन्तान चण्ड, क्रोधी और निन्दक (दूसरों की निन्दा करने वाली) होती है।

७—दिनरात सोने वाली स्त्रियों की सन्तान आलसी, मन्द बुद्धि और मन्दाग्नि रोग वाली उत्पन्न होती है।

८—हमेशा मद्यपान करने वाली स्त्री की सन्तान मद्यपान करने और अस्थिर चित्त वाली होती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

९—हमेशा मिठाई खानेवाली स्त्री की सन्तान प्रमेही (मधुमेही), मेदरोग वाली और बड़े पेट वाली होती है।

१०—सदा खट्टा, अम्ल, चरपरी चीज़ें खाने वाली स्त्री की सन्तान रक्त-पित्त, त्वक् रोग वाली होती है, और उसके बाल असमय में ही सफेद हो जाते हैं।

११—कड़ुवा, तीखा (मिर्च-मसाले आदि) खाने वाली स्त्री की सन्तान अल्प शुक्रवाली, कृश (दुर्बल) एवं पुत्रहीन होती है।

१२—बहुत कषाय रस खाने वाली स्त्री की संतान मल-कफ रोग-ग्रस्त, बड़े पेटवाली एवं निर्बल उत्पन्न होती है।

१३—बहुत मांस-प्रिय स्त्रियों की सन्तान क्रूर, सुअर या रीछ जैसे बाल वाली, लाल नेत्रवाली और मूत्र रोग ग्रस्त उत्पन्न होती है।

गर्भिणी को विचित्र प्रकार का अनुभव होता है। गर्भिणी और गर्भ का हृदय रस-वाहिनियों द्वारा बँधा होता है। इसलिए माता के भावों का असर गर्भ के ऊपर अवश्य पहुंचता है। इसलिए सगर्भा स्त्रियों को कभी भी अप्रसन्न या नाराज नहीं करना चाहिए। जिस वस्तु के खाने, पहनने का मन चाहे, उसको वही लाकर देना चाहिए। यदि कोई इच्छा गर्भ को नुकसान करने वाली हो (जैसे लड्डू, या खट्टा या तीखा पदार्थ खाने को मन चाहे) तो उस को पूरा नहीं करना चाहिए, गर्भिणी को समझा देना चाहिए कि इस प्रकार करने से गर्भ को हानि पहुंचेगी। यदि इस पर भी उसकी उत्कट इच्छा बनी रहे तो हितकारी वस्तुओं के साथ उसको वह भी थोड़ी मात्रा में दे देनी चाहिए। गर्भिणी की प्रार्थना के अस्वीकार करने से वह अप्रसन्न हो जाती है, इस से उस में वायु का उद्वेग बढ़ता है। वायु का उद्वेग बढ़ने से गर्भ का या तो नाश हो जाता है अथवा उसकी सन्तान विरूप उत्पन्न होती है। इस लिए यथा सम्भव गर्भिणी की इच्छाओं की पूर्त्ति करने का प्रयत्न होना चाहिए।

फलों के गुण और उनका उपयोग

(लेखक—श्री 'प्रकाश')

अल्प-रक्तता— में गाजर, टमाटर व नीबू का रस लाभ-कर है। इनमें 'विटामिन की मात्रा अधिक होने से ये लाल कणों की वृद्धि करते हैं। अंगूर में भी यह गुण पाया जाता है। रक्त निर्माण के लिये लौह (Iron) आवश्यक है। किशमिस, टमाटर, खजूर, छुहारा, मुनक्का, मकोय तथा उन्नाव (Prunes) आदि में लौह काफी मात्रा में मिलता है।

वात रोग-गठिया—शरीफा इस रोग में मुफीद है।

स्कर्वी—२-३ औंस संतरे का रस प्रतिदिन पीने से स्कर्वी रोग नष्ट हो जाता है।

बहुमूत्र व सूखा रोग—इस रोग में टमाटर का रस फायदा करता है।

रक्तविकृति—नीबू व गाजर सब चर्म रोगों को जो कि रक्त विकार से ही उत्पन्न होते है, नष्ट करते हैं। गाजर में एक 'कंरेटिन' नामक पदार्थ पाया जाता है। इसका विशेष कार्य रक्त शोधन ही है

यकृत विकार-अपच व कब्ज—किशमिश का प्रयोग शरीर के कायाकल्प के लिए किया जाता है। यह शरीर के सम्पूर्ण रोगों को नष्ट करता है। इसे रात में पानी में भिगोकर सुबह इसका उपयोग करना चाहिए।

दुर्बलता—आम व खरबूजा का सेवन दुबले मनुष्य को मोटा व स्वस्थ कर देता है। आम के साथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूध का सेवन भी करना चाहिए। तभी उसका पूर्ण लाभ उठाया जा सकता है।

पायरिया—यह रोग दांतों में चूने की कमी के कारण बढ़ते हैं। चूना संतरा, नीबू, तथा कटहल आदि से आवश्यक मात्रा में प्राप्त होता है।

मधुमेह—इस रोग में फल-शर्करा ही रोगी को पचती है। फलों का प्रयोग शरीर में संचित शर्करा व विकारों को निकाल देगा।

मुंहासे व दाग—नीबू का रस लगाने से मुंहासे व अन्य दाग मिट जाते हैं। इसको चेहरे पर मलने से चेहरा सुन्दर व कान्तियुक्त हो जाता है।

टान्सिल व कण्ठ नलिका शोथ—ताजे अनन्नास का रस व नीबू के रस का प्रयोग हितकारी है।

बुढ़ापा—इस रोग में शरीर में खनिजक्षारों का संचय हो जाता है। फल इस व्यर्थ संचय को शरीर से बाहर निकालते व तंतुओं का नव निर्माण करते हैं। सम्पूर्ण साइट्रिक अम्ल युक्त फल-संतरा, नीबू, अंगूर आदि दोषों को गलाकर उन्हें शरीर से बाहर निकालने का कार्य करते हैं।

इस तरह हम देखेंगे कि शरीर को स्वस्थ, सुंदर व निरोगी बनाए रखने के लिए फलों का सेवन आवश्यक है। इससे शरीर का कायाकल्प होता है, नवीन तंतु निर्माण होता है और मनुष्य काफी लंबे समय तक जीवित रह कर पूर्णायु प्राप्त कर सकता है।

फलों के सेवन के संबंध में निम्नलिखित बातों पर अवश्य ध्यान देना चाहिए।

(१) फलों के साथ दूध का मेल उत्तम है। उन्हें जहाँ तक हो अकेले ही खाना चाहिए। अन्य पदार्थों के साथ मिलाकर सेवन करने से उनके गुण नष्ट हो जाते हैं। अच्छा तो यह है कि प्रातः-काल नाश्ते में ताजे फल ही लिए जाँय, तथा उनके कम से कम १ घंटे बाद तक कोई भी अन्य पदार्थ न खाया जाय।

(२) फलों को छिलके सहित ही खाना चाहिए। जिनके छिलके खाली हाथ अलग न हो सकें हों उन्हें अलग न किया जाय। नारंगी आदि फलों का ऊपरी मोटा छिलका निकाल देना चाहिए।

(३) फलों के बीजों में भी कई आवश्यक तत्व होते हैं। अतएव उन्हें फेंकना नहीं चाहिए। अच्छा तो यह है कि उन्हें भी साथ-साथ चबाकर खा लिया जाय। बीजों को अपेन्डिसाइटिश का कारण बताना निरी मूर्खता है। बीज तो अपेन्डिक्स के क्रिया रहित विकृत हो जाने पर ही उसमें चले जाते हैं।

(४) जहाँ तक हो भोजन के साथ फल नहीं खाना चाहिए।

(५) एक बार में एक ही तरह का फल खाकर उसका पूरा लाभ उठाया जा सकता है।

(६) फलों के रस को निकाल कर शीघ्र ही पी लेना चाहिए। उसे देर तक रखे रखने से वह हानिकर हो जाता है।

(७) खाली पेट प्रातःकाल फलों का सेवन करना लाभदायक है। रोग निवारण में इससे अच्छी सहायता मिलती है।

(८) फलों को खूब अच्छी तरह चबा चबा कर खाना चाहिए।

(९) खूब अच्छी तरह पके ताजे फलों का ही सेवन करना चाहिए।

(१०) मौसिमी फल उस मौसम में होने वाले रोगों का नाश करते हैं। वे मौसिमी फलों का सेवन कम करना चाहिए।

(११) फलों को बिना उबाले ही कच्चा खाना चाहिए। सलाद की तरह भी उन्हें ले सकते हैं।

(१२) सूखे फलों की मात्रा प्रतिदिन ताजे फलों की मात्रा से चतुर्थांश होनी चाहिए।

(१३) फलों को अच्छे पानी से धोकर ही उन्हें खाना चाहिए।

(१४) सूखे फलों का उपयोग विशेष कर जाड़े के मौसम में ही करना चाहिए।

(१५) सड़े गले बासी फलों का व्यवहार भूल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर भी नहीं करना चाहिए। इनसे कई भयानक रोग पैदा हो सकते हैं।

उपरोक्त नियमों के साथ किया गया फलाहार अपना पूरा लाभ पहुंचाएगा। इसका परिणाम व्यायाम, टहलना, तैरना, गहरी श्वास लेना तथा आंतरिक व बाह्य स्वच्छता से बढ़ाया जा सकता है। इसका सेवन कर आपको मानना ही पड़ेगा कि बड़ी-बड़ी बोतलों में बंद सैकड़ों रुपये मूल्य की किसी भी औषधि में शरीर को फलाहार की तरह, वास्तव में शुद्ध करने, क्रियाशील बनाने तथा तन्दुरुस्त रखने की शक्ति नहीं है।

गृहस्थाश्रम की कुछ आवश्यक बातें

(लेखक—श्री बृजमोहन मिहिर)

प्रायः लोगों के मन में यह प्रश्न उठता है कि गर्भकाल में सहवास कहाँ तक उचित है। इस विषय में विभिन्न रायें हैं। आजकल डाक्टरों का मत तो है कि प्रथम पाँच महीनों तक यह वर्जित नहीं है। इस समय तक न तो स्त्री को ही और न गर्भस्थ शिशु को ही कोई क्षति पहुंचती है। किन्तु इस सम्बन्ध में प्राचीन आचार्यों का मत स्पष्ट है। उन्होंने मनुष्य जीवन में काम-केलि के लिये कोई स्थान नहीं रखा है। मनुष्य जीवन की पवित्रता और उसका चरम उद्देश्य उनके सन्मुख मुख्य था। लगन कार्य के हेतु ही उन्होंने रति क्रिया में संलग्न होने का आज्ञा की है। वीर्य दान कर चुकने के पश्चात् स्त्री पुरुष दोनों को, गर्भकाल से लेकर बच्चे के स्तन पान छोड़ने के बाद २ वर्ष और ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना चाहिये। यह कुल समय ४ वर्ष का होता है। इस समय तक स्त्री पूर्ण स्वस्थ और गर्भ धारण करने योग्य हो जाती है। इस प्रकार ४ वर्ष के बाद दूसरी सन्तान उत्पन्न करने का समय आता है।

सारे जीवन में मनुष्य छः सन्तान से अधिक उत्पन्न नहीं कर सकता। अस्वस्थ्य, किसी संक्रामक रोग से पीड़ित, विकलांग, आर्थिक कष्ट में ग्रसित और अज्ञान मनुष्यों को सन्तान उत्पन्न करने की जिम्मेदारी नहीं लेनी चाहिये। ऐसी प्रतिकूल परिस्थिति में ग्रसित मनुष्यों को, गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने की आज्ञा नहीं दी गई है। समाज के हित को दृष्टि में रखते हुए ही इस प्रकार का उपरोक्त विधान किया गया है। जब मनुष्य अपने सामर्थ्य के बाहर कोई काम करता है तो अपने को कष्ट में डालता है और साथ में पूरे समाज को भी। आज समाज में कितने ऐसे मनुष्य पाये जाते हैं जो अपनी जिम्मेदारी को समझते हैं। जब वे अपने भार को नहीं उठा सकते तो परोक्ष रूप में समाज पर ही इसकी जिम्मेदारी आ जाती है। उनके हेतु सारे समाज को कष्ट उठाना और लज्जित होना पड़ता है।

सब से पहले मनुष्य के सामने अपने सुधारने का कार्य है। अपने को सुधारने का मतलब है जीवन कष्ट रहित बीते और अच्छे गुणों का विकास होवे। उसका चित्त प्रसन्न रहे। मन में सुख शान्ति और सन्तोष स्थान पाये। उसे जीवन में पैसे की इतनी कमी भी न होवे कि वह अपनी आवश्यक बातों की देख रेख न कर सके। अर्थात् भारतवर्ष की गरीब दशा में यदि एक व्यक्ति को केवल १५ से लेकर २० रुपये तक की आमदनी है तो वह उससे अपना पालन पोषण साधारण रीति से कर सकेगा। गाँव के रहने वालों का काम इससे भी कम रुपये में चल सकता है। अपनी आवश्यकता को पूर्ण करने के लिये उतना धन उपार्जन करना मनुष्य का सर्व प्रथम कर्त्तव्य है। यह अनिवार्य है। इसके बिना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुष्य का आदर सहित जीवित रहना असम्भव है। शास्त्र में स्वाभिमान पूर्वक जीवन व्यतीत करने की बड़ी महिमा है। अर्थ संबन्धी समस्या को हल कर लेना जीवन की प्रथम समस्या है। इस समस्या का समाधान हो जाने पर ही प्राणी दूसरी किसी बात के प्रति विचार कर सकता है। इस समस्या का हल करना परमावश्यक और सर्व प्रथम है, किन्तु यही सब कुछ नहीं है। यह प्रारम्भ है किन्तु अन्त नहीं। इसकी सहायता से मनुष्य, जीवन की चरम सीमा तक पहुंचने में समर्थ होता है। जो मनुष्य इस समस्या को हल नहीं कर लेता वह सदा दुःखी, असहाय और दूसरों के सामने मुखापेक्षी होगा। आर्थिक प्रश्न पर न विचार करने का केवल एक मनुष्य को अधिकार है, चाहे उसका जीवन नितान्त दूसरों पर ही क्यों न निर्भर करता हो। जिसकी सारी इच्छायें निवृत्त हो गई हैं, जिसने सब अवस्थाओं में सम रहना सीख लिया है। जिसको जिन्दा रहने की ख्वाहिश नहीं है, जो किसी की सहायता की प्रतीक्षा नहीं करता, भूखे रहकर भी जो शान्ति एवं जीवन बिता सकता है—केवल ऐसा व्यक्ति अर्थ के प्रति उदासीन रह सकता है। अन्यथा प्रत्येक व्यक्ति का अपनी अनिवार्य आवश्यकता को पूर्ण करने के लिये धन की आवश्यकता पड़ती है। अतः इस समस्या को हल करने में प्रत्येक को दत्तचित्त होना चाहिये, पर इस पर जरूरत से अधिक जोर नहीं देना चाहिये। इसकी महत्ता आवश्यकताओं की पूर्ति तक ही है। इससे अधिक लालच करने पर मनुष्य का अधःपतन हो जाता है। इस समस्या के हल हो जाने के पश्चात् मनुष्य को अपने सम्बन्ध में और अधिक विचार करने का अवसर प्राप्त होता है।

अपनी आवश्यकता से अधिक उपार्जन करने की यदि किसी में सामर्थ्य नहीं है तो वैवाहिक जीवन में प्रवेश करके कष्ट को आमन्त्रित न करें। जीवन में सुख दुःख, कष्ट तो सदा रहते हैं, लेकिन मनुष्य के ऊपर जब अपने परिवार के अधिक प्राणियों की भीड़ नहीं होती तो वह उसे कुछ आसानी के साथ सहन कर लेता है। पैसे की कमी के साथ जब अधिक मनुष्यों के पालन पोषण का उत्तरदायित्व किसी पर आता है तो वह व्यक्ति दिन रात केवल एक ही चिन्ता में कि किसी प्रकार कैसे खर्च का मुकाबला किया जाय, जीवन व्यतीत करता है। अपने जीवन में वह स्वयं और क्या उन्नति कर सकता है या संसार के अन्य व्यक्तियों के साथ उसका क्या सम्बन्ध है—इस पर कुछ विचार करने का उसे कभी अवकाश नहीं मिलता। कथित मनुष्य के लिये परिवार उसके काबू की चीज नहीं होती। क्योंकि उसने अपना जीवन इच्छा के आधीन होकर अज्ञान के साथ आरम्भ किया है। अज्ञानी प्राणी की दशा द्रौपदी की चीर-हरण की सी होती है। सतत सजगता प्राप्त कर लेने पर ही उसे दुःख से छुटकारा मिल सकता है जैसे द्रौपदी को मिला था। कष्ट का मूल कारण प्राणी का अज्ञान है।

वैवाहिक जीवन उसी के लिये युक्त संगत है जो सब प्रकार से इसके लिये उपयुक्त पात्र है। अर्थात् मनुष्य ज्ञानवान हो, स्वस्थ हो, विद्यावान हो और रूपवान भी हो। ऐसे मनुष्य शुभ कार्य के लिये गृहस्थाश्रम में प्रवेश कर सकते हैं। अन्य आश्रमों की भाँति गृहस्थाश्रम भी परम पवित्र है यह केवल विलासमय सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने का स्थान नहीं है प्रत्युत इस आश्रम में अन्य आश्रम की अपेक्षा जिम्मेदारी अधिक है। भारतवर्ष की परिपाटी अब तक यही रही है कि अन्य तीनों आश्रम वाले इसी आश्रमवालों पर अवलंबित थे। अतः पराक्रमी व्यक्ति ही इस आश्रम में प्रवेश करते थे। उनके लिये यह गौरव की बात थी कि अन्य आश्रमों की संभाल वे ही रखते थे। अन्य आश्रम वाले भी इन्हें सम्मान की दृष्टि से देखते थे।

उस समय का व्यक्ति और समाज स्वतन्त्र था। राज्य का भी कोई बन्धन नहीं था। शासन परिपाटी सुन्दर थी। वह जनता के सुख समृद्धि को बढ़ाने वाली थी। मनुष्य पर राज्य का कोई आतंक नहीं था। राजा प्रजा का पुत्रवत् पालन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करता था। वास्तविक प्रजातन्त्र राज्य उस समय ही था। बेकारी, बीमारी का नाम नहीं था, देश धन धान्य, घी, दूध से भरा पुरा था। व्यक्ति के सुख और उनकी स्वतन्त्रता का सब प्रकार से ख्याल किया जाता था। अपनी आवश्यकता के अभाव में जीवन व्यतीत करने वाला एक भी व्यक्ति नहीं था। आधुनिक काल का साम्यवाद इसके सामने कुछ नहीं था। अन्य देशों की अपेक्षा आधुनिक रूस ने मनुष्य के जीवन पर कुछ दृष्टि डाली है। बेकारी वहाँ नाम मात्र के लिए रह गई है। कोई मनुष्य भूखा नहीं सोता। बालकों की शिक्षा और पालनपोषण का अच्छा प्रबन्ध है। कितनों का जीवन वहां भी साधारण है, किन्तु ऐसी गरीबी नहीं है कि मनुष्य किसी काम की उचित देखभाल न कर सकता हो। पर वहाँ भी मनुष्य का जीवन परतन्त्र है और सभ्यता पाशविक है, क्योंकि उनके सन्मुख राज्य के समक्ष व्यक्ति को स्वतन्त्रता और सुख नहीं है। वहाँ बड़े से बड़ा बलिदान स्वराष्ट्र को समृद्धिशाली बनाने के लिये किया जाता है। राष्ट्र के सन्मुख वैयक्तिक जीवन वहाँ कुछ नहीं है। इसलिये यह सभ्यता पाशविक है। संसार में सम्यक शान्ति कभी नहीं हो सकती यदि व्यक्तियों का जीवन स्वतन्त्र नहीं है।

भारतीय जीवन आज किसी प्रकार स्वतन्त्र नहीं है। ऐसे परतन्त्र देश में यह अच्छा है कि अधिक से अधिक मनुष्य अविवाहित जीवन व्यतीत करें। गुलाम सन्तान न पैदा करना ही अच्छा है। यदि मनुष्य विवाह करता ही है तो उसे पूर्ण सजगता से यह कार्य करना चाहिये अर्थात् जब तक इसके लिये वह अपनी पूरी जिम्मेदारी महसूस न कर सके। विवाह करने के बाद मनुष्य को विवाह केवल विलास का केन्द्र न बना लेना चाहिये। नियन्त्रित जीवन व्यतीत करते हुए उसे कम से कम सन्तान उत्पन्न करना चाहिये जिससे कि वह उनका भली प्रकार पालन पोषण कर सके।

मैं देखता हूं यहाँ घरों में बच्चों की दशा बड़ी दयनीय है। स्वतन्त्र देश के पशु यहां के बच्चों से अधिक अच्छी तरह रक्खे जाते हैं। उनकी प्रत्येक आवश्यकता की ओर ध्यान दिया जाता है। यहां के बच्चों को नादानी और गरीबी के कारण न भर पेट भोजन मिलता है और न बदन पर वस्त्र ही देखने में पड़ता है। ऐसे बच्चे जीवन में भला क्या उन्नति कर सकते हैं और उनके द्वारा निर्मित समाज ही क्या कर सकेगा। गरीब साधारण मनुष्य जो अपनी जिम्मेदारी को न समझ कर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करते हैं वे अपने बच्चों का भली प्रकार पालन पोषण नहीं कर पाते और उनके सामने ऐसा जीवन को रखते हैं जो बच्चे की साधारण स्वाभाविक उन्नति में सदा प्रतिरोध उत्पन्न करते हैं। बच्चों को अगर हमें अच्छा बनाना है तो उनसे यह न कहो—यह न करो—इस कहने की अपेक्षा उत्तम उत्तरदायित्व पूर्ण जीवन का निदर्शन रखना कहीं अच्छा है। जैसे वातावरण में बच्चा पैदा होगा वैसा ही उस का चरित्र बनेगा। बच्चों को अच्छा बनाने के कार्य में उनके ऊपर शासन करना नहीं है बल्कि उनकी कोमल वृत्तियों को देखते हुए उन्हें विकसित करना है। बच्चे की कोमल वृत्ति में जब आघात पहुंचता है तो वह भली प्रकार प्रस्फुटित नहीं होने पाती और बच्चा अपने जीवन को देख भाल कर ले चलने में असमर्थ रहता है। माता पिता का सब से बड़ा कार्य है बच्चे के अन्दर साधारण बुद्धि को जागृत करना। बच्चों को हंसी खेल में बड़ी से बड़ी बात समझा देने की कोशिश करनी चाहिये। उनकी उन्नति के लिये यही सब से उत्तम उपाय है। बच्चे में अच्छी आदतों का उसी समय प्रादुर्भाव होता है जबकि माता पिता का जीवन सद्वृत्तियों से पूर्ण होता है। उत्तम चरित्र वाले माता पिता का प्रभाव बच्चे पर धीरे-धीरे इस प्रकार पड़ता है कि बच्चा बिना अधिक प्रयास के उन उत्तम गुणों को अपना लेता है और तदनुसार जीवन व्यतीत करता है। माता पिता के चरित्र द्वारा बच्चों के स्वभाव में उत्तम मानसिक वृत्तियां सहज में ही स्थान पा लेती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन और उसके कार्य

(लेखक—श्री विजय बहादुर सिंह बी ए,)

प्राणि-शास्त्र का यह मूल सिद्धान्त है कि हर एक प्राणी के शरीर के जितने अंग हैं, सब उसकी रक्षा, वृद्धि और भलाई के लिये हैं। मस्तिष्क और स्नायु तंतुओं के द्वारा मानसिक चेष्टा उत्पन्न होती है; कई तरह का ज्ञान उत्पन्न होता है। अनेक विचार पैदा होते हैं। उन सब का अभिप्राय भी भलाई ही करना है। चेतना-शक्ति के प्रभाव से हम वही काम करते हैं जिनसे संसार में हमारा शरीर अधिक समय तक रहे। जिन मानसिक बातों और चेष्टाओं के लिये हम यह मानते हैं कि इनका कोई प्रभाव शरीर पर और शारीरिक चेष्टाओं पर नहीं पड़ता, विचार करने से वे भी शरीर की रक्षा पर अपना बहुत कुछ प्रभाव रखती हुई सिद्ध होती हैं। किसी न किसी समय इन छोटी मानसिक चेष्टाओं का प्रभाव होता अवश्य है। प्राणियों को चेतना-शक्ति मिलने का मुख्य अभिप्राय शरीर की रक्षा है। और केवल मानसिक सुख-संपादन करना उसका गौण अभिप्राय है। मस्तिष्क के द्वारा चेतना शक्ति उत्पन्न होती है और इसका मुख्य कार्य शरीर की रक्षा करना है। अर्थात् जिस समय जैसे काम की आवश्यकता हो, ठीक उसी कार्य को समझना और करना ही चेतनाशक्ति का प्रधान उद्देश्य है।

मस्तिष्क और ज्ञान

वैज्ञानिकों ने बड़े श्रम से सिद्ध किया है कि मनुष्य की खोपड़ी के भीतर मस्तिष्क रहता है। मस्तिष्क शरीर का सबसे आवश्यक भाग है। इसी लिए उसकी रक्षा का उपाय भी प्रकृति ने कर रखा है। बाल, खाल, हड्डियों का ढांचा, झिल्लियां और अन्त में मस्तिष्क रहता है। मस्तिष्क के ऊपरी तह में भूरे रङ्ग की कोई वस्तु होती है और उसके नीचे सफेद रङ्ग की। मस्तिष्क एक चिकना पिंड-सा नहीं होता, अपितु वह अखरोट की गिरी की तरह विषम होता है। यह मस्तिष्क आगे बढ़ता हुआ माथे तक चला जाता है और पीठ की ओर गर्दन तक। परन्तु गर्दन ही पर इसकी समाप्ति नहीं हो जाती। उसका एक भाग बढ़ता हुआ रीढ़ की हड्डी के भीतर चला जाता है और पीठ पर होता हुआ कमर तक पहुंचता है। हर भाग में मस्तिष्क की बनावट भिन्न भिन्न हो जाती है। भूरे रङ्ग का पदार्थ सर्वत्र नहीं होता।

इसी मस्तिष्क से दोनों ओर डोरियों की तरह स्नायु के जोड़े निकल कर शरीर के भिन्न-भिन्न भागों में चले जाते हैं। ऐसे कुल ४३ जोड़ें (संधि) होते हैं जिनमें से बारह तो खोपड़ी में से ही निकलते हैं और अन्य गर्दन तथा पीठ में से निकलते हैं जिसमें मस्तिष्क का भाग चला जाता है। ये स्नायु अपने उद्गम स्थान से निकल कर और शरीर के नियत भाग में पहुंचकर डोरी की लड़ी की तरह फैल जाते हैं। शरीर का कोई भाग सिवा चमड़े, नख और बालों के—इनसे खाली नहीं है। यथार्थ में समग्र शरीर में स्नायुओं का जाल-सा बिछा हुआ है।

स्नायु क्या हैं मानों शरीर—देश में टेलीफोन के तार हैं। शरीर-देश का राजा मस्तिष्क है और विशेष कर वह भाग जो खोपड़ी में सबसे ऊपर रहता है। यथार्थ बात यह है कि जब तक मस्तिष्क इन सूचनाओं को ग्रहण न करें तब तक प्राणी को इन विषयों का ज्ञान ही नहीं होता। बाहरी विषयों की सूचना मस्तिष्क तक पहुंचना, और उसके द्वारा उनका स्वीकार किया जाना ही ज्ञान या संज्ञा है।

यद्यपि पांचों इन्द्रियों में फैले हुए स्नायुओं का उद्गम-स्थान मस्तिष्क ही है; तथापि सब के कार्य भिन्न-भिन्न होते हैं हालां कि सब की बनावट एक ही सी है। अपनी नियत इन्द्रिय में आकर जब वे फैलते और अपने सिरे के द्वारा ज्ञान ग्रहण करते हैं तो इन्द्रिय-विशेष के सिरे या मुंह विशेष प्रकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के हो जाते हैं। इनके मुखों की विशेष बनावट के कारण स्नायुओं का विषय भी पृथक २ हो जाता है। विषय-ग्रहण की शक्ति इन स्नायु तंतुओं के सिरों में ही होती है। शेष भागों में तो सूचना ले जाने की शक्ति होती है। इन स्नायु तंतुओं के सिरों की बनावट नियत होने से उन तंतुओं का काम भी नियम-बद्ध हो जाता है और मस्तिष्क के जिन भागों से वे निकले हैं; अर्थात् जिन भागों को वे बाहरी विषय की सूचना ले जाते हैं, उनका काम भी नियम के भीतर आ जाता है। इस प्रकार हम देखते हैं ज्ञानेन्द्रियों के केन्द्र भी मस्तिष्क में नियत हैं।

बाहरी वस्तुओं से स्नायु के सिरों तक सूचना कैसी आती है— इसे समझ लेना चाहिए। वैज्ञानिकों ने सिद्ध किया है कि आकाश में प्रकाश की लहरें उठा करती हैं। ये लहरें इतनी सूक्ष्म होती हैं कि इनकी गति हम नहीं देख सकते। परन्तु इनकी संख्या प्रति सेकंड बहुत होती है। किसी वस्तु पर जब प्रकाश पड़ता है तो हर एक भाग से प्रकाश की लहरें हर ओर फैलती हैं। उस समय जो भाग हमारे आंखों के सामने है उससे प्रकाश की लहरें निकल २ कर हमारी आंखों तक पहुंचती हैं जहां पर आंख की विशेष बनावट के कारण वे स्नायु-तंतुओं के सिरों तक पहुंच जाती हैं। इसी प्रकार वायु में लहरें उठा करती है जिनके द्वारा 'शब्द' चल कर कान में पहुंच जाता है। गंधयुक्त वस्तुओं के अत्यन्त सूक्ष्म अणु उन वस्तुओं से निकल कर वायु के द्वारा नासिका में पहुंचते हैं। चखने और स्पर्श करने में तो वस्तुओं का सम्पर्क ही जिह्वा और त्वचा से होता है।

हमें उतना ही का ज्ञान हो सकता है जितने की सूचना ज्ञान तंतुओं के सिरों द्वारा हमारे मस्तिष्क में जाती हैं। परन्तु केवल स्नायुओं के ज्ञान-वाहक तंतुओं ही से हमारा कार्य नहीं चल सकता। कोई ऐसा भी प्रबन्ध आवश्यक है जिससे मस्तिष्क की आज्ञाएँ शरीर के हर एक भाग में पहुंच सकें। प्रकृति ने ऐसा प्रबन्ध स्वतः कर रखा है। ज्ञान वाहक स्नायु तंतुओं के अतिरिक्त एक और प्रकार के स्नायु-तंतु शरीर में फैले हुए हैं जिसके द्वारा मस्तिष्क से आज्ञा आती है। इन्हें आज्ञावाहक स्नायु तंतु कह सकते हैं। ये सूक्ष्म कर्मेन्द्रियां हैं। हमारा मस्तिष्क इन्हीं के द्वारा आज्ञा देता है। स्नायु तंतुओं का ज्ञान संवाहन और आज्ञा संवाहन इस फुर्ती के साथ होता है जिसे देखकर आश्चर्य हुए बिना नहीं रहा जाता।

चेतना-प्रवाह

मनुष्य जब तक जागता रहता है, और कभी-कभी स्वप्नावस्था में भी उसको चेतना रहती है। मनुष्य चेतन है। मनुष्य सोच-विचार कर सकता है। उसे सुख-दुख होते हैं। वह इच्छा करता है; स्मरण करता है। ध्यान देता है—ये ही सब चेतना के कार्य हैं और इनमें से हरएक को 'मनोवृत्ति' कहते हैं। मनोवृत्तियाँ मनुष्य के मन में आती जाती और बदलती रहती हैं। किसी क्षण में एक मनोवृत्ति हुई और तुरत दूसरे ही क्षण में दूसरी मनोवृत्ति आ गई। यही इसका स्वभाव है।

आइए, विचार करें कि इन मनोवृत्तियों के मुख्य लक्षण क्या हैं। चेतना की उपमा नदी के प्रवाह से दी जाती है। जिस प्रकार नदी का प्रवाह निरन्तर होता रहता है उसी तरह चेतना का भी होता है। ऐसा नहीं होता कि मन में एक वृत्ति आकर समाप्त हो गई; तब कुछ अन्तर देकर दूसरी वृत्ति आई। किन्तु वास्तव में ऐसा होता है कि एक वृत्ति के रहते-रहते ही उसमें कुछ परिवर्तन होकर दूसरी वृत्ति हो जाती है। नदी की तरंगों की तरह मन की वृत्तियों की दशा होती है। इसी को हम मन की लहर या तरंग भी कहते हैं।

चेतना की जो भी वृत्ति होगी, वह किसी की वृत्ति अवश्य होगी। वृत्तियां वायुमण्डल में इधर-उधर उड़ती नहीं फिरतीं। हर एक प्राणी की मनोवृत्ति दूसरे से भिन्न होती है। मनोवृत्तियाँ नदी की धारा के समान लगातार चलती रहती हैं; उनमें अन्तर नहीं पड़ता। परन्तु बराबर परिवर्तन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होता रहता है। कोई भी मनोवृत्ति एक ही रूप में एक क्षण से अधिक नहीं ठहरती।

हर एक मनोवृत्ति में एक ही साथ कई विचार रहा करते हैं; परन्तु इन सब का बल एक समान नहीं होता। जिस मनोवृत्ति का बल सब से अधिक होता है; अर्थात् जो विचार ध्यान के केन्द्र में रहता है, उसी के नाम से वह मनोवृत्ति कही जाती है। परन्तु इन विचारों में भी बड़ा परिवर्तन होता रहता है। कभी केन्द्र का विचार केन्द्र ही में रहता है और दूर वाले विचारों के बल में परिवर्तन हो जाता है। कभी केन्द्र वाले विचार को केन्द्रस्थान से हटाकर कोई दूसरा विचार आ जाता है। जब मनोवृत्ति का फैलाव अधिक होता है तो उसकी गंभीरता उतनी ही कम होती है। यदि अन्य विषयों को रोककर केवल एक ही विषय पर चित्त जमाया जाय तो वह विषय शीघ्र स्पष्ट हो जायगा। चित्त एकाग्र करने का यही अर्थ है। इसी चित्तवृत्ति निरोध का नाम योग है। इसी को संकेन्द्रण भी कहते हैं। इसी को ध्यान भी कहते हैं। जिस व्यक्ति में यह संकेन्द्रण जितना ही अधिक होता है वह उतना ही अपने कार्य में दक्ष एवं सफल होता है। सांसारिक एवं आध्यात्मिक—दोनों क्षेत्रों में यह चित्तवृत्ति-निरोध आवश्यक है। चित्तवृत्ति के निरोध न होने से कोई भी कार्य सुचारुता से संपादित नहीं किया जा सकता। चित्त के एकाग्र न होने को 'चित्त विहंगकता' कहते हैं।

मनोवृत्तियों में तीन प्रकार की बातें रहा करती हैं—क्षोभ, ज्ञान और इच्छा। सुख-दुख, क्रोध-प्रेम और भय आदि क्षोभ के विषय हैं; इनसे मन की ऐसी दशा हो जाती है मानो वह काँपने लगा हो। वस्तुओं के देखने-सुनने, छूने, चखने और सूंघने से उनका जो हाल मालूम होता है वह ज्ञान है। स्मरण, तर्क, भावना आदि का भी ज्ञान ही कारण है। इच्छा का अर्थ तो स्पष्ट है। इसमें कुछ न कुछ करने की प्रवृत्ति होती है। ध्यान, संकल्प आदि इसके विषय हैं।

यद्यपि क्षोभ, ज्ञान और इच्छा—के अंश हर मनोवृत्ति में मिले रहते हैं, तथापि उनमें से किसी न किसी की प्रधानता रहती है। और उसी प्रधानता के अनुसार उस मनोवृत्ति को क्षोभ-वृत्ति, ज्ञानवृत्ति या इच्छा वृत्ति कहते हैं; क्षोभ, ज्ञान और इच्छा में परस्पर विरोध होता है। प्रत्येक चाहता है कि मैं ही प्रधानता पाऊँ। बच्चों के मन में क्षोभ की प्रधानता रहती है। विद्याभ्यासियों के मन में ज्ञान की जिज्ञासा होती है और दृढ़चित्त मनुष्यों के मन में 'इच्छा' की बहुलता होती है।

इससे स्पष्ट है कि स्मरण, भावना, ध्यान आदि अलग-अलग नहीं हैं जैसे मनुष्य के शरीर के अंग भिन्न-भिन्न होते हैं; बल्कि वे ऐसे हैं जैसे फूल के रंग, गंध और आकार। इसी प्रकार ज्ञान, क्षोभ और इच्छा के समूह ही का नाम मन है। मन से पृथक कोई भी वस्तु नहीं देखी जाती।

अब देखना यह है कि मनोवृत्तियाँ किस प्रकार परस्पर सम्बन्ध रखती है और भिन्न-भिन्न भाव किस प्रकार बली या निर्बल होकर चेतना के केन्द्र में आते हैं। चित्त के भावों में अनेक प्रकार से सम्बन्ध हो सकता है :—

१—कार्य-कारण-सम्बन्ध—कार्य से कारण का संकेत मिलना।

२—कारण-कार्य-सम्बन्ध—कारण से कार्य का सम्बन्ध मिलना।

३—समानता—एक वस्तु से किसी गुण में उसी के समान दूसरी वस्तु का संकेत मिलना।

४—विरोध—एक वस्तु से किसी दूसरी ऐसी वस्तु का संकेत मिलना जिसमें कोई गुण पहली वस्तु से विपरीत हो।

५—अव्यवधानता—किसी समय जो विचार जिस क्रम से मन में उत्पन्न हुए, उसी क्रम से उन्हीं विचारों को दूसरे समय उत्पन्न होना और बीच में व्यवधान का न पड़ना।

स्वभाव—जिसको जिस तरह का अभ्यास हो जाता है; जो कोई जिस तरह का काम करता है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसी के अनुकूल नया भाव उसके मनमें आता है।

प्रबलता—यथार्थ अनुभवमें जो भाव बड़ी प्रबलता के साथ आता है, उस भाव का पुनरुज्जीवन बड़ी सरलता के साथ होता है उसका प्रभाव चित्त पर इतना गहरा पड़ जाता है कि उसके सामने प्रतिस्पर्द्धी भावों को अवसर ही नहीं मिलता।

इस प्रकार जिस भाव का अभ्यास अधिक रहता है, जिस भाव का अनुभव बड़ी प्रबलता से हुआ है, जो भाव नवीन है, और जो भाव किसी समय अपने अंतःकरण की वृत्ति के अनुकूल हो—उसी भाव के पुनरुज्जीवित होने की संभावना अधिक होती है। जितने अधिक गुण किसी भाव में होते हैं; उतनी अधिक संभावना उस भाव के उदय होने के लिए होती है और यदि हम किसी प्रकार निश्चय कर सकें कि अमुक भाव में तीन-चार गुण हैं, तो हम प्रायः निश्चय के साथ कह सकते हैं कि इसी भाव का उदय होगा।

इतना विश्लेषण होने पर भी मनोवृत्तियों का मसला इतना नाज़ुक होता है कि कभी-कभी वे समझ में नहीं आतीं। तथापि ये साधारण नियम हैं और इन नियमों के अनुसार आचरण करने से हमें जीवन में बहुत सहयता मिल सकती है।

दो चित्र

(ले०—श्री जानकीशरण वर्मा)

पहला चित्र—

बुल्लू—सुनती नहीं है, माँ, बहरी हो गई है क्या? कब से 'दाल' 'दाल' चिल्ला रहा हूँ, पर चुड़ैल इधर देखती तक नहीं।

माँ—बहरा तो तू है, और तेरी आँखें भी फूटी हुई हैं। क्या तू सुन नहीं रहा था कि मैं तेरे बाप से बार-बार कह रही थी कि या तो रुपये दो या अनाज दिला दो, पर वह तो सुनी अनसुनी कर देता है और क्या तूने नहीं देखा था कि मैंने पतीली में बहुत थोड़ी सी दाल डाली थी। क्या करती, उतनी थी ही। देख कर भी तू अन्धों की तरह बातें करता है।

कल्लू—यह बड़ा शैतान हो गया है, सारी दाल खा गया, फिर भी 'दाल' 'दाल' चिल्ला रहा है।

(बच्चूलाल का प्रवेश)

बच्चू—मेरा नसीब फूट गया, न जाने मैंने कौन सा पाप किया था कि जैसी स्त्री मिली वैसे ही पुत्र भी मिले। बेटा माँ को 'बहरी' कहता है, और माँ बेटे को 'बहरा' और 'अन्धा' कहती है। परस्पर प्रेम और सुमति का तो यहाँ नाम ही नहीं।

बुल्लू—अगर सारी दाल एक ही के लिये रखी जाय तो सुमति कहाँ से हो। खुद तो अच्छी-अच्छी चीज़ें खाते हैं, अच्छा पहनते हैं, जो कुछ कमाते हैं अपने आनन्द के लिये खर्च कर देते हैं, फिर भी घर में प्रेम और सुमति की इच्छा रखते हैं।

बुल्लू की माँ—मैं क्या करूँ, क्या मैं खुद दाल बन जाऊँ। मैं तो ऐसी अभागिन हूं कि इधर इनसे गाली सुनती हूँ और उधर बच्चों की डाँठ डपट सहती हूँ। सचमुच मेरा नसीब फूट गया कि मैं इस घर में आई।

× × ×

दूसरा चित्र :—

मोहन—अरे बाबूलाल, जरा पंखा झल दे। माँ, आज का खेल भी खूब रहा, खलील ने मुझे हराने की लाख कोशिश की पर उसकी एक न चली।

माँ—मैं बहुत खुश हूं कि तू आज फिर जीत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर आया। चल, खाना खा ले, बहुत थक गया होगा।

रमा—हाँ भैया, अभी सब चीजें गर्म-गर्म हैं, आज मैंने तुम्हारे लियें खीर बनाई है।

मोहन—क्या बाबूजी अभी नहीं लौटे हैं? मेरी राय में वह भी अब आ ही चले। थोड़ी देर ठहर जाओ फिर हम साथ ही खायेंगे।

रमा—अच्छा भैया, तुम अपने खेल का पूरा हाल सुनाओ।

मोहन—मैं खाते समय सब कुछ सुनाऊँगा उस समय बाबूजी भी होंगे।

(बाबूजी का प्रवेश)

बाबूजी—कहो मोहन, आज तुम जीते या हारे? रमा, जरा ठंडा पानी तो पिला। बाबूलाल, चौका लगा।

मोहन की माँ—अच्छा तुम अकेले चले जाते हो, मानों हम औरतों को चाँदनी रात में नाव की सैर अच्छी लगती ही नहीं।

बाबूजी—आज तो मैं सिर्फ जगह देखने और नाव ठीक करने गया था। सैर तो परसों के लिये रक्खी गई है, तुम न चलोगी तो यह पार्टी होगी कैसे।

रमा—मुझे भी ले चलिएगा, बाबूजी।

बाबूजी—तुम न जाओगी, तुम्हारी माँ न जायँगी, मोहन न जायगा, तो क्या मैं अकेला ही जाकर नाव की सैर करूँगा।

बाबूलाल—सरकार चौका तैयार है खाने चलिए।

× × ×

सफल जीवन का एक बड़ा लक्षण है परिवार को अच्छी तरह चला सकना। गृहस्थाश्रम की सफलता भी इसी में है। जिस परिवार में पति पत्नी से प्रेम हो, माँ-बाप को बच्चों के लिये स्नेह हो, बच्चों को बड़ों के लिये श्रद्धा और प्रेम हो—जिस परिवार में नौकर भी घर के बच्चों की तरह रखे जाते हैं और पशुओं के साथ भी मनुष्यता का व्यवहार किया जाता है—जहाँ कोई भी अपने लिए नहीं, बल्कि हर एक दूसरे के लिये जीवन व्यतीत करता है, जहाँ हर एक दूसरों के सुख में अपना सुख समझता है, जहाँ अनायास ही आनन्द और प्रसन्नता का वातावरण बना रहता है—उसी परिवार को सुखी और आदर्श परिवार कह सकते हैं।

सुखी परिवार बनाने की राह में कई तरह की अड़चनें रहती हैं। सब से पहली अड़चन है धनाभाव। लोग धन को बुरा कहते हैं और धन के कारण मदान्ध हो जाना बुरा है भी, पर यह भी सच है कि बिना धन के न तो जीवन यात्रा अच्छी तरह चल सकती है और न चित्तवृत्ति ही उदार हो सकती है।

दूसरी अड़चन है स्वार्थपरता। परिवारों में ऐसा देखा गया है कि प्रायः स्वार्थपरता बहुत सूक्ष्म रूप धारण करके सभी सदस्यों के हृदय में प्रवेश कर जाती है। इसी से परिवार-परिवार न रह कर कलह के अड्डे बन जाते हैं।

तीसरी अड़चन है स्वास्थ्य की कमी। इस दशा में चिड़चिड़ापन बढ़ा रहता है और बात बात में लड़ाई हो पड़ती है।

अगर परिवार के सदस्यों का स्वास्थ्य अच्छा हो तो बिना चेष्टा के ही परस्पर सद्भाव बना रहे।

स्वास्थ्य की अवस्था में बुद्धि भी ठीक रहती है और यथेष्ट धन भी कमाया जा सकता है। यह भी देखा गया है कि स्वस्थ पुरुष या स्त्री में स्वार्थ की मात्रा बहुत कम रहती है। जो सचमुच स्वस्थ है वह अध्यवसायी, संयमी, आशावादी, क्रियाशील और उदार हृदय होगा।

प्रायः लोग परिवार को सुखी बनाने के लिये उपदेश और लेक्चर का सहारा लेते हैं। घर का मालिक समय कुसमय में लेक्चरों की बौछार मनाते हुए घरवालों को अपनी मर्जी का पुतला बनाये रखने की कोशिश करता है। ऐसे परिवार में कभी सुख शान्ति नहीं रह सकती।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वास्थ्य-रक्षा

लेखकः—प्रो० 'प्रसाद' प्राकृतिक स्वास्थ्य शास्त्रोपाध्याय कांगड़ी, गुरुकुल विश्वविद्यालय (हरद्वार)

सब सुखों का मुख्य साधन है यहाँ पर स्वास्थ्य,
मनुज जीवन को बनाता है मनोहर स्वास्थ्य।
सब धनों में श्रेष्ठ धन यह, सब सुखों का सार,
यह न हो तो व्यर्थ है जीवन तथा निस्सार॥ १

स्वास्थ्य का भी किन्तु साधन मुख्य युक्ताहार,
नष्ट कर देता इसे है और मिथ्याहार।
नित्य शुद्धाहार और विहार से नरदेह,
शुद्ध होकर, शुद्ध आत्मा का बने यह गेह॥ २

स्वास्थ्य-कर फल तथा ताजे शाक शुद्धाहार
और शिष्टाचार ही समझो—विशुद्ध विहार,
सूर्य किरणों से पके फल ओज युक्त-सजीव,
अग्नि संस्कृत अन्न शक्ति विहीन हैं निर्जीव॥ ३

अन्न पावक-पक्व हो तो उसे मृतक समान,
मानकर मानव कभी छूते नहीं मतिमान्।
शुद्ध, नैसर्गिक तथा निर्मल सलिल है पेय,
चाय, सोडा, मद्य आदिक हैं सभी ये हेय॥ ४

लक्ष्य-युक्त नियमित सुजीवन-यहाँ शिष्टाचार,
अव्यवस्थित, निष्प्रयोजन वही दुष्टाचार।
कर्म शुभ, स्वाध्याय, सेवा, प्रार्थना, उपकार,
सज्जनों के मनोरंजन के प्रशस्त प्रकार॥ ५

आज का छोड़ो न कल पर, करो पूरा काम,
रात्रि में निश्चिन्त होकर खूब लो विश्राम।
शान्ति दे, सुख दे तथा दे स्फूर्ति तुम को रात,
स्वस्थ तन मन से उठो, सोकर सदा सुप्रात॥ ६

कब्ज और उसकी चिकित्सा

(लेखक—श्रीचित्तरंजन साह)

दूसरे के रोग में सभी डाक्टर हो जाते हैं। जो कोई आता वही एक दवा बता देता और विश्वास दिलाता कि इससे कब्ज अवश्य दूर होगा। कुछ दिन तक तो अवश्य फायदा होता; किन्तु केवल कुछ ही दिन तक। इसबगोल, हर्रे, चोकर और एनीमा लेने की तो लोग प्रायः राय देते थे। आखिर-कार तीन साल कब्ज के भँवर में मँडराने के पश्चात् मुझे प्रकृति का सहारा लेना पड़ा।

प्रकृति के नियम अटल हैं। जो जितना उनके विरुद्ध चलेगा उसको उतना ही कष्ट भोगना पड़ेगा। जो जितना उनके अनुकूल चलेगा वह उतना ही सुखी होगा। इसलिये बाल, युवा, बृद्ध सबको इन्हें जानना चाहिये और जहाँ तक बन पड़े इनका अनुसरण करना चाहिये।

इन नियमों के सम्यक ज्ञान के लिये, आधुनिक सभ्यता से भिन्न उस आदिम मनुष्य के जीवन की कल्पना कीजिये। वह दिन भर खाने की खोज में इधर उधर घूमा करता था। उसका शरीर सदा सूर्य की किरणों, हवा के झोंकों और जल की शीतलता के सम्पर्क में रहता था। उसका भोजन कन्द मूल और फल था। सूर्यास्त के बाद वह थका-माँदा सुख की नींद सोता था।

आज हमने अपनी मानसिक उन्नति तो बहुत कर ली है लेकिन साथ ही शारीरिक अवनति भी अपने शिखर पर पहुंच गई है। पूर्णतः नीरोग और आभायुक्त शरीर तो दिखाई ही नहीं पड़ता। इतनी मानसिक उन्नति के साथ यदि प्रकृति के नियमों का पालन करते हुये हम पूर्वजों—जैसे स्वस्थ शरीर को प्राप्त कर लेवें तो इस पृथ्वी पर रहते हुये कोई स्वर्ग की इच्छा न करे।

प्रकृति का पहिला नियम व्यायाम करना है। कुछ नहीं तो कम से कम उठते ही घन्टा भर स्वच्छ और शीतल वायु में अवश्य टहलना चाहिये। फिर धीरे-धीरे इसको बढ़ाते रहना चाहिये। आपका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरएक पग प्राण-शक्ति को बढ़ायेगा।

प्रकृति का दूसरा नियम भूख लगने पर ही आहार करना है। स्वादिष्ट चीज़ें जो आग पर तैयार की जाती हैं धीरे धीरे रोज के भोजन से इन्हें हटा देनी चाहिये और उनके स्थान पर कच्ची चीज़ें ही खानी चाहिये। इससे आपकी भूख सच्ची हो जायेगी और आपका पाचन-यन्त्र उतनी ही शक्ति से अधिक रक्त बनाने में समर्थ होगा।

प्रकृति का तीसरा नियम चिन्ता न करना है चिन्ता करना सब से अस्वाभाविक और भयंकर रोग है। इसको काम में लगे रहकर और आनं स्वभाव के लोगों की संगति में रहकर दूर का चाहिये।

इन नियमों के साथ-साथ कुछ दिनों त एनीमा का (या जिससे आपको मदद मिली उसका) प्रयोग करें। अन्दरूनी सफाई आवश्य कार्य है। यदि आप सदा के लिये क़ब्ज से छुटका पाना चाहते हैं तो आपको इसके नियमों का पाल करना ही होगा।

अखिल भारतीय प्राकृतिक-चिकित्सा सम्मेलन के सातवें अधिवेशन पर पुदूकोट्टाई स्टेट द्वारा लगाया गया प्रतिबन्ध

सम्मेलन के अधिवेशन करने के निमित्त निषेधाज्ञा की घोषणा होने पर स्वागत-समिति के अध्यक्ष श्री एफ० जी० नटेश अय्यर द्वारा १० मई को पुदूकोट्टाई स्टेट के दीवान के नाम लिखे गये पत्र का सारांश :—

प्रिय महोदय,

मैंने अभी-अभी उपर्युक्त घोषणा की एक प्रति देखी है जिसमें खाद्य-पदार्थों की पूर्ति को निश्चयात्मक बनाये रखने के लिए, अनावश्यकीय व व्यर्थ की रेल-यात्रा को निरुत्साहित करने के लिए तथा चेचक जैसी संक्रामक महा-व्याधियों को फिर से होने अथवा उनके अधिक बढ़ने की सम्भावना को रोकने के लिए स्टेट के भीतर कोई स्थानीय व धार्मिक सम्मेलन के सिवाय अन्य किसी प्रकार की कान्फ्रेन्स, मीटिङ्ग अथवा सार्वजनिक सम्मेलन करने की पूरी मनाही कर दी गयी है।

इस सम्बन्ध में मैं आपकी दृष्टि में यह लाना चाहता हूं कि इण्डियन इन्सटीट्यूट आव नैचुरल थिरैपिटिक्स पुदूकोट्टाई की कार्यकारिणी ने अगस्त १९४४ में ही अखिलभारतीय प्राकृतिक चिकित्सा सम्मेलन के सातवें अधिवेशन को बुलाने व मई १९४५ के अन्त में दो दिन के लिए पुदू कोट्टाई में करने का निर्णय कर लिया था......

पुदूकोट्टाई इन्सटीट्यूट में प्राकृतिक चिकित्सा सम्बन्धी शिक्षा ग्रहण करने वाले २० व्यक्तियों को मिलाकर कुल अधिक-से-अधिक ५० व्यक्तियों के सम्मेलन में उपस्थित होने की सम्भावना है। ये पचास व्यक्ति—अथवा यदि स्टेट में इस समय उपस्थित २० व्यक्तियों को अलग कर दिया जाय तो ये ३० व्यक्ति ही—जो उच्च संस्कृतिमय समाज में वास करने वाले तथा सर्वथा स्वच्छ आदतों वाले हैं हम आशा करते हैं, खतरा पैदा करने के कारण गिने जायँगे जिनके लिए यह निषेधाज्ञा निकाली गयी है। किन्तु मामले में तनिक भी सन्देह न रह जाय व दरबार की स्पष्ट घोषणा जानने के लिए मैं आपसे प्रार्थना करता हूं कि घोषणा के सम्बन्ध में मैंने जो कुछ कहा है उसको कृपया देखें और सम्मेलन के होने की आज्ञा दें.........३० व्यक्तियों के आगमन के कारण स्टेट की खाद्य-सप्लाई में दो दिन में कोई विशेष धक्का न पहुंचेगा बहुत पहिले ही से सारी बातों का प्रबन्ध व आयोजन किया जा चुका है।......हमें आपके कृपापूर्ण सहयोग में कोई सन्देह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हीं है, क्योंकि हमें विदित है कि स्टेट के नाम की वृद्धि के लिए होने वाली सभी बातों में आपकी विशेष रुचि है। खान बहादुर पी० ख़ली फुल्ला-साहिब बहादुर, प्रथम काउन्सिलर, द्वारा पुद्दुकोट्टाई में ही विगत एक ऐसे सम्मेलन का उद्घाटन करवाने का भी हमें गौरव प्राप्त हो चुका है। इसके अतिरिक्त हम इसलिए भी दरबार के आभारी ह कि उन्होंने गनेश नगर में हमें अपना इन्सटीस्यूट स्थापित करने के निमित्त स्थान देने में हमारा विशेष ख्याल रक्खा था।

मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि इस बात को एक क्षण भी ध्यान में न लाया जाय कि हमारे सम्मेलन का राजनीति से कोई वास्ता होगा। हमारे सम्मेलन में राजनीति का कोई स्थान नहीं है। हमारा दृष्टिकोण अन्तर्राष्ट्रीय है। हमारी प्राकृतिक चिकित्सा का सम्बन्ध समस्त विश्व से है—समस्त मानव जाति से वर्ण, जाति अथवा राजनीति के भेद को तोड़कर। निस्सन्देह बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डन एक राजनीतिज्ञ हैं, पर यहाँ पर वे आ रहे हैं—प्राकृतिक चिकित्सा के अनुयायी होकर प्राकृतिक चिकित्सा पर भाषण देने के लिए, प्राकृतिक चिकित्सा सम्मेलन में। और वे निश्चय ही सम्मेलन के विषय से बाहर जाकर राजनीति को न घुसेड़ेंगे.........और न अशान्ति पैदा करेंगे। पूर्ण विधानात्मक और नियमबद्ध रूप में अपनी समझ द्वारा मानवता की सेवा करते हुए शान्ति और एकता स्थापित करना हमारा ध्येय है।

अति शीघ्र उत्तर के हम प्रार्थी हैं। हमारे पास अधिक समय नहीं है। हमें बड़ी चिन्ता है कि आप हमें इस बात का विश्वास दिला दें कि हमारा सम्मेलन निषेधाज्ञा के अन्दर नहीं आता और हम अपना आयोजन करते जायँ।

पुद्दूकोट्टाई के दीवान का उत्तर (१३-५-४५ के पत्र में

आपका तारीख १० मई १९४५ का पत्र मिला।

निषेध सब पर लागू है। यदि एक के विषय में उसे ढीलाकर दिया जायगा तो दूसरों के विषय में उसे ढीला करने की मनाही करना कठिन हो जायगा। अतः दरबार आपको सम्मेलन करने की आज्ञा नहीं दे सकता।

दीवान के पत्र के प्रत्युत्तर में भी स्वागताध्यक्ष ने १० मई को एक पत्र फिर उन्हें लिखा था जिसमें विस्तार पूर्वक पूर्ण रीति से यह स्पष्ट कर दिया था कि प्रतिबन्ध की घोषणा में जिन बातों को ध्यान में रखकर सम्मेलन के करने पर रोक लगायी गयी है वे कतई ही इस सम्मेलन के लिए उपयुक्त नहीं दिखतीं। पर फिर भी दीवान साहब अपनी बात पर अड़े रहे। इन पत्रों के सारांश देने की यहाँ आवश्यकता नहीं है। उपयुक्त पत्रों में ही दरबार के कार्रवाई के विषय में उचित निष्कर्ष निकाला जा सकता है।

सम्पादकीय

यह जानकर हमें महान् दुःख हुआ कि मई के अन्त में दो दिन के लिए पुद्दूकोट्टाई में होने वाले अखिल भारतीय प्राकृतिक चिकित्सा सम्मेलन के सातवें अधिवेशन पर वहाँ के दीवान साहब ने निषेधाज्ञा जारी की है, जब कि पुद्दूकोट्टाई में इस सम्मेलन को आमन्त्रित करने का निर्णय कार्य-कारिणी ने आज से ६ मास पूर्व ही कर लिया था और तब से बराबर इसका आयोजन व प्रबन्ध किया जाता रहा है। यह बात तो दरबार को कभी से विदित रही होगी। अब अन्त में जब कि सम्मेलन सम्बन्धी पूर्ण आयोजन वहाँ हो चुका है उस समय पुद्दूकोट्टाई के दीवान का सम्मेलन पर प्रतिबन्ध लगाना बहुत ही दुःखदायी, आश्चर्यजनक तथा नासमझी और हठ से भरा हुआ ज्ञात होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोई भी निष्पक्ष पाठक इसी निर्णय पर पहुंचेगा यदि वह सम्मेलन के स्वागत समिति के अध्यक्ष द्वारा प्रकाशित उसके और दीवान के बीच होनेवाले पत्र-व्यवहार को उठाकर देखे जिस का किञ्चित आवश्यकीय सारांश हम इसी अङ्क में अन्यत्र प्रकाशित कर रहे हैं। पुद्दूकोट्टाई के दरबार द्वारा लगायी गयी इस निषेधाज्ञा में रोक के चार कारण दिये गये हैं: १—खाद्य पदार्थों की पूर्ति को निश्चित रूप से सञ्चित रखने के लिए, २—अनावश्यकीय तथा व्यर्थ की रेलयात्रा को निरुत्साहित करने के लिए; ३- चेचक जैसी संक्रामक महाव्याधियों के फिर से फैलने तथा बढ़ जाने की सम्भावना से; ४—अन्य कारणों से। यदि विचार कर देखा जाय तो इन कारणों में से एक भी प्राकृतिक चिकित्सकों के सम्मेलन के प्रति लागू नहीं होता और न कार्य हो सकता है। जैसा कि स्वागत-समिति के अध्यक्ष ने स्वयं ही अपने दूसरे पत्र में दीवान को विस्तार पूर्वक समझाने की चेष्टा की है कि स्टेट के बाहर से जो प्राकृतिक चिकित्सक-प्रतिनिधि आवेंगे वे अधिक से अधिक ३० ही तो होंगे। प्राकृतिक चिकित्सक तो जैसे ही स्वल्पाहार व बहुत ही सादे भोजन पर रहते व सदैव जोर देते रहे हैं, बल्कि इसके विपरीत अत्यधिक आहार करने व खूब 'धनी' भोजन करने की वर्तमान प्रथा के वे बहुत बड़े विरोधी हैं। ऐसी दशा में यह सोचना हमारी कल्पना-शक्ति के बाहर की बात है कि इस सम्मेलन में बाहर से आने वाले प्रतिनिधि स्टेट के खाद्य-पदार्थों के भण्डार को कुछ क्षति पहुंचावेंगे। फिर प्रतिनिधियों की रेल यात्रा तो स्टेट के भीतर त्रिचिनापल्ली से पुद्दूकोट्टाई और पुद्दूकोट्टाई से त्रिचिनापल्ली इतनी ही तो होगी जो लगभग ६० मील के पड़ती है। रेलवे लाइन कोई स्टेट की ही निधि नहीं है। इसके अतिरिक्त जिस महान उद्देश्य पर वाद-विवाद करने के लिए ३० प्राकृतिक चिकित्सक रेल-यात्रा कर रहे हैं वह उनके तथा समस्त भारत—नहीं अपितु समस्त विश्व के लिए 'जीवन-मरण' का प्रश्न है—ऐसी यात्रा को कैसे "अनावश्यक" व "व्यर्थ" की रेल-यात्रा कहा जा सकता है—समझ में नहीं आता। तीसरा कारण जो दिया गया है वह तो बड़ा ही उपहासास्पद है। प्राकृतिक चिकित्सकों के लिए यह कहना व सुनना सरासर अपमान है कि वे चेचक या अन्य इसी प्रकार की संक्रामक व्याधियों के फैलाने में योग देंगे जब कि वे स्वयं उन भ्रमपूर्ण एलोपैथिक चिकित्सा प्रणाली के अनुयायियों से कहीं अधिक दृढ़ता से इस बात पर विश्वास करते हैं व दूसरों को यही शिक्षा देने का व्रत लिये हैं कि 'चङ्गा करने से बेहतर रोग को न होने देना है'। निषेधाज्ञा में उल्लिखित "अन्य कारणों से दो ही अर्थ बोध हो सकते हैं-राजनैतिक अथवा साम्प्रदायिक आन्दोलन। इसके विषय में स्वगताध्यक्ष ने अपने प्रथम पत्र में ही दीवान साहब को पूरी तरह विश्वास दिला दिया था कि सम्मेलन में राजनीति को बिलकुल स्पर्श नहीं किया जायगा तथा सम्मेलन का सारा वाद-विवाद प्राकृतिक चिकित्सा व तत्सम्बन्धी विषयों पर सीमित रहेगा। सम्मेलन के सभापति माननीय बाबू पुरुषोत्तमदास जी टण्डन राजनैतिक नेता अवश्य हैं, पर उनको प्राकृतिक चिकित्सा-सम्मेलन की अध्यक्षता का पद इसलिए नहीं दिया गया है कि वे एक माननीय राजनैतिक नेता हैं, बल्कि इसलिए कि वे अपने दैनिक रहन-सहन में प्राकृतिक चिकित्सा के अटल अनुयायी हैं तथा उन्होंने इस चिकित्सा के अन्तर्गत आहार सम्बन्धी-अनेकानेक अनुभव व प्रयोग कर रक्खे हैं। इस तरह स्पष्ट है कि प्राकृतिक चिकित्सा सम्मेलन को अपनी निषेधाज्ञा से मुक्त न करना अथवा उसे एक 'अपवाद' स्वरूप मानकर सम्पादित न होने देना पुद्दूकोट्टाई के दीवान साहब की कोरी हठधर्मी व तर्कहीन भय-ग्रस्त विचार-धारा है। हमें तो भविष्य बड़ा अन्धकार प्रतीत होता है जब कि हम प्रत्यक्ष देखते हैं कि एक ओर तो मित्र-राष्ट्र विजयोल्लास में मदमत्त हो रहे हैं यह कह कर उच्चस्वर से कि विजय हमारी इस युद्ध में इसलिए हुई है क्योंकि हम "चार स्वतन्त्रताओं" के महान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लक्ष्य को लेकर लड़े हैं, पर दूसरी ओर, ठीक इसके विपरीत, हमको एकत्रित होने तथा भाषण-स्वातन्त्र्य के मौलिक स्वत्व को कार्य रूपमें परिणत नहीं करने देते—हमको इस बात की आज्ञा नहीं देते कि हम प्राकृतिक चिकित्सा के अनुयायी व विश्वासी एक स्थान पर एकत्रित हों और एक शान्तिमय सम्मेलन करें जिसमें न हमें राजनीति की ओर क़दम बढ़ाना है न धर्म सम्बन्धी बहस करना है, न साम्प्रदायिक विरोध को उगलना है, बल्कि, जिसमें हमें महज़ स्वास्थ्य के साधारण नियम, सादा रहन-सहन व उच्च विचार के सिद्धान्त को प्रोत्साहन देना है। ऐसे महान् उद्देश्य, उच्च ध्येय व तर्क सम्मत सिद्धान्तों के प्रतिपादन के लिए एक सम्मेलन में एकत्रित होना किसके लिए अरुचिकारक हो सकता है। पुदुदूकोट्टाई के अंग्रेज दीवान साहब प्राकृतिक चिकित्सा-सम्मेलन को अन्ततोगत्वा रोक सकते नहीं। वह तो होकर ही रहेगा, अपनी बात कह कर ही चुप बैठेगा। हाँ पुदुदूकोट्टाई में न होगा, त्रिचिनापल्ली में होगा। त्रिचिनापल्ली में न होगा, अन्यत्र होगा।

अनुभूत प्रयोग

(लेखिका-श्रीमती दयावती देवी)

"मिट्टी नहीं सोना है।" महात्मा गान्धीजी का मैंने लेख पढ़ा और उसी समय से अनेक बीमारियों में मिट्टी को प्रयोग में लाने लगी।

एक नौकर के गर्दन पर बहुत बड़ा जख्म हो गया। यह जख्म उसकी मूर्खता से हुआ था। किसी के कहने से उस ने दाद पर जहरीली दवा लगा कर सिंकाई कर दी। सिंकाई से दाद के स्थान पर जख्म हो गया। गर्दन में अकड़न और ज्वर से व्याकुल हो वह मेरे पास आया। मैंने पिंडोल मिट्टी कपड़छान कर पानी में सान गाढ़ा २ लेप करा दिया। एक सप्ताह में वह बहुत कुछ ठीक हो गया। और कुछ समय बाद पूरी तरह आराम हो गया।

हैजा—होने पर आरंभ में पेट पर मिट्टी की पट्टी रख देने से उलटी तथा दस्त बन्द हो जाते हैं। रोगी को नीबू तथा सन्तरे चूसने को देना चाहिये।

ज्वर—आरंभ में ज्वर का कोई नाम नहीं होता लेकिन ज्वर बिगड़ जाने पर उस के अनेक नाम हो जाते हैं। जितना पेट अधिक खराब होगा उतना ही बुखार अधिक दिन में आराम होगा।

प्रकृति का नियम है कि बीमारी से छेड़छाड़ न की जाय। जो कुछ गलती की है उसका प्रायश्चित्त मनुष्य को करना ही पड़ता है। प्रकृति का कार्य्य शरीर की सफाई करना है। और वह बीमारी के रूप में सफ़ाई करती है। सफ़ाई हो जाने पर हमारा शरीर नवीन सा बन जाता है। लेकिन अज्ञानता वश मनुष्य दबा दबा कर बीमारी को आराम करने का प्रयत्न करता है। अर्थात् प्रकृति के कार्य्य में रुकावट डालता है। और दवा द्वारा बीमारी भयंकर हो जाती है। यहाँ तक की सफ़ाई का कार्य्य रोकने से मनुष्य मर जाता है। आजकल इसी कारण मृत्यु की जन संख्या अधिक दीख पड़ती है। ज्वर मामूली बीमारी है यह उपवास द्वारा शीघ्र दूर हो जाता है। और फलों का अर्क ही इस की मुख्य औषधि है। ज्वर की औषधि तुलसी जी की चाय है। कैसा भी ज्वर क्यों न हो तुलसी जी की चाय तथा सन्तरे-अनार का अर्क देना चाहिये। ज्वर की तेजी के समय पेट पर गीला तौलिया तथा मिट्टी की पट्टी अवश्य रखनी चाहिये। सिर दर्द में माथे पर गीला कपड़ा ठंडे पानी में भिगो कर रखने से दर्द आराम हो जाता है। दो चार बार दिन में नीबू पानी में डाल कर देना भी अच्छा है।

फुन्सियां तथा फोड़े—यह खून की खराबी से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निकलते हैं। जहाँ फुन्सी निकली कि मिट्टी बार बार लगा दीजिये। खून साफ करने के लिये अपने भोजन में परिवर्तन करना भी आवश्यक है। क्योंकि भोजन द्वारा ही बीमारी बढ़ती है। हरे साग अथवा फल खून साफ की अच्छी दवा है। नीम के पत्ते पानी में पका कर उससे यदि फुन्सी वाला मनुष्य स्नान करें तो बहुत शीघ्र आराम हो जायेगा।

आँखें दुखना—गर्मियों में अक्सर बच्चों की आँखें दुखती हैं। और माताएं शिक्षिता न होने से स्वयं उपचार करने में अनभिज्ञ होती हैं। संसार में मनुष्य के लिये आँखें बड़ी आवश्यक वस्तु हैं। इसलिये इसकी रक्षा करना माताओं का विशेष कर्त्तव्य है। गरमी की आँखों के दुखने में ठंडी औषधि करनी चाहिये।

और रात को गाय की मलाई कपड़े पर रख कर फिटकिरी पीस कर मलाई पर बुरक दे और दोनों आँखों पर पट्टी बाँध दें। जब तक आँखें अच्छी न हों यहीं उपचार करें। अवश्य लाभ होगा।

यह सब मैंने स्वयं किये हैं। और अनेकों को लाभ हुआ है। रात्रि को पेट पर मिट्टी की पट्टी तथा गीला कपड़ा भी लाभ पहुंचाता है। आँखों पर मिट्टी की टिकियाएँ भी रखते हैं। तथा गीला कपड़ा रखने से आराम सा मिलता है।

आरंभ में मुझे दवा की लत थी। लेकिन दवा पीते २ शरीर में अनेक नई बीमारियों ने हमले करने आरंभ कर दिये। और मैं इन नवीन बीमारियों से तंग हो उठी। आखिरकार अन्त में मैंने प्रकृति की शरण ली और उपवास-जल चिकित्सा—सूर्य्य किरण चिकित्सा उपचारों द्वारा रोग दूर करने लगी। थोड़े समय में मुझे इन इलाजों से बहुत लाभ हुआ। मैं आज स्वस्थ हूं और बच्चों की बीमारी में धैर्य पूर्वक उपवास तथा जल चिकित्सा से रोगों को दूर करती रहती हूं। मेरी हार्दिक इच्छा है कि मेरी तरह और बहने भी प्रकृति देवी की उपासक बनें। लेकिन जल-चिकित्सा तथा भोजन सम्बन्धी अच्छी २ पुस्तकें 'जीवन सखा' में देख कर मंगा लें और पुस्तकों का अच्छा ज्ञान प्राप्त करलें। पुनः जीवन सखा आदि मासिक पत्रिका को मँगा कर पढ़ें तभी विशेष लाभ होगा। स्वयं सभी रोगों की औषधियाँ कर सकेंगी।

खून आँव के दस्त—हलकी नीली शीशी की दवा चार खुराक। यदि दवा न बन सके तो-दो बार टब-हिप बाथ, अनार, सन्तरे का अर्क, फटे दूध का पानी, पेट पर पिंडोल मिट्टी की पट्टी चार बार—और समय गीली पट्टी अर्थात् ठंडे पानी में तौलिया भिगो कर।

मियादी बुखार—एनिमा रोज प्रातःकाल-गुनगुने पानी में; अनार सन्तरे का अर्क, फटे दूध का पानी; पेड़ू पर मिट्टी की पट्टी रात दिन में चार य छः पट्टी और जिस समय ज्वर अधिक हो तो आध २ घंटे में पट्टी बदल देनी चाहिये और जो एक बार मिट्टी रख चुके हैं उसे दुबारा नहीं रखनी चाहिये। एक बार में मिट्टी खराब हो जाती है। तेज ज्वर में यदि पेट पर मिट्टी रखते रहियेगा तो सन्निपात होने का भय नहीं रहता। मिट्टी किसी कारण से घर पर न हो तो गीला तौलिया ठंडे पानी में भिगो कर पेड़ू पर रख दीजिये। यदि पेट में दर्द हो तो ज्वर उतरने पर गरम मिट्टी की पट्टी भी रख सकते हैं। पट्टी एक व आध घंटे में उतार कर दूसरी रख देते हैं। मियादी बुखार में ज्वर की मियाद होती है। मियाद से पहले कदापि ज्वर ठीक न होगा।

गले में जख्म हो जाने पर शर्बत उन्नाव देना एक एक चम्मच दिन में दो तीन बार—और कान तथा आँख दुखने पर भी उन्नाव अधिक लाभप्रद है। आँखों पर ठंडे पानी की पट्टी कई बार अथवा गुलाब का अर्क आँखों में डालना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रश्नोत्तरी

प्रश्न (१) एक मित्र हैं जिनकी उम्र ४५ वर्ष की है। उनका मसूढ़ा फूल जाता है और दर्द हो जाया करता है। तीन वर्ष से पेशाब से चीनी आती है। आजकल गर्मी के दिनों में रोग ज़्यादा हो जाता है, कमज़ोरी बहुत मालूम होती है। भूख नहीं मालूम होती। पेड़ू पर मिट्टी या जल चिकित्सा करने का मौका नहीं है। ट्रअरिङ्ग आफ़ीसर हैं। एक जगह रहने का मौक़ा नहीं मिलता—१० दिन यहाँ तो ५ दिन दूसरी जगह। डाक बंगलों में रहना पड़ता है, भोजन दिन को दो बजे करते हैं और रात को दस बजे। आँख से पानी भी गिरता है।

(२) एक स्त्री जिसकी उम्र ५२ वर्ष की है सिर के दर्द से परेशान है। सिर के ऊपर तालु पर खौलता रहता है। उठने बैठने से चाँद पर चक्कर, दर्द मालूम होता है। चाँद फटती रहती है। आँख के ऊपर भौं पर भी दर्द रहता है। भोजन अच्छा नहीं मालूम होता। हाथ-पैर के तलुओं में लहर रहता है।

ब्रजनन्दन सिंह C/o बी० एन सिंह इन्सपेक्टर
ओरियण्टल लाइफ एश्योरेन्स कम्पनी
आमगोला रोड मुजफ़्फ़रपुर

उत्तर (१) आपके मित्र को मधुमेह है। रोग से मुक्ति पाने के लिए उन्हें जलचिकित्सा भी करना होगा और अपने भोजन पर भी विशेष ध्यान रखना होगा। ट्रअरिङ्ग आफ़ीसर होने के कारण यदि वे अपने साथ टब इत्यादि ले जाने में झंझट समझते हैं तो वे जहाँ भी रहें साधारण पूर्ण शरीर का स्नान करते समय १०-१५ मिनट के लिए दोनों समय पेड़ू स्नान (Hip bath) निम्नलिखित सरल तरीक़े से ले सकते हैं। एक पीढ़े के ऊपर एक गीले तौलिये को फैला कर उस पर बैठ कर दोनों पैरों को किसी ऊँची जगह या चौकी पर इस तरह रख लें कि उन पर शीतल जल न पड़ने पावे। इसके बाद एक बाल्टी में ठण्डा पानी लेकर उसमें एक कपड़े के टुकड़े को शीतल जल में डुबो-डुबो कर उससे नाभि के नीचे के भाग को अर्थात् पेड़ू को १०-१५ मिनट तक धीरे-धीरे रगड़ें। टब के अभाव में इस तरह पेड़ू स्नान लिया जा सकता है। कुछ दिन इस प्रकार पेड़ू स्नान दोनों समय लें। इसके पश्चात् एक समय पेड़ू स्नान लें, दूसरे समय मेहन स्नान (Sitz bath) लें। मेहन स्नान लेने का सरल तरीका यह है कि एक बर्तन में सेर दो सेर शीतल जल (जितना शीतल मटके में रखने से हो जाता है) लेकर उसमें एक कपड़ा या रूई को भिगोकर इसके पानी से लगातार लिङ्ग मुण्ड के चमड़े को मामूली तौर से रगड़-रगड़ कर धो डालना होता है। लिङ्ग के बाहरी चमड़े को खींच कर बांयें हाथ की दो उंगलियों से इस प्रकार पकड़े रहना होता है कि जिससे लिङ्ग-मुण्ड का मांस भीतर में रहे एवं ऊपर का ही चमड़ा दोनों उँगलियों के बीच में रहे। इसके बाहर चमड़े के ऊपर ही कपड़े की सहायता से पानी लेकर पानी सहित कपड़े को लगातार ऊपर नीचे घुमाते हुए धोते रहना चाहिये। इस बाथ को इस प्रकार सावधानी से लेना चाहिये कि जिससे किसी अवस्था में कहीं भी ज़ोर की रगड़ न लगने पावे। इसको १०,१५ मिनट तक करें। पैर और शरीर का ऊपरी भाग सूखे रहें। पेड़ू स्नान से कब्ज़ दूर होगा, स्वस्थ रक्त का सञ्चालन आंतों में होने लगेगा। जिससे आंतें क्रियाशील व सशक्त होंगी। मेहन स्नान का प्रभाव स्नायुमण्डल (Nervous system) पर पड़ता है जिससे स्नायु सबल व शक्तिशाली होंगे व दुर्बलता बहुत कम प्रतीत होगी। इसके अतिरिक्त मधुमेह के रोगी को अपने आहार को बहुत अधिक नियमित रखना होगा। बहुधा चीनी पेशाब में उन्हीं लोगों के अधिक जाती है जो श्वेतसार वर्ग (Starchy) के खाद्य-पदार्थों तथा शक्कर,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुड़ व चीनी आदि का बहुत प्रयोग करते हैं। इसलिये ऐसे रोगियों को गेहूँ, चावल आलू, गुड़, शक्कर, चीनी आदि का सेवन कतई बन्द कर देना चाहिये। उनके स्थान पर उन्हें मांस वर्गीय (Protein) पदार्थों का सेवन करना चाहिये अर्थात् चने की रोटी, दूध व मठे का प्रयोग करना चाहिये। जौ की रोटी भी खायी जा सकती है। दाल खाना भी बन्द कर देना होगा। दाल के स्थान पर हरी सब्ज़ी की मात्रा बढ़ायी जा सकती है। फल जो भी मौसमी मिलें उनका प्रयोग करना चाहिये। मधुमेह के रोगी को जामुन बहुत लाभ पहुंचाती है। इस लिए अब जामुन का मौसम आ रहा है उन्हें जामुन का सेवन भरसक करना चाहिये। सब तरह की मिठाई, चाय, बिस्कुट आदि खराब चीज़ों को तो त्याग देना ही चाहिये। आटे में चोकर अवश्य मिला रहे। हाँ, सन्ध्या के भोजन को अवश्य सोने के २-३ घण्टे पहिले कर लें। सूर्यास्त के पहिले समाप्त कर दें तो बहुत ही अच्छा होगा। मसूड़ों में भाप लें तथा दाँतों को शहद वा नींबू का रस मिला कर पानी से कुल्ला करे। नमक सरसों के तेल मिला कर मञ्जन करें।

उत्तर (२) इनको उपयुक्त विधि के अनुसार पेडू स्नान व मेहन स्नान दीजिए। रात में पेडू पर मिट्टी की पट्टी लगा कर सो जाया करें। सर व गर्दन पर भी खूब ठण्डे पानी में सनी हुई मिट्टी की पट्टी कपड़े में रख कर प्रयोग करें दो बार। दो तीन बार खाली ठण्डे पानी में भिगोयी हुई मोटी तौलिया को चौपर्त कर गर्दन व सर पर दिन में रक्खें। भोजन में कुछ दिन रोटी व तरकारी ही खायँ। आलू की तरकारी न खायँ। आशा है शीघ्र ही फ़ायदा होगा।

प्रश्न (1) "Protein cannot bestored in the body and therefore is not only useless but absolutely harmful to increse the white of protein for fathring purpose. The excess of protein will simply putrefy in the intestines cauiny toxcemia and disease. (क्रमशः)

सहकारी चाहिये

गोरखपुर के संचालक को चिकित्सा-कार्य में सहायता देने के लिये दो सहकारी चाहिये—एक स्त्री और एक पुरुष। बढ़िया स्वास्थ्य, मृदु स्वभाव, प्राकृतिक चिकित्सा का साधारण अध्ययन और हिंदी का अच्छा ज्ञान आवश्यक हैं।

प्राकृतिक चिकित्सा का ऊंचा ज्ञान प्राप्त करने के सुअवसर के साथ-साथ वेतन योग्यतानुसार साठ रुपये से सौ रुपये मासिक तक। प्रार्थना पत्र शीघ्र भेजें।

मैनेजर—आरोग्य मंदिर, गोरखपुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Printed at the Mission Press Allahabad.
Published by Dr. Baleshwar Prasad Sinha. 11 Lookerganj. Allahabad.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पढ़िये ! लाभ उठाइये !!

सुन्दर, स्वस्थ और सुखी जीवन के इच्छुकों को, ये पुस्तकें पढ़नी चाहिए

(१) रोगों की अचूक चिकित्सा (चतुर्थ संस्करण) : श्री जानकीशरण वर्मा, बी० ए० ५)
(२) मठा उसके गुण तथा उपयोग (परिवर्द्धित संस्करण) : श्री महेन्द्रनाथ पांडेय ॥=)
(३) स्वास्थ्य और व्यायाम—केदारनाथ गुप्त ... ... २।)
(४) स्वास्थ्य के नुस्खे—'जीवन सखा' कार्यालय ... ... ।)
(५) क्या और कैसे खायें—डा० बालेश्वर प्रसाद सिंह ... ... ।=)
(६) ब्रह्मचर्य ही जीवन है—श्री स्वामी शिवानन्द ... ... १॥)
(७) आनन्दमय जीवन ... ...
(८) कब्ज या कोष्ठबद्धता : डा० बालेश्वर प्रसाद सिंह ... ... १)
(९) शक्ति दर्शन—शंकरलाल तिवारी ... ... ॥)
(१०) आँख का अचूक इलाज : श्री महेन्द्रनाथ पांडेय ... ... २)
(११) जुकाम : श्री महेन्द्रनाथ पांडेय ... ... १॥)
(१२ शहद के गुण : और उपयोग—श्री महेन्द्रनाथ पांडेय ... ... ॥।)
(१३) वैज्ञानिक जलचिकित्सा ... ... २)
(१४) स्वास्थ्य के लिये शाक तरकारियां : श्री महेन्द्रनाथ पांडेय ... १॥)
(१५) मन की अपार शक्ति : श्री केदारनाथ गुप्त ... ... ॥=)
(१६) विचारों का प्रभाव : श्री रामसहाय अग्रवाल ... ... ॥)
(१७) हम सौ वर्ष कैसे जीवें : केदारनाथ गुप्त, एम० ए० ... ... १॥।)
(१८) सूर्य-नमस्कार : श्री भगवती प्रसाद पांडे, बी० ए० ... ... १।)
(१९) स्वास्थ्य और जल चिकित्सा : प्रिन्सिपल केदारनाथ जी गुप्त ... ॥।)
(२०) आहार ही औषध है : डा० एल० एन० रतरा ... ... १॥)
(२१) फलाहार चिकित्सा : श्री महेन्द्रनाथ पांडेय ... ... २।)
(२२) Nature Cure by H. Lindlahr, M.D 7 8
(२३) Food-de Medicine by Dr. L. N. Ratra, H.M.B. ... 1 4
(२४) Universal un-cooked food 3 8
(२५) Nature Cure of Eyedefect By Dr. K. L. Sharma. ... 2 0

स्वास्थ्य सम्बन्धी पुस्तकें मिलने का पता :—

मैनेजर, स्वास्थ्य ग्रंथ-भंडार, लूकरगंज, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Reg. No. A-172

उत्तरी भारत में प्राकृतिक चिकित्सा का प्रमुख केन्द्र

'प्राकृतिक स्वास्थ्य गृह' प्रयाग

जहाँ अब तक न जाने कितने तथाकथित असाध्य रोगों से पीड़ित होने वाले रोगियों ने पहुँ-कर अपने को नीरोग और स्वस्थ बना लिया—यही कारण है, जो यह चिकित्सा-केन्द्र लगातार उन्नति करता जा रहा है।

यदि आप किसी भयानक रोग से पीड़ित हो रहे हैं, डाक्टरों और वैद्यों की दवा से निराश हो चुके हैं, तो आप फ़ौरन यहाँ पधारें या पत्र देकर चिकित्सा के सम्बन्ध में विवरण प्राप्त करें।

स्वास्थ्य-गृह में किन रोगों की चिकित्सा सफलता-पूर्वक होती है:

साधारण दुर्बलता, स्नायु-दौर्बल्य, सभी तरह के चर्म-रोग, रक्ताभाव, पुराना जुकाम, खांसी, क़ब्ज़, संग्रहणी, प्लुरिसी, दमा, बवासीर, निद्राभाव, आमाशय का ज़ख्म, आँतों की ख़राबी, सब तरह के ज्वर, घेवा, धमनियों का कड़ा हो जाना (Arteriosclsrosis), रक्त चाप का बढ़ना और कम होना (High and Low Blood Pressure), उपान्त्रदाह, (Appendicitis), ज़हरबाद (Carbuncle), गठिया, पित्ती उछलना, पेचिश, सब तरह के दर्द और सूजन, गुर्दे की बीमारी, यकृत की बीमारियां, नपुंसकता, मधुमेह (बहुमूत्र), मोटापा, दुबलापन, कर्णरोग, उन्माद, सभी तरह के स्त्री-रोग इत्यादि इत्यादि।

यहाँ जिस चिकित्सा विधि से रोगी का इलाज किया जाता है उनमें यौगिक क्रियाएं, आसन, प्राणायाम, मालिश, सूर्य-रश्मि-चिकित्सा, जल-चिकित्सा, मिट्टी तथा वाष्प-चिकित्सा, आहार चिकित्सा, उपवास, मानसोपचार आदि सम्मिलित हैं।

विशेष जानकारी के लिए नीचे लिखे पते से पत्र व्यवहार करें:—

रोगियों की सुविधा का विशेष प्रबन्ध

रोगियों के आराम और सुविधा के ख़्याल से स्वास्थ्य-गृह में इस साल से कुछ परिवर्तन कर दिया गया है जिसमें खासकर स्त्रियों की परिचर्या का विशेष प्रबन्ध है। इस वर्ष से इसकी तीन श्रेणियां कर दी गई हैं। प्रथम श्रेणी वाले रोगियों से १००) मासिक, द्वितीय श्रेणी के रोगियों से ६५) और तीसरे श्रेणी के रोगियों से ४०) मासिक लिये जायंगे। सुविधाओं का विवरण पत्र लिख कर मंगाइए। पत्र के साथ टिकट भेजना ज़रूरी है।

नोट—संक्रामक रोगों से पीड़ित रोगियों के रखनेका प्रबन्ध यहां नहीं है।

मेनेजर—प्राकृतिक स्वास्थ्य-गृह, लूकरगंज, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by

जीवन सखा

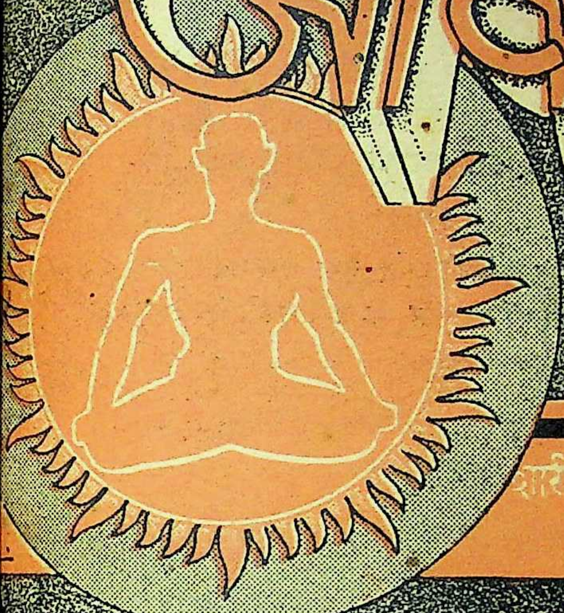

शारीरिक, मानसिक और नैतिक स्वास्थ्य का
पथ-प्रदर्शक

संयुक्त प्रान्त, मध्य प्रान्त तथा बिहार के शिक्षा विभागों द्वारा स्वीकृत

इस अंक में पढ़िये

लेखक पृ

१—रोग की स्वपरीक्षा— [महात्मा गांधी] ... ...
२—आसन-व्यायाम की वैज्ञानिक पृष्ठि-भूमि— [डा० बालेश्वर प्रसाद सिंह] ... ...
३—पीलिया अथवा कमल रोग— [श्री श्रीकृष्ण शर्मा] ... ...
४—प्राणायाम-चिकित्सा— [श्री विजय बहादुर सिंह, बी० ए० ... ...
५—रोग निवारक स्नान कैसे करें ? [श्री विश्वम्भर नाथ द्विवेदी, एन० डी० डी० वाई० ... १
६—सगर्भावस्था— [डा० इन्दुमती सिनहा, एन० डी० डी० वाई० ... ... १
७—अ० भा० प्राकृतिक चिकित्सा सम्मेलन १
८—अपने विचार (सम्पादकीय) २
९—प्रश्नोत्तर २

वार्षिक मूल्य ३)

प्रति अंक का ।=)

सम्पादक

डा० बालेश्वर प्रसाद सिंह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वास्थ्य सम्बन्धी ३ नए प्रकाशन

कविराज महेन्द्रनाथ पाण्डेय की स्वास्थ्य सम्बन्धी महत्वपूर्ण कृतियाँ प्राकृतिक रोगोपचार के प्रेमियों के बीच कितनी लोक प्रिय हुई हैं, यह कहने की बात नहीं इनकी प्रत्येक पुस्तक की अधिकाधिक मांग ही उनकी लोक प्रियता का सहज प्रमाण हैं। आपकी नयी युक्तियाँ निम्न-लिखित हैं:—

(१) **तपेदिक**—तपेदिक के सम्बन्ध में सारी जानकारी की बातें, तथा इस भयंकर रोग से बचाव का उपाय इस पुस्तक के द्वारा आप बिना किसी की सहायता के जान सकते हैं। इसकी एक प्रति तो प्रत्येक घर में रहनी ही चाहिए। मूल्य ४) रु०

(२) **जुकाम**—इसमें जुकाम, ब्रोंकाइटिस, दमा, खांसी, निमोनिया, एनफ्लुएञ्जा आदि का अचूक इलाज बताया गया है। बड़े काम की चीज है। मूल्य १।।) रु०

३ **हमारा भोजन**—आहार सम्बन्धी यह अनूठी पुस्तक प्रेस में छप रही है। शीघ्र ही प्रकाशित हो जायगी।

इन पुस्तकों के लिए आज ही लिखें—

मैनेजर-स्वास्थ्य ग्रंथ भण्डार, 'जीवन सखा' कार्यालय, लूकरगंज, प्रयाग।

सहकारी चाहिये

आरोग्य मंदिर गोरखपुर के संचालक को चिकित्सा-कार्य में सहायता देने के लिये दो सहकारी चाहिये—एक स्त्री और एक पुरुष। बढ़िया स्वास्थ्य, मृदु स्वभाव, प्राकृतिक चिकित्सा का साधारण अध्ययन और हिंदी का अच्छा ज्ञान आवश्यक है।

प्राकृतिक चिकित्सा का ऊंचा ज्ञान प्राप्त करने के सुअवसर के साथ-साथ वेतन योग्यतानुसार साठ रुपये से सौ रुपये मासिक तक। प्रार्थना पत्र शीघ्र भेजें।

नोट—रोगी सहकारी-पद के लिये प्रार्थना-पत्र न भेजें। उन्हें चिकित्सा कराने के लिये अलग नियम मंगवाने चाहिये।

मैनेजर—आरोग्य मंदिर, गोरखपुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्
NATURE ONLY HEALS

जीवन सखा

सम्पादक
डा० बालेश्वरप्रसाद सिंह

वर्ष १०   जून, १९४५   [अङ्क ६

रोग की स्वपरीक्षा

मैं समझता हूं कि अपने शरीर की जानकारी अधिक से अधिक खुद को ही होती है। इसी से दिखाई देता है कि यदि अपने शरीर को पहचान न सका तो उसे डाक्टर को ठीक जवाब देते न बनेगा। 'सर में दर्द है' इतना कहने से डाक्टर क्या बतायेगा। सर क्यों दर्द करता है, यह रोगी की ही समझ में आना चाहिए। यही बात बहुत सी बातों में हमें समझने लायक है। वही बात चिकित्सा के सम्बन्ध में। अमुक चिकित्सा का क्या परिणाम हुआ, यह डाक्टर अपने आप नहीं समझता, उसे रोगी पर ही अवलम्बित रहना पड़ता है। किन्तु सभी रोगियों को चिकित्सा का क्या परिणाम हुआ, यह पहचानने नहीं आता। आहार शरीर की रोज की चिकित्सा है। उसका परिणाम खाने वाले को ही मालूम हो सकता है। अतः जिसे हवा, पानी औरअन्न का परिणाम समझ में आया वह अपने शरीर पर जितना अधिकार रख सकता हैं उतना डाक्टर कभी नहीं रख सकते। अतः मैं सझता हूं कि हम सबको शरीर के बारे में सामान्य ज्ञान प्राप्त कर ही लेना चाहिए। उसी तरह हवा, पानी और आहार के बारे में भी इतना ज्ञान प्राप्त करने लायक साहित्य अपने पास है ही वह सब पढ़ने की आवश्यकता नहीं। उसमें से थोड़ा समझ लिया कि काम चल जायेगा। ......मेरे बारे में मैं मानता हूं कि अपने काम लायक यदि मैंने ज्ञान न प्राप्त किया होता तो मैं कभी का समाप्त हो गया होता। मेरा टूटा-फूटा शरीर भी मेरे सावधानी साथ रहने के ही कारण बच सका है। मुझे बिश्वास है कि उसमें डाक्टरों का बहुत थोड़ा हाथ है।'—बापू।

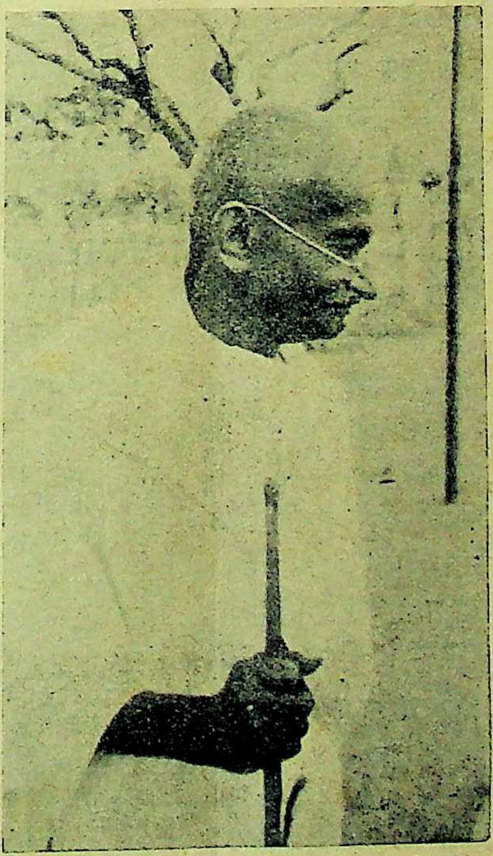

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आसन-व्यायाम की वैज्ञानिक पृष्ठ-भूमि

[डा० बालेश्वर प्रसाद सिंह]

अभी कुछ वर्ष पहले तक व्यायाम के शास्त्रीय अथवा वैज्ञानिक महत्व की ओर कोई ध्यान नहीं देता था। 'व्यायाम-वीर' पहलवान या फ़ौज के सिपाही लोग ही होते थे। इसके करने का एक मात्र उद्देश्य शारीरिक बल बढ़ाना होता था। सर्व-साधारण जनता का इस ओर कोई विशेष ध्यान नहीं था। लड़के, बूढ़े, अधबूढ़े, जीर्ण रोगी या इसी प्रकार के और भी विपन्न लोगों को भी व्यायाम करना चाहिये—इस बात की शायद कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था। और लड़कियां तथा स्त्रियाँ भी व्यायाम कर सकती हैं या इनके लिये भी व्यायाम उतना ही आवश्यक है जितना पुरुषों के लिये, यह बात तो कोई सोच भी नहीं सकता था।

इधर थोड़े दिनों से साधारण स्वास्थ्य-रक्षा तथा उन्नति और विशेष कर कुछ खास-खास रोगों की (मुख्यतः जीर्ण रोगों की) चिकित्सा के रूप में व्यायाम पर वैज्ञानिक व्यायाम-विशारद लोग बहुत ध्यान देने लगे हैं। इस प्रकार का देशव्यापी आंदोलन पहले जर्मनी, अमेरिका आदि पाश्चात्य देशों से आरम्भ हुआ और अब भारत में भी इस विषय के वैज्ञानिक अनुशीलद की और विद्वानों तथा सर्वसाधारण का भी ध्यान आकर्षित हुआ है। पर अब भी बहुत कमी है, पाश्चात्य देशों की तुलना में एक प्रकार से नहीं के बराबर। अब भी सुबह या शाम, सड़क या पार्क में व्यायाम के लिये दौड़ते या तेज़ी से चलते हुये आदमी को लोग इस दृष्टि से देखते हैं कि मानों कोई असाधारण बात हो। इसका एक मात्र कारण यही है कि अभी भी इस देश में नियमित रूप से, वैज्ञानिक महत्व को समझ कर, व्यायाम करने वालों की संख्या बहुत कम है।

आधुनिक सभ्यता के युग में जैसे बहुत से नये प्रश्न, जो बर्बर युग में अनुपस्थित थे, समाज के सामने आ गये हैं, जिनमें शायद सब से जटिल प्रश्न हो चला है स्वास्थ्य-रक्षा का—ख़ास कर सभ्यों और शिक्षितों की। जो जितना ही ज्यादा पढ़ा लिखा और मार्जित है वह उतना ही अस्वस्थ, शारीरिक दृष्टि से दुर्बल और रोगग्रस्त है; और शिक्षितों के मुख्य रोग हैं—कोष्ट-बद्धता या कब्ज़ियत तथा अजीर्ण या बदहजमी।

आधुनिक युग ही कुछ ऐसा है कि नगर निवासी शिक्षितों को अधिकतर बैठे-बैठे लिखने-पढ़ने का काम करना पड़ता है। चलने फिरने की न उन्हें जरूरत है न फ़ुरसत। वर्तमान वैज्ञानिक युग में घर बैठे उन्हें जीवन-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यापन की सभी सामग्रियां भी मिल जाती हैं। किसी बात के लिये हाथ-पैर हिलाने की जरूरत नहीं। इस से और जो कुछ भी लाभ हुए हों उस पर विचार करने का इस लेख में स्थान नहीं है; पर इससे हानि जो हुई है उस से बचने और दूर करने का उपाय बताना ही हमारा उद्देश्य है।

जीविका के लिये जब मनुष्य को दिन भर मुक्त वायु में घूमना, दौड़ना और युद्ध करना या शिकार करना या खेत में काम करना पड़ता था तब स्वास्थ्य का प्रश्न न उतना जटिल था और न स्वास्थ्यरक्षा के लिये व्यायाम-आंदोलन का प्रश्न ही उठता था। तब तो पहलवानों और सैनिकों को ही या शौकिया बल बढ़ाने की ख्वाहिश रखनेवालों के लिये ही व्यायाम की जरूरत थी। मामूली लोगों का रहन-सहन ही ऐसा था कि आप से ही दिन भर के जीवनसंग्राम में इतना शारीरिक श्रम हो जाता था कि अलग से कोई कसरत करने का सवाल ही नहीं उठ सकता था। आज भी जो इस प्रकार का जीवन बिताते हैं (जैसे खेतिहर, कुली, मज़दूर आदि श्रमिक वर्ग) उनका स्वास्थ्य बिना व्यायाम के ही शिक्षितों से लाख दर्जे अच्छा है। हाँ, पुराने जमाने के श्रमिकों से कहीं गये गुजरे वे इस लिये हो रहे हैं कि वर्तमान सभ्यता के कुछ अभिशाप उन्हें भी लग गये हैं जैसे—चाय, बीड़ी तथा और कई तरह के नशे। पर श्रमिक-वर्ग को भी दिन भर जितनी शक्ति या 'एनर्जी' वे ख़र्च किये होते हैं, उसकी क्षति-पूर्ति के लिये एक विशेष प्रकार के क्षति पूरक व्यायाम की आवश्यकता होती है जिससे उपयुक्त शिथिलीकरण द्वारा उनके टूटे-फूटे सेलों की मरम्मत हो जाय।

तो वर्तमान सभ्यता में जब से यह व्यायाम-आंदोलन चला है, विशेषज्ञों को एक ऐसी व्यायाम पद्धति की जरूरत महसूस हो रही है जो कम से कम समय में अधिक से अधिक और लाभदायक सिद्ध हो, खासकर पढ़े लिखे लोगों को जिनको अधिकतर बैठ कर लिखने-पढ़ने का काम करना पड़ता है। इनका जीवन इतना व्यस्त रहता है कि व्यायाम के लिये २४ घंटे में १०-१५ मिनट का समय निकालना भी इनके लिये कठिन होता है। और यदि किसी तरह निकाला भी तो साथ ही यह सवाल भी उठता है कि व्यायाम ऐसा हलका होना चाहिये कि दिल, दिमाग पर कोई नुक़सान या बुरा असर न पैदा हो। क्योंकि सही या ग़लत, विज्ञानविद् आधुनिक डाक्टर यह कहते फिरते हैं कि डंड, बैठक, कुश्ती आदि व्यायामों से दिल पर बहुत ज्यादा जोर पड़ता है और दिमाग पर भी। दिल इन बेचारों (शिक्षितों) का यौंही काफी कमजोर होता है और चाय, पान, सिगरेट (या बीड़ी) तम्बाकू या सुंघनी के बिना ये काम ही नहीं कर सकते। ये सभी चीजें 'निकोटीन' नामक विष से भरी होती हैं जो दिल और फेफड़ों के लिये घातक हैं। टहलना बड़ी अच्छी कसरत है। इसके बारे में यह दावा किया जाता है कि भारी कसरतों के सभी गुण इसमें हैं पर उनके नुकसान एक भी नहीं! पर इसके लिए सुबह-शाम कम से कम घंटे-दो घंटे का समय चाहिये, खुला मैदान और ठीक मौसम (यानी बारिश वगैरह न हो रही हो) चाहिये, पर ये तीनों चारों बातें एक दिन के लिये भी एक साथ नहीं मिल पातीं। तो आख़िर उपाय क्या है?

वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध कर दिया है कि स्वास्थ्य-रक्षा के लिये सब से आवश्यक वस्तु है स्नायु-संस्थानों को मजबूत बनाना। स्नायु-परिवर्धन का सवाल अब गौण हो पड़ा है। उचित व्यायाम वही है जिससे स्नायुओं पर कम जोर पड़े पर उसका भरपूर असर स्नायु-संस्थानों पर हो।

पर विज्ञान विशारदों का एक मुख्य सिद्धान्त यह भी है कि स्नायु संस्थानों का ठीक हालत में रहना श्वसन-क्रिया पर निर्भर करता है। यानी जिसकी श्वसन-प्रणाली में किसी वजह से कोई गड़बड़ी आ गई हो, उसके स्नायु-संस्थान ठीक हालत में नहीं रह सकते, वैज्ञानिक अन्वेषणों से यह सिद्ध हो चुका है।

तो यह स्पष्ट है कि स्वास्थ्य ठीक रखने के लिये पहले ठीक तरीके पर सांस लेना और बाहर निकालना सीखना होगा क्योंकि विविध स्नायु-संस्थानों में जो कुछ भी मल एकत्रित होता है वह प्रश्वास (सांस बाहर निकालना) द्वारा बाहर फेंका जाता रहता है और श्वास के द्वारा विशुद्ध रक्त का संचालन स्नायु-संस्थानों में होता रहता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। यह आदान-प्रदान प्रतिक्षण शरीर के अंदर होता रहता है और यह क्रिया जिस शरीर की ठीक है वहीं शरीर नीरोग है।

हम जानते हैं कि किसी भी व्यायाम द्वारा सांस तेजी से आने जाने लगती है, यानी विकार तेजी से बाहर फेंके जाने लगते हैं और विशुद्ध प्राणवायु (आक्सिजन) के प्रवेश द्वारा स्नायु-संस्थान विशुद्ध रक्त की प्राप्ति द्वारा उत्फुल्ल होने लगते हैं।

साथ ही यह भी स्पष्ट है कि यह क्रिया जितनी ही खुली और साफ जगह में होगी उतना ही ज्यादा फायदा होगा।

व्यायाम के सम्बन्ध में एक अन्वेषण और हुआ है। हम जानते हैं कि हमारे शरीर के अन्दर बहुत सी गिल्टियां (थाइराइड आदि) हैं, जिनका रस स्वास्थ्य पर विशेष प्रभाव रखता है। इन बड़ी गिल्टियों के सिवा असंख्य छोटी गिल्टियां सारे शरीर में व्याप्त हैं, जिन्हें अंग्रेज़ी में 'डक्टलेस्ग्लैंड' या अंतःस्रवा ग्रंथियां कहते हैं। इन ग्रंथियों या गिल्टियों का रस भी शरीर के स्वास्थ्य के लिये अनिवार्य है। इन अनगिनत ग्रंथियों का रस यदि रक्त को नहीं मिल रहा है तो स्वास्थ्य ठीक नहीं रह सकता। इन ग्रंथियों का जो सूक्ष्म रस रक्त में बराबर मिलता रहता है उसी के अनुसार रक्त संचालन निर्दोष या सदोष हुआ करता है, यानी यदि इन गांठों का रस काफी पैमाने पर रक्त को नहीं मिल रहा है तो संचालन ठीक नहीं होगा। तो यह स्पष्ट है कि व्यायाम-पद्धति उत्तम और वैज्ञानिक वही कही जायगी जो—

(१) स्नायु-संस्थानों को दृढ़ तो बनावे पर स्नायुओं पर ज्यादा जोर न डाले।

(२) श्वास-प्रश्वास क्रिया को ठीक बनावे।

(३) अंतः स्रवा ग्रंथियों का रस उचित परिमाण में रक्त में पहुँचावे।

जो व्यायाम-पद्धति ऊपर कही तीनों बातों को नहीं संभाल सकती वह किसी दूसरे पहलू से भले ही अच्छी हो, पर स्वास्थ्यरक्षा या स्वास्थ्य-सुधार की दृष्टि से वह दोषयुक्त ही मानी जायगी, यानी उसके द्वारा कुछ दिन के लिये तगड़ी मांशपेशियां, उभड़े हुये पुट्ठे भले ही दिखाई पड़ जायँ पर असल तन्दुरुस्ती से इसका ताल्लुक कम है।

एक दूसरी दृष्टि से विचार करने पर यह बात और स्पष्ट हो जाती है। व्यायाम भी एक प्रकार का व्यवसाय या व्यापार है। प्रत्येक व्यवसायी की सफलता इसी एक बात पर निर्भर करती है कि कम से कम लागत पर ज्यादा से ज्यादा लाभ हो। व्यायाम भी वही उत्तम कहलायेगा कि जिसके द्वारा शरीर के बाहरी-भीतरी सभी कल-पुर्जों की पूरी 'ओवर-हॉलिंग' या मरम्मत हो जाय पर शारीरिक शक्ति या पूँजी में कमी न हो। कुश्ती या दंड-बैठक वगैरह में या फुटबाल, हॉकी आदि खेलों में जितना दम भरता है, जितनी थकान आती है और दिल की धड़कन जितनी बढ़ जाती है, वैसी कोई बात योगिक व्यायाम में नहीं होती, पर लाभ उनसे कहीं ज्यादा होता है।

आरंभ में दिल की धड़कन कुछ ज्यादा हो जाती है आसनों के व्यायाम से भी, पर अभ्यास हो जाने पर ऐसा नहीं होता, और करने के बाद थकान या ग्लानि की जगह एक विचित्र स्फूर्ति तथा उत्साह शरीर में भर उठते हैं।

आसनों का सब से पहले पृष्ठवंश या रीढ़ और उसके द्वारा मस्तिष्क पर प्रभाव पड़ता है। रीढ़ तथा मस्तिष्क से निकली हुई नाड़ियों पर ही आसनों का असर पहले पड़ता है। इन नाड़ियों तथा इनकी असंख्य शाखा-प्रशाखाओं में एकत्रित मल को ये पहले दूर करते हैं और अधिक मात्रा में जो रक्त का संचालन होता है, उससे वहाँ के नाड़ी केंद्र और 'सेल' ताजे हो उठते हैं।

भुजंग, शलभ, धनुष, मत्स्येंद्र आदि आसनों से रीढ़ की सारी हड्डियों का व्यायाम हो जाता है और वहाँ के सब 'सेल' नया खून पाकर स्वस्थ हो उठते हैं।

शीर्ष, सर्वाङ्ग और विपरीतकरणी से मस्तिष्क के अंदर की सारी नाड़ियों का व्यायाम हो जाता है और इनके द्वारा वहां के सारे घटक (रक्तकोष) स्वस्थ और सबल हो उठते हैं।

साथ ही यह भी स्मरण रखना चाहिये कि व्यायाम का एक मात्र उद्देश्य अंग प्रत्यंग को थकाना या परिश्रम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कराना ही नहीं होना होना चाहिये, जैसा कि अधिकतर व्यायाम-पद्धतियों द्वारा होता है। वैज्ञानिक तथा आदर्श व्यायाम पद्धति के दो लक्ष्य होते हैं:—एक तो कुछ विशेष अंगों को उपयुक्त श्रम देना और दूसरा यह कि साथ ही साथ कुछ दूसरे अंगों को उचित मात्रा में विश्राम मिले, यानी उनका शिथिलीकरण होता चले। यह दोनों क्रियायें एक साथ होती चलें, ऐसा एकमात्र योगिक व्यायाम पद्धति में संभव है, यह वैज्ञानिकों ने सिद्ध कर दिया है। उदाहरणार्थ—शीर्षासन तथा सर्वाङ्ग आसन द्वारा जब मस्तिष्क के अंदर की नाड़ियों तथा उनसे संबद्ध केंद्रों का व्यायाम होने लगता है उसी समय रीढ़ की नाड़ियों तथा उनसे मिले हुये केंद्रों को आराम भी मिलना शुरू हो जाता है। व्यायाम और शिथिलीकरण (रिलेक्सेशन) इन दोनों क्रियाओं का उचित सामंजस्यपूर्ण मेल (बैलेंस) जिस पद्धति में हो और साथ ही जिसके करने में शारीरिक शक्ति या पूंजी कम से कम लगे वही आदर्श और वैज्ञानिक मानी जायगी।

वैज्ञानिक व्यायाम पद्धति का लक्ष्य एक बात की ओर और रहता है और वह है श्वसन क्रिया और उसका नियंत्रण। यह तो सभी जानते हैं कि कोई भी कसरत या खेल से श्वसन-क्रिया बढ़ जाती है, यानी आदमी तेजी से साँस लेने लगता या हांफने तक लगता है। और प्रायः इसका फल यह होता है कि कसरत खतम होने पर थक जाता है या उतना ही शून्य हो पड़ता है। यह न होना चाहिये। श्वसन-क्रिया बढ़ना तो ठीक है पर उतना ही कि इसकी प्रतिक्रिया जब होने लगे तब आदमी अपने को पहले से ज्यादा ताजा और उत्साह तथा स्फूर्ति से भरा हुआ पावे। एक घंटा कसरत का नतीजा यह न हो कि दिन भर आराम करने की जरूरत मालूम हो। होना यह चाहिये कि १५-२० मिनट कसरत करने से दिन भर खुशी खुशी अपना काम करने का उत्साह तथा स्फूर्ति प्राप्त हो, हाँफ न छूटे, और न पस्त होकर पड़े रहने की आवश्यकता प्रतीत हो। यह तो होता ही है साथ ही श्वास-प्रश्वास क्रिया को ठीक करना और उस को अपने वशीभूत तक कर डालना यह तो योगिक व्यायाम का विशेष क्षेत्र है। बल्कि विशेष क्षेत्र क्यों, ऐसा कहना चाहिये कि यह एकमात्र योगिक क्रियाओं द्वारा ही संभव है।

श्वास-प्रश्वास के अतिरिक्त एक व्यापार और है जिसको सँभालना और ठीक अवस्था में रखना आदर्श या वैज्ञानिक व्यायाम पद्धति का लक्ष्य होना चाहिये और वह है विसर्जन या उत्सर्ग क्रिया। शरीर-यन्त्र के अन्दर दो क्रियायें बराबर होती रहती हैं और वह हैं परिपाक और विसर्जन (एसीमिलेशन तथा एलिमिनेशन) की यानी जो हम खाते पीते हैं उस का रस रक्त आदि में पविर्तन तथा अविष्ट अंश का मल मूत्र आदि के रूप में उत्सर्ग स्वास्थ्य की दृष्टि से यह शेषोक्त क्रिया पहली से कुछ कम महत्वपूर्ण नहीं है। जो व्यायाम पद्धित इस विसर्जन या उत्सर्ग क्रिया में हमें सहायता नहीं पहुँचाती उसे वैज्ञानिक न कहेंगे।

हम पहले कह चुके हैं, कि पश्चिमोत्तान, पादहस्त मयूर तथा शलभ आदि आसन विशेष कर इस उत्सर्ग क्रिया को शुद्ध करते हैं।

अंत में हम यह भी कह देना चाहते हैं कि उक्त दोनों ही क्रियाओं के सम्बन्ध में आसनों की उपादेयता वैज्ञानिक प्रयोगशालाओं में सिद्ध की जा चुकी है और यह बात प्राच्य तथा पाश्चात्य सभी देशों के वैज्ञानिक व्यायाम विशारद, डाक्टर तथा आहार विशेषज्ञ एक स्वर से स्वीकार कर चुके हैं। अब वैज्ञानिक तथा आदर्श व्यायाम के रूप में आसनों के सम्बन्ध में संदेह करने की गुंजाइश नहीं रह गई है।

शरीर और मन दोनों को पूर्णतः स्वस्थ अवस्था में रखने के लिये जितने और जिस प्रकार के व्यायाम की आवश्यकता हमको है, वह हमको इन योगिक आसनों द्वारा ही मिल सकता है। *

* लेखक की शीघ्र प्रकाशित होने वाली पुस्तक 'स्वास्थ्य और आसन' से।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पीलिया अथवा कमल रोग

श्री श्रीकृष्ण शर्मा

[पीला-पीला बदन, पीली-पीली आँखें ! यही है पीलिया रोग की सहज पहचान। इतना ही नहीं, पीलिया के रोगी को दृश्य-जगत् का प्रत्येक पदार्थ पीत-वर्ण दृष्टि गोचर होने लगता है। सचमुच यह एक विचित्र रोग है। लेकिन इससे भी अधिक आश्चर्य की बात तो यह है कि यह अन्य रोगों की भाँति कोई स्वतंत्र रोग भी नहीं है ! तो फिर यह क्या है, यह क्यों और कैसे होता है, इससे छुटकारा पाने के लिए कौन-सा अचूक साधन है ? यह सब जानने के लिये यह लेख एक बार पढ़ जायँ, सारा रहस्य अपने आप प्रकट हो जायगा। —सं०]

पीलिया स्वतः कोई स्वतन्त्र रोग नहीं है, यह कुछ उन विशिष्ट लक्षणों का समूह है जिनसे प्रकट होता है कि शरीर के भीतर कोई ऐसा विकार उत्पन्न हो गया है जिसके फल-स्वरूप इस तरह की अवस्था उत्पन्न हुई है। इस रोग का मुख्य सम्बन्ध यकृत से होता है। यकृत जैसे अत्यन्त महत्वपूर्ण अंग के कार्य में जब कोई गड़बड़ी पैदा हो जाती है तभी यह लक्षण प्रकट होता है। इसलिए यहाँ पर यकृत की बनावट और उसके कार्य के सम्बन्ध में कुछ बातें पहले जान लेना आवश्यक है।

यकृत शरीर का सब से बड़ा और भारी अवयव है। यह दाहिने तरफ वक्ष-उदर-मध्य पेशी (Diaphragm) के निम्न भाग में स्थित एक रस-वाहिका ग्रंथि है, जिसका वज़न ३॥ पौण्ड अर्थात् करीब पौने दो सेर होता है। यह एक थैली की तरह होता है। इसे पित्ता भी कहते हैं। इस थैली से निकल कर पित्त एक नाली के जरिये पक्वाशय में पहुँचता है। पाचन-क्रिया न होने अथवा बन्द रहने के समय यकृत में पित्त बन-बन कर उस थैली में जमा होता रहता है। पित्त पीले रंग का द्रव पदार्थ है, जो स्वाद में कड़ुवा होता है।

अपने आकार-प्रकार की भाँति यकृत का कार्य भी

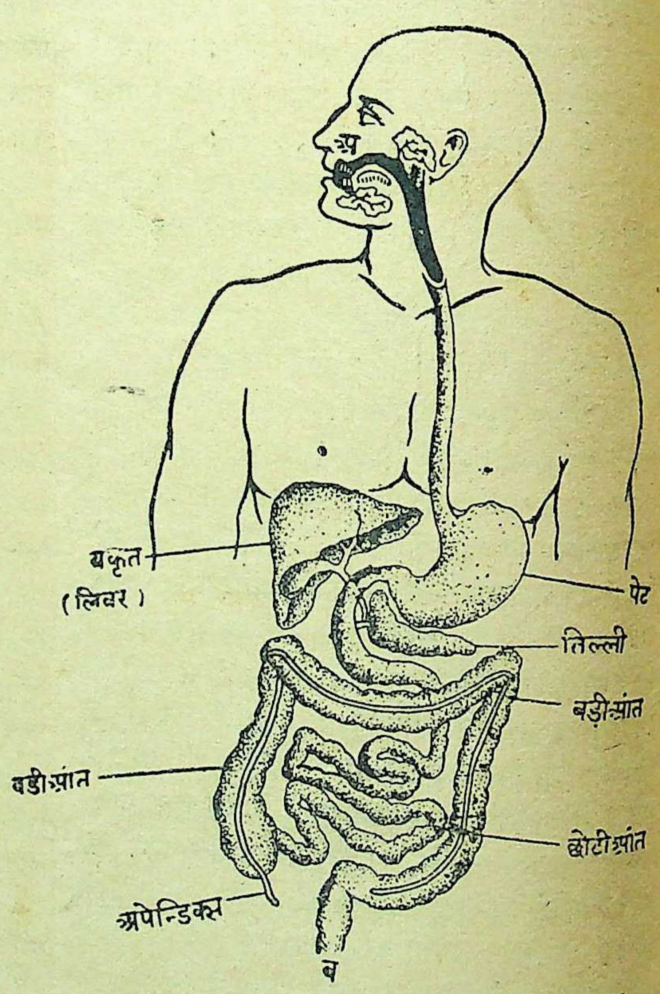

बहुत महत्वपूर्ण है। पाचन, समीकरण और विसर्जन, शरीर की इन तीनों क्रियाओं में इसका महत्वपूर्ण भाग होता है।

संयुक्ता शिरा (Portal Vein) के द्वारा जब द्राक्षोज क्षुद्रांत्र (छोटी आंतों) से होकर यकृत में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहुँचता है, तो उसका अधिकांश भाग मधुजन (Glycogen) में परिणत हो जाता है। यह रासायनिक परिवर्तन यकृत की समीकरण-क्रिया का परिचायक होता है। पुत्तनक पदार्थों का परिवर्त्तन भी यकृत में होता है जिसके फलस्वरूप यूरिया अम्ल उत्पन्न होता है जो गुर्दे के पास सफाई करने में लगता है। इसके अतिरिक्त यकृत के छोटे-छोटे बीज-कोषों में दूषित रक्त की भी सफाई होती है। विषैली चीजों को रक्त से निकालने का भार भी यकृत पर ही पड़ता है। विशेष कर विजातीय द्रव्यों और विषैली दवाओं के कुप्रभाव को दूर करने के लिये यकृत को उत्तेजित होकर प्रयत्न करना पड़ता है। शरीर के इन विविध कार्यों को सँभालने में यकृत को बहुत श्रम उठाना पड़ता है। वर्तमान युग के कृत्रिम भोजन और अनियमित जीवन के ही फलस्वरूप आज ऐसे बहुत कम व्यक्ति मिलेंगे जिनका यकृत स्वस्थ अवस्था में हो।

पीलिया का कारण

पीलिया का मुख्य कारण यकृत की खराबी है, जो असन्तुलित भोजन के कारण उत्पन्न होती है। भोजन में पुत्तनक, शर्करायुक्त और स्निग्ध पदार्थों की अधिकता होने की वजह से यकृत कमजोर और निकम्मा हो जाता है। बच्चों में यकृत की शिकायत समय से पहले अन्न खिलाने, सफेद चीनी और मिठाई का व्यवहार कराने से होती है। इसके अतिरिक्त मिर्च-मसाला, खटाई बहुत अधिक खाने से भी यकृत को हानि पहुँचती है। चाय और तम्बाकू यकृत के लिए कितने अनिष्टकारी होते हैं, यह कहने की आवश्यकता नहीं। हर प्रकार के उत्तेजक और विषाक्त पदार्थों को यकृत को कमजोर करके पीलिया को निमंत्रण देने वाला ही समझना चाहिये।

हाँ, तो जब यह पित्त किसी रुकावट के कारण छोटी आँतों में नहीं जा पाता तो वह रक्त में मिल जाता है और तब रक्त-संचालन प्रणाली के द्वारा वह सारे शरीर में फैल जाता है। यह अड़चन या अवरोध साधारण कफ के जमाव से भी उत्पन्न हो सकता है अथवा पित्त-वाहक नली या पक्वाशय के मुख-द्वार के प्रदाह युक्त हो जाने से भी इसकी सम्भावना हो सकती है। परन्तु कभी कभी एक बड़ी पित्ताश्मरी (Gall Stone) या फोड़ा हो जाने से भी यह रास्ता अवरुद्ध हो जाता है और तब हालत गम्भीर हो जाती है। पित्त के किसी प्रकार से रुक जाने के कारण पाचन-क्रिया में भी गड़बड़ी पैदा हो जाती है। इसके फल स्वरूप भोजन भली प्रकार नहीं पचता, कब्ज की शिकायत हो जाती है, या बार-बार दस्त होने लगता है। पाखाना मटमैला या सफेद-सा आने लगता है। शराब, अधिक शकर, और वसा का प्रयोग, कब्ज और बदहजमी, निठल्लापन अत्यधिक चिन्ता, दुःख, भय की अवस्था में रहना, पानी कम पीना, आवश्यकता से बहुत अधिक भोजन करना, व्यायाम न करना ये सब इसके अन्य कारण होते हैं। परन्तु कभी कभी लू लग जाने या किसी जहरीले जानवर जैसे, पागल कुत्ता या गीदड़ अथवा सांप, के काट लेने पर भी यह रोग होता है। सीसा या पारा जैसे धातु-विष भी इसका कारण बन सकते हैं।

पीलिया के लक्षण

पीलिया के लक्षण बहुत स्पष्ट होते हैं। इसमें पेशाब का रंग पीला हो जाता है, और धीरे धीरे आँख, नाखून, और त्वचा का रंग भी पीला पड़ने लगता है। इतना ही नहीं, रोग के बढ़ने पर रोगी को चारों तरफ पीले रंग की ही माया फैली हुई दिखाई देने लगती है—वह प्रत्येक वस्तु को पीत वर्ण ही देखता है! इनके अतिरिक्त ज्वर, मचली, वमन और बेचैनी के भी लक्षण प्रकट होते हैं। मुँह का स्वाद कड़ुवा-सा लगता है और मधुर (मीठा) तथा स्निग्ध वस्तुओं से रोगी को घृणा-सी हो जाती है।

पीलिया रोग का सब से पहला लक्षण बदहजमी के रूप में प्रकट होता है।

पीलिया और 'पीला ज्वर' के लक्षणों में कुछ समानता पाई जाती है। पीले ज्वर में भी शरीर और नेत्र पीले पड़ जाते हैं और वमन, सिर दर्द और ज्वर आदि लक्षण भी मिलते हैं। लेकिन 'पीले ज्वर' की भाँति पीलिया कोई संक्रामक रोग नहीं और न इसमें ज्वर ही बहुत तेज (१०६ या १०७ डिग्री तक) होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चिकित्सा—जबतक तीव्र लक्षण रहें तबतक उपवास करना चाहिये क्योंकि पाचन-प्रणाली को विश्राम देने से यकृत को कम से कम पाचन-क्रिया से छुट्टी मिलेगी। केवल पानी में नींबू डाल कर देना उचित होगा। संतरे का रस भी दिया जा सकता है। इन दोनों के अभाव में दूध का फटा हुआ पानी देना भी अच्छा है। उपवास कम से कम २४ घंटे का होना चाहिये और यह रोग और रोगी की अवस्थानुसार ३ दिन से एक सप्ताह तक कराया जा सकता है।

उपवास काल में एनीमा का प्रयोग नित्य करना चाहिये जिससे पुराना एकत्रित मल निकल जाय। जब तीव्र लक्षण शान्त हो जायँ तो केवल फल ही पर रोगी को रखा जाय। फल पहले हलके और रसीले हों, जैसे अनार, अनन्नास, मौसम्बी इत्यादि और उसके बाद अन्य कड़े फल जैसे सेव, खरबूजा इत्यादि दिये जा सकते हैं।

उपवास के पश्चात यही क्रम एक सप्ताह या दस दिन तक चलाने के बाद रोगी को शाक-तरकारी और रोटी पर लाया जा सकता है। अच्छा तो यही होगा कि पहले दलिया और शाक दिया जाय और फिर एक समय रोटी सब्जी और रात को फल। रोटी तरकारी पर आने के दो सप्ताह तक कोई चिकनी चीज नहीं देनी चाहिये। १४ या १५ दिन के बाद थोड़ा मक्खन दिया जा सकता है। भविष्य में घी तेल और मीठी चीजों का व्यवहार कम ही करना चाहिये। भोजन सादा और स्वाभाविक रहे और एक साथ कई चीजों का सम्मेलन न रहे तो रोगी को फिर इस रोग का भय नहीं रहेगा। भोजन में क्षार युक्त पदार्थ, जैसे फल-तरकारी, का समावेश अधिक होना चाहिये।

त्वचा को स्वस्थ्य रखने के लिये गर्म पानी से सारा शरीर स्पंज करना आवश्यक है। सप्ताह में एक बार गर्म पानी से स्नान करने से रोम-कूप खुल जायेंगे और पसीना भी आयेगा। अगर यह सम्भव न हो तो स्पंज नित्य करना चाहिये।

अगर कफ के जमाव के कारण पित्त-वाहक नली में रुकावट हो तो गर्म पानी में नमक डाल कर कै करवाने से वह दूर हो जायगी और पेट भी साफ हो जायगा। परन्तु नली में या पक्वाशय के मुँह में सूजन हो तो यकृत और पेट को गर्म पानी में निचोड़े हुये कपड़े से सेंक देना उत्तम होगा। ऐसा करने से वरम कम हो जायगा और पित्त का रास्ता खुल जायगा।

सूर्य-चिकित्सा के सिद्धान्त के अनुसार यह रोग शरीर में पीले रंग के बढ़ जाने से होता है, जैसा कि आँख, नख, पेशाब और पाखाना के रंग से पता पड़ता है। रंग-संतुलन को पूर्वोक्त स्थापित करने लिये उसका विपरीत नीले रंग (जिसकी न्यूनता शरीर में हो गई है) का प्रयोग करना चाहिये। हलके नीले रंग की शीशी में तैयार किये हुये जल की छः खूराकें २-२ घंटे के बाद देने से उस रंग की पूर्ति हो जायगी। वयस्क पुरुष की खूराक २॥ तोला या आधी छटाँक के बराबर होती है बच्चों को उसकी अवस्था के अनुसार १ छोटी या बड़ी चम्मच भर कर रख देना चाहिये। इसके अतिरिक्त फलों में फालसा, अनार, सेव और आलू-बुखारा नीले रंग की पूर्ति करेगा। अगर हलकी नीली शीशी का पानी ज्यादा उपयोगी सिद्ध न हो तो गहरी नीली शीशी का प्रयोग करना चाहिये। अगर सिर-दर्द, बेचैनी और अनिद्रा के लक्षण भी हों तो सिर पर नीला प्रकाश डालना चाहिये।

उपरोक्त साधनों से रोग निश्चय दूर हो जायगा। परन्तु जिगर पर अगर फोड़ा हो या पित्ताश्मरी के कारण इस रोग का आक्रमण हो तो किसी अनुभवी प्राकृतिक चिकित्सक के संरक्षा में रोगी की चिकित्सा होनी चाहिये क्योंकि बिना पथरी को गला कर निकाले या फोड़ा अच्छा हुये ये लक्षण नहीं जा सकते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राणायाम-चिकित्सा

श्री विजयबहादुर सिंह, बी. ए.

[जो चिकित्सा-प्रणाली नैसर्गिक है वह निःसन्देह रोगोपचार के नैसर्गिक साधनों पर ही अवलम्बित होगी। पंचतत्व ही माता प्रकृति की अर्चना के लिए 'पंचामृत' हैं। अमृतगुण की दृष्टि से प्रकृति का यह 'पंचामृत' जो पंचतत्वों का प्रतीक है, न केवल अपनी सार्थकता कोबहुत बार सिद्ध कर चुका है, किन्तु इसीलिए वह भारतीय चिकित्सा-प्रणाली का मूलाधार भी बन गया है।

यह नैसर्गिक 'पचामृत' मिट्टी, आहार, जल, धूप, और वायु ही है। मिट्टी, आहार, तथा जल—प्रकृति के ये स्थूल तत्व हैं, और धूप, तथा वायु, जिसमें आकाश-तत्व भी अन्तर्निहित है, क्रम से अधिकाधिक सूक्ष्म। स्थूल तत्वों की अपेक्षा सूक्ष्म तत्वों की उपयोगिता और महत्व बहुत ही अधिक बताया गया है। विद्वान लेखक ने प्रस्तुत लेख में प्रकृति के इसी सूक्ष्म तत्व की अनन्त एवं अलौकिक महिमा का दिग्दर्शन कराया है।— सं०]

चिकित्सा को हम दो भागों में विभाजित कर सकते हैं—(१) स्थूल और (२) सूक्ष्म। स्थूल चिकित्सा में अधिक श्रम, समय, धन आदि की आवश्यकता होती है। इसलिए यह सभी के लिए समान रूप से सुलभ नहीं। अतः इसे सर्व-जन-सुलभ बनाने के ही उद्देश्य से हमारे प्राचीन ऋषि-महर्षियों ने अपनी कठिन साधना एवं तपस्या के द्वारा सूक्ष्म चिकित्सा का आविष्कार किया था। जिसने भारतीय आयुर्वेद-शास्त्र का अध्ययन नहीं किया है केवल उसी को यह प्राकृतिक चिकित्सा-प्रणाली एक अलौकिक एवं नवीन चिकित्सा-पद्धति के रूप में दिखाई देती है। आधुनिक प्राकृतिक चिकित्सा के प्रवर्तक पाश्चात्य चिकित्सक ही समझे जाते हैं, लेकिन भारतीय दृष्टि से इस धारणा का खण्डन ही होता है। वस्तुतः इसका श्रेय उन लोगों को मिलना चाहिए जो आज से २००० वर्ष पहले प्राकृतिक चिकित्सा का प्रयोग कर चुके हैं और जिन्होंने यह प्रमाणित कर दिया है कि यदि संसार में कोई चिकित्सा प्रणाली सभी के लिए समान रूप से सुलभ बनने का दावा कर सकती है तो वह केवल प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली ही है।

प्राकृतिक चिकित्सा के अन्तर्गत संयम, मिताहार, के अतिरिक्त जल, अग्नि (सूर्य), वायु आदि भी आवश्यक होते हैं। पंचतत्वों में सब से स्थूल पृथ्वी-तत्व है। पृथ्वी तत्व से सूक्ष्म जल-तत्व, जल से सूक्ष्म अग्नि, अग्नि से सूक्ष्म वायु और वायु से सूक्ष्म आकाश-तत्व है। हमारे प्राचीन आर्य ऋषियों ने स्थूल तत्व की अपेक्षा सूक्ष्म तत्वों को ही अत्यन्त सहज, सरल, और सभी के लिए सुलभ बताया है। पृथ्वी, जल और अग्नि—ये तीन महाभूत दृश्य हैं; और वायु, तथा आकाश अदृश्य। संचालन क्रिया से वायु का अनुभव होता है। वह अत्यन्त सूक्ष्म है। वायु आकाश में अधिक है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि वायु और आकाश एक दूसरे से ओत-प्रोत हैं। ऊपर जो हम नीलाकाश देखते हैं वह वस्तुतः शून्य है।

पंचतत्वों का परिचय तो हो चुका। अब हम वायु-तत्व के गुणों का कुछ विस्तार पूर्वक दिग्दर्शन कराने का प्रयत्न करेंगे। यह तो स्पष्ट हो ही चुका है कि वायु जीवन-धारण के लिए सब से अधिक महत्वपूर्ण तत्व है। अन्न-जल के अभाव में हम कई दिनों तक जीवित रह सकते हैं। अग्नि या सूर्य के अभाव में भी मनुष्य कुछ काल तक जीवित रह सकता है, लेकिन वायु के अभाव में कुछ ही क्षणों में प्राणान्त हो जाता है। यही कारण है जो हम सदा स्वच्छ एवं स्वच्छन्द वायु-सेवन के लिए अधिक जोर देते हैं। वायु-सेवन आरोग्य देवता के मन्दिर की पहली सीढ़ी है जिसका उन्मुक्त कपाट सभी के लिए और सदा के लिए प्रकृति ने खोल रक्खा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन एवं प्राण

जीव सूक्ष्म शरीर में निवास करता है। पांच ज्ञानेन्द्रियाँ, पांच कर्मेन्द्रियां, पांच तन्मात्राएँ और मन, चित्त, बुद्धि एवं अहंकार की समष्टि को सूक्ष्म शरीर कहते हैं। जीव का निवास प्रधानतः प्राण में होता है। प्राण वस्तुतः एक ही है और यह वायु-तत्व से अत्यन्त सूक्ष्म होता है। स्नान और क्रिया-भेद से प्राण के पांच नाम रखे गये हैं।

मन एक दिव्य शक्ति है। मन की दूसरी अवस्था का नाम चित्त है और मन की तीसरी अवस्था का नाम है बुद्धि। मन की इन तीन अवस्थाओं को वैसा ही समझना चाहिए जैसा कि जल की पूर्वा-पर—(१) वाष्प (२) मेघ (३) जल—ये ३ अवस्थाएं होती हैं। वाष्प सब से सूक्ष्म है। इसकी शक्ति तीनों में सर्व श्रेष्ठ है। मेघ वाष्प से कुछ स्थूल है और जल सब से स्थूल रूप है।

प्राणायाम के साधक को प्राणायाम करते समय मनस् तत्त्व पर पूर्णतया ध्यान रखना चाहिए। प्राण एवं मन का इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है जितना प्राण और जीवन का। मन के निरोध बिना प्राण का निरोध इतना असम्भव है जितना प्राण के बिना जीवन या सूर्य के बिना प्रकाश का। प्राण-निरोध की अपेक्षा मन को रोकना आवश्यक है। मन के निरोध से प्राण का निरोध अवश्यम्भावी है। प्राण के रोकने से भी मन का निरोध स्वतः सिद्ध है।

अनुभवी साधकों का कहना है कि जो मन के निरोध बिना प्राणायाम करते हैं वे योग के स्थान में रोग को ही प्राप्त करते हैं। प्राण-विज्ञान के साथ मनोविज्ञान का अभ्यास होना ही योग-सिद्धि है।

मनोनिरोध

मन बहुत चंचल है। जितनी अधिक हमारी इच्छाएँ होती है उतनी ही तीव्र मन की चंचलता भी बढ़ती है। मन को रोकने में लिये प्रथम उपाय यही है कि अपनी इच्छाओं को कम किया जाय। इच्छाओं की निवृत्ति वैराग्य और अभ्यास से होती है। जिन इच्छाओं में हमारी अधिक कामना हो उनके दोषों को देखना ही वैराग्य है। जिसे धीरे धीरे अभ्यास से परिपुष्ट किया जा सकता है। किसी भी कार्य के सिद्ध न होने तक बराबर यत्न करने को अभ्यास कहते हैं। बराबर अभ्यास करने से इष्ट सिद्धि और उस सिद्धि के उपाय अपने आप सूझने लगते हैं। अभ्यास से मन को रोकने के सुगम उपाय स्वतः दिखाई पड़ने लगता है।

नियम एवं प्रतिज्ञा-पालन से भी मन का निरोध और आत्म-बल की प्राप्ति होती है। जो पुरुष प्रतिज्ञा एवं नियम-पालन में कच्चे हैं वे कभी भी किसी काम में सफलता नहीं प्राप्त कर सकते। मन के रोकने वालों को दृढ़प्रतिज्ञ नियम-पालक अवश्य होना चाहिए।

जिस प्रकार सूर्य में अशुद्ध को शुद्ध बनाने तथा निर्जीव को सजीव बनाने की शक्ति है वैसे ही प्राण में अपवित्र को पवित्र, निर्जीव को सजीव बनाने की दिव्य शक्ति है। इसी से आचार्यों ने प्राण को शरीरस्थ सविता कहा है। सूर्य से स्फूर्ति, स्पन्दन तथा चेतनता बनती है। वैसे ही प्राण से ही शरीर में उष्णता, कम्पन, स्फूर्ति और चेतनता आदि प्रकट होती हैं।

प्राण ही रक्त को संचालित करता है। जैसे सूर्य के बिना प्रकाश नहीं होता वैसे ही प्राण बिना रक्त भी निष्क्रिय और निष्प्राण हो जाता है।

प्राणायाम से लाभ

इसके साधक का शरीर तपाये हुए स्वर्ण जैसा कान्तियुक्त हो जाता है। विधिपूर्वक उपासना से साधक कोरोग, बुढ़ापा मृत्यु आदि कोई भी नहीं सताते। उसका शरीर पुष्प के समान हलका, सुगन्धित, आरोग्य, सुडौल, कान्ति, ओज तथा तेज से युक्त हो जाता है। उसके मुख पर शान्ति एवं प्रसन्नता झलका करती है। उसे किसी पर पदार्थ में लोलुपता नहीं रहती। उसके मल-मूत्र भी बहुत कम मात्रा में होते हैं। उसका शरीर गठित एवं पुष्ट होता है। शोकमोहादि उससे कोसों भागते रहते हैं। वह अपने विकारों का आखेट नहीं बनता।

प्राणायाम से प्राणों में गति स्वरूप व्यायाम होता है व्यायाम से प्राण स्वच्छ पवित्र कान्ति की भूमि में अचल भाव से स्थित हो जाता है। इससे मन और चित्त की वृत्तियों का निरोध होता है और फलतः साधक को निश्च-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यात्मक ज्ञान प्राप्त होता है। प्राणायाम से प्राणमय कोष और सूक्ष्म शरीर की पुष्टि होती है, जो हमारे जीवन के केन्द्र-स्थल माने गये हैं। इससे प्राण एवं सूक्ष्म शरीर पर साधक का पूर्ण अधिकार हो जाता है, जिससे साधक अपने प्राणों को इच्छानुसार कहीं भी स्थिर कर सकता है और अपने सूक्ष्म शरीर को भी परिवर्तित कर सकता है। इसके अभ्यास से इन्द्रियों का निरोध बहुत शीघ्र हो जाता है। प्राणायाम से साधक इच्छा और संकल्पसिद्ध हो जाता है। उसकी इच्छायें और संकल्प विफल नहीं होते। साधक का वीर्य ऊर्ध्वगामी और अमोघ हो जाता है। इससे साधक की मननशक्ति और धारणाशक्ति का विकास होता है। इससे आत्मबल की वृद्धि होती है। विषय-वासना का बीज तक नष्ट हो जाता है और वह अपने मन के संकल्प से कार्य कर सकता है।

प्राणायाम एवं स्वर-विज्ञान

वायु का बाह्य तो उपयोग सभी करते हैं। किन्तु इसका सूक्ष्म उपयोग भी है जिसका ज्ञान थोड़े से योग-साधनों को ही ज्ञात है। प्राणायाम और स्वर-विज्ञान इस वायु-तत्त्व के सूक्ष्म साधन हैं। प्राणायाम आध्यात्मिक सुख का ही जनक नहीं अपितु वह सांसारिक सुख एवं आरोग्य का भी सहायक है। स्वर-साधन से हम अनेक व्याधियों से अपना बचाव कर सकते हैं और रोगाक्रान्त होने पर स्वर-विज्ञान की सहायता से उन व्याधियों का उन्मूलन भी कर सकते हैं। प्राणायाम-चिकित्सा अतीव लोक कल्याण-कारी पद्धति है। इसके साधन से हम सदा स्वस्थ और ओजस्वी बने रह सकते हैं। वृद्धावस्था का आक्रमण शीघ्र नहीं होने पाता और हम अधिक काल तक यौवन, स्फूर्ति एवं कार्यशीलता से युक्त होकर संसार-सुख का का उपभोग कर सकते हैं। इस विषय में मैं एक दूसरे लेख में और भी प्रकाश डालने का प्रयत्न करूँगा।

प्राकृतिक चिकित्सा की शिक्षा प्राप्त करने का अनुपम अवसर

प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली का सार्वभौमिक प्रचार करने के उद्देश्य से हमने शिक्षार्थियों को ट्रेनिंग देने को एक योजना बनाई है। इसके अनुसार आगामी अक्टूबर में पूरे एक महीने तक ट्रेनिंग देने की व्यवस्था की गई है। इसमें प्राकृतिक चिकित्सा के मूल सिद्धान्तों तथा उसकी व्यावहारिक शिक्षा का पूर्ण आयोजन हुआ है। इस तरह साल भर में एक-एक महीने के तीन कोर्स होंगे। शिक्षा का कोर्स समाप्त हो जाने पर साल के अन्त में शिक्षार्थियों की परीक्षा होगी, और जो उसमें उत्तीर्ण होंगे, उन्हें एन० डी० डी० वाई का डिप्लोमा प्रदान किया जायगा। जो शिक्षार्थी इस योजना से लाभ उठाना चाहते हैं वे अपना आवेदन-पत्र १ सितम्बर तक, अपना नाम, पता और शिक्षा सम्बन्धी योग्यता के सहित अवश्य भेज दें। **इन्टरमीडियेट अथवा उससे ऊंचे दर्जे की शिक्षा प्राप्त व्यक्ति ही आवेदन-पत्र भेजें।**

नियम—इन्टर से कम शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों को ट्रेनिंग देने का नियम नहीं है। प्रत्येक शिक्षार्थी से १०) मासिक फीस और १५ रु० मासिक खर्च लिया जायगा। प्राकृतिक चिकित्सा की व्यावहारिक शिक्षा प्राप्त करने के अभिलाषी व्यक्ति अपनी इच्छानुसार किसी भी महीने में आ सकते हैं। पर उन्हें उपयुक्त शुल्क प्रति मास देना अनिवार्य होगा।

संचालक, प्राकृतिक स्वास्थ्य गृह लूकरगंज, इलाहाबाद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

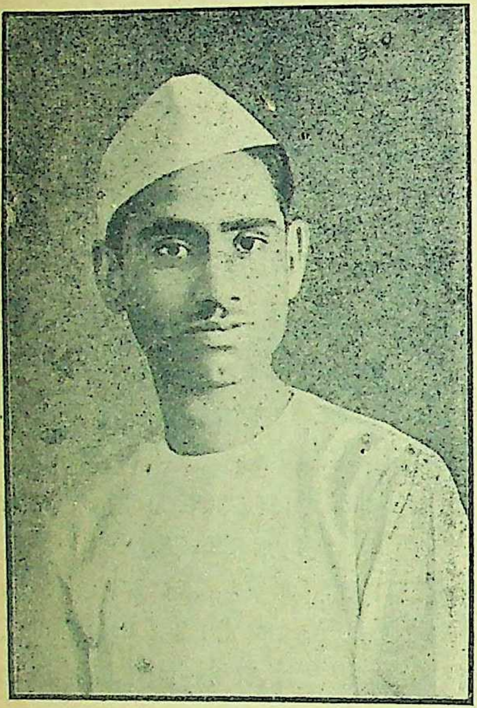

रोग निवारक स्नान कैसे करें ?

श्री विश्वम्भरनाथ द्विवेदी, एन० डी० डी० वाई०

['हिप बाथ' कैसे करें, 'मेहन-स्नान' की विधि क्या है, 'स्पाइन बाथ' किसे कहते हैं—इस तरह के अनेक प्रश्न 'जीवन-सखा' के जिज्ञासु प्रेमी हमसे अक्सर पूछा करते हैं। समय और उपयोगिता इन दोनों की दृष्टि से ऐसे प्रश्नों का अलग-अलग उत्तर देना न तो सम्भव ही हो सकता है और न विशेष लाभदायक ही। अतः रोग निवारक स्नानों के सम्बन्ध में पूछे गये प्रश्नों का हमने एक लेख के रूप में उत्तर देना अधिक उचित और उपयोगी समझा है, क्योंकि इससे एक व्यक्ति की जिज्ञासा का लाभ दूसरों को भी उठाने का अवसर प्राप्त होता है और साथ ही हमारे लिए समय की बचत भी हो जाती है। सं०]

विभिन्न रोगों के उपचार के लिए सिर्फ स्नान करने से ही कोई व्यक्ति पूरा-पूरा लाभ नहीं उठा सकता। इसके साथ साथ और भी बातें हैं जिनपर ध्यान देना बहुत आवश्यक है जैसे—खाना-पीना, उठना, बैठना, रहन-सहन, यम-नियम का पालन, आदि। इन विषयों पर बहुत बार प्रकाश डाला जा चुका है फिर भी उसकी ओर आप लोगों का थोड़ा ध्यान आकृष्ट करना आवश्यक प्रतीत होता है। स्नान करने में लोग बहुधा गलती करते हैं। उन्हें चाहिए कि सुधार लें, अन्यथा भारी हानि की संभावना हो सकती है।

हिप-बाथ (पेड़ू-स्नान)

इस स्नान के लिए यंत्र विशेष की जरूरत पड़ती है, नाम है कुर्सीदार टब। इसके अभाव में कुम्हार के यहाँ का बना हुआ मिट्टी का नांद काम में लाया जा सकता है। टब या नांद को अच्छी तरह साफ करके उसमें स्वच्छ ठण्डा पानी भरना चाहिए। फिर उस पानी में एकाएक वस्त्र-रहित होकर इस प्रकार बैठना चाहिए कि कमर के नीचे से घुटनों तक का भाग पानी में रहे और दोनों पैर बाहर किसी ऊँची चीज पर टिके रहें। अब एक मुलायम कपड़े के टुकड़े से पानी के लहर के साथ हलके हाथ दाएँ-बाएँ पेड़ू को रगड़ना चाहिए। यहीं पर लोग अपनी असावधानी का परिचय देते हैं। मेरे एक डाक्टर मित्र ने हिप-बाथ की रगड़ाई में अपने लड़के के पेड़ू को इतना रगड़ा कि छाले पड़ गये; फिर भी उन्हें संतोष था।

यह स्नान पहले दिन ७ मिनट से शुरू करके शक्ति अनुसार २ मिनट प्रति दिन बढ़ा कर आधा घन्टा तक पानी में बैठा रहा जा सकता है। इसके बाद शरीर को किसी शारीरिक परिश्रम या गरम कम्बल द्वारा गरम करने का प्रयत्न करना चाहिए। स्त्री-पुरुष दोनों ही इसी प्रकार कर सकते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिट्ज़ बाथ (मेहन-स्नान)

इसके लिए भी यंत्र विशेष की जरूरत पड़ती है। एक कुर्सीदार टब, उसके अन्दर पानी में तैरता हुआ लकड़ी का एक तख्ता। अन्यथा आराम कुर्सी, दो तीन ईंटें उसके ऊपर पानी से भरा एक छिछला बर्तन जो कुर्सी के धरातल के पास तक पहुँचता हो। बाथ लेने वालों को चाहिये कि शरीर में कुछ कपड़े पहन कर टब में तख्ते के ऊपर और कुर्सी पर इस तरह बैठें कि पानी जननेन्द्रिय के अन्दर रहे। चतुर लोग बड़ी होशियारी से जननेन्द्रिय के अग्र भाग को मुलायम कपड़े से उसी पानी में धीरे धीरे रगड़ते और धोते हैं। पर मेरे मुसलमान भाई जिनकी मुसलमानी हो गई हो उन्हें अण्डकोष और गुदा के बीच का भाग पानी से धोना चाहिये। शिश्न का अग्र-भाग नहीं धोना चाहिये, क्योंकि ऐसा करने से जननेन्द्रिय में जलन पैदा हो जायगी।

स्त्री रोगिणी पुरुष की भांति ही बैठती है और अपनी योनि के अन्दर के उठे हुए भाग को पानी से धीरे धीरे धोती है। समय हिप-बाथ जैसा ही है।

सम्पूर्ण-स्नान (पूरा स्नान)

सम्पूर्ण स्नान एक आम तौर का स्नान है, जिसे हर मनुष्य शौक से पूरा करता हैं। पानी एक लोटा सिर पर डाला नहीं कि सी-सी-सी करते, बिना शरीर पोंछे ही चट से धोती पहन ली! कुछ लोग घन्टों पानी में निश्चल भाव से पड़े रहते हैं। स्नान के ये दोनों तरीके गलत हैं। पूर्ण स्नान करते समय सर्व प्रथम पानी सिर पर डालना चाहिये, फिर उसे अच्छी तरह धो डालिये फिर अंग प्रत्यंग पर पानी डालिए और तौलिया या अपनी धोती से धीरे धीरे शरीर को रगड़िये। इतना रगड़िये कि शरीर लाल हो जाय, खून का संचार अधिक मालूम पड़ने लगे, रोम-कूप खुल जांय। ऐसा करने में १५ मिनट के पहले आप नहीं निपट सकते। इससे और अधिक समय तक भी स्नान कर सकते हैं।

फुट-बाथ (पैर-स्नान)

इसके लिये भी एक विशेष यंत्र की जरूरत पड़ती है। फुट बाथ कैन बाजार में मिलता है अथवा आर्डर देकर बनवाया जा सकता है। न मिलने पर दो कनस्तरों के सिरों को कटवा कर यंत्र की जगह पर काम में लाया जा सकता है। पैर जितना गरम पानी बर्दाश्त कर सकें उतना गरम पानी इन कनस्तरों में लबालब भर दीजिये। फिर आप स्वयं चारपाई या कुर्सी से पैर नीचे लटका कर क्रम से दोनों कनस्तरों में दोनों पैरों को डाल दें। पैर घुटने तक पानी के अन्दर ही रहेंगे। नियत समय के खतम होने पर ठण्ढे जल से धोकर अपनी असली दशा में आ जाना चाहिये।

स्पाइन बाथ (रीढ़-स्नान)

इसे रीढ़ का स्नान भी कहते हैं। इसमें यन्त्र की ज़रूरत नहीं उकड़ूं बैठ जाइए। एक आदमी से कहिए कि वह लोटे में ठन्डा पानी भर कर पतली अनवरत धार से रीढ़ की जड़ पर पानी डालना शुरू करे फिर रीढ़ की जड़ से स्पाइन तक पतले कपड़े से धीरे धीरे रगड़िए और नियत समय के बाद बंद कर दीजिए। फिर खुरदरे तौलिए या मोटे कपड़े से रगड़ कर पानी पोंछ दीजीए।

ठंढा-गरम स्नान

यह स्नान किसी विशेष अवसर पर ही किया जाता है। इस स्नान में पहले ठन्ढे पानी से पूरा स्नान किया जाता है फिर उसी तरह गरम पानी से स्नान करना चाहिए। पानी का ताप क्रम शरीर के तापमान से अधिक नहीं होना चाहिए।

न्यूट्रल बाथ

इस स्नान में यन्त्र की जरूरत पड़ती है—नाम है आदम कद टब। मनुष्य के कद से कुछ लम्बा और करीब २॥ फीट चौड़ा, १॥ फीट ऊँचा सिर की तरफ तकिया नुमा लोहे की चद्दर का बना होता है। शरीर के ताप मान से कुछ गरम पानी भर दिया जाता है, रोगी वस्त्र-रहित या साधारण वस्त्र पहने चित्त लेटता है और प्रेम से शरीर को मलता है। फिर ध्यान करता है कि मैं स्वस्थ हो रहा हूं मैं नीरोग हूं इत्यादि। नियत समय के बाद रोगी उसमें से निकलता है, शरीर पोंछ कर कपड़े पहनता है। यह स्नान विशेष कर कल्प के समय में ही किया जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाष्प-स्नान

इसे भाप-स्नान या 'स्टीम बाथ' दोनों ही कहते हैं। इसमें यन्त्र की जरूरत पड़ती है। यन्त्र स्वयं भी बनाए जा सकते हैं या बाजार में आर्डर देकर भी बनवाया जा सकता है। लम्बा, चौड़ा संदूकचा, दो घड़े पानी से भरे हुए, कुप्पी और पाइप लगी हुई, दो दमकलें (चूल्हे) कोयला, आग। संदूकचों के अभाव में साधारण बेंत की बनी कुर्सी या चारपाई काम में लाई जा सकती है। जलती हुई सिगड़ी पर पानी भरे एवं ट्यूब लगे घड़ों को रख दें। कुछ देर बाद भाप निकलने लगेगी। संदूकचे में आदमी का सिर निकाल कर एवं एक गिलास पानी पिला कर, सर्वथा वस्त्र रहित करके बंद कर दे अथवा चारपाई या कुर्सी पर बिठा कर चारों ओर कम्बल से ढक दें। अब भाप निकता ट्यूब उसके अन्दर कर दो भाप खूब लगेगी, पसीना निकलेगा। आध घंटे के बाद बाहर निकालिये। ठण्डे पानी में स्नान कराइये उतनी देर जितनी देर उसने भाप-स्नान किया है।

धूप-स्नान

यंत्र की जरूरत नहीं। पहली वेला में करीब ६ बजे खुली जगह में बैठ जाइये। अगर आप नंगे रहें तो बड़ा ही अच्छा हो। विशेष अवसर पर शरीर को केले के पत्तों से ढांक लिया जाता है। ध्यान रहे सिर जरा साया में ही रहे। आधे घंटे के समय के बाद ठण्डे पानी से स्नान करना चाहिये।

मिट्टी-स्नान

शुद्ध, स्वच्छ, साफ मिट्टी पहले गोंड़ ली जाती है। फिर उसमें पानी भर कर थोड़ी मुरमुरी कर लेते हैं। दूसरे दिन सुबह रोगी का सिर बाहर रख कर गाड़ देते हैं। इस तरह वह आदमी आधा घन्टा तक उसमें पड़ा रहता है और अच्छे खासे स्वास्थ्य का अनुभव करता रहता है। बाद में निकल कर वह ठण्डे पानी से पूर्ण-स्नान करता है।

रेत-स्नान

इस तरह का स्नान गंगा जेसी नदी के किनारे ही करते बनता है। सुबह के समय नदी के किनारे की बालू ठण्डी रहती हैं। उसी में ऊपर की थोड़ी बालू हटा दीजिए। रोगी का सिर निकाल कर गाड़ दीजिए। आध घंटे के बाद उसे निकाल कर उसी पानी से पूर्ण स्नान कराइए। चार दिन के करने से शरीर-सुन्दर एवं स्वस्थ होता दीख पड़ने लगेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सगर्भावस्था

डा० इन्दुमती सिनहा, एन० डी० डी० वाई

[सन्तानोत्पत्ति की दृष्टि से प्रकृति ने माता को बहुत ही उच्च और आदरपूर्ण स्थान प्रदान किया है। सगर्भावस्था में ही सच पूछिए तो वह न केवल अपनी सन्तान के शरीर का, बल्कि उसके आरोग्य एवं स्वास्थ्य, उसके आचार-विचार और इस प्रकार उसके भविष्य का भी निर्माण करती है। प्रयोगों से यह सिद्ध हो चुका है कि सगर्भावस्था में माता के रहन-सहन, आचरण, तथा उसके मनोभावों का पूरा-पूरा प्रभाव गर्भस्थ शिशु पर पड़ता है। इस प्रकार यदि हम विचार करें तो हमें अनुभव हो जायगा कि भावी सन्तान के जीवन की पूरी पूरी जिम्मेदारी माता पर ही होती है। अतः भावी माताओं के लिए इस सम्बन्ध में पर्याप्त जानकारी प्राप्त कराना हमारा पुनीत कर्त्तव्य है। इस दृष्टि से प्रस्तुत लेख की उपयोगिता हमें बहुत अधिक जान पड़ती है और आशा है, इसका समुचित स्वागत होगा।—सं]

सगर्भावस्था के लक्षण

सगर्भावस्था के आरम्भिक महीनों में गर्भिणी में कुछ खास लक्षण और चिन्ह देखे जाते हैं। लेकिन यह अच्छी तरह समझ लेना होगा कि इनमें से किसी एक या वस्तुतः सभी चिन्हों और लक्षणों के प्रकट होने पर भी यह कोई मानी हुई बात नहीं कि उसे गर्भ रह ही गया हो। यहां पर जो बातें गर्भ रहने के सम्बन्ध में दी गई हैं उन्हें गर्भ की स्थिति का अनुमान-प्रमाण ही समझना चाहिए। साधारण तौर से गर्भ रह जाने पर जो लक्षण प्रकट होते हैं उनमें से कुछ इस प्रकार हैं—मासिक धर्म का बन्द हो जाना, सवेरे के पहर कुछ भारीपन का अनुभव, स्तनों का और पेट का बढ़ना और अन्त में पेट में बच्चे के रेंगने का अनुभव होना।

गर्भ रह जाने पर मासिक धर्म का बन्द हो जाना प्रायः अनिवार्य होता है, यद्यपि यह सम्भव हो सकता है कि गर्भाधान के पहले ४ महीनों तक भी अनियमित रूप से कुछ कुछ रजःस्राव हुआ करे; क्योंकि गर्भाधान के सिवाय अन्य किसी हालत में मासिक-धर्म इस प्रकार एकाएक आरम्भ में ही नहीं रुक जाता। गर्भाधान होने पर मासिक धर्म बन्द क्यों हो जाता है, इसका कारण ज्ञात नहीं है, लेकिन ऐसा सम्भवतः गर्भाशय की स्नायु-प्रणाली में कोई व्यतिरेक हो जाने के ही कारण होता होगा।

मचली आना या वमन होना

गर्भिणी स्त्रियों में सवेरे के पहर की मचली या उलटी होने (Morning sickness) की शिकायत बराबर नहीं पाई जाती। लेकिन पहली बार गर्भ धारण करने वाली अधिकांश भावी माताओं को कम या अधिक अंशों में यह शिकायतें आम तौर पर पाई जाती हैं। जिन स्त्रियों के कई बच्चे हो चुके हैं उनमें प्रायः यह शिकायत बिलकुल ही नहीं पाई जाती।

साधारण तौर से यह शिकायत गर्भ धारण करने के दूसरे महीने के आरम्भ में हुआ करती है। अधिकांश भावी माताओं को सवेरे के ही वक्त भारीपन मालूम होता है और उबकाई आती है। यह अवस्था सवेरे कुछ घन्टों तक रहती है। अन्य भावी माताओं को सवेरे सोकर उठने पर मचली से उनकी शिकायत शुरू होती हैं और उलटी हो जाने पर वह शान्त हो जाती है। उसके बाद उन्हें और कोई तकलीफ नहीं होती और न भूख ही कम होती है। उनके साधारण स्वास्थ्य पर भी कोई बुरा प्रभाव नहीं पड़ता और उनकी जबान (जीभ) नम और साफ होती है। लेकिन कुछ स्त्रियों को उलटी अधिक होती है और उनकी यह तकलीफ भी अपेक्षा से अधिक समय तक बनी रहती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मचली या कै आने के सम्भावित कारण

भावी माताओं की यह शिकायत साधारण तौर से सिर्फ कुछ हफ्तों तक ही रहती है और प्रायः सगर्भावस्था के चौथे महीने में बिलकुल गायब हो जाती है। यह जहां तक समझा जाता है, एक प्रकार के हलके विजातीय द्रव्य अथवा विषाक्त पदार्थ के उत्पन्न होने (Toxaemia) के कारण होती है जो केवल अस्थायी और सगर्भावस्था में होने वाले रासायनिक परिवर्तन की दशा (Metabolic state) के कारण होती और केवल कुछ ही समय तक रहती है। सवेरे के पहर मचली आने या तबियत खराब होने की शिकायत उन स्त्रियों को भी हुआ करती है जिनके शरीर में अम्लता की पुरानी शिकायत (Chronic Alcholism) अथवा यकृत का रोग होता है। इन बीमारियों में भी मासिक धर्म बन्द हो जाना, और पेट का फूल जाना, ये दोनों ही लक्षण पाए जा सकते हैं और इन लक्षणों को देखकर अक्सर लोग गलती से यह समझ लेते हैं कि उसके गर्भ रह गया है।

गर्भ के दूसरे और तीसरे महीने में भावी माता के बार-बार मूत्र-त्याग करने (Micturition) के भी लक्षण प्रायः देखने को मिलते हैं। यह अधिकतर इस लिए होता है, क्योंकि बढ़े हुए और गोलकार गर्भाशय का, जो कि मूत्राशय के पीछे की तरफ होता है, मूत्राशय पर दबाव पड़ता है। इसके अलावा सगर्भावस्था में मूत्राशय में मूत्र के अधिक जमाव होने के भी कारण यह लक्षण प्रकट होता है। तीसरे महीने के बाद गर्भाशय, जो इस समय तक पेडू के कोष्ठ (Pelvic Cavity) के दायरे के भीतर सीमित बना था, बढ़कर पेट (Abdomen) तक फैलने लगता है और अपेक्षाकृत अधिक सीधा हो जाता है, इस प्रकार मूत्राशय के ऊपर पड़ने वाला भार कम हो जाता है फलतः बार-बार पेशाब मालूम होने के लक्षण मिट जाते हैं।

आम तौर से पहली बार गर्भ धारण करने वाली भावी माताओं के गर्भ का प्रारम्भिक लक्षण इस रूप में प्रकट होता है कि उनके स्तन आकार में बढ़ जाते हैं। केवल इतना ही नहीं बल्कि उनके स्तन अपेक्षा से बहुत अधिक संवेदनशील (Sensitive) बन जाते हैं और चूचुकों (Nipples) को दबाने पर उनमें से रस-स्राव भी हो सकता है। जिन स्त्रियों के एक से अधिक सन्तानें उत्पन्न हो चुकी हैं उनके स्तनों में यह संवेदनशीलता के लक्षण तो पाए जा सकते हैं, लेकिन प्रारम्भिक महीनों में उनके आकार की वृद्धि नहीं मालूम पड़ सकती। हालांकि उनके चूचुकों से रस-स्राव हो सकता है।

पहली सन्तान उत्पन्न करने वाली भावी माताओं के पेट आरम्भ के चार महीनों में उतने बढ़े हुए नहीं मालूम होते, ऐसा केवल आमाशय की दीवारों के अपेक्षा कृत अधिक गठित (Muscular) और सख्त होने के ही कारण होता है। किन्तु एक से अधिक बार गर्भवती होने पर पेट का यह बढ़ना, प्रायः गर्भ के आरम्भिक महीनों में ही देखा जा सकता हैं, क्योंकि उनके आमाशय की दीवारें प्रथम गर्भाधान की अपेक्षा अब ढीली पड़ गई होती हैं।

पेट में बच्चे का रेंगना, उसमें प्राण-प्रतिष्ठा होने का द्योतक होता है। बहुत सी माताओं में गर्भस्थ शिशु के रेंगने की क्रिया इतने अस्पष्ट अथवा अज्ञात रूप में होती है जिससे कि वे यह नहीं बता सकतीं कि उन्हें पहले-पहल कब पेट में बच्चे के रेंगने का अनुभव हुआ है। लेकिन इसके विपरीत कुछ माताओं के पेट में बच्चे का चलना इतने जोरों से शुरू होता है कि उन्हें गश आने या उलटी होने लगती है। साधारण तौर से गर्भाधान के १६ वें और १८ वें हफ्ते के बीच किसी समय पेट में बच्चे रेंगने का अनुभव भावी माताओं को होता है। गर्भस्थ शिशु की यह गतिशीलता सगर्भावस्था के अन्तिम सप्ताहों में बहुत महत्वपूर्ण होती है, जिससे गर्भस्थ शिशु के जीवित रहने की सूचना मिलती है। प्रसव के पूर्व अर्थात् सगर्भावस्था के अन्तिम एक सप्ताह या दो सप्ताहों में गर्भस्थ शिशु की गतिशीलता अपेक्षाकृत कम हो जाती है, लेकिन अगर उसका चलना बिलकुल ही बन्द हो जाय तो उससे गर्भस्थ शिशु के मरने की प्रबल आशंका हो जाती है। सगर्भावस्था के अन्तिम सप्ताहों में या प्रसव-पीड़ा के समय जोरों से गर्भस्थ शिशु का गतिशील होना भी प्रायः अनिष्ट का सूचक होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिस स्त्री के स्वभावतः योनि से स्राव होता है उसे यह देखने को मिलेगा कि गर्भाधान के आरम्भिक महीनों में उसमें वृद्धि हो गई है। ऐसा पेड़ू के कोष में अधिक रक्त संग्रह होने की वजह से होता है।

ऊपर जो गर्भिणी के लक्षण बताए जा चुके हैं उनके अलावा भावी माता स्वयं अपने शरीर में कुछ ऐसे लक्षण देख सकती हैं जो इस बात के सूचक होंगे कि उसे गर्भ रह गया है। ये लक्षण आमतौर से गर्भाधान के तीसरे महीने में साफ-साफ प्रकट होते हैं। वह यह देख सकती हैं, उसके कुच विशेष बढ़ गए हैं और दबाने से ऐसा जान पड़ेगा कि उनमें जैसे गांठें पड़ गई हों अथवा वे ढेलेदार हो गए हों। उसे यह भी देखने को मिलेगा कि स्तन के मुख का रंग अधिक सांवला या काला हो गया है और चूचुक कुछ अधिक उभर आए हैं। अगर चूचुकों को अंगूठे और अंगुलियों के बीच दबाया जाय तो उसमें से कुछ लसीका-सा तरल पदार्थ निकल आयेगा। ये लक्षण मुख्यतः पहली बार गर्भ धारण करने वाली माताओं के लिए सब से अधिक महत्वपूर्ण होते हैं।

किन्तु यह ध्यान रहे कि कभी कभी उन स्त्रियों के भी स्तन बढ़ जाते हैं जो गर्भवती न होकर गर्भाशय या डिम्बकोष की किसी बीमारी से पीड़ित होती हैं। इस लिए यदि स्त्री में गर्भ के लक्षणों में से कोई एक लक्षण या सभी लक्षण दिखाई देते हों तो भी सब से अच्छा यही होगा कि किसी विशेषज्ञ से परीक्षा कराके इसका इत्मीनान कर लिया जाय कि ये लक्षण गर्भ के हैं या किसी तरह की बीमारी के। गर्भ रहने की पुष्टि कर लेने का यही सब से अच्छा उपाय है।

गर्भावस्था के दूसरे अर्ध-भाग में, अर्थात् ५ वें महीने से लेकर १० वें महीने के बीच, गर्भ के लक्षण अधिक स्पष्ट दिखाई देने लगते हैं। इन महीनों में स्तन आकार बढ़ा हुआ साफ नजर आता और चूचुकों को दबाने से स्राव भी सहज होने लगता है। पेट के नीचे का हिस्सा अधिक उभरा हुआ दिखाई देने लगता है और किसी-किसी स्त्री के पेट के ऊपर खेखसे भी दिखाई देने लगते हैं। अगर उस स्त्री के पेट पर थोड़ी देर तक हाथ रक्खा जाय तो कुछ देर तक पेट सख्त और फिर उसके बाद मुलायम मालूम होगा। पेट में गर्भस्थ शिशु की हरकत भी अच्छी तरह पहचानी जा सकेगी। कभी-कभी तो यह हरकत इतनी जोरों से होती है कि अगर वह गहरी नींद में सोई हो तो भी जाग पड़ती है।

गर्भ के ८ वें महीने तक भावी माता का पेट सब से अधिक उभर जाता है और यही अवस्था है जब कि गर्भिणी को कष्ट भी सब से अधिक होता है। इस अवस्था में कब्ज रहना, हृदय में जलन (प्रदाह) कोई मेहनत का काम करने पर दम फूलने लगना, हृदय की धड़कन बढ़ना लेटने में कष्ट अनुभव होना और चलने फिरने के बाद एड़ियों में सूजन आ जाना, ये सब लक्षण अधिकतर प्रकट होते हैं। इन दिनों में पेट का सब से अधिक उभड़ा हुआ आकार लगभग ३२ इंच होता है। सगर्भावस्था के आखिरी पखवारे में पेट में बच्चा नीचे की तरफ खिसक आता है इस लिये पेट का ऊपरी हिस्सा नीचा हो जाता है और ऐसा होने पर गर्भिणी का दम फूलने या उसे कष्ट होने की शिकायत कम हो जाती है।

पेट में गर्भ की स्थिति

अधिकांश गर्भिणी स्त्रियों के पेट में बच्चे का सिर माता के पेड़ू (pelvic cavity) की ओर और उसकी शक्ल अर्धगोलाकार होती है, अगर गर्भ में बच्चे का सिर ऊपर की तरफ हो तो उसमें सगर्भावस्था के अन्तिम सप्ताहों में भावी माता की तकलीफ और भी बढ़ जाती है। इस तरह की सौ में एक या दो ही मातायें होंगी जिनके जुड़वा गर्भ रहते हैं। साधारण रूप से एक समय में एक ही बच्चा पैदा होने का प्रकृति ने नियम बनाया है लेकिन कभी कभी इस प्राकृतिक नियम का अपवाद भी देखने को मिला है जब कि माता ने एक साथ दो से अधिक बच्चों का जन्म दिया है। लेकिन इस तरह बच्चे पैदा होते हैं वे या तो तत्काल या कुछ समय के बाद मर जाते हैं।

(क्रमशः)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अ० भा० प्राकृतिक चिकित्सा-सम्मेलन

प्रारम्भिक अधिवेशन का संक्षिप्त विवरण

सातवें अखिल भारतीय प्राकृतिक चिकित्सा-सम्मेलन का प्रारम्भिक अधिवेशन ३१ मई को त्रिचनापल्ली में पटना हाईकोर्ट के माननीय जस्टिस भुवनेश्वर प्रसाद सिनहा की अध्यक्षता में हुआ, जिसमें भाषण करते हुए श्री शर्मा के० लक्ष्मण ने कहा, "भविष्य में हमारे लिए जो विधान तैयार किया जाय उसमें यह घोषणा होनी चाहिए कि प्रत्येक व्यक्ति को अधिकार होगा कि अपने शरीर के लाभ के लिए वह जिस चिकित्सा-प्रणाली को उचित समझे उसका अनुसरण कर सकता है, उसके इस वैयक्तिक अधिकार पर कोई प्रतिबन्ध न रहेगा।"

स्वागताध्यक्ष का भाषण

स्वागत कारिणी समितिके अध्यक्ष श्री एफ० जी० नटेश अय्यर ने प्रतिनिधियों का स्वागत करते हुए कहा कि यह बहुत ही खेद की बात है कि पुडुकोटा में आयोजित चिकित्सा सम्मेलन का अधिवेशन करने की पुडुकोटा दरबार ने मनाही कर दी है। इस निषेधाज्ञा के सम्बंध में आपका राज्य के दीवान से जो पत्र-व्यवहार हुआ था उसका पूरा विवरण आपने सुनाया। आपने आगे कहा, कि यद्यपि एलोपैथी चिकित्सा प्रणाली हमारे ऊपर जबरदस्ती लाद दी गई है, लेकिन यह रोगोपचार की सफलता के सम्बन्ध में कोई गारन्टी नहीं कर सकती। प्राकृतिक चिकित्सा का अनुसरण करने से हम न केवल अपने को बल्कि सारे संसार को स्वस्थ और प्रसन्न बना सकते हैं। मैं गाँधी जी तथा अपने अन्य राष्ट्रीय नेताओं से अनुरोध करूँगा कि वे इस बात के लिये प्रयत्न करें कि प्राकृतिक चिकित्सकों को अपनी इच्छा के अनुसार चिकित्सा प्रणाली ग्रहण करने की स्वतंत्रता निर्विघ्न प्राप्त हो और यह कि हमें किसी ऐसी प्रणाली का अनुसरण करने के लिये बाध्य न किया जाय, जिसमें हमारा तनिक भी विश्वास नहीं है। आपने इस बात के लिये डा० राजन और श्री राजगोपालाचारी की आलोचना की कि उन्होंने सार्वजनिक स्वास्थ्य कानून पास किये जाने के समय टीके लगाने के सम्बन्ध में प्राकृतिक चिकित्सकों के दावे पर विचार नहीं किया।

सभापति का भाषण

अध्यक्ष-पद से भाषण करते हुये माननीय जस्टिस भुवनेश्वर प्रसाद सिनहा ने कहा कि यद्यपि व्यक्तिगत रूप से राजनीतिक आन्दोलनों से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है, लेकिन प्राकृतिक जीवन के विषय में कुछ जानकारी प्राप्त करने में मैं दिलचस्पी रखता हूँ। आपने उन परिस्थितियों का, जिनके फलस्वरूप पुडुकोटा में आयोजित सम्मेलन का अधिवेशन स्थगित कर देना पड़ा, उल्लेख करते हुए इस बात पर खेद प्रकट किया कि मानव जाति के कल्याण के उद्देश्य से आयोजित सम्मेलन भी लोगों को नहीं करने दिया जाता। आप ने अन्त में श्री शर्मा के० लक्ष्मण की उन सेवाओं की सराहना की जो वह प्राकृतिक चिकित्सा के विकास के लिये पिछले ३३ साल से कर रहे हैं।

श्री शर्मा के० लक्ष्मण का भाषण

इसके अनन्तर श्री शर्मा के० लक्ष्मण का ओजस्वी भाषण हुआ। आपने उन विघ्न-बाधाओं को दूर करने की अपील की जो प्राकृतिक-चिकित्सा के विकास में बाधक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो रही हैं। श्री शर्मा ने कहा, "मैं आप लोगों को यह यक़ीन दिलाना चाहता हूँ कि प्राकृतिक-चिकित्सा एक सर्वथा सुस्पष्ट तथा स्वतंत्र चिकित्सा-विज्ञान है, जिसे मिथ्या आडम्बर कहकर अनादृत नहीं किया जा सकता। इसका अस्तित्व अतीत में रहा है, अब भी है और भविष्य में भी सदा के लिए बना रहेगा। इसकी प्रभावकारिता को कोई भी व्यक्ति—एलोपैथ लोग भी—अस्वीकार नहीं कर सकता। प्राकृतिक-चिकित्सा संसार के लिए आवश्यक है, अतएव इसे संरक्षित होना चाहिए। यदि प्राकृतिक-चिकित्सा को संरक्षित रखना है तो इसके लिए उन

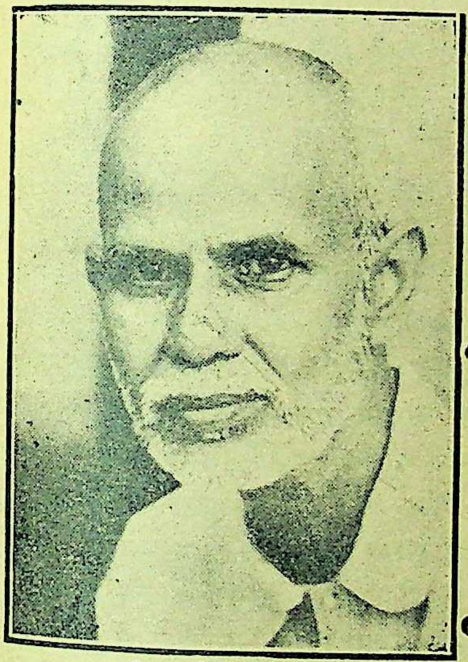

श्री शर्मा के० लक्ष्मण

बुराइयों को दूर कर देना चाहिए जो इसके विकास के मार्ग में बाधक हो रही हैं। हमारे लिए भविष्य में जो विधान बने उसके अन्तर्गत मौलिक अधिकार के रूप में यह स्वतंत्रता हमें अनिवार्य रूप से प्राप्त होनी चाहिए कि हम अपनी इच्छा के अनुकूल किसी भी चिकित्सा प्रणाली का प्रचार एवं अनुगमन करें।"

श्री शर्मा ने आगे कहा—"मैं यह नहीं कहता कि प्राकृतिक-चिकित्सा प्रणाली के सिवा अन्य किसी भी चिकित्सा प्रणाली को सरकार की ओर से कोई प्रोत्साहन न प्रदान किया जाय। प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली के अनुयायियों की ओर से मैं सरकार की कृपा के लिए कोई याचना भी नहीं करना चाहता। मेरी मांग तो केवल यही है कि प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली के साथ न्याय और ईमानदारी का वर्ताव किया जाय। मेरा कहना यह है कि सुयोग्य डाक्टरों की हैसियत से प्राकृतिक चिकित्सकों को सरकार द्वारा स्वीकृत किए जाने से वंचित रखना अनुचित है। हमारा दावा है कि यदि कोई व्यक्ति किसी विशिष्ट चिकित्सा प्रणाली की दवाइयों में विश्वास नहीं रखता तो उसे उस प्रणाली की दवाइयों के सेवन के लिए बाध्य करना अनुचित है। हम प्राकृतिक चिकित्सक चेचक तथा अन्य रोगों के टीके लगाए जाने की एलोपैथी प्रणाली को अनुचित समझते हुए उसका विरोध करते हैं। अतः हमें विचार की स्वतंत्रता प्राप्त होनी चाहिए। हमारी मांग केवल यही है।

जो सरकार अपने देश के नागरिकों को इस तरह के टीके लगवाने के लिए मजबूर करती है, वह यह गारन्टी नहीं करती कि इस के फलस्वरूप कोई हानि न पहुँचेगी। वह इस बात की भी गारन्टी नहीं करती कि अगर टीके लगवाने से कोई नुकसान पहुँचा हो उसके लिए सरकार काफी हर्जाना देगी। मैं सरकार तथा मेडिकल अधिकारियों को चुनौती देता हूँ कि वे हमें इस तरह की गारन्टी दें। सार्वजनिक स्वास्थ्य ऐक्ट पास किये जाने के समय मैं ने इसी प्रकार की चुनौती डा० राजन और श्री राजगोपालाचारी को भी दी थी, लेकिन इसका हमें कोई जवाब नहीं दिया गया।

श्री शर्मा ने आगे कहा मैंने सप्रू कमेटी के पास एक स्मरण-पत्र (मेमोरेण्डम) भेजा था जिसमें उपर्युक्त मांगें पेश की गई थीं। मैंने यह स्मरण-पत्र इसलिये भेजा क्योंकि कमेटी ने देश के समस्त वर्गों से आधारभूत अधिकारों के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करने के लिये अनुरोध किया था। लेकिन मुझे खेद के साथ कहना पड़ता है कि सप्रू कमेटी ने हमारी मांगों की पूरी तौर से उपेक्षा की है और इस प्रकार वह अपने कर्तव्य-पालन में बुरी तरह असफल हुई है। इसी प्रकार के अन्य स्मरण-पत्र भी सप्रू कमेटी के पास भेजे गये थे। इनमें से एक तो अजमेर मेवाड़ नेचुरोपैथिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एसोशियेशन की ओर से और दूसरा दिल्ली के सेठ एल० एन० गाडोदिया द्वारा भेजा गया था। इन स्मरण पत्रों का भी सप्रू कमेटी पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा और वे ठुकरा दिये गये। इस कारण सम्भवत: यही हो सकता है कि कमेटी को पाश्चात्य औषधियों में आवश्यकता से कहीं अधिक विश्वास है, लेकिन इसका कोई कारण नहीं हो सकता कि हमें पाश्चात्य औषधियों में अविश्वास प्रकट करने के अधिकार से वंचित रक्खा जाय और इसी लिये हमारी मांग अस्वीकृत कर दी जाय। मैं जनता से अपील करता हूँ कि वह हमारे नेताओं को स्पष्ट रूप से यह समझा देने के लिये आवश्क उपाय करे कि उन्होंने जनता की स्वतंत्रता में अनुचित रूप से दखल देकर और जनता की मांग की उपेक्षा करके अपराध किया है। मुझे सन्देह है कि हमें स्वराज्य मिल जाने पर भी सार्वजनिक स्वास्थ्य ऐक्ट कायम रहेगा।

श्री शर्मा के अतिरिक्त अन्य प्रमुख व्यक्तियों के भी भाषण हुए। सभी वक्ताओं ने एलोपैथी प्रणाली के अंधेर की तीव्र आलोचना करते हुए इस बात पर जोर दिया कि अन्य क्षेत्रों की भांति चिकित्सा के भी क्षेत्र में नागरिकों को अपने मनोनुकूल मार्ग चुनने तथा उसका अनुसरण करने की स्वतंत्रता प्राप्त होनी चाहिए।

वक्ताओं के भाषण समाप्त होने के उपरान्त सम्मेलन के अध्यक्ष ने निम्न प्रस्ताव पेश किए जो सर्व सम्मति से पास हुए।

(१) भारत के विभिन्न भागों के प्राकृतिक चिकित्सकों की यह सभा, जो कि जनता के स्वाथ्य पर प्रभाव डालने वाले प्रश्नों पर विचार करने के लिए आयोजित की गई थीं, पुडुकोटा दरबार के इस कार्य पर तीव्र विरोध प्रकट करती है, कि उसने यहाँ पर अ० भा० प्राकृतिक चिकित्सा सम्मेलन का अधिवेशन करने की अनुमति देने से इनकार कर दिया। दरबार के उस आदेश का विरोध यह सभा इस लिए करती है क्यों कि इस तरह की अनुमति न देने का अर्थ नागरिकों की स्वतंत्रता में अनुचित, असंगत और अनावश्यक हस्तक्षेप करना है। पुडुकोटा के दीवान के साथ होनेवाले पत्र-व्यवाहर में, जो कि प्रकाशित हो गया है, सम्मेलन की स्वागतकारिणी समिति के अध्यक्ष एफ० जी० नटेश अय्यर ने जो रुख ग्रहण किया है उसका यह सभा पूर्णतया समर्थन करती हैं और उन्हें इस बात के लिए अधिकार देती कि वह पूर्व निर्धारित योजना के यह सम्मेलन अनुसार पुडुकोटा में ही किए जाने की अनुमति प्राप्त करने के उद्देश से पुडुकोटा राज्य के रेजीडेन्ट तथा सम्राट के प्रतिनिधि से लिखा पढ़ी करें।

(२) प्राकृतिक चिकित्सकों की यह सभा जोरों के साथ यह विचार प्रकट करती है कि विभिन्न कारणों से प्राकृतिक चिकित्सा सम्मेलन को स्थायी आधार पर कायम करना आवश्यक है और इसके लिए यह सभा आगामी अ० भा० प्राकृतिक चिकित्सा सम्मेलन की स्वागत कारिणी समिति अध्यक्ष को अधिकार देती है कि वह सम्मेलन के लिए एक विधान तैयार करें और स्वीकृति के लिए उसे उक्त सम्मेलन के खुले अधिवेशन के प्रस्तुत करें।

(३) श्री शर्मा के० लक्ष्मण ने सप्रू समझौता कमेटी को दिए गए मेमोरेण्डम में जो यह माँग पेश की है कि नागरिकों के आधारभूत अधिकारों में मेडिकल (चिकित्सा सम्बन्धी) स्वतंत्रता भी शामिल की जाय उसका यह सभा पूर्ण समर्थन करती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने विचार

यह मौन क्यों ?

इस सार्वभौमिक युद्ध का अन्त अधिकाधिक निकट प्रतीत होने के साथ ही हमें लोकतंत्रवाद के पृष्ठ पोषक संयुक्त राष्ट्रों की ओर से '४ स्वतंत्रताओं' का भी—जिनमें अभाव तथा भावाभिव्यक्ति की स्वतंत्रता भी सन्निहित है—संदेश सुनने को मिल रहा है। इस विश्व-व्यापी विध्वन्स-लीला के अन्तिम चरण में संसार के लोकतंत्रवादी राष्ट्र एक नए विश्व-सृजन की कल्पना कर रहे हैं जिसमें भय, दासता आदि बुराइयों का कोई स्थान न रहेगा। अभी हाल ही में संयुक्त राष्ट्रों के सम्मेलन में संसार के पराधीन देशों को यह आश्वासन प्रदान किया गया है, कि उन्हें नये विश्व में क्रमशः स्वतन्त्रता की ओर अग्रसर किया जायगा। यद्यपि इस तरह की घोषणाएँ सुनने में बहुत सुखद एवं आशापूर्ण प्रतीत होती हैं, लेकिन इसके साथ ही साथ जब हम देखते हैं हमारे शासक अन्य प्रकार की स्वतंत्रताओं की तो बात ही अलग रही, साधारण व्यक्तिगत स्वतन्त्रता प्रदान करने में भी अपनी उदासीनता प्रकट करते हैं तो हमें इस तरह की कर्ण प्रिय घोषणाओं में स्वभावतः सन्देह होने लगता है।

यह व्यक्तिगत स्वतंत्रता का प्रश्न संसार के स्वाधीन एवं स्वतन्त्र देशों के लिए इतना अधिक जटिल एवं चिन्तनीय नहीं है जितना कि पराधीन देशों के लिए भारत पराधीन है—यह भौतिक परतंत्रा के अतिरिक्त मानसिक एवं बौद्धिक परतंत्रता से भी आक्लान्त हो रहा है। इस लिए इस समस्या ने हमारे देश में और भी गम्भीर रूप धारण कर लिया। व्यक्तिगत स्वतन्त्रता सम्बन्धी किसी साधारण बात के लिए भी आवाज उठाने में हमारे लिए सरकार से संघर्ष होने की सम्भावना बनी रहती है। यह सचमुच बहुत खेद जनक है।

प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली एक विज्ञान के रूप में अपने स्वतंत्र अस्तित्व की स्थापना कर चुकी है। इसकी उपयोगिता एवं प्रभावकारिता को प्रमाणित करने की भी अब कोई आवश्यकता नहीं रह गई है, क्योंकि इसके प्रवर्तक एवं प्रचारक उन देशों में ही हुए हैं जो संसार के शक्तिशाली एवं अग्रणी राष्ट्र समझे जाते हैं। ऐसी अवस्था में भारत में इस चिकित्सा प्रणाली का जो अनादर अथवा तिरस्कार किया जा रहा है उस पर स्वभावतः क्षोभ और दुःख होने के साथ आश्चर्य भी होता है। हमारे देश की मौजूदा सरकार प्रधानतः एलोपैथी चिकित्सा-प्रणाली की ही पृष्ठ पोषक है, इस नग्न सत्य को कोई अस्वीकार नहीं कर सकता। और साथ ही इस बात को भी अमान्य ठहराना असम्भव है कि यदि इस खोखली चिकित्सा-प्रणाली को राजप्रश्रय न प्राप्त होता तो आज शायद इससे अनादृत एवं तिरस्कृत चिकित्सा प्रणाली कोई दूसरी नहीं होती। सरकार ने ही इसे 'संरक्षण' प्रदान करके इसके अस्तित्व को बनाए रखने में विशेष सहायक हुई है। अभी मई के महीने में अ० भा० प्राकृतिक चिकित्सा सम्मेलन के प्रारम्भिक अधिवेशन में, जो कि पुदूकोटा में न होकर त्रिचनापली में हुआ, भारतीय चिकित्सा-प्रणाली के महारथी श्री० के० लक्ष्मण शर्मा ने अपने भाषण में भारत के प्राकृतिक चिकित्सकों की ओर से जो मांग प्रस्तुत की है वह इस बात की कसौटी है कि हमें कहाँ तक व्यक्तिगत स्वतंत्रता प्रदान की जाती है। यदि सरकार समझती है कि प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली सर्वथा प्रभाव हीन, अवैज्ञानिक अथवा ढोंग है तो इसको वह प्रमाणित करें, और यदि ऐसी बात नहीं है तथा वह अन्य चिकित्सा प्रणालियों की भांति इसके भी स्वतंत्र अस्तित्व को स्वीकार करती है तो इसके साथ न्याय और ईमानदारी का बर्ताव उसे करना ही चाहिए।

प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली के अनुयायी रोग को शरीर में मल अथवा गन्दगी का उद्रेक समझते हैं। उनका विश्वास है कि मल अथवा गन्दगी को गन्दगी से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूर नहीं किया जा सकता। हैजा, चेचक, अथवा प्लेग के कीटाणु को मल-रहित शरीर में जबर्दस्ती प्रवेश कराने से न केवल रोग से हिफाजत नहीं हो सकती, बल्कि वह आगे चलकर स्वास्थ्य के लिए बहुत अनिष्टकारी भी सिद्ध हो सकता है, ऐसा हमारा दृढ़ विश्वास है। ब्रिटेन तथा अमेरिका जैसे देशों में इस सम्बन्ध में जो आंकड़े तैयार किए गए हैं उनसे भी हमारे इस विश्वास का प्रतिपादन होता है। अतः इस अनिष्टकारी प्रथा के विरुद्ध किए जाने वाले विवेक-पूर्ण, युक्ति-संगत एवं हार्दिक प्रतिवाद का कोई उत्तर न देकर उसकी उपेक्षा करना यदि अन्याय और गैर ईमानदारी का वर्ताव नहीं तो और क्या कहा जा सकता है? यदि हमें अपने स्वास्थ्य एवं आरोग्य के सम्बन्ध में इतनी भी व्यक्तिगत स्वतंत्रता नहीं प्रदान की जाती, तो हम यह कैसे विश्वास करें कि हमें सरकार पूर्ण नागरिक स्वतंत्रता प्रदान करेगी।

टीके लगाने की घातक प्रथा के विरुद्ध श्री शर्मा ने जो आवाज उठाई है वह पराधीन भारत के सम्पूर्ण प्राकृतिक चिकित्सा समाज की आवाज है। यदि इस प्रणाली को सरकार सचमुच निर्दोष समझती है, यदि उसे इसकी प्रभावकारिता में सचमुच विश्वास है तो वह हमारी न्यायोचित और हार्दिक मांग को स्वीकार क्यों नहीं करती? वह जनता की इच्छा के विरुद्ध इस थोथी प्रणाली को क्यों लादना चाहती है? सरकार का यह रहस्यपूर्ण मौन अवांछनीय ही नहीं, अनिष्टकारी भी है। उसे मौन-भंग तो करना ही होगा।

[२४ वें पेज का शेष]

इसके शिकार बनते हैं। इनके कानों में सनसनाहट तथा जोरों की आवाज-सी मालूम पड़ती है। क्या आप इसके लिए कोई प्राकृतिक उपचार बता सकते हैं?

—देवेन्द्र प्रसाद सिंह, बँभई, पोस्ट, उसरी, गया।

उत्तर—पहले उन लोगों को एक व्यायाम करना चाहिए जिसकी विधि यह है। नाक के नथनों से धीरे-धीरे लम्बी साँस खींची जाय। फिर जिस प्रकार नाक साफ करते हैं उसी प्रकार जोर से नथनों से हवा छोड़ी जाय। इस कसरत को प्रतिदिन नियमित रूप से दोनों समय करना और इसका अभ्यास एक घन्टे तक बढ़ाना चाहिए। यह तो हुआ इस रोग का प्राकृतिक व्यायाम-पचार। पर इसके साथ ही निम्नलिखित आंगिक उपचार भी अवश्य करना चाहिए जिससे रोग दूर होने में कोई शंका न रह जाय। उपचार यह है—आक (मदार) का पका हुआ पीला पत्ता लावें। उस पत्ते को साफ करके उस पर सरसों का तेल चुपड़ दें और तब उसे आग पर गर्म करें। फिर उस पत्ते को निचोड़ कर उसका रस निकालकर किसी बर्तन में रखलें। इसी रस का दो-चार बूँद कान में सुबह-शाम डालें। कुछ दिनों के प्रयोग से ही लाभ मालूम होने लगेगा। कान की मैल भी साफ करा लेनी चाहिए।

—कामता प्रसाद अग्रवाल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रश्नोत्तर

[इस स्तम्भ में जिज्ञासु पाठकों के प्रश्नों के उत्तर दिए जाते है। पाठकों को चाहिये कि वे एक बार दो से अधिक प्रश्न पूछने का कष्ट न करें और जहाँ तक हो सके अपने प्रश्न संक्षेप में ही लिखें। यह ध्यान रहे कि इस स्तम्भ का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य यह है कि किसी एक व्यक्ति की जिज्ञासा का लाभ दूसरे पाठक भी उठावें।

प्रश्नों के भेजने के सम्बन्ध में आवश्यक नियम यह है कि प्रश्नों को प्रश्नोत्तर कूपन के साथ भेजा जाय। प्रश्नोत्तर कूपन कवर के तीसरे पेज के नीचे दिया गया है। —सं०]

प्रश्न—(१) "Protein cannot be stored in the body, and therefore, it is not only useless but absolutely harmful to increase the intake of protein for fattening purposes. The excess of protein will simply putrefy in the intestines causing toxemia and disease.

"Quite different is the case with fats and carbo hydrates. These food principles when consumed in larger quantity than actually needed for the body for fuel purposes are stored up in the body and build up the adipose or residual tissues."

— Prof. Dr. Gambers.

[भावार्थ—प्रोटीन को शरीर के भीतर संचित नहीं किया जा सकता, और इस लिए शरीर की मोटाई बढ़ाने के लिए भोजन में प्रोटीन की मात्रा बढ़ाना न केवल व्यर्थ किन्तु नितान्त हानिकारक भी है। प्रोटीन के आधिक्य से केवल आंतों में सड़ाँध ही पैदा होगी।

चिकनई और कार्बोज पदार्थों की बात इससे बिलकुल भिन्न है। ये आहार-तत्व शरीर के लिए आवश्यकता से अधिक परिमाण में ग्रहण किए जाने पर शरीर के भीतर संचित होते हैं और चर्बी युक्त तन्तुओं का निर्माण करते हैं।"

—प्रो० डा० गैम्बर्स]

उपर्युक्त कथन कहाँ तक ठीक है, जब कि प्राकृतिक चिकित्सा में तो मांस व वजन बढ़ाने के लिए अत्यधिक प्रोटीन का प्रयोग कराया जाता है, जैसे दुग्ध-कल्प आदि में ?

(२) 'आयुर्वेद बतलाता है कि मनुष्य की बढ़ोतरी ४० वर्ष के उपरान्त नहीं होती अर्थात् खून, मांस, मज्जा आदि उस उम्र के पहिले जो बढ़ने होते हैं बढ़ जाते हैं। प्राकृतिक चिकित्सा इस कथन से कहाँ तक सहमत है, कृपया समझाकर लिखिये।

—मास्टर कन्हैया लाल सोनी, सिवाना (मारवाड़)।

उत्तर—(१) मांस वर्गीय खाद्य-पदार्थ (प्रोटीन) अवश्य पेट में अधिक पहुँचने पर और न पचने पर सड़ांध पैदा करते हैं। उनकी अत्यधिकता से अवश्य रक्त विषैला व शरीर रोगी हो जायगा, पर ऐसी बात जब योरोपियन लेखक लिखते हैं तो उनका ध्यान अधिकतर गोश्त के सेवन पर हो रहता है। दूध के सेवन के विषय में ऐसा कदापि कहना ठीक न होगा। प्राकृतिक चिकित्सा में मांस व वजन बढ़ाने के लिए कल्प के रूप में अवश्य ६-७ सेर दूध व मठे का उपयोग किया जाता है। पर दुग्ध-कल्प अथवा मठे के कल्प में दूध के इतने प्रचुर उपयोग से यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि उसमें प्रोटीन ही वजन व मांस शरीर में बढ़ाता है। दूध तो पूर्ण भोजन है। उसके प्रोटीन के अलावा चिकनई (मक्खन के रूप में) (Fat) भी तो होती है। इसके अतिरिक्त ८० प्रतिशत उसमें जल भी तो होता है तथा उसमें बहुलता से खनिज लवण भी तो होते हैं। चिकनई (Fats) व जल भी शरीर को कुछ मोटा बनाने और वजन में बृद्धि करने में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योग देते हैं। इस प्रकार कल्प में दुग्ध का अधिक प्रयोग होने से यह नहीं कहा जा सकता कि शरीर में मांस व वजन प्रोटीन की अधिकता के कारण बढ़ता है। फिर दूध में जल की मात्रा अधिक होने से वह शरीर को धोता व स्वच्छ करता रहता है और साथ ही साथ खनिज लवण तथा अन्य पदार्थों के साथ शरीर के सेलों का निर्माण भी करता रहता है। यह बात मांस (गोश्त) के विषय में कदापि नहीं कही जा सकती। यह शरीर को साफ़ तो दूर रहा जलीय पदार्थ के अभाव में बल्कि न पचने पर बहुत जल्दी सड़ने लगता है। इसमें खनिज लवण भी नहीं होते। इसलिये दूध में और मांस के प्रोटीन की तुलना तथा उनके समान मात्रा के व्यवहार में समानता कदापि नहीं हो सकती। डा० गैम्बर्स का उपर्युक्त कथन गोश्त के बारे में तो ठीक हो सकता है पर दूध के बारे में नहीं।

शरीर में काम न आने पर चिकनई व श्वेत सार अवश्य जमा हो जाते हैं और स्थूलता लाने में विशेष मदद करते हैं। पर किस के शरीर में वे जमा होते हैं जिसको वे पच जाते हैं और जिस को मोटे होने की प्रवृत्ति होती है सब के विषय में ऐसा नहीं कहा जा सकता। अधिकतर लोगों के शरीर में तो श्वेत सारीय वर्ग व चिकनई वर्ग के पदार्थ शरीर की आवश्कता से अधिक सेवन करने पर मोटाई पैदा करने के बजाय रोग ही पैदा करेंगे।

(२) मनुष्य की ऊँचाई की बाढ़ तो अवश्य ३० साल के उपरान्त रुक जाती है पर शरीर की बाढ़ कदापि नहीं रुकती। ४५ साल की उम्र तो व्यक्ति के पूरे मोटे होने की उम्र मानी जाती है। फिर पता नहीं आपने यह आयुर्वेद का कथन कहाँ से से ढूँढ़ निकाला है?

प्रश्न—मैं पायरिया की बीमारी से पीड़ित हूँ। प्रतिदिन मेरे दाँतों से रक्त निकलता है। मैं आशा करता हूँ कि आप इसका कोई उपचार बतावेंगे, जिससे कि मैं फौरन इलाज शुरू कर दूँ।

—चन्द्र नारायण ७।१०३. शिमला ब्रिज,
स्वरूप नगर, कानपुर।

उत्तर—आपको यह ज्ञात होना चाहिये कि पायरिया रोग और दातों से खून गिरना, मसूड़े फूलना आदि रोग भोजन में विटामिन 'सी' के अभाव से होते हैं। अतएव आपको अपने भोजन में उन खाद्यों को प्रधानता देनी चाहिए जिनमें यह विटामिन प्रचुर मात्रा में मिलता हो। विटामिन 'सी' इन खाद्यों में प्रचुर परिमाण में पाया जाता है—कागजी नीबू, शन्तरा, मोसम्बी, टमाटर, मूली, गाजर, ताजा आंवला, अमरूद, अंगूर, पालक, पातगोभी और प्याज। वैसे तो सभी हरी पत्तीदार शाक-भाजियों में कुछ न कुछ मात्रा में यह विटामिन मौजूद रहता है। इस प्रकार आप हरी शाक-भाजी का तथा इन फलों में से कुछ फलों का अपनी रुचि के अनुसार चुनकर उनका विशेष रूप से प्रयोग करें। इसके साथ साथ शीघ्र लाभ प्राप्त करने के लिये आपको दांतों का व्यायाम भी करना चाहिये। नीचे ऊपर के दांतों की पंक्तियों को एक दूसरे से दबाइए। फिर दोनों नथनों को बन्द करके मुँह के द्वारा सीत्कार करते हुए सांस खींचिये ताकि हवा दांतों से होकर मुँह के अन्दर जाय। फिर नाक के नथनों से धीरे-धीरे सांस छोड़िये। यह क्रिया प्रातःकाल और सायंकाल दोनों समय कम से कम एक घन्टे तक करनी चाहिये। इससे पायरिया बहुत जल्द जाता रहेगा। नीबू का रस और शहद पानी में मिला कर दिन में तीन-चार बार कुल्ला भी करें। कच्ची सुरती की बारीक बुकनी तैयार करके प्रतिदिन २-३ बार उससे दांतों को मलने से भी विशेष लाभ होगा। सरसों के तेल और नमक से भी दांतों को दिन में दो-तीन बार साफ करना गुणकारी है। इसके अतिरिक्त यदि आप मंजन का प्रयोग करना चाहते हैं तो इसके लिये यह मंजन भी बहुत लाभ दायक होगा—नौसादर, सोंठ हल्दी और नमक इनको कूट-पीस कर छान लें। फिर सरसों के तेल के साथ प्रातःकाल दातून करने के बाद उसका प्रयोग करें। ऊपर बताई गई बातों को एक साथ करने से आशा है आपको बहुत शीघ्र इस रोग से छुटकारा मिल जायगा।

प्रश्न—मेरे गाँव में बहिरों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है। ज्यादातर १८-२० साल के युवक ही

[शेष २२ वें पेज पर]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पढ़िये ! • लाभ उठाइये !!

सुन्दर, स्वस्थ और सुखी जीवन के इच्छुकों को
ये पुस्तकें पढ़नी चाहिए

(१) रोगों की अचूक चिकित्सा (चतुर्थ संस्करण) : श्री जानकीशरण वर्मा, बी० ए० ५)
(२) मठा उसके गुण तथा उपयोग (परिवर्धित संस्करण) : श्री महेन्द्रनाथ पांडेय ॥=)
(३) स्वास्थ्य और व्यायाम—केदारनाथ गुप्त ... ... २।)
(४) स्वास्थ्य के नुस्खे—'जीवन सखा' कार्यालय ... ... ।)
(५) क्या और कैसे खायें—डा० बालेश्वर प्रसाद सिंह ... ... ।=)
(६) ब्रह्मचर्य ही जीवन है—श्री स्वामी शिवानन्द ... ... १॥)
(७) आनन्दमय जीवन ... ...
(८) कब्ज या कोष्ठबद्धता : डा० बालेश्वर प्रसाद सिंह .... १)
(९) शक्ति दर्शन—शंकरलाल तिवारी .... ॥)
(१०) आँख का अचूक इलाज : श्री महेन्द्रनाथ पांडेय .... २)
(११) जुकाम : श्री महेन्द्रनाथ पांडेय .... १॥)
(१२) शहद के गुण : और उपयोग—श्री महेन्द्रनाथ पांडेय ... . ॥।)
(१३) वैज्ञानिक जल चिकित्सा .... २)
(१४) स्वास्थ्य के लिये शाक तरकारियां : श्री महेन्द्रनाथ पांडेय ... १॥)
(१५) मन की अपार शक्ति : श्री केदारनाथ गुप्त ... . ॥=)
(१६) विचारों का प्रभाव : श्री रामसहाय अग्रवाल ... ... ॥)
(१७) हम सौ वर्ष कैसे जीवें : केदारनाथ गुप्त, एम० ए० ... ... १॥।)
(१८) सूर्य-नमस्कार : श्री भगवती प्रसाद पांडे, बी० ए० ... . १।)
(१९) स्वास्थ्य और जल चिकित्सा : प्रिन्सिपल केदारनाथ जी गुप्त ... ॥।)
(२०) आहार ही औषध है : डा० एल० एन० रतरा .... १॥।)
(२१) फलाहार चिकित्सा : श्री महेन्द्रनाथ पांडेय ... ... २।)
(२२) Nature Cure by H. Lindlahr, M. D. ... 7 8
(२३) Food-de Medicine by Dr. L. N. Ratra, H. M. B. ... I 4
(२४) Universal un-cooked food 3 8
(२५) Nature Cure of Eye defect By Dr. K. L. Sharma. 2 0

स्वास्थ्य सम्बन्धी पुस्तकें मिलने का पता :—

मैनेजर, स्वास्थ्य ग्रंथ-भण्डार लूकरगंज, इलाहाबाद

कूपन जून १९४५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Reg, No. A-172
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे जीवन से निराश हो चुके थे !

लेकिन वही अब देखिए क्या कहते हैं :—"न जाने क्यों और कैसे मैं दमा का शिकार बन बैठा। मुझे इस रोग से छुटकारा न मिलते देख कर पटना विश्वविद्यालय के अर्थ-शास्त्र के प्रो० डाक्टर ज्ञानचन्द जी ने डा० बालेश्वर प्रसाद जी को मेरी बाबत लिखा। मैं ऐसा-तैसा मरीज़ न था। पटना मेडिकल कालेज में मैं तब तक रहा जबतक कि वहां वालों ने मुझे ला इलाज करार करके निकाल न दिया। चारों तरफ से निराश होकर मैं प्रयाग में 'गंगा-लाभ' प्राप्त करने (मरने) के विचार से पहुँचा था। लेकिन यहां पर **डा० बालेश्वर प्रसाद सिंह, संचालक, प्राकृतिक स्वास्थ्य गृह, प्रयाग,** ने मेरी दशा में बिलकुल परिवर्तन कर दिया। मैं कुछ ही महीनों में पूर्ण स्वस्थ हो गया और अब आनन्द से हूँ। मैं तो यह विश्वास करने लग गया हूँ कि ऐसा कोई मर्ज नहीं जो इससे ठीक न हो सके।"

ठाकुर गगनदेव सिंह बी० ए०

c/o डा० ज्ञानचन्द, पटना।

इसी तरह के न जाने कितने असाध्य और निराश रोगियों को प्राकृतिक चिकित्सा-विधि से नया जीवन मिला है।

यदि आप भयानक से भयानक, व्याधि, अथवा जीर्ण रोग से पीड़ित हो रहे हैं तो उससे छुटकारा पाने के लिए नीचे लिखे पते से पत्र-व्यवहार करें। हमारे स्वास्थ्य गृह में प्रायः सभी प्रकार के रोगों का नैसर्गिक विधियों से सफलतापूर्वक इलाज होता है।

स्वास्थ्य गृह में रोगियों के रहने का प्रबन्ध

स्वास्थ्य गृह में रोगियों के आराम और सुविधा के ख्याल से दो श्रेणियां निर्धारित कर दी गई हैं। प्रथम श्रेणी के रोगी से १००) मासिक और द्वितीय श्रेणी के रोगियों से ७५) मासिक लिया जाता है, जिसमें चिकित्सा की फीस भी शामिल है। रोगियों को अपने भोजन का प्रबन्ध अलग से करना प... । पूरा विवरण पत्र भेजकर प्राप्त करें। पत्र के साथ टिकट भेजना जरूरी है।

नोट—हमारे यहां संक्रामक रोगों से पीड़ित रोगियों के रखने का प्रबन्ध नहीं है।

व्यवस्थापकः

प्राकृतिक स्वास्थ्यगृह, लूकरगंज, इलाहाबाद।

PRINTED BY M. L. PANDEY AT THE ABHYUDAYA PRESS ALLAHABAD.
PUBLISHED BY SYT. BALESHWER PRASAD SINHA, 5. LUKER GANJ ALLAHABAD.
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

जीवन सखा

शारीरिक, मानसिक और नैतिक स्वास्थ्य का पथ-प्रदर्शक

संयुक्त प्रान्त, मध्य प्रान्त तथा बिहार के शिक्षा विभागों द्वारा स्वीकृत

इस अंक में पढ़िये

१—रोगी बनने का शौक—डा० रामचरण महेन्द्र, एम० ए० डी० लिट्०
२—योगिक षट-क्रियाएं—श्री गुलाबचन्द जैन
३—सदाचार और स्वास्थ्य या आत्म-साधन—श्री विजय बहादुर सिंह बी० ए०
४—सूर्य की ये सतरंगी किरणें – श्री श्रीकृष्ण शर्मा
५—सेवा और स्वास्थ्य—श्री लाल जी राम शुक्ल, एम० ए० बी० टी०
६—उपवास—श्री दीनेश्वर नारायण शर्मा
७—सगर्भावस्था—डा० इन्दुमती सिनहा, एन० डी० डी० वाई
८—लकवा या फालिज—डा० सुरेन्द्र प्रसाद, एम० ए० एन० डी०
९—हैजे पर एक अनुभूत प्रयोग—श्री गोपाल कृष्ण मल्लिक
१०—दाँतों की देख-रेख—डा० किशोरी लाल, एल० डी० एस० सी०; एन० डी० डी० वाई
११—प्रसव का भय जाता रहा ! श्री देवेन्द्र दत्त गुप्त, नेवली,
१२—प्राकृतिक स्नान-एडोल्फ जूस्ट, अनुवादक श्री विट्ठलदास मोदी, आरोग्य मंदिर, गोरखपुर
१३—भोजन और स्वास्थ्य—डा० सीताराम सिंह, एन० डी० वाई
१४—तत्व चिकित्सा का पुनरुत्थान—श्री गंगाप्रसाद गौड़, 'नाहर'
१५—'नए युग' का आरम्भ ! [सम्पादकीय]
१६—प्रश्नोत्तर
१७—पुस्तक-परिचय

76283

अगस्त, '४५

वार्षिक मूल्य ३) ... प्रति अंक का ।-)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वास्थ्य सम्बन्धी ३ नए प्रकाशन

कविराज श्री महेन्द्रनाथ पाण्डेय की स्वास्थ्य सम्बन्धी महत्वपूर्ण कृतियाँ प्राकृतिक रोगोपचार के प्रेमियों के बीच कितनी लोकप्रिय हुई हैं, यह कहने की बात नहीं, इनकी प्रत्येक पुस्तक की अधिकाधिक मांग ही इनकी लोक प्रियता का सहज प्रमाण है। आपकी नयी कृतियाँ निम्नलिखित हैं:—

१ **तपेदिक**—तपेदिक के सम्बन्ध में सारी जानकारी की बातें, तथा इस भयंकर रोग से बचाव का उपाय इस पुस्तक के द्वारा आप बिना किसी की सहायता के जान सकते हैं। इसकी एक प्रति तो प्रत्येक घर में रहनी ही चाहिए। मूल्य ४) रु०

२ **जुकाम**—इसमें जुकाम, ब्रोंकाइटिस, दमा, खांसी, निमोनिया, एनफ्लुएञ्जा आदि का अचूक इलाज बताया गया है। बड़े काम की चीज है। मूल्य १॥) रु०

३ **हमारा भोजन**—आहार सम्बन्धी यह अनूठी पुस्तक अभी अभी प्रकाशित हुई है सचमुच पढ़ने की चीज है।

इन पुस्तकों के लिए आज ही लिखें—

मैनेजर-स्वास्थ्य ग्रंथ भण्डार, 'जीवन सखा' कार्यालय, लूकरगंज, प्रयाग।

प्राकृतिक चिकित्सा की शिक्षा प्राप्त करने का अनुपम अवसर!

प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली का सार्वभौमिक प्रचार करने के उद्देश्य से हमने शिक्षार्थियों को ट्रेनिंग देने की एक योजना बनाई है। इसके अनुसार आगामी अक्टूबर में पूरे एक महीने तक ट्रेनिंग देने की व्यवस्था की गई है। इसमें प्राकृतिक चिकित्सा के मूल सिद्धान्तों तथा उसकी व्यावहारिक शिक्षा का पूर्ण आयोजन हुआ है। इस तरह साल भर में एक-एक महीने के तीन कोर्स होंगे। शिक्षा का कोर्स समाप्त हो जाने पर साल के अन्त में शिक्षार्थियों की परीक्षा होगी, और जो उसमें उत्तीर्ण होंगे, उन्हें एन० डी० डी० वाई का डिप्लोमा प्रदान किया जायगा। जो शिक्षार्थी इस योजना से लाभ उठाना चाहते हैं वे अपना आवेदन-पत्र सितम्बर के अन्त तक, अपना नाम, पता और शिक्षा सम्बन्धी योग्यता के सहित **अवश्य** भेज दें।

नियम—प्रत्येक शिक्षार्थी से १०) मासिक फीस और १५ रु० मासिक खर्च लिया जायगा। प्राकृतिक चिकित्सा की व्यावहारिक शिक्षा प्राप्त करने के अभिलाषी व्यक्ति अपनी इच्छानुसार किसी भी महीने में आ सकते हैं। पर उन्हें उपयुक्त शुल्क प्रति मास देना अनिवार्य होगा।

संचालक, प्राकृतिक स्वास्थ्य गृह लूकरगंज, इलाहाबाद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युग्माङ्क

जीवन सखा

सम्पादक
डा० बालेश्वरप्रसाद सिंह

शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्
NATURE ONLY HEALS

वर्ष १०] जुलाई-अगस्त १९४५ [अङ्क ७-८

रोगी बनने का शौक !

[डा० रामचरण महेन्द्र, एम०,ए०, डी० लिट०, डी० डी०]

मैं ने एक ऐसी स्त्री देखी है जो केवल हठ धर्मी से बिस्तर पकड़े हुए है। हठ ही उसका रोग है। यह हठवादिता इतनी बढ़ गई है कि उसने उक्त रोगिणी के मन तथा संकल्प को ग्रसित कर लिया है। प्रारम्भ में उसका ख्याल न किया जाता था, उसके खान-पान, शयन के विषय में कोई दिलचस्पी ही न लेता था। वह आराम तलबी से रोकी जाती और बरबस काम में लगा दी जाती थी। वह कहती है, "जब से मैं रोगी हुई हूँ, कोई न कोई मेरी परिचर्या में प्रस्तुत रहता है। उचित समय पर पौष्टिक भोजन प्राप्त हो जाता है, सब मेरे मनोरञ्जन के लिए तैयार रहते हैं। मैं रोग मुक्त होना नहीं चाहती।"

हजारों व्यक्ति केवल काल्पनिक भ्रान्तियों से पीड़ित हैं। कुछ को बीमार कहाने का शौक (Hobby) है। कोई उनके पास बैठकर उनका मनोरञ्जन करता रहे और सहायता के लिए मौजूद रहे, यही उनकी आन्तरिक अभिलाषा है।

रोगी बनने का शौक समाज की दूषित मनोवृति का परिचायक है। अपने आपको बीमार कहना फैशन में सम्मिलित है। एक समय था जब ऐनक लगाना ऐब समझा जाता था। नेत्रों की कमजोरी शरीर के अन्य अवयवों की कमजोरी में शामिल थी। लेकिन आज चश्मा फैशन का एक विशिष्ट अंग बन गया है। किसी से बातें कीजिए तो वह यही कहेगा—"बीमार हो गया हूँ। टान-सिल बढ़ गए हैं। रात में खाँसी बहुत चलती है। अनिद्रा रोग है। कब्ज रहता है।" लोग अपनी निर्बल-ताओं के प्रदर्शन में, दोषों एवं त्रुटियों के विज्ञापन में, विशेष मजा लेते हैं।

मनुष्य को दुखी बनाने वाला उसका अयोग्य विचार ही है। उसे काल्पनिक भ्रान्तियाँ उत्पन्न होती हैं। भ्रम तथा भ्रान्तियों से मनुष्य मानसिक दुर्बलताओं का शिकार बनता है। भ्रम अनियंत्रित कल्पना की सन्तान हैं।

आप अपने सद्गुणों के प्रदर्शन में दिलचस्पी लीजिए। हजारों कल्पना की बीमारियों के लिए मन की स्वस्थ दशा रामबाण है। स्वस्थ जीवन की कुञ्जी है सद्विचार। अपने मनःप्रदेश में सद्विचारों को ही अंकुरित होने का अवसर दीजिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योगिक षट्-क्रियाएँ

श्री गुलाबचन्द जैन

[भारतीय प्राकृतिक चिकित्सा-प्रणाली के अन्तर्गत योगिक क्रियाओं का अपना निजी महत्व एवं उपयोगिता है, जो अन्य प्रणालियों के लिए दुर्लभ ही समझना चाहिए। ये क्रियाएं न केवल शरीर की भीतरी सफाई के लिए किन्तु उदर, फुफ्फुस और नेत्र-विकारों तथा अन्य कई बीमारियों को दूर करने के लिए भी बहुत उपयोगी सिद्ध हो चुकी हैं।

हठ-योग के अन्तर्गत षट्-क्रियाओं का वर्णन मिलता है, उसी का इस में उल्लेख किया गया है। जैसा कि लेखक ने बताया है, पाठकों को स्मरण रखना चाहिए कि यद्यपि ये क्रियाएं बहुत ही उपयोगी और प्रभावकारी हैं, फिर भी इनका अनुसरण करने में विशेष सावधानी की आवश्यकता है। कोई भी योगिक क्रिया किसी योग्य एवं अनुभवी व्यक्ति की ही देख रेख में करनी चाहिए, तभी इससे पूरा-पूरा लाभ उठाया जा सकता है। कोई लेख या पुस्तक पढ़कर अपने-आप ये क्रियाएँ शुरू कर देने पर लाभ के बदले हानि पहुंचने की आशंका हो सकती है। सं०]

हठयोग के प्रचारक योगियों ने शरीर में कफ की विकृति से उत्पन्न रोगों का नाश करने के लिए षट् कर्म निश्चित किए हैं। हठयोग-प्रदीपिका में धौति, वस्ति, नेति, नौलि, कपालभाति और त्राटक को षट्कर्म कहा है। कोई-कोई योगी कपालभाति, गजकरणी, वाघी, धौकनी और शंखप्रक्षालन, इनको भी षट् कर्मों में सम्मिलित मानते हैं।

शरीर के संचित मल को शीघ्र हटाने के लिए षट् कर्म प्राणायाम की अपेक्षा अधिक आवश्यक है। इन षट् कर्मों को करने के बाद प्राणायाम करने से अधिक सफलता प्राप्त की जा सकती है। षट्-क्रियाओं का साधन करने के लिए भोजन, आहार-विहार आदि के नियमों का पालन करना परमावश्यक है। भोजन सात्विक, लघु एवं परिमित होना चाहिए। एकान्त सेवन, अल्प-भाषण, साहस एवं वैराग्य-भावना भी आवश्यक है।

१— धौति

धौति मुख्यतः तीन प्रकार की होती है—(१) वस्त्र-धौति (२) जल-धौति और (३) वायु-धौति।

वस्त्र-धौति—हठयोग प्रदीपिका में वस्त्र-धौति का वर्णन इस प्रकार किया गया है :

चतुरंगुलविस्तारं हस्त पंचदशायतम्।
गुरुपदिष्टमार्गेण सिक्तं वस्त्रं शनैर्ग्रसेत्॥
पुनः प्रत्याहरेच्चैतदुदितं धौतिकर्मतत्।

अर्थात् यह धौति चार अंगुल चौड़ी और १५ हाथ लम्बे महीन वस्त्र आदि की बनाई जाती है। वस्त्र धौति करते समय इसे गरम जल में भिगोकर थोड़ा निचोड़ कर दांतों के तले दबा कर चबाने का उपक्रम करते हुए उसे निगलने की कोशिश करनी चाहिए। प्रतिदिन क्रमशः एक-एक हाथ कपड़ा निगलने का अभ्यास करते हुए

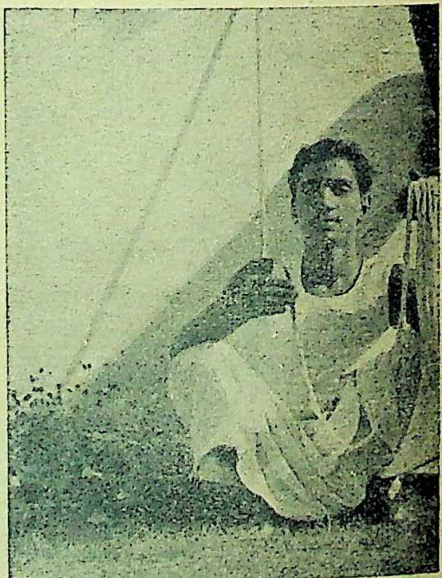

धौति

कुछ दिनों में सम्पूर्ण धौति निगली जा सकती है। पूरी धौति निगलते समय उसका अन्तिम भाग दांतों में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अच्छी तरह दबाकर नौलि करना चाहिये। नौलि कर के दाँतों में दबे हुए सिरे को हाथ में ले क्रमशः शीघ्रता से उसे बाहर खींच लेना चाहिए। इसका अभ्यास करते समय गुरु की सहायता लेना लाभकर है। धौति को धीरे-धीरे निगलना तथा शीघ्रता से बाहर निकालना चाहिये। कभी-कभी बाहर निकालते समय धौति भीतर फंस जाती है, उस समय धैर्य के साथ थोड़ी धौति अन्दर निगल कर पुनः उसे बाहर खींचना चाहिये। इस तरह करने से धौति बिना किसी कष्ट के बाहर निकल आयेगी। धौति को प्रतिदिन गरम जल और साबुन से साफ कर लेना चाहिये। क्योंकि बिना धोये उसमें लगे हुए कफ पित्तादि दूषित पदार्थ पुनः पेट में जाकर हानिकर सिद्ध होंगे। धौति करने के लिए प्रातःकाल का समय—भोजन के पहिले—उपयुक्त है। धौति के निगलने में अगर पहले कुछ कठिनाई मालूम पड़े तो उसके सिरे पर थोड़ा-सा शहद लगा कर उसे निगलने की कोशिश करनी चाहिए। शहद लगाने से इस क्रिया के करने में बड़ी आसानी हो जाती है तथा एक बार सफल हो जाने पर उसे लगाने की जरूरत नहीं होती। धौति के बाद गले में कुछ खराश या तकलीफ मालूम होने पर दुग्धपान करना अच्छा है।

वस्त्र धौति मुख-मार्ग व उदरमें स्थित विकारों—कफ, पित्तादि—को बाहर निकालती तथा अंगों को शुद्ध करती है। इससे उदर की अन्तः पेशियों को व्यायाम का लाभ प्राप्त होता है और वे अधिक स्वस्थ तथा क्रियाशील हो जाती हैं। दमा व सिर, आँख, नाक, कान और मुँह आदि के रोगों में यह क्रिया अधिक लाभकर है।

जल-धौति—वमन-धौति तथा गजकरणी इसी के पर्यायवाची शब्द हैं। इस क्रिया में पानी पीकर शीघ्र ही वमन कर दिया जाता है। गुनगुना पानी लेकर उसमें कुछ नमक मिला देना चाहिये। इच्छानुसार सेर-डेढ़ सेर तक पानी पीना अच्छा है। वमन करने के लिए मुँह में कौवे के पास की मांस पेशियों को उत्तेजित करना चाहिये। यह अंगुलियों या नीम की सींक—जिस के अन्त में दो पत्ते, जिनकी नोंकें टूटी हुई हों—की सहायता लेना चाहिये। ऐसा करने से वमन होने लगता है। वमन शुरू होते ही इस सींक से अधिक तेजी से उस भाग को खुजलाना चाहिये। ऐसा करने से सारा पानी बाहर निकल जायगा। पानी निकलना शुरू होते ही सींक बाहर निकाल लेने से तथा पानी को रुक-रुक कर बाहर निकालने से तकलीफ अधिक होती तथा पूरा पानी भी बाहर नहीं निकलता है। भीतर बच रहने वाला पानी मल, मूत्र तथा पसीने के रूप में शरीर से बाहर निकल जाता है। वह शरीर को किसी भी प्रकार की हानि नहीं पहुँचाता है।

अजीर्ण, धूप में भ्रमण, पित्तवृद्धि, जीर्ण कफव्याधि, रक्तविकार, आमवात, त्वचा-रोग आदि बीमारियों को दूर करने के लिए यह क्रिया लाभदायक है। तीक्ष्ण कफ-प्रकोप, वमन रोग, आंतों की कमजोरी, हृदय की निर्बलता आदि रोगों में यह क्रिया नहीं करनी चाहिए।

वायु-धौति—इस क्रिया में नासिका-मार्ग को बन्द कर के मुँह से सांस लेते हुए वायु को पेट में संचित किया जाता है। पेट में इस प्रकार संचित यह वायु उड्डियान तथा नौलि-क्रिया की सहायता से गुदा द्वारा शरीर से बाहर निकाल दी जाती है। वायु को जल की तरह धीरे-धीरे कण्ठ से आवाज निकाल कर पीना चाहिए।

धौति-क्रिया चाहे किसी भी प्रकार की हो, उससे पेट की सफाई अवश्य होती है और विजातीय द्रव्य शरीर के बाहर निकल जाते हैं। इसके करने से पेट का भारीपन नष्ट होता है तथा मानसिक शांति एवं प्रसन्नता प्राप्त होती है। पेट संबंधी रोग, अपच, कब्ज, उदर शूल, दमा, कफ या जुकाम से पीड़ित के लिए यह क्रिया अत्यंत लाभदायक है। परंतु यह हमेशा ध्यान रखना चाहिए कि लाभदायक वस्तु कभी-कभी हानि भी पहुँचा सकती है। जिसके श्वास-नलिका और पेट में सूजन हो, जो वमन, अतिसार तथा रक्तपित्त आदि से पीड़ित हो उसे इस क्रिया से कुछ फायदा नहीं होगा, बल्कि हानि की ही संभावना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होगी। इस क्रिया को प्रति दिन नहीं करना चाहिए, क्योंकि इससे पाचन-क्रिया के बन्द हो जाने से शरीर में निर्बलता आ जाती है। ❀

२—नेति

नेति दो प्रकार की होती है —(१) जल नेति और (२) सूत नेति। पहले जल नेति करना चाहिए और जब इसका अभ्यास हो जाय तब सूत नेति। पहले सूत नेति करने में कठिनाई होती है और उससे नाक के अन्दर की झिल्ली में खरोंच लगने का डर रहता है।

जल नेति—प्रातःकाल दन्तधावन के समय ही एक गिलास में कुछ गुनगुना पानी ले। गिलास को नाक से लगाकर पहले एक छिद्र से पानी ऊपर को खींचे और दूसरे नाक के छिद्र की सांस बन्द कर ले। फिर दूसरे नासारन्ध्र से पानी खींचे। इस तरह पानी कण्ठ से होकर मुँह में आ जायगा। प्रारम्भ में पानी कंठ-मार्ग से मुँह में न आकर पेट में चला जाया करता है। लेकिन बार-बार अभ्यास करने से यह त्रुटि दूर हो जाती है। याद रहे कि पानी को जोर से न खींचा जाय, नहीं तो सिर में दर्द हो सकता है। इसीलिये शनैः शनैः पानी नाक के छिद्र से खींचना चाहिये। एक समय में एक सेर से अधिक पानी मुँह से निकाल सकते हैं। इस क्रिया से नेत्र-ज्योति बलवान होती है। खास कर यह स्कूल और कालेज के लड़कों के लिये अधिक लाभप्रद है। ज्वर में जल-नेति नहीं करना चाहिये। बहुत से लोग उषः पान नाक से करते हैं, परन्तु ऐसा करना भारी भूल है, क्योंकि जो दोष (दूषित पदार्थ) नाक में संचित रूप से रहते हैं वे पेट में जाकर हानि पहुँचाते हैं, जिससे उन्हें भयंकर रोगों का सामना करना पड़ता है। इसलिये उषः पान नाक से न कर मुँह से ही करना चाहिये।

सूत नेति :—यह क्रिया नाक की सफाई के लिये है। जल नेति का अभ्यास हो जाने पर सूत नेति करनी चाहिये। सूत-नेति करीब १५-१६ इंच लम्बी होती है, जिसका आधा भाग बटा हुआ होता है। बटा हुआ भाग पिघले हुये मोम से चिकना बना लिया जाता है। इस नेति को भी प्रातःकाल करना चाहिये। पहले इसे पानी से भिगो ले और थोड़ा सा सिरे पर मोड़ कर, जो स्वर चलता हो उस नासारन्ध्र में लगावे और दूसरा छिद्र बन्द कर खूब जोर से पूरक करे। ऐसा करने से सूत का भाग कंठ के पास आ जायगा। तब उसे अँगुलियों द्वारा बाहर खींच लिया जाय। इसी प्रकार दूसरे छिद्र में डाल कर बाहर निकाल लिया जाय। इस क्रिया के करने से कफ जो नाक में लगा हुआ है, बाहर चला आयेगा और नाक साफ हो जावेगी। 'हठयोग प्रदीपिका' में इसका गुण इस प्रकार बताया गया है :

> कपाल शोधिनी चैव दिव्य दृष्टि प्रदायिनी।
> जत्रूर्ध्वं जातरोगौवं नेति राशुनिहन्ति च ॥

अर्थात् 'नेति कपाल का शोधन करती है, दिव्य दृष्टि की दात्री है, और स्कन्ध, भुजा तथा सिर की सन्धि के ऊपर के सारे रोगों को शीघ्र ही नष्ट कर देती है।'

अगर इसके करने से नासिका में दर्द या जलन पैदा हो जाय तो गोघृत दिन में दो तीन बार सूँघने से यह शिकायत दूर हो जायगी।

पाण्डु, कामला, पितज्वर, नासिका में दाह, नेत्र-दाह, मस्तिष्क-दाह आदि पित्त जन्य रोगों में से कोई रोग हो तो यह क्रिया नहीं करनी चाहिये।

३ त्राटक

किसी भी वस्तु को एकाग्रचित्त होकर देखना (अवलोकन) ही त्राटक कर्म कहलाता है। अपने मन को एकाग्र तथा केन्द्रस्थ बनाने के लिए यह क्रिया बहुत ही अच्छी है।

त्राटक करने की विधि :—दीवार में एक कील गाड़कर उस पर दर्पण टाँग दें और उस (दर्पण) के बीच में एक गोल (रुपये बराबर) कागज का काला टुकड़ा चिपका दें। आइने से कोई २-३ फुट की दूरी पर पद्मासन लगाकर या किसी कुर्सी पर बैठ जाइये। तत्पश्चात अपनी आँखों को बिना पलक डुलाये, उस गोल काले कागज पर केन्द्रस्थ करें और कोशिश करें कि आपका

❀ वैसे तो लेखक का यह कथन ठीक ही है, पर कुछ रोगों में यह प्रतिदिन भी की जा सकती है। —सं०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

76283

चेहरा काँच में न दीखने पावे तथा थोड़ी देर तक उसी कागज पर टकटकी लगाये रहें। यह अभ्यास पहले १ या २ मिनट से आरम्भ करना चाहिये। उसके बाद यह समय क्रमशः बढ़ाया जा सकता है। अगर त्राटक करते-करते आँखों में कुछ तकलीफ मालूम पड़े तो कुछ देर तक आराम करने के बाद पुनः अभ्यास शुरू कर सकते हैं। अभ्यास के बाद आँखें बन्द कर लें और उसी वस्तु का ध्यान करें। ध्यान में वही काला कागज दिखाई पड़े। यह त्राटक अनेक प्रकार से हो सकता है। जैसे किसी भी मूर्ति या अन्य वस्तु पर अथवा क्रम से पहले चिराग की लौ, फिर चन्द्रमा और उसके बाद सूर्य पर दृष्टि केन्द्रित करके भी की जा सकती है। अभ्यास के बाद आँखों को अच्छी तरह ठंडे जल से धो डालना चाहिये क्योंकि त्राटक करने से नेत्र और मस्तिष्क में उष्णता बढ़ जाया करती है। इस क्रिया से नेत्र सबल होते हैं। कहा भी है—

> मोचनं नेत्र रोगाणां तन्द्रादीनां कपाटकम्।
> यत्नस्त्राटकं गोप्यं यथा हाटकपेटकम्॥

अर्थात् "त्राटक नेत्रों को रोग से मुक्त करने वाला है। तन्द्रा आलस्यादि को रोकता है। इसलिये त्राटक कर्म सोने की पेटी की तरह गुप्त रखना चाहिये।"

पहले इस क्रिया के करने में कठिनाई मालूम होती है। मन एकाग्र न होकर इधर-उधर भटका करता है। तथा कई तरह के विचार दिमाग में आया करते हैं। परन्तु नियमित अभ्यास से कुछ समय के बाद यह क्रिया सरल प्रतीत होने लगती है और संससार की कोई भी वस्तु बाधा नहीं डाल सकती।

जो मनुष्य गाँजा, भाँग, चरस, मांस, मदिरा आदि नशीली चीजों का सेवन करते हैं तथा सात्विक भोजन की ओर ध्यान नहीं देते उन्हें यह क्रिया नहीं करनी चाहिये। क्योंकि इस तरह के व्यक्ति कार्य-सिद्धि में असफल ही होते हैं। इतना ही नहीं बल्कि उन्हें हानि भी पहुँचती है। नेत्र खराब हो जाते हैं और कभी-कभी तो उन्हें उन्माद रोग भी हो जाता है। त्राटक करने वालों को हमेशा गर्दन और नेत्रों की कसरत करनी चाहिये जिससे उनका नाड़ी-समूह मृदु बना रहे और अभ्यास करने में सरलता हो।

जो व्यक्ति अम्ल पित्त, विषम ज्वर, मज्जातन्तु-विकृति पित्ताशय-विकृति इत्यादि बीमारियों से पीड़ित हों उसे भी किसी प्रकार का त्राटक न करना चाहिये। इसी प्रकार मानसिक चिन्ता, क्रोध, शोक, पुस्तकों का अधिक अध्ययन, सूर्यताप या आँच का सेवन करने वालों को भी इस त्राटक का न करना चाहिये।

४—कपालभाति

शीघ्रता पूर्वक पूरक करने को कपालभाति कहते हैं। पद्मासन या सिद्धासन पर बैठ जाइये और आँखें बन्द कर लें। पहले दाहिने नासारन्ध्र से सांस ले और बायें से निकाल दें। फिर बायें नासारन्ध्र से सांस लें और दाहिने से निकाल दें। इस प्रकार जिससे सांस निकालें उसी से लें।

> मस्त्रावल्लोहकारस्य रेच पूरौ ससम्भ्रमौ।
> कपाल भातिर्विख्याता कफदोष विशोषणी॥
> (हठ योग प्रदीपिका)

"लोहार की धौकनी की तरह शीघ्रता पूर्वक प्राणायाम करना कफ दोष नाशक कहा गया है। यही कपालभाति कर्म है।"

कभी-कभी धौति और नेति से ठीक-ठीक शोधन न होने के कारण कपालभाति का उपयोग किया जाता है। इस क्रिया के करने से कपाल की शुद्धि, फुफ्फुस (Lungs) और श्वास-नालिका में एकत्रित हुआ कफ जल कर भस्म हो जाता है और जो कुछ शेष रह जाता है वह भी पसीने आदि के रूप में शरीर के बाहर निकल जाता है। इससे फुफ्फुसों को बल प्राप्त होता है तथा उनमें अपना कार्य पूर्णरूपेण करने की नवीन शक्ति प्राप्त होती है। जिनकी पाचन-क्रिया और मेदा खराब हो गया है, जिन्हें भोजन नहीं पचता उनकी पाचन-शक्ति इस क्रिया से प्रदीप्त हो उठती है।

कपालभाति धीरे-धीरे प्रारम्भ करनी चाहिये। अगर जल्दी की गई तो सम्भव है कि किसी नाड़ी को आघात पहुँचे। ज्यादा करने से फेफड़ों में शिथिलता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आ जाती है और फिर वे अपना काम समुचित रीति से नहीं कर पाते।

५—वस्ति

वस्ति आजकल के प्रचलित एनीमा का ही पूर्व रूप है, क्योंकि जो काम वस्ति का है—अर्थात् आंतों से मल निकाल कर उनकी सफाई करना—वही कार्य आज हम कुछ अच्छे रूप में एनीमा से लेते हैं। क्रिया की सरलता के वजह से आज कल इसी का उपयोग हो रहा है। वस्ति कर्म हर एक के लिये आसान नहीं है। कहीं लम्बे अभ्यास के बाद ही इसमें सफलता प्राप्त हो सकती है। वस्ति क्रिया के लिये नौलि कर्म आवश्यक है। बिना नौलि के वस्ति-क्रिया करना असम्भव है, क्योंकि नौलि द्वारा ही हम शरीर से वायु बाहर निकाल कर पुनः उसे गुदा मार्ग द्वारा भीतर खींचने का प्रयत्न करते हैं। यह क्रिया करते समय गुदा-मार्ग पानी में डूबा रहने के कारण तथा अंत्र (Intestines) वायु रहित होने के कारण वायु के दवाव से आसानी से पानी चढ़ जाता है। यह क्रिया कठिन है और हर एक आदमी इसे नहीं कर सकता। एनीमा में लाभ तो वस्ति के ही बराबर होता है लेकिन कठिनाई कम।

वस्ति गुदा द्वार के पास स्थित है और इसका वर्ण लाल है। इसे साफ रखने वाले कर्म को हम वस्ति कर्म कहते है। यह दो प्रकार का होता है—(१) पवन वस्ति कर्म और (२) जल वस्ति कर्म।

पवन वस्ति करने में भी नौलि कर्म की सहायता ली जाती है। इससे अपान वायु ऊपर की ओर खिंच जाती है। इसके पश्चात् वायु तथा मल को निकालने के लिये मयूरासन किया जाता है। मयूरासन कर चुकने के बाद मल वायु के दवाव से बाहर निकल आता है।

नाभिदघ्नजले पायौ व्यस्तनालोत्कटासनः।
आधाराकुंचनं कुर्यात् क्षालनं वस्ति कर्मतत्॥

(हठयोग प्रदीपिका)

अर्थात्—"मनुष्य गुदा मार्ग में एक बांस की पतली एवं पोली नली प्रविष्ठ कर पानी से भरे हुए टब या बर्तन में बैठे। पानी उसकी नाभि तक होना चाहिये। इस तरह बैठकर गुदामार्ग का आकुंचन करता हुआ पानी को ऊपर की ओर चढ़ाने की कोशिश करे। यही वस्ति-कर्म या क्षालन (जलवस्ति) कहलाता है।

धौति तथा इस क्रिया को हमेशा भोजन के पूर्व प्रातः काल करना चाहिये और अभ्यास कर चुकने पर हल्का भोजन करना अत्यावश्यक है, क्योंकि जो मल युक्त जल आँतों (Intestines) में कुछ न कुछ शेष रह जाता है वह रक्त में मिल कर अनेक बीमारियाँ उत्पन्न करता है।

इस क्रिया को कभी भी तालाब या गन्दे पानी में नहीं करना चाहिये। पानी का स्वच्छ और निर्मल होना जरूरी है। जिस पानी को काम में लाया जाय उसे किसी कपड़े से अवश्य छान लेना चाहिये। अगर ऐसा न किया जायगा तो उस तालाब या गन्दे पानी के सूक्ष्म जहरीले कीटाणु (germs) पेट में जाकर हानिकर सिद्ध होंगे। कमजोर तथा दुर्बल मेदा वाले मनुष्य को वस्ति क्रिया में शीतल जल का उपयोग नहीं करना चाहिये अन्यथा उसे लाभ की जगह हानि ही होगी।

गुल्मप्लीहोदरं चापि वातपित्त कफोद्भवा।
वस्तिकर्मप्रभावेन क्षीयन्ते सकलामयाः॥

(हठयोग प्रदीपिका)

अर्थात्—"वस्ति क्रिया के प्रभाव से गुल्म, प्लीहोदर और वात, पित्त, कफ से उत्पन्न अनेक रोग नष्ट हो जाते हैं।"

इस क्रिया के करने से सम्पूर्ण इन्द्रियों एवं मन को प्रसन्नता प्राप्त होती है। मुख पर चमक आती है तथा जठराग्नि प्रदीप्त होकर अपना कार्य ठीक तरह से करने लगती है। साधकों को नेति और धौति भी अवश्य करनी चाहिये।

तपेदिक (Pthyis) संग्रहणी (Diarrhoea) प्रवाहिका (Dysentery) भगन्दर (Fistula) मलाशय और गुदा में सूजन, सन्तत ज्वर, आंतों में सूजन इत्यादि रोगों में यह क्रिया नहीं करनी चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

६—नौलि-क्रिया

अमन्दावर्त्त वेगेन तुन्दं सव्यापसव्यनः ।
नतांसो भ्रामयेदेषा नौलि सिद्धैः प्रयच्छते ॥
(हठयोग प्रदीपिका)

अर्थात्—कन्धों को झुकाकर, अतिवेग से पेट को गोलाई में घुमाने की क्रिया को नौलि कहा गया है।

पाँवों को एक दूसरे से एक या डेढ़ फुट पर रखते हुए खड़े हो जायँ और घुटनों को थोड़ा आगे झुकाकर तथा दोनों हाथों को दोनों पाँवों पर इस प्रकार रक्खें कि अगुँलियाँ भीतर की तरफ रहें तथा दृष्टि उदर पर।

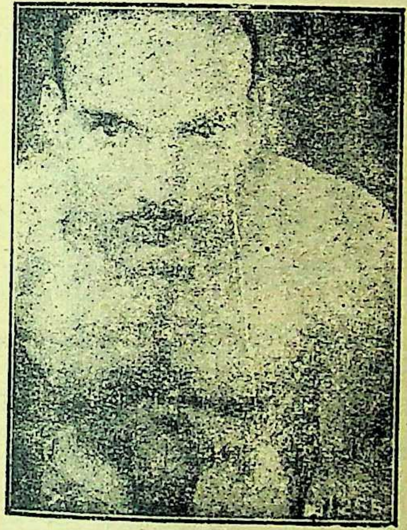

अब, फेफड़ों से सब वायु नाक द्वारा निकाल दे और उड्डीयान बन्ध करे, अर्थात् पेट को अन्दर की ओर ले जायँ—अँतड़ियों को भीतर पीछे की तरफ सटा दें। पश्चात् दाँये-बाँयें भाग को छोड़कर मध्य भाग को ढीला करें जिससे मांसपेशियाँ नलाकार रूप में बाहर आकर दिखाई देने लगे। इस क्रिया को मध्यम नौलि कहते हैं। इसी प्रकार दायें भाग को संकुचित कर दक्षिण-नौलि और बाँय भाग को ढीला कर वाम-नौलि की जाती है। इतना अभ्यास हो जाने पर शीघ्रता पूर्वक पहले मध्य-नौलि निकाले बाद में दक्षिण नौलि और अन्त में बाम नौलि करें। शीघ्रता पूर्वक करने से नौलि चक्राकार रूप में घूमने लगती है और उस समय ऐसा मालूम पड़ता है जैसे कि कोई मशीन चल रही हो। परन्तु यह संभव केवल तभी होगा जब कि अभ्यास पूर्ण हो जाय इस क्रिया को शौचादि से निवृत होकर तथा भोजन के पूर्व करना चाहिये। नौलि-क्रिया पेट का एक अच्छा व्यायाम है और इसके द्वारा भयंकर से भयंकर रोग नष्ट किये जा सकते हैं। शौच खुल कर आता है और कब्ज दूर होता है। यकृत अपना काम सुचारु क्रम से करने लगता है।

मन्दाग्निसन्दीपनपाचनादि—
सन्धापिकानन्द करी सदैव ।
अशेष दोषा मय शोषणी च
हठ क्रिया मौलिरियं च नौलि ॥

अर्थात् 'नौलि क्रिया मन्दाग्नि को उत्तेजित करने वाली अन्न का पाचन करने वाली तथा आनन्द को देने वाली है। यह सम्पूर्ण वात, पित्त, कफादि दोष तथा अन्य रोगों का नाश करने वाली है। इस प्रकार यह हठ योग की क्रियाओं में सर्वोत्तम कही गई है।'

नौलि-क्रिया को शान्ति पूर्वक करना चाहिये। अंतड़ियों में सूजन, क्षतादि दोष या पित्त प्रकोप जनित अतिसार, प्रवाहिका (पेचिश), संग्रहणी आदि रोगों में नहीं करना चाहिये।

—:o:—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सदाचार और स्वास्थ्य

या

आत्म-साधन

श्री विजयबहादुर सिंह, बी० ए०

[एक पाश्चात्य दार्शनिक का कथन है, "मनुष्य जैसा विचार करता है वैसा ही वह बनता है।" निस्सन्देह मनुष्य का बौद्धिक निर्माण उसके विचारों द्वारा ही होता है। सद्विचार और सदाचार दोनों सगे भाई हैं। सद्विचार का बीजारोपण मानसिक शुचिता के क्षेत्र में होता है और यह क्षेत्र तैयार करता है सदाचार। अतः मानव-जीवन का यह मानसिक पहलू उसके शारीरिक पहलू से कहीं अधिक महत्वपूर्ण एवं विचारणीय है। रोग-शोक, संताप-अनुताप से वास्तविक छुटकारा मिलना इस प्रकार की मानसिक स्थिति होने पर ही सम्भव हो सकता है।

विद्वान लेखक ने इस लेख में स्वस्थ एवं आरोग्यमय जीवन की इस बौद्धिक पृष्ठ भूमि पर प्रकाश डाला है। आप का यह सुन्दर लेख 'गागर में सागर' की लोकोक्ति को सार्थक सिद्ध करने वाला है। —सं०]

हम स्वयं अपने सुख-दुख, रोग-आरोग्य के उत्तरदायी हैं। हमारे सुख-दुख स्वकृत कर्मों के फल हैं। आरोग्य के लिए खान-पान की जितनी आवश्यकता है, उतनी ही सदाचार की भी। सदाचार से आन्तरिक शुद्धि होती है, जो कि स्वस्थ जीवन की पृष्ठ-भूमि है।

यदि हम संयम चित्त से अपने विगत जीवन के विचारों और कार्यों का सिंहावलोकन करें तो हमें अपनी त्रुटियों अथवा, अज्ञानता का थोड़ा-बहुत परिज्ञान हो जाता है। विवेकपूर्वक आत्म-निरीक्षण आत्म-सुधार के लिए बहुत ही उपयोगी प्रमाणित होता है।

सदाचार आत्म-सुधार का प्रथम सोपान है। नैतिक जीवन ही हमारा उद्देश्य होना चाहिए। संसार के सभी महान पुरुषों और साधकों के जीवन का यह अनुभूत निष्कर्ष है कि जीवन को उन्नततर बनाने के लिए हमें सदाचार को अपना रक्षा-कवच बनाना चाहिए। सदाचार वाह्य और आन्तरिक, शारीरिक और मानसिक, होना चाहिए। अनाचार से व्यक्ति का अधः पतन होता है और सामाजिक विशृंखलता बढ़ती है।

सृष्टि का निर्माण जिन तत्त्वों एवं धर्मों के आधार पर हुआ है, सदाचार उसका एक प्रमुख अंग है। प्रकृति के प्रत्येक कार्य में नियमितता—व्यवस्था—पूर्णरूप से पाई जाती है। सदाचार विश्वनियामक के उन प्रधान धर्मों में है, जिसके समुचित अनुसरण से मानव-जीवन अबाधित गति से प्रवाहित होता रहता है। सदाचारी को रोग, शोक, सन्ताप, अनुताप का बहुत ही कम भय होता है, और वह अपने कुल, जाति, समाज और देश के गौरव का प्रतीक माना जाता है। सदाचार में अनेक गुण हैं। इससे ईश्वर की समीपता सरल हो जाती है। इसके विपरीत दुराचारी जाति, समाज और देश का कलंक होता है।

सदाचार किसे कहते हैं

सत्पुरुषों के आचरण को सदाचार कहते हैं। पवित्रता सदाचार का दूसरा नाम है। यह पवित्रता मनसा, वाचा और कर्मणा होनी आवश्यक है। सत्सङ्गति सदाचार साधन में बहुत सहायक होती है। सात्विक भोजन से पवित्रता में वृद्धि होती है। योग-दर्शन के यम-नियम के यथाविधि पालन करने से सदाचार की उन्नति होती है। सन्त, महात्मा एवं संसार के महान् पुरुषों की जीवन-गाथा पढ़ने से भी सदाचार में वृद्धि होती है।

आर्ष ग्रन्थों के अध्ययन एवं मनन से सदाचार का विकास होता है। शास्त्र-विहित नित्यकर्मों के अनुष्ठान से, मंत्र-जप से, पवित्रता बढ़ती है। निषिद्ध कर्मों के परित्याग से शुचिता का उत्तम विकास होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सदाचार-साधन सरल कार्य नहीं है। संसार में प्रलोभन की इतनी वस्तुएँ हैं जिनकी ओर कुसंस्कारों से भरा हुआ मन सरलता से आकृष्ट होकर अनाचार में प्रवृत्त हो सकता है। अतः आत्म-साधन के लिए मन पर कठोर नियंत्रण स्थापित करना बहुत आवश्यक है। साधक को अपने पूर्व संस्कारों से युद्ध करना पड़ता है। उसे अपने स्वभाव को सुधारना होता है। अपने मन को सत्कर्मों के चिन्तन में लगाना होता है। नित्यानित्य वस्तु पर सतत मनन करते रहने से नित्य वस्तु की ओर मन का झुकाव हो उठता है जिससे सदाचार की वृद्धि और पुष्टि होने लगती है।

हमारे मन के विचारों ने हमें बनाया है। इस समय हम जो कुछ हैं उसके जनक हमारे विचार हैं। मन की शक्ति के अनुसार ही मनुष्य के चरित्र का निर्माण होता है। पवित्र मन जीवन और शान्ति का दाता है। मन द्वन्द्वात्मक होता है। इसमें सद् और असद् विचार उठते रहते हैं। मन कभी निष्क्रिय नहीं रहता। विचारों का संघर्ष प्रत्येक क्षण चलता रहता है। अब यह व्यक्ति की शिक्षा और योग्यता पर निर्भर करता है कि मन के अपवित्र विचारों को हटा कर उसमें सद्विचारों का बीज आरोपित करें। हमारे कार्य हमारे अपने विचार से उद्भूत होते हैं और सुख-दुख उसी विचार के फल हैं।

विचारों में जीवन-क्रम बदल देने की एक अलौकिक शक्ति है। हम जब से चाहें तभी से अपने मन, शरीर और अपनी परिस्थिति को सुधार कर अपना जीवन बनाना प्रारम्भ कर सकते हैं। इसके लिए दृढ़ संकल्प का होना बहुत आवश्यक है। इस आत्म-सुधार में, उथल-पुथल, असफलता सम्भवतः होगी। यह भी सम्भव है कि दुःख, अज्ञान और कुसंस्कारों से हमें शीघ्र छुटकारा न मिले; परन्तु हृदय में हमेशा यह भासित होता रहता है कि सुधार का कार्य चल रहा है और यह क्रमिक विकास हमें कभी न कभी सफलता के द्वार पर पहुँचा ही देगा।

सफलता तो कार्य के उत्तम रीति से करने पर स्वतः मिलती हैं। हम चाहे जिस किसी भी क्षेत्र में हो, उसी में यदि सच्चे भाव से और सचाई के साथ मन लगा कर कार्य करें तो निश्चय ही हमें सुख और सफलता मिल जायगी। जो व्यक्ति सचाई के साथ अपने काम में निरत रहता है उसे प्रतिक्षण सफलता मिलती रहती है।

सब से पहले हमें अपने आप को जानने की आवश्यकता है। आत्म-निरीक्षण सुधार में बहुत सहायता पहुँचाता है। हमें अपनी कामनाओं का विश्लेषण करना चाहिए। जीवन-रक्षा के आवश्यक साधनों के अतिरिक्त अन्य प्रकार के प्रलोभनों से अपने को बचाने की हमें सदा चेष्टा करते रहना चाहिए। वस्तुतः शान्ति सन्तोष में है।

हमें अपनी इच्छाओं पर अंकुश रखना चाहिए। प्रतिदिन और प्रति पल हमें अपने कार्य और मन की गति की परख करते रहना चाहिए। यदि कोई भूल हम से हो जाय तो उसे स्वीकार करने में तनिक भी हिचकिचाहट नहीं करना चाहिए। इस प्रकार तो प्रतिदिन आत्मपरीक्षा में कुछ समय लगाना ही चाहिए। हमें स्मरण रखना चाहिए कि जितनी सचाई से हम अपनी परख करते रहेंगे उतनी ही अधिक मात्रा में हम अपने गुणों के विकसित होने में सहायक होंगे और हमारी आत्मा उतनी ही उन्नति करती जायगी। हम प्रेम, शान्ति और पवित्र विचारों का अपने में बीजारोपण कर सकते हैं, जिसकी उपज भविष्य में सुख-शान्ति दायिनी होगी।

मन के अतिरिक्त हम पर शासन करने वालों में हमारे स्वभाव–हमारी प्रकृति–का प्रधान स्थान है। यह सद् और असद्, दो प्रकार का है। हमें अपनी निम्न प्रकृति को कभी भी प्रश्रय नहीं देना चाहिए।

जब कभी हम इसके आधीन हो जाते हैं तभी हम उस पर विजय पाने के मार्ग में बाधक बन जाते हैं। जब-जब हम निम्न प्रकृति द्वारा सुझाई हुई किसी बात को ठुकरा देते हैं तब-तब हम एक पग और आगे बढ़ जाते हैं। अतः हमें संकल्प के विषय में शिथिलता नहीं दिखानी चाहिए।

[शेष १४वें पृष्ठ पर]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूर्य की ये सतरंगी किरणें !

श्री श्रीकृष्ण शर्मा

[प्रकृति के हरे-भरे प्रशस्त अञ्चल में हम जो वर्ण-वर्ण के पेड़ पौधे, रंग-बिरंगे फल-फूल देखते हैं—यह सब सूर्यकी सतरंगी किरणों की ही माया है। उज्ज्वल प्रकाश में अन्तर्निहित यह नैसर्गिक रंगीनी नयनरंजक ही नहीं, जीवनरंजक भी है। बनस्पति-जगत् की ही भाँति प्राणि जगत् पर भी इसका अलौकिक एवं स्थायी प्रभाव पड़ता है। सूर्य-रश्मि चिकित्सा का यही मूलाधार है।

प्रस्तुत लेख में अनुभवी लेखक ने, जिनसे हमारे पाठक भली भाँति परिचित हो चुके होंगे, बताया है कि 'तरह-तरह के खाद्यों, फल और शाक-तरकारियों का उनके रंग के अनुसार अलग अलग महत्व और गुण होता है, जिसका यदि मनोयोगपूर्वक अध्ययन एवं अनुसरण किया जाय तो हम अनेक प्रकार के रोगों और व्याधियों से सहज ही छुटकारा पाकर स्थायी स्वास्थ्य एवं आरोग्य-लाभ कर सकते हैं। इस गम्भीर विषय का लेखक ने जिस सरल तथा रोचक शैली में प्रतिपादन किया है वह सचमुच सराहनीय है।

—सं०]

"सौर स्फुरण (Solar Radiation) तथा मानव-जीवन इन दोनों का आपस में घनिष्ठतम संबन्ध है। जीवन का सम्बन्ध प्रकाश-शक्ति तथा उसके वर्ण-(रंग) वैभव से है, न कि प्रोटीन, श्वेतसार या चिकनई से अथवा नाइट्रोजन, हाइड्रोजन, कारबन अथवा उष्णांक से।"

उपर्युक्त कथन की सार्थकता सिद्ध करने के लिए हमें प्रकृति के प्रकाश-तत्व का दिग्दर्शन कराना होगा। स्थूल तत्वों के मुक़ाबले में प्रकृति के सूक्ष्म तत्वों की महान प्रभावकारिता पर बहुत बार प्रकाश डाला जा चुका है। आकाश और वायु-तत्व की भाँति प्रकाश-तत्व भी सूक्ष्म है। इसके विपरीत प्रोटीन, श्वेतसार, चिकनई आदि तथा अन्य प्रकार के आहार-तत्व क्षिति-तत्व के ही अन्तर्गत आते हैं, जो कि स्थूल हैं। लेकिन सूक्ष्म तत्वों में भी प्रकाश-तत्व की सर्वाधिक महानता बताई गई है। प्रकाश-तत्व का अक्षुण्ण प्रवाह सौर-स्फुरण के रूप में हमें मिलता है। इसी लिए सूर्य को विश्वात्मा की संज्ञा दी गई है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि सूर्य-चिकित्सा एक दिव्य एवं सर्वांगपूर्ण प्रणाली है। यह केवल रंगीन बोतलों में तैयार किए गये पानी या तेल अथवा रंग-बिरंगे शीशों के प्रकाश तक ही सीमित नहीं, बल्कि इस का प्रभाव-क्षेत्र भौतिक पदार्थों से लेकर आध्यात्मिक जगत् तक फैला हुआ है।

प्रस्तुत लेख में बनस्पति जगत् पर, विशेषतः फल और शाक-भाजियों पर, सूर्य-किरणों तथा उनके सतरंग के पड़ने वाले अपरिमित प्रभाव की हम चर्चा करेंगे।—

सूर्य की सतरंगी किरणों का बनस्पतियों पर प्रभाव

फल और शाक-भाजियाँ सूर्य-शक्ति की ही देन हैं। यह एक प्रकार से सम्पुटित सौर-शक्ति के ही रूप में हमारे जीवन-धारण और पोषण के लिये बनी हैं। एक विद्वान ने भोजन को 'सघन रासायनिक प्रकाश-लहरियाँ' तक कह डाला है, जो निस्सन्देह कोई अत्युक्ति अथवा अतिरंजना नहीं है। सूर्य की श्वेत-किरण वस्तुतः सात प्रकार के रंगों का सम्मेल है। इन सातों रंगों का प्रादुर्भाव विभिन्न फलों और तरकारियों में अनेक प्रकार से होता है। प्रकाश और रंग की प्राण-धारक लहरियाँ वृक्षों में रासायनिक परिवर्तन करती हैं, जिसके फलस्वरूप उनका पूर्ण विकास होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूर्य की इन सतरंगी किरणों का चमत्कार देखने के लिये हम नगर के कृत्रिम वातावरण से दूर किसी प्राकृतिक वन-स्थली की ओर चलें, जहाँ प्रकृति नटी का धानी अंचल नित-नूतनता से समुत्फुल्ल एवं सजीव दिखाई देता है।

हम देखते हैं कि दूर-दूर तक फैली हुई हरियाली एक सी ही नहीं है—वृक्षों की हरीतिमा एक दूसरे से सर्वथा भिन्न कहीं गहरी, कहीं हलकी, कहीं कुछ पीला-पन लिए हुए और कहीं पर काही रङ्ग की दृष्टिगोचर होती है।

फूलों की ओर दृष्टिपात करने पर हमें एक विचित्र रहस्य, जान पड़ता है—विस्मय होता है कि आखिर सूर्य की किरणें तो समस्त पेड़-पौधों पर समान रूप से पड़ती हैं, फिर उनकी एक-सी प्रतिक्रिया क्यों नहीं होती? किन्तु यह तो स्पष्ट जान पड़ता है कि यह वर्ण-विभिन्नता श्वेत प्रकाश के ही अन्तर्गत होती होगी, क्योंकि इन सातों रङ्गों का मूल स्रोत श्वेत प्रकाश ही है। अब प्रश्न यह है कि तो फिर कोई फूल पीला, कोई लाल, कोई नीला तो कोई सफेद क्यों हो जाता है? क्या जीवित वस्तु में चेतना का होना कोई असम्भव बात है? यदि नहीं तो यह भी सम्भव है कि अमुक फूल में अपने स्वभाव के अनुकूल प्रकाश-लहरियाँ ग्रहण करने तथा प्रतिकूल प्रकाश लहरियों का परित्याग करने की भी सामर्थ्य है। पीले फूल का रहस्य इसी में निहित है कि श्वेत किरणों से उसने केवल पीले रङ्ग की प्रकाश-लहरियों को ही प्रिय समझ कर ग्रहण किया और अन्य छः रङ्गों को अप्रिय समझ कर उनका तिरस्कार! पीला रङ्ग स्वतः अपने आधिक्य के कारण प्रतिकूल अतः त्याज्य है किन्तु प्रकृति की अद्भुत लीला से वही त्याज वर्ण उसका प्रिय परि-धान बन जाता है। इसी प्रकार अन्य रङ्गों के फूल सूर्य की विशिष्ट प्रकाश-लहरियों को प्रिय-अप्रिय समझते हुये उनका स्वागत अथवा तिरस्कार करते हैं। सफेद रङ्ग का फूल किसी भी रङ्ग को स्वीकार नहीं करता, इसीलिये वह श्वेत हो जाता है। फूलों में कमल सूर्यास्त होते ही अपने नेत्र पटल बन्द कर लेता है और प्रातःकाल फिर पूर्ण रूप से विकसित हो जाता है।

प्रकृति की यह रङ्गीन-रचना निष्प्रयोजन नहीं है। यों तो प्रत्येक भौतिक पदार्थ का अपना अलग-अलग रङ्ग होता है। संसार के समस्त पदार्थ अपनी वर्ण-क्षमता (colour potency) का प्रदर्शन करते हैं, चाहे उन पर सूर्य-प्रकाश पड़े या न पड़े। परन्तु सूर्य का प्रकाश पड़ते ही वह रङ्ग-शक्ति अधिक प्रखर और सक्रिय हो जाती है। वनस्पति-जगत् वस्तुतः सप्राण है, जहाँ सूर्य-रश्मियों और पंच तत्वों के मेल से एक ऐसा सजीव और सघन रासायनिक जाल बुना जाता है जो ऊपर से विविध रङ्गों से आच्छादित रहता है। फल या फूल के बीज के चारों ओर अनेक रासायनिक पदार्थों का संगठन उसी विशिष्ट बीज के रङ्गीन भण्डे की (जो विकास की स्थिति का सूचक है) संरक्षकता में होता है।

यह तो सभी जानते हैं कि प्रकाश और रङ्ग से पेड़-पौधे विशेष रूप से प्रभावित होते हैं। हमारे पूर्वजों का यह विश्वास, कि पेड़-पौधे दिन में जागते और रात में सोते हैं, अब हास्यास्पद नहीं रहा, क्योंकि अब आधुनिक वैज्ञानिक भी मानने लगे हैं कि संसार के अन्य प्राण-धारियों की भाँति इनमें भी जीवन है। इस रहस्य का उद्घाटन करने वाले सर्व प्रथम वैज्ञानिक स्वर्गीय आचार्य जगदीशचन्द्र वसु थे, जिन्होंने अपने वैज्ञानिक प्रयोगों से सिद्ध कर दिया है कि पेड़-पौधे भी हमारी तरह सांस लेते, विश्राम करते और आहार ग्रहण करते हैं।

पाश्चात्य देशों में बिजली के तेज प्रकाश में पेड़-पौधों का विकास किया गया है। डाक्टर केलाग ने रङ्गों के प्रभाव को भी प्रत्यक्ष रूप से प्रतिपादित किया है। इस तरह के प्रयोगों में पेड़ों को कई रङ्ग के बक्सों में बन्द करके रक्खे जाने पर उनके विकास, रङ्ग और बनावट में स्पष्ट रूप से अन्तर पाया गया। काले रङ्ग के बक्स में जो पौधे रक्खे गये थे उनमें क्लोरोफिल Chlorophyll) का लेशमात्र अंश नहीं मिला, परन्तु सफेद रङ्ग के बक्स में रक्खे गये पौधे की पत्तियों में यह प्रचुर मात्रा विद्यमान था। इसी प्रकार हरे, पीले, लाल रङ्ग के बक्सों में बन्द पौधों पत्तियों के रङ्ग में अन्तर पाया गया।

हाँ, तो इसी प्रकार बहु रंगे फूल-फल सब जगह दिखाई देते हैं। साथ ही लाल रङ्ग से लेकर बैंगनी रङ्ग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तक अनगिनती वर्ण-छटाएँ (Infinite Tints, and shades) प्रकृति के आँचल में बिखरी हुई दिखायी पड़ेंगी। रङ्गों के अन्तर के साथ ही साथ फूल या फल के गुण भी बदल जाते हैं। उदाहरण के लिये केला अपने लाल, पीले और हरे रङ्ग के छिलके के अनुसार अलग-अलग गुण रखता है।

रंगीन फल और शाक भाजियों का शरीर पर प्रभाव

सचमुच यह कैसी विचित्र बात है कि सूर्य-चिकित्सा में रङ्गों का शरीर पर जिस तरह का प्रभाव पड़ता है, ठीक वैसा ही प्रभाव रङ्गीन फलों का भी शरीर के अवयवों अथवा क्रियाओं पर भी पड़ता हुआ देखा गया है। उदाहरण के लिए पीले रङ्ग का प्रभाव पाचन-क्रिया पर विशेष रूप से पड़ता है। आमाशय अथवा कोष्ठ के स्नायुओं को उत्तेजित करने के अतिरिक्त पीले रङ्ग का विरेचक प्रभाव यकृत पर भी पड़ता है। उपरोक्त गुण पीले रङ्ग के फलों में नीबू से लेकर चकोतरा तक के सभी फलों (जो बहुधा पीले या नारङ्गी रङ्ग के होते हैं) में पाये जाते हैं। इस जाति के सभी फल पाचक और रेचक होते हैं। इसी प्रकार अन्य पीले फल जैसे, अमरूद, मकोय, पपीता आदि पेट की खराबी में लाभकारी सिद्ध होते हैं।

किन्तु फलों के रङ्ग का निर्णय करना भी एक समस्या है। फलों के छिलके के रङ्ग से मूल रङ्ग नहीं जाना जा सकता। मूल रङ्ग किरण-चित्र विश्लेषण (Spectrum Analysis) के द्वारा ज्ञात हो सकता है। इसके लिए एक विशेष यंत्र, जिसे स्पेकट्रोस्कोप'(Spectroscope) कहते हैं, काम में लाया जाता है। इसके अतिरिक्त रासायनिक विश्लेषण द्वारा भी, प्रधान खनिज पदार्थ के रङ्ग के अनुसार, उसके रङ्ग का निश्चय हो सकता है। जैसे, एक ही फल में दो या तीन रङ्गों का समावेश होता है और उनमें जो रङ्ग प्रधान होता है उसी रङ्ग की श्रेणी में उसकी गणना होती है।

रंग के आधार पर फल और शाक-भाजियों का वर्गीकरण

रङ्ग के आधार पर फल और शाक-भाजियों को निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है।

(१) लाल रङ्ग प्रधान—चुकन्दर, लालबेर, टमाटर, पालक, लालशाक, मूली इत्यादि

(२) नारंगी रंग प्रधान—नारङ्गी, पके हुए देशी आम, गाजर, करेला इत्यादि

(३) पीला रंग प्रधान—नीबू, मकोय, अनन्नास, खरबूजा, पपीता, बथुआ, इत्यादि।

(४) हरा रंग प्रधान—खीरा, ककड़ी, परवल, सलाद, धनिया इत्यादि।

(५) नीला, गहरा नीला और बैगनी रंग प्रधान—जामुन, फालसा, आलू-बूखारा, बेल, सेब, सिंघाड़ा, बेदाना अनार, भिण्डी इत्यादि।

पहले वर्ग अर्थात् लाल रङ्ग प्रधानफल या शाक भाजी में लोहा, और पोटैशियम की मात्रा अधिक होती है। नाइट्रोजन और आक्सीजन का भी उनमें समावेश होता है।

नारङ्गीरङ्ग-प्रधान-फल और शाक-तरकारियों में चूना (Calcium) और लोहा विशेष रूप से पाया जाता है। गैसों में केवल नाइट्रोजन की प्रधानता उनमें रहती है।

पीला रङ्ग प्रधान फल-शाकों में कार्बन, नाइट्रोजन, आक्सीजन, तथा खनिज लवणों सोडियम, कैलशियम और लोहा प्रचुर मात्रा में रहता है।

नीला, गहरा नीला तथा बैगनी रङ्ग प्रधान फल और शाक-तरकारियों में आक्सीजन, नाइट्रोजन के अतिरिक्त लोहा मैगनीशियम और फासफोरस भी पाया जाता है।

उपरोक्त अध्ययन केवल मोटे तौर पर ही किया गया है, इसमें बहुत कुछ संशोधन हो सकता है। यह तो संकेत मात्र है, अभी इस सम्बन्ध में और अधिक अनुसंधान की आवश्यकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऊपर दिये गए चार्ट से यह भी स्पष्ट हो गया होगा कि केवल छिलके के आधार पर ही रंग-निर्णय नहीं हो सकता। पहले ही श्रेणी के फल—तरकारी में पालक हरे रंग की होती हुई भी लाल रंग प्रधान बताई गई है। क्योंकि उस में लोहा अधिक होता है, जिसका रंग लाल है। लाल रंग के गुण के अनुसार पालक भी रेचक और रक्त के लिये हितकर है। रक्त-हीनता में रक्त में लोहे की कमी हो जाती है, जिसकी पूर्ति पालक में विद्यमान लोहा कर देता है।

इस प्रकार हरे रंग की तरकारी और फल शीतल, गुर्दों को हितकारी और कोष्ठ को साफ करने वाले और चक्षु तथा चर्म-रोग में लाभ दायक सिद्ध होते हैं।

नीला, गहरा नीला और बैंगनी रंग का गुण ठंढा, मल बांधने वाला (Stringent) उत्तेजक स्नायुओं को हितकारी और कीटाणु नाशक होता है। इस रंग के फल कम पाये जाते हैं। परन्तु इस रंग का समावेश कई फ़लों में होता है। बेल में पीला और नीला दोनों रंगों का समावेश होने के कारण कब्ज और पेचिश दोनों में यह उपयोगी होता है। नीले रंग के फल भी नीले रंग के गुण रखते हैं। आम की गर्मी जामुन निकालता है और फालसा तो शीतल होने के कारण सर्व प्रिय है। बेदाना अनार में नीले रंग का संमेल होने से हृदय की कमजोरी या धड़कन (Palpitation) में काम आता है। भिंडी और सिघाड़ा शीतल, पौष्टिक और काबिज होते हैं।

केवल यही बात नहीं कि भिन्न भिन्न रंग के फल भिन्न भिन्न गुण रखते हैं वरन् एक ही जाति के फलों में छिलकों के रंगों में अंतर पड़ने से गुणों में भी भेद हो जाता है। केला तीन रंग का होता है जिसके अनुसार उसके गुण भी बदल जाते हैं। श्री जानकीशरण वर्मा के कथनानुसार "लाल छिलके वाले केले में शक्कर और लोहे का आधिक्य होता है। यह खून की कमी और दुर्बलता में हितकर है। पीले छिलके वाले केले सोडा के आधिक्य के कारण साफ दस्त लाने में सहायक होते हैं। हरे छिलके के केले में पोटाश और सोडा ज्यादा होते हैं जिससे वह पेशाब साफ लाता है।"

रंगों का विटामिन से संबन्ध

रंगों का सम्बन्ध विटामिन से भी स्थापित किया जा सकता है। शाक-तरकारियों में, चाहे वह कन्द हो अथवा फलदार लेकिन अगर पीले या लालमिश्रित रंग के हों तो उन में विटामिन 'ए' और 'बी' पर्याप्त मात्रा में पाया जायगा। इसी प्रकार पीले-हरे शाक तरकारियों में विटामिन 'सी' और 'ए' प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं।

रंगों के द्वारा भोजन में औषधि गुण

सब से आश्चर्य की बात तो यह है कि भोजन में भी रंगों के द्वारा औषधि गुण पैदा कर दिये जाते हैं। दूध दस्त आने की हालत में नहीं दिया जा सकता। परन्तु अगर उसे नीली बोतल में कुछ देर धूप में रख दिया जाय तो वह भोजन और औषधि दोनों का काम करेगा। फलों के रस को भी इसी प्रकार गुणकारी बनाया जा सकता है। क्षयी रोगियों के भोजन को भी इसी प्रकार सुपाच्य के अतिरिक्त विशेष गुणकारी बनाया जा सकता है।

खाद्यों के चुनाव में व्यक्तिगत रुचि-अरुचि की समस्या हल हो जाती है। जिस प्रकार हम विभिन्न स्वाभाव वाले व्यक्तियों से समान रूप से प्रभावित नहीं होते उसी प्रकार विभिन्न प्रकार फल और शाक-भाजियों से भी हम अपनी रुचि या अरुचि प्रकट करते हैं। यह तो मानी हुई बात है कि चाहे कितनी भी प्रिय वस्तु क्यों न हो, यदि उसका निरन्तर सेवन किया जाय, तो जी उकता जाता है। इस सम्बन्ध में दो वैज्ञानिक नियम लागू होते हैं—पहला है रासायनिक मिलन-प्रवणता का नियम (Law of Chemical Affinity) और दूसरा है रासायनिक प्रतिसारण (Law of Chemical Repulsion) का नियम। पहले नियम के अनुसार जो तत्व, शक्ति तथा रङ्ग में एक दूसरे से भिन्न हैं वे एक दूसरे को आकर्षित करते हैं। इसके विपरीत दूसरे नियम के अन्तर्गत सम शक्ति और रङ्ग वाले तत्वों में परस्पर विकर्षण होता है और वे एक दूसरे को उत्तेजित करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे अंदर रंगों की पूर्त्ति वनस्पति जगत से ही होती है जहाँ सूर्य-शक्ति रंग के रूप में फलशाक-तरकारियों में विद्यमान रहती है। हमें वही फल अच्छे लगते हैं जिन में वह रंग प्रधान होते हैं जिनकी हमारे शरीर में न्यूनता है। अगर मान लीजिये हमारे शरीर में पीले रंग की कमी है तो हमें पीले रंग के फल अच्छे भी लगेंगे और वे हमारे लिए उपयोगी भी होंगे। परन्तु इसके विपरीत अगर हममें अमुक रंग की अधिकता है और वही रंग अमुक फल या तरकारी का है जो हम खाना चाहते हैं तो वह न हम को अच्छी लगेगी और न हमारे लिए हितकारी होगी।

किसी भी खाद्य पदार्थ का ही दीर्घकाल तक सेवन करने से उस में विद्यमान रंग की अधिकता शरीर में हो जाती है। जिसके कारण उस वस्तु रंग या सुगंध तक से घृणा हो जाती है। उस समय शरीर कुछ परिवर्तन या नवीनता चाहता है और उस आंतरिक संतुलन की ओर हमारे नेत्र भी इंगित करने लगते हैं।

रंग-सन्तुलन

रासायनिक संतुलन का आधार भी रंग सन्तुलन पर निर्भर है। जिस रंग की कमी होती है उसे सहायक या पूरक रङ्ग कहते हैं। रङ्ग-सन्तुलन का रहस्य भी इसी में निहित है कि हम उन आवश्यक रङ्गों की पूर्ति प्राकृतिक फल-तरकारियों द्वारा करें जिस से शरीर में स्थायी रङ्ग का रासायनिक सन्तुलन बना रहे।

मनुष्य के शारीरिक अथवा मानसिक विकास, स्थायी स्वास्थ्य और दीर्घायुष्य के लिये इन्द्र-धनुष के सभी वैभव पूर्ण रङ्गों का अपना एक शुभ संदेश है जिसको समझ कर हम अपना व्यक्तिगत रङ्ग-सन्तुलन स्थापित कर के आदर्श सुख-शांति प्राप्त कर सकते हैं। रङ्गों की सात कुञ्जियों ने अनेक रहस्य और समस्याओं को हल किया है। अगर भोजन विज्ञान की भी इसी विधि से खोज हो तो वह रङ्गों के साम्राज्य का विस्तृत द्वार खोल देगा जहां प्रत्येक वस्तु एक नवीन और महत्वपूर्ण रूप धारण कर लेती है। वह दिन दूर नहीं है जब कि भोजन विज्ञान इस क्षेत्र में पदार्पण कर के वर्तमान त्रुटियों तथा विवाद-युक्त प्रश्नों से रहित हो स्पष्ट सर्वांगपूर्ण और अटल सिद्धान्तों पर प्रतिष्ठित हो जायगा।

[६वें पृष्ठ का शेष]

ध्यान रखना चाहिए कि हम अपनी साधना में प्रति क्षण कुछ प्राप्त करते या गँवा देते हैं। निम्न-प्रकृति की प्रत्येक क्रिया जिसे हम अपने अन्दर आश्रय देते हैं चाहे वह कितनी ही तुच्छ, अर्थहीन या उचित मालूम होने वाली क्यों न हो, हमें पीछे हटा ले जाती है और विरोधी शक्तियों को हमारे अन्दर बैठने को जगह दे देती है। यदि इसके परिणाम स्वरूप हम नीचे की ओर न भी जाँय तो समय और सुयोग की हानि तो होती ही है, इसके विपरीत यदि हम अपने संकल्प को ही दृढ़ बनाये रखें तो भी हम अपने जीवन के प्रत्येक मुहूर्त में निरन्तर आगे बढ़ सकते हैं। अपनी प्रकृति पर प्राप्त की हुई प्रत्येक विजय हमें अपनी साधना में सहायता देती है। निम्न प्रकृति का प्रत्येक प्रलोभन चाहे वह कितना ही मामूली क्यों न हो, जब हम उसका प्रतिरोध करते हैं तब वह हमारे संकल्प को दृढ़ बनाता है और हमें विशुद्ध प्रसन्नता प्रदान करता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेवा और स्वास्थ्य

श्री लाल जी राम शुक्ल, एम० ए० बी० टी०

मनुष्य का आरोग्य एवं आयुष्य उसके शरीर की मोटाई या वजन पर निर्भर नहीं, वह इस बात पर निर्भर है कि जीवन में उसकी कहाँ तक दिलचस्पी है, किसी उच्चादर्श के लिए उसने अपने जीवन के लिए हद तक अर्पित कर दिया है। स्वास्थ्य एवं दीर्घायुष्य का यही रहस्य है। लेखक ने जीवन के इसी मनोवैज्ञानिक पहलू का मार्मिक विवेचन किया है।

यहाँ पर हम अपने पाठकों को शुक्ल जी से परिचित करा देना चाहते हैं। आप बनारस ट्रेनिंग कालेज प्रोफेसर तथा मनोविज्ञान के धुरंधर विद्वान हैं। आपके मनोवैज्ञानिक लेख प्रायः सभी प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में बराबर निकलते रहते हैं। आशा है, अब 'जीवनसखा' के पाठक भी आपके उपयोगी एवं ज्ञानवर्धक लेखों से लाभ उठाते रहेंगे। सं०]

सेवा-भाव का स्वास्थ्य से बड़ा ही घनिष्ठ सम्बन्ध है। मानसिक चिकित्सा के इस नियम पर बहुत कम विचार किया गया है। जो व्यक्ति जितना ही अधिक दूसरों की सेवा में दत्तचित्त रहता है वह उतना ही स्वस्थ रहता है और जो अपने विषय में जितनी अधिक चिन्ता करता है वह उतनी ही अधिक बीमारियों को अपने पास बुलाता है। जिस प्रकार बालक अपनी सामान्य प्राकृतिक आवश्यकताओं की पूर्ति करके स्वस्थ रह सकता है उसी प्रकार प्रौढ़ व्यक्तियों के स्वस्थ रहने के लिए आध्यात्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति आवश्यक है। प्राकृतिक इच्छाओं की पूर्ति उसकी आध्यात्मिक इच्छाओं की पूर्ति का साधन मात्र बन जाती है। बालक स्वादिष्ट भोजन करके अपना शरीर स्वस्थ रख सकता है। भोजन करते समय भोजन के स्वाद को पाने के अतिरिक्त उसका दूसरा कोई लक्ष्य नहीं रहता। किन्तु यदि प्रौढ़ व्यक्ति स्वादिष्ट भोजन केवल सदा उसके स्वाद के लिए करे तो उसका भोजन भी उसका भक्षण कर जाय। प्रौढ़ व्यक्ति के लिए उतना ही भोजन और उसी प्रकार का भोजन होना चाहिए जितना कि उसके आध्यात्मिक विकास के लिए आवश्यक है। जो इस नियम की अवहेलना करता है वह अपने दैविक स्वभाव के प्रति अन्याय करता है—वह अपने आप को अप्राकृतिक बनाता है।

स्वस्थ मनुष्य सेवा-भाव से अपने स्वास्थ्य को स्थायी बना सकता है। हम दूसरों की सेवा प्रायः धार्मिक बुद्धि से किया करते हैं। उसमें हम अपना का कोई तात्कालिक स्वार्थ नहीं देखते। कितने ही लोग तो दान-पुण्य केवल इसलिए करते हैं कि वे दूसरे जन्म में अपने किये का फल पावेंगे। उन्हें यह ज्ञान नहीं रहता कि इस जन्म में भी अपने शुभ कर्मों का फल मिलता है। वे कम से कम यह विश्वास करने को कदापि तैयार न होंगे कि स्वास्थ्य-लाभ जैसी प्रत्यक्ष और ठोस वस्तु दान-पुण्य अथवा सेवा-भाव के द्वारा प्राप्त की जा सकती है। यही कारण है कि जब पुनर्जन्म में मनुष्य का विश्वास नहीं रह जाता तो उसकी प्रवृत्ति धन कमाने और दूसरों की कमाई को अपना लेने में बड़ी प्रबल हो जाती है। जिसके परिणाम स्वरूप मनुष्य का सांसारिक जीवन नरक के समान हो जाता है। यदि हम यह समझ जायँ कि दान कर के हम दूसरे जन्म में पाने के लिए कोई खजाना नहीं जोड़ते, वरन् अपने इसी जन्म को सफल बनाते हैं, अपने सुख की वृद्धि करते हैं, तो हम किसी की किसी प्रकार की सेवा करके मिथ्याभिमान न करें। यदि हमें यह ज्ञात हो जाय कि हमारा स्वास्थ्य भी हमारी दूसरों की सेवा की इच्छा के ऊपर निर्भर है, तो सेवा करते समय हमें किसी प्रकार के क्लेश की अनुभूति न हो, वरन् हम प्रसन्नता का अनुभव करें। दूसरों की सेवा करके हम दूसरों का अनुग्रह नहीं करते, स्वयं अपने प्रति अपना कर्त्तव्य पूरा करते हैं।

सेवा और स्वास्थ्य का घनिष्ठ सम्बन्ध संसार के महान् व्यक्तियों के जीवन से देखा जा सकता है। महात्मा बुद्ध के जीवन-चरित्र को देखिए। वे ८४ वर्ष तक जीवित रहे और अन्त समय तक अपना सारा समय लोकीय सेवा में लगाते रहे। उन्होंने अनेक रोगियों की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेवा और चिकित्सा की। किन्तु अपनी सेवा कराने का अवसर उन्होंने दूसरों को बहुत ही कम दिया। महात्मा सुकरात सूखी रोटी पर ही रहते थे। जाड़े और गर्मी में वे एक से ही कपड़े पहनते थे। न तो उनके पैर में जूते रहते थे न सिर पर टोपी। तिसपर भी वे बीमार कभी नहीं पड़ते थे।

जो मनुष्य अपने जीवन का उच्चादर्श बना लेता है, प्रकृति उसे उस आदर्श की प्राप्ति के लिए आयु भी प्रदान करती है। यही कारण है कि वर्तमान काल के हमारे दो नेता—महात्मा गाँधी और मालवीय जी—

विश्ववंद्य बापू एक कुष्ट-रोगी की सेवा में

अभी तक जीवित हैं। जिस व्यक्ति के जीवन का आदर्श कुछ नहीं रहता उसके जीने की भी कोई आवश्यकता नहीं होती। सन्तानोत्पत्ति के पश्चात् प्रकृति उसे मृत्यूनमुख बना देती है।

जो मनुष्य प्रति दिन दूसरों की सेवा करता रहता है वह एक प्रकार से अपनी स्वास्थ्य-रक्षा के लिए प्रीमियम चुकाता है। यह प्रीमियम उसे अपने बुरे दिन में काम आता है। उसे बीमारी उतनी जल्दी नहीं पकड़ती जितनी की दूसरे लोगों को। एक बार बीमारी के पकड़ लेने पर भी वह शीघ्रता से उससे मुक्त हो जाता है। उसके मन में वे अभद्र कल्पनाएँ नहीं उठतीं, जो अन्य रोगियों के मन में उठा करती हैं।

चिन्ता-राक्षसी के लिए रामबाण

सेवा-भाव चिन्ता-राक्षसी के लिए रामबाण है। जो दूसरों की सेवा में सदा दत्तचित्त रहता है उसे चिन्ता करने की फुरसत ही नहीं रहती। जो व्यक्ति जितना ही स्वार्थी होता है उसकी चिन्ताएँ उतनी ही घातक होती हैं। स्वार्थी मनुष्य किसी भी घटना के बुरे पहलू पर ही अधिक विचार करता रहता है। जब किसी मनुष्य को चिन्ता करने की आदत पड़ जाती है तो उसका मन बिलकुल कमजोर पड़ जाता है। ऐसी अवस्था में यदि किसी प्रकार का अभद्र विचार उसके मन में घुस आवे तो वह उस विचार को अपने मन से नहीं निकाल पाता। मान लीजिए चिन्ता करने वाला व्यक्ति किसी ऐसे वातावरण में पड़ गया, जहाँ हैजा या चेचक की बीमारी फैली हुई है तो उसके मन में एकाएक बीमारी के विचार उठने लगते हैं। उसके मन में भय होता है कि कहीं उसे छूत के द्वारा बीमारी न लग जाय। बीमारी का भय अब उसे चैन नहीं लेने देता। यह एक आध्यात्मिक सत्य है। जो व्यक्ति जिस प्रकार की बात से भयभीत रहता है उसे वही बात बड़ी शीघ्रता से होती है। बीमारी से डरने से हम बीमारी के आगमन को सुगम कर देते हैं। बीमारों की सेवा और चिकित्सा करने वाले को छूत की बीमारी उतनी जल्दी नहीं लगती जितनी कि बीमार के दर्शकों अथवा अचानक बीमारी के वातावरण में पड़ जाने वालों को लगती है।

स्वार्थी मनुष्य आध्यात्मिक दृष्टि से अस्वस्थ रहता है चाहे उसका शारीरिक स्वास्थ्य कितना ही अच्छा क्यों न हो। किसी व्यक्ति के स्वास्थ्य का अंदाज लगाने को उसकी वर्तमान शारीरिक अवस्था की जाँच पर्याप्त नहीं है। उसकी मानसिक अवस्था को भी जानना आवश्यक है। किसी भी अवस्था का मूल्य उसकी प्रगति पर निर्भर है। यदि किसी मनुष्य का स्वास्थ्य इस समय बिगड़ा है किन्तु उसकी प्रगति पूर्ण स्वास्थ्य की ओर है तो उसके स्वास्थ्य के विषय में चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं। किन्तु जिस व्यक्ति का इस समय अच्छा दिखाई देता है किन्तु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसकी प्रगति पतन की ओर है तो उसे बिगड़े स्वास्थ्य का ही मानना चाहिये। मनुष्य के जीवन की सभी बातों का मूल स्रोत उसके मन में है। यदि मनुष्य का मन दूषित है अर्थात् उसमें स्वार्थ-भाव, क्रोध, ईर्ष्या और भय का प्राबल्य है तो वह निश्चित रूप से अस्वस्थ है। इसके प्रतिकूल यदि किसी दुर्बल व्यक्ति में संतोष, शांति, प्रेम और सेवा-भाव का प्राबल्य है तो उसे हमें स्वस्थ जानना चाहिये।

बीमारी आध्यात्मिक पतन का सूचक

बीमारी मनुष्य के आध्यात्मिक पतन का सूचक है। मानसिक बीमारी ही शारीरक बीमारी के रूप में प्रकट होती है। बहुत सी शारीरिक बीमारियाँ मानसिक विकार को बाहर निकालने का मार्ग मात्र हैं। बीमारी के द्वारा मानसिक रेचन होता है। मानसिक शुद्धि हो जाने पर बीमारी का अन्त हो जाता है। कभी-कभी यह मानसिक विकार बहुत बड़ा होता है, जिसकी शुद्धि व्यक्ति के जीवन-काल में नहीं हो पाती। ऐसी अवस्था में बीमारी मानसिक विकारों का रेचन अवश्य करती है, किन्तु इस रेचन का लाभ बीमार व्यक्ति को इस जीवन में नहीं होता। मानसिक रेचन में ही उसकी मृत्यु हो जाती है।

जिस प्रकार शारीरिक रेचन शारीरिक विकार निकालने का एक उपाय है लेकिन रेचन मात्र से स्वास्थ्य-लाभ नहीं होता, उसी प्रकार बीमारी से मनुष्य के मानसिक विकारों का रेचन अवश्य होता है, किन्तु इससे वह मानसिक दृढ़ता प्राप्त नहीं होती जो कि वास्तविक स्वास्थ्य के लिये आवश्यक है। जब तक मनुष्य अपने आप में स्थित नहीं होता उसे स्वस्थ नहीं कहा जा सकता। मनुष्य का अपना आप शरीर-बद्ध आत्मा नहीं है, वह दृढ़ आत्मा है। जो व्यक्ति जितना ही अधिक अपने आप का वृहदात्मा से ऐक्य करता है, अर्थात् अपने मन और शरीर को सब प्राणियों की सेवा में लगाता है, वह उतना ही अधिक स्वास्थ्य का अधिकारी होता है। जब मनुष्य का जीवन सुचारु रूप से प्रवाहित होता है, अर्थात् जब वह अपने स्वरूप की ओर जाता है तो उसकी शारीरिक क्रियायें भी सुयोग्य रीति से चलने लगती हैं। जिस प्रकार बहती हुई नदी निर्मल रहती है, उसी तरह अपने आप को सर्वात्मा से ऐक्य करने वाले का जीवन स्वस्थ रहता है। जो व्यक्ति अपनी शारीरिक या मानसिक शक्ति दूसरों की सेवा में लगाये रखता है वह नयी जीवन-शक्ति को अनन्त से प्राप्त करता है। मनुष्य बीमार होने पर प्रायः दूसरों की कोई शारीरिक सेवा करने योग्य नहीं रहता। बीमार होकर वह दूसरों से अपनी सेवा करवाता है। दूसरों से सेवा करा कर मनुष्य उस आदर्श स्वास्थ्य को प्राप्त नहीं करता जो शरीर के लिये आवश्यक है। किसी प्रकार की चिकित्सा से मनुष्य को शारीरक लाभ भले ही हो जाय, किन्तु स्थायी लाभ मानसिक चिकित्सा से ही हो सकता है। पर मानसिक चिकित्सा की ओर बिरले ही भौतिक चिकित्सकों का ध्यान जाता है। बहुत से लोग तो इस प्रकार की कल्पना को सुन कर ही हँसेंगे। भौतिक चिकित्सकों की मानसिक चिकित्सा की उपेक्षा करना स्वाभाविक ही है। प्रत्येक व्यक्ति अपने उद्यम की महत्ता बताता है। यदि भौतिक चिकित्सक मानसिक चिकित्सा की महत्ता बताने लगें तो उनकी उपयोगिता कम न हो जायगी! वास्तव में वे स्वयं इस विषय में कुछ नहीं जानते और न जानने की चेष्टा ही करते हैं।

जब मनुष्य बीमार रहता है तो उसके विचारों को सुधारना उतना ही आवश्यक है जितना कि उसके स्वास्थ्य को सुधारना। शारीरिक स्वास्थ्य न तो होमियोपैथी, न एलोपैथी और न किसी अन्य प्रणाली से सुधारा जा सकता है, मानसिक स्वास्थ्य-लाभ विचारों में परिवर्त्तन से, संसार के प्रति अपने दृष्टि कोण को बदलने से ही होता है। यह एक प्रकार का पुनरुज्जीवन है। यदि मनुष्य बीमार होने के पश्चात् यह संकल्प करे कि उसका जीवन उसके लिये नहीं बरन् दूसरों के लिये होगा तो वह सदा के लिये स्वास्थ्य-लाभ कर ले। मानसिक उपचार में सब से महत्व की वस्तु रोगी के मन में सेवा-भावना को उत्पन्न करना है। घृणा और स्वार्थपरता ही रोग है। प्रेम और सेवा-भाव ही स्वास्थ्य हैं। घृणा की आदत का प्रतिकार प्रेम-भाव की वृद्धि से होता है और स्वार्थपरता का प्रतिकार सेवा-भाव की वृद्धि से। रोगी को बीमारी की अवस्था

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में ही उसे सक्रिय रूप से दूसरों की सेवा में लगाने की चेष्टा करनी चाहिये। रुग्णावस्था में यदि मनुष्य शरीर से दूसरों की सेवा नहीं कर सकता तो मन से तो कर ही सकता है। धनी मनुष्य रुग्णावस्था में भी धन से दूसरों की सेवा कर सकता है।

जो धनी व्यक्ति रोगी रह कर भी धन के प्रति अपनी ममता का त्याग नहीं करता, अर्थात् जो उसे समाज की सेवा में लगाने का संकल्प नहीं करता, उसका रोगी बना रहना ही अच्छा है। ऐसा व्यक्ति स्वस्थ रह कर दुःख ही देगा। कंजूस व्यक्ति जितना ही शरीर से स्वस्थ हो उतना ही बुरा है। क्योंकि वह स्वयं अपने ही प्रति नहीं दूसरों के प्रति भी अन्याय करता है। ऐसे लोगों को राजरोग होते हैं। इन रोगों से उसे मुक्त करने का सच्चा उपाय यहीं है कि उनकी किसी प्रकार धन के प्रति ममता कम की जाय। प्रकृति शारीरक यन्त्रणा देकर तथा मृत्यु का भय दिखा कर इस ममता को कम करती है। यदि चिकित्सक उपदेश के द्वारा उसमें सेवा-भाव जागृत कर सके तो वह सचमुच मौलिक लाभ कर सकता है और साथ ही वह अपना तथा समाज का कल्याण भी।

[बाइसवें पेज का शेषांश]

तीसरा दिन—सुबह को दो एक फल और थोड़ा सा धारोष्ण दूध और शाम को थोड़ी तरकारी। दूध तो बहुत अच्छी चीज है परन्तु इसके विषय में कुछ मतभेद भी है। जिन्हें पेट सम्बन्धी शिकायत हो वे मठा का ही प्रयोग करें, लाभ होगा।

चौथा दिन—सुबह को दो एक फल दूध या मठा और शाम को एक रोटी और थोड़ीसी तरकारी। लगभग एक सप्ताह तक एक वक्त फल तरकारी और दूसरे वक्त रोटी और तरकारी खानी चाहिए।

यह तो दो एक दिन उपवास वालों का पथ्य है। इसी तरह जितना भी ज्यादा दिन का उपवास हो इसी क्रम से पथ्य की मात्रा भी धीरे धीरे बढ़ाई जाए। जल्दी बाजी और देरी दोनों अनुचित है। गरीबों को तो सन्तरे या अनार के बदले तरकारी का सूप ही पीना चाहिए, क्योंकि यह सस्ता और फायदेमन्द दोनों है। इससे पेट अच्छी तरह साफ हो जाता है।

सूप तैयार करने का तरीका—तरकारी को उबाल कर उसका जो रस बचे वह निकाल लेना चाहिए और उस छानकर नीबू या नमक शहद मिला कर पी जाना चाहिए। ध्यान रहे, मसाले वाली तरकारी न हो।

डा० कुलरञ्जन मुखोपाध्याय लिखित

वैज्ञानिक जल-चिकत्सा

जल, मिट्टी, गर्मी, हवा, धूप और पथ्य प्रभृति द्वारा गृह-चिकित्सा की सर्वश्रेष्ठ पुस्तक। मूल्य दो रुपया।

वैज्ञानिक जल-चिकित्सालय,
२२८।२ बी, हाजरा रोड,
काली घाट, कलकत्ता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपवास

श्री दीनेश्वर नारायण शर्मा

[उपवास शरीर में आकाश-तत्व की वृद्धि का एक सहज एवं स्वाभाविक साधन है। यह शरीर और मन दोनों को समान रूप से शुद्ध और निर्मल बनाता है। रोग-निवारण की अद्‌भुत शक्ति के साथ ही साथ इस में शरीर को शक्ति-सम्पन्न बनाने की भी अलौकिक क्षमता है। इसीलिये प्राकृतिक-चिकित्सा के अन्तर्गत उपवास को बड़ा महत्व दिया जाता है। प्रस्तुत लेख में उपवास का आपको सर्वांगपूर्ण वर्णन मिलेगा। —सं०]

संसार में प्रायः जितने मुख्य मत, धर्म या सम्प्रदाय हैं, उन सबमें किसी न किसी रूप में उपवास या व्रत की आज्ञा दी गई है। पहले भारतीय आर्य धर्म ही को लीजिये। हिन्दुओं के धर्म-शास्त्रों में भिन्न-भिन्न पुण्य तिथियों और पर्वों के अतिरिक्त प्रत्येक एकादशी, प्रदोष, रविवार आदि के लिए व्रत का विधान है। ऐसे तो अनेक पर्वों में उपवास होता है लेकिन यह प्रतिमास का व्रत है। हिन्दुओं के समस्त व्रतों की संख्या तो एक सौ से भी ज्यादा है। अधिकांश व्रतों में अन्नग्रहण करने का निषेध और एक बार थोड़ा सा फलाहार करने की आज्ञा है। इन व्रतों के मूल में केवल एक ही सिद्धान्त है और वह है पाचन-क्रिया को ठीक अवस्था में रखने का। लेकिन आजकल का व्रत सर्वथा नियम-विरुद्ध होता है। जिस उपवास-काल में थोड़ा सा फल खाने की आज्ञा है, उसके बदले आजकल लोग हलवा, खीर, मिष्ठान्न इत्यादि खाते हैं। रोज से दूना भोजन केवल इसलिए होता है कि आज व्रत है। भारत में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियाँ ज्यादा व्रत रखती है। इसलिए अधिकांश स्त्रियाँ उन रोगों से बची रहती हैं, जिनके कारण पुरुष परेशान रहते हैं।

मुसलमानों के रमजान के महीने में तीस दिनों तक अपने धर्म ग्रंथ के अनुसार रोजा रखना पड़ता है। रोजे के दिनों में वे बहुत सबेरे उठकर भोजन कर लेते हैं और दिन भर नहीं खाते। रोजा सूर्यास्त के बाद ही खुलता है। ईसाइयों के धर्म ग्रंथों में भी उपवास का विधान है और उनके ग्रन्थों के अनुसार शरीर, मन और आत्मा तीनों के लिए उपवास बहुत ही लाभदायक है।

अरबदेश में एक बहुत बड़ा चिकित्सक हो गया है, जो बिना किसी प्रकार के औषधि-प्रयोग के चिकित्सा करता था। वह रात भर रोगियों के बिस्तरों के पास केवल इसीलिए पहरा दिया करता था कि वे कुछ खा न लें। ज्वर आदि रोगों के आरम्भ में तो रोगी को सबसे पहले उपवास ही कराया जाता है। पाश्चात्य डाक्टरों की राय है कि रोगी जब आहार छोड़ देता है, तब उसकी आहार पचाने वाली शक्ति उसके रोग का शमन करने में लग जाती है, और उस दशा में वह शीघ्र ही नीरोग हो जाता है। पाश्चात्य डाक्टरों के इस सिद्धान्त की पुष्टि हमारे यहाँ के प्राचीन शास्त्रों के इस वचन से भली भाँति हो जाती है—"आहार पचति शिखी दोषानाहार वर्जितः।" "अर्थात् अग्नि अहार को पचाती है और जब पेट में आहार नही रहता तब वह दोषों को पचाती या नष्ट करती है।" इससे यह बात सिद्ध होती हैं कि निराहार रहने से शरीर को लाभ ही होता है, हानि नहीं। सुश्रुत के अनुसार उपवास से ज्वर का नाश होता है, अग्नि का दीपन होता है और शरीर हल्का हो जाता है। ज्वर की अवस्था में तो उपवास को सभी ने उपयुक्त ही नहीं, बल्कि बहुत आवश्यक भी माना है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब तो यूरोप और अमेरिका आदि देशों में बहुत से ऐसे चिकित्सालय खुल गये हैं, जिनमें में केवल उपवास, जल-चिकित्सा आदि से ही रोगी को चंगा किया जाता है। अब हमारे देश में इसका कुछ कुछ प्रचार हो रहा है। साधारण बुद्धि का आदमी भी यह भली-भाँति समझ सकता है कि यदि मनुष्य और विशेषतः रोगी को भूख न हो तो जबर्दस्ती खिलाने से शरीर का बहुत अनिष्ट होता है, उसे बड़ी हानि होती है। परन्तु आजकल के चिकित्सक कहते हैं कि यदि रोगी को पथ्य नहीं दिया जायगा तो वह और भी कमजोर हो जायगा। रोग की हालत में खाना देना विष देने से भी बढ़कर है। उपवास रोग को निकालने में सहायक होता है। उस हालत में यदि भोजन दिया गया तो रोगी को और भी कठिन रोगों का सामना करना पड़ेगा। इस सम्बन्ध में हम लोगों को पशुओं से भी शिक्षा लेनी चाहिए। यदि कोई पशु बीमार पड़ता है तो वह तब तक नहीं भोजन करता जब तक कि रोग ठीक नहीं हो जाता। हम लोगों कों जितनी भी शारीरिक व्याधियां होती है, वे किसी न किसी रूप में प्रकृति के नियम का उल्लंघन करने से ही होती हैं।

उपवास से शरीर की शुद्धि तो होती ही है, मन के साथ भी उसका घनिष्ठ सम्बन्ध है। जिस समय किसी शारीरिक व्याधि या रोग की उत्पत्ति होती है उस समय व्याधि या रोग को नष्ट करने के लिए भूख बन्द हो जाती है। हमारी शारीरिक क्रिया में जहाँ किसी भी प्रकार का व्यतिक्रम होता है, हमारी भूख बन्द हो जाती है और इस प्रकार वह उपवास के महत्व की घोषणा करती है। जिस प्रकार उपवास हमारे रोगों को नष्ट करता है उसी प्रकार वह हमारे मानसिक विकारों को भी नष्टकर देता है। उपवास से हमारी इन्द्रियों में बल आ जाता है, और वे अपने काम सुगमता से करने लगतो है। मानसिक विकारों और दोषों को दूर करने में भी उपवास उतना ही समर्थ है जितना शारीरिक विकारों और दोषों को नष्ट करने में। जो लोग बहुत मोटे हैं और अपनी मोटाई करना चाहते हैं उनके लिए उपवास से बढ़कर और कोई दूसरा सहज उपाय नहीं हो सकता। यूरोप और अमेरिका आदि देशों में बहुत से लोगों ने केवल उपवास की सहायता से अपनी बहुत मोटाई कम कर दी है, और ये आगे की अपेक्षा कहीं अधिक सरलता के चलने फिरने लगी हैं।

उपवास के आरम्भ में शरीर कुछ क्षीण अवश्य होने लगता है परन्तु उससे शरीर को लाभ ही होता है, हानि नहीं। अनुभव से यह भी सिद्ध हो चुका है कि उपवास की विशेष अवस्था में मनुष्य का शाररिक बल आश्चर्यजनक रूप से बढ़ जाता है। डा० मैकफेडेन ने यह जानने के लिए एक प्रयोग किया था कि उपवास का शारीरिक बल पर कैसा प्रभाव पड़ता है। उपवास आरम्भ करने के दिन वह जमीन पर लेट गये और दोनों हथेलियों पर उन्होंने ढाई मन वजन के एक आदमी को खड़ा करके लेटे लेटे हाथों के बल उसको ऊपर की ओर उठाया। उस दिन वे उस आदमी को छाती से प्रायः तीन चार इंच ही ऊपर उठा सके थे, पर उपवास के और सातवें अन्तिम दिन उन्होंने उसी आदमी को छाती से लगभग दो फुट ऊपर तक उठा लिया।

इसी प्रकार एक और आदमी था जो उपवास के पहले दिन आध मन वजन का डम्बेल अपने कन्धे तक भी न उठा सका, पर इक्कीस दिनों तक उपवास करने के बाद उसने वही डम्बेल सिर से ऊपर इतनी ऊँचाई तक उठाया जितनी ऊँचाई तक उसका हाथ पहुंच सकता था। कुछ लोगों की यह धारणा हो सकती है कि उपवास काल में मस्तिष्क का ह्रास सम्भावित है, पर यह बात भी बिलकुल व्यर्थ है। यदि वास्तविक दृष्टि से देखा जाय तो मस्तिष्क और उदर दोनों एक दूसरे के विरोधी हैं। यदि पेट में थोड़ा-सा भी भोजन हो और मस्तिष्क से अधिक काम लिया जाय तो पाचन-क्रिया में बड़ी बाधा पड़ती है। इसलिए यह निर्विवाद सिद्ध है कि उपवास की हालत में मस्तिष्क और भी सतेज और ताजा हो जाता है। उपवास के प्रारम्भिक एक या दो अथवा अधिक से अधिक चार दिन बहुधा बड़े ही कष्ट से बीतते हैं। प्रत्येक पुराना अभ्यास छोड़ने और नया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभ्यास करने में, चाहे वह कितना ही प्राकृतिक तथा सहज क्यों न हो, अवश्य ही मनुष्य को कुछ कष्ट का अनुभव करना पड़ता है। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि तन्दुरुस्त आदमी भी इतना उपवास करने लगें कि कमजोरी बढ़ जाय। "अति सर्वत्र वर्जयेत" का पालन सब जगह होना चाहिए।

उपवास-काल के कुछ उपद्रव

उपवास-काल में कुछ उपद्रवों का भय अवश्य रहता है, लेकिन खासकर यह लम्बे उपवास में होता है। उपवास के आरम्भ में ज्वर, सिर में चक्कर, बेहोशी, पेट में दर्द, पेशाब रुकना, दस्त लगना और मुँह का स्वाद बिगड़ना आदि उपद्रव होता है। इन सब हालतों में गुनगुने पानी का एनीमा लेना चाहिए। इसके अलावा नाड़ी की गति भी कभी तेज, कभी कम हो जाती है। साधारणतः ६० से ८० बार तक नाड़ी चले तो कोई हर्ज नहीं। यदि इससे कम-ज्यादा हो तो किसी चिकित्सक की देख-रेख में रहना चाहिए। उस अवस्था में उपवास छोड़ भी दिया जा सकता है। उपरोक्त खतरों को नया रोग समझ कर इनकी चिकित्सा करनी चाहिए। उपवास काल में एनीमा लेना बहुत ही लाभदायक है। इससे शरीर में संचित वर्षों का पुराना मल बाहर निकल जाता है और पेट अच्छी तरह साफ हो जाता है। इसके अलावा उपवास-काल में थोड़ी बालू का भी इस्तेमाल किया जा सकता है। परन्तु ध्यान रहे, बालू रेतेली, मोटे दाने की और साफ होनी चाहिए, जिससे पेट में किसी प्रकार की बाधा न पड़े। स्वस्थावस्था में भी इसका व्यवहार किया जा सकता है। उपवास तोड़ने पर भी जब तक रसाहार तथा फलाहार पर रहें, एक वक्त एनीमा लेना चाहिए। एनीमा लेने से मल और विकार निकल जाता है जिससे कष्ट से छुटकारा मिलता है। उचित समय तक उपवास करने से कभी कोई हानि नहीं होती। हानि तभी होती है जब उपवास छोड़ने के समय भोजन पर उचित ध्यान न रक्खा जाय और उसमें किसी प्रकार का व्यतिक्रम हो।

उपवास काल में यदि कोई भय के चिन्ह दिखाई दें तो एलोपैथी, या होमियोपैथी के चिकित्सकों की अपेक्षा अपनी ही बुद्धि से काम लेना चाहिए। उपवास काल में स्वच्छ निर्मल जल अधिक मात्रा में पीना चाहिए। इससे उपवास में होनी वाली बहुत-सी कठिनाइयों से बचाव होगा। जल से एक और भी फायदा यह होता है कि उपवास-काल में वजन ज्यादा नहीं घटने पाता। एक बात और ध्यान में रखने योग्य है कि उपवास-काल में कदापि किसी औषधि का सेवन न करें। ज्यादा लम्बा उपवास भी किसी अच्छे चिकित्सक की अनुपस्थिति में नहीं करना चाहिए।

उपवास का प्रयोग

यों तो ऐसे बहुत कम रोग है जिनमें उपवास से लाभ न हो, परन्तु कुछ ऐसे रोग भी है जिनमें उपवास करना निषिद्ध बताया गया है। इनमें से एक क्षय रोग भी है। इस में रोगी की जीवन-शक्ति इतनी क्षीण हो जाती है कि वह अधिक दिनों तक उपवास कर ही नहीं सकता। यही बात प्लुरिसी के भी सम्बन्ध में है। ऐसे लोग यदि स्वल्प आहार और कभी-कभी उपवास पर रहें तो बहुत लाभ होगा। पर, चिकित्सा के आरम्भ में एक या दो दिन का उपवास कराया जा सकता है। इससे पक्वाशय ठीक हालत में आ जाता है, और विष निकलने में सहायता मिलती है। इसके अलावा जिसने अधिक दिनों तक विषैली दवाओं का व्यवहार किया है उनके लिए भी यह ठीक नहीं है। चिन्ता के समय भी उपवास हानिकारक है। इसके अलावा जो नीरोग और स्वस्थ है, उन्हें भी उपवास करने की कोई जरूरत नहीं। इससे तो भीतरी विष निकालने का काम लेना चाहिए। पाचन-शक्ति के मन्द होने, आँतों में मल जमा होने, सिर में दर्द होने, कोष्टबद्धता होने अथवा इसी प्रकार की और भी छोटी-मोटी साधारण शिकायत के लिए पाँच-सात दिनों का उपवास ठीक है। जिन्हें गर्मी, नासूर, बवासीर, गठिया आदि भयंकर रोग हों उन्हें अधिक दिनों का उपवास करना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीर्ण रोगों के उपचार में लम्बे उपवास की जरूरत होती है। दो सप्ताह से अधिक दिनों के उपवास को लम्बा उपवास कहते हैं, और वह दो तीन महीनों तक का हो सकता है।

निम्नलिखित बीमारियों में लम्बे उपवास की जरूरत है :—

मूत्राशय की सूजन, मधुमेह, गठिया, उपदंश या गर्मी, दमा या श्वास, मेदरोग, मस्तिक में खून जम जाना, यकृत में खून का जमाव, पीब पड़ना, मोतीझरा, अर्बुद और ग्रन्थि-अर्बुद इत्यादि। यदि अधिक कमजोरी जान पड़े तो उपवास का समय कम कर देना चाहिए और रसाहार पर रहना चाहिए।

नीचे लिखे हुए साधारण रोगों में लम्बे उपवास से कम किन्तु आंशिक उपवास से अधिक फायदा होता है :—

कफ आना, कोष्टबद्धता, अतिसार, सिर दर्द, शूल, फोड़े, चर्म-रोग, न्यूरिटिस, दाँतों में पीब पड़ना और कृमि इत्यादि। साधारण ज्वर में भी। परन्तु यह निश्चित है कि उपवास किसी प्रकार के गंभीर आंगिक दोष को दूर नहीं कर सकता। उपवास से टूटा पांव जोड़ा नहीं जा सकता। इसी प्रकार सूजन, सड़न, या कोषों की कमी के कारण यकृत या फेफड़े का जो हिस्सा नष्ट हो गया है, वह उपवास द्वारा फिर से नहीं बनाया जा सकता। मस्तिष्क के नष्ट होने से जो पागलपन होता है, उसमें भी उपवास फायदा नहीं पहुँचाता। परन्तु यदि किसी चोट के कारण मस्तिष्क के गूदे में तह पड़ गई हो तो उपवास की आवश्यकता होती है। हिस्टीरिया या अपतंत्र, वायु-विकार और साईकोन्यूरोसिस या मानसिक वायु-रोग नामक बीमारियों में भी उपवास से फायदा नहीं होता है।

उपवास की समाप्ति

उपवास करना तो नहीं परन्तु उपवास तोड़ना कठिन है। क्योंकि उसके बाद यदि उसका पथ्य ठीक तौर से न चलेगा तो फायदे के बदले नुसकान ही होगा। एक बात और भी ध्यान में रखनी चाहिए।

यदि निम्न लिखित चिन्ह प्रकट हों तो समझना चाहिए कि उपवास पूर्ण हो गया।

(१) उपवास के समय जो जीभ पर पपड़ी पड़ जाती है वह उपवास पूर्ण होने पर अपने आप उतर जाती है और जीभ साफ हो जाती है।

(२) उपवास के समय जो शरीर की गर्मी ज्यादा या कम हो जाती है वह उपवास पूर्ण होने पर सम अवस्था में आ जाती है।

(३) उपवास की अवस्था में नाड़ी की गति धीमी या तेज हो जाती है। लेकिन उपवास पूर्ण होने पर वह ठीक अवस्था में आजाती है।

(४) उपवास-काल में जो सांस दुर्गन्धयुक्त रहती है वह उपवास पूरा होने पर बिलकुल साफ हो जाती है।

(५) सब से बड़ा लक्षण यह है कि उपवास पूर्ण होने पर भूख समय पर और नियमित रूप से लगने लगती है।

(६) उपवास-काल के बाद मल-मूत्र का त्याग उचित रीति से हो, शरीर हलका जान पड़े, आत्मा और मन शुद्ध हों और इन्द्रियाँ निर्विकार और सुखी हों तो समझना चाहिए कि उपवास ठीक और उचित रीति से समाप्त हुआ है।

साधारण स्वस्थ मनुष्य को भी महीने में दो-चार दिन उपवास कर के पेट को ठीक हालत में कर लेना चाहिए।

पहले लिख चुके हैं कि उपवास के बाद भोजन का क्रम ठीक तरह से होना चाहिए, नहीं तो फायदा होने के बदले नुकसान ही होगा। उपवास के बाद पथ्य निम्न लिखित होना चाहिए :—

उपवास तोड़ने के पहले दिन का पथ्य—एक ग्लास संतरे या अनार का पतला रस। यदि गाढ़ा हो तो थोड़ा पानी मिला देना चाहिए। फल का रस न मिलने पर तरकारी का सूप या रस देना चाहिए यह बहुत फायदे मन्द होगा।

दूसरा दिन—दूसरे दिन के लिए सब से अच्छी खूराक एक सन्तरा है। यदि एक सन्तरा खाकर न रह सकते हों तो एक और खा लेना चाहिए। परन्तु इससे ज्यादा नहीं।

[शेष अठारहवें पेज पर]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सगर्भावस्था

डा० इन्दुमती सिनहा, एन० डी० डी० वाई०

[गतांक से आगे]

सगर्भावस्था के सम्बन्ध में सावधानी

गर्भधारण करना कोई रोग नहीं बल्कि प्रकृति के अनुसार माता का एक सरल, स्वाभाविक कार्य है, फिर भी इस में कोइ शक नहीं है कि गर्भवती स्त्री को इस अवस्था में कई तरह के खतरों का सामना होने का डर लगा रहता है। इसके अलावा कुछ खास तरह के रोग, जिनसे प्रत्येक स्त्री ग्रसित हो सकती है, सगर्भावस्था में अधिक भयंकर रूप धारण कर लेते हैं। हृदय, फेफड़े गुर्दे या यकृत के रोग गर्भिणी के लिए भयंकर परिणाम उत्पन्न कर सकते हैं, क्योंकि सगर्भावस्था में इन अंगों के रोग और भी भयंकर रूप धारण कर लेते हैं। इसके अलावा कुछ और खतरे भी हैं जिनका गर्भस्थ शिशु के विकास पर बुरा प्रभाव पड़ सकता है। इसलिए इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए यह निहायत जरूरी है कि इनके बचाव के लिए विशेष सावधानी रक्खी जाय।

भोजन सम्बन्धी नियम

सगर्भावस्था में विसर्जन करने वाले अंगों, गुर्दों, और भोजन पचाने वाले अंगों पर खास तौर से अधिक बोझ पड़ता है। यह बात खास करके उन स्त्रियों के सम्बन्ध में देखी जाती है, जिन्होंने पहली बार गर्भ धारण किया है क्योंकि एक से अधिक बार गर्भधारण करने पर वे शारीरिक अंगों की इस परिवर्तित दशा को अपेक्षाकृत के कम कठिनाई के साथ पार कर जाती हैं। गर्भिणी स्त्री के आहार के सम्बन्ध में भी विशेष रूप से ध्यान देने की जरूरत है।

आम तौर से सगर्भा स्त्रियों के भूख बढ़ जाती है, इसलिए यह बहुत मुमकिन है कि वे जरूरत से ज्यादा भोजन करने लगें। इसलिए यह सावधानी रखनी होगी कि उन्हें उतना ही भोजन मिले जितना शरीर के पालन के लिए आवश्यक है। उससे अधिक नहीं। अक्सर यह भी देखने को मिलता है कि गर्भिणी स्त्रियों को तरह-तरह की चीजें खाने की इच्छा होती है। इसलिए अगर वे कोई ऐसी चीज खाने की इच्छा प्रकट करती हैं जो आहार-तत्व की दृष्टि से अनुचित या हानिकारक नहीं है तो उनकी इस अच्छा की पूर्ति कर देनी चाहिए, उस पर कोई नियन्त्रण या पाबन्दी लगाने की कोई खास जरूरत नहीं। गर्भिणी का भोजन सादा, और अच्छी तरह पकाया हुआ होना चाहिए। भोजन में ऐसे तत्वों की प्रधानता होनी चाहिए जो पुष्टिकारक तथा प्रोटीन-प्रधान हों। चीनी या शर्करा प्रधान वस्तुओं का सेवन केवल सीमित मात्रा में ही होना चाहिए। सगर्भावस्था के लिए दूध सबसे उत्तम आहार है। गर्भिणी को खूब दूध पिलाना चाहिए। क्षारमय भोजन भावी माता के लिए विशेष उपयोगी होगा।

इस बात को विशेष रूप के सावधानी रखनी चाहिए कि भावी माता को इस अवस्था में कब्ज की शिकायत, जिसकी विशेष सम्भावना रहती है, न होने पावे। उसे काफी अधिक फल और हरी शाक भाजियाँ देनी चाहिए। ठीक समय पर शौच जाने की आदत डालनी चाहिए। गर्भावस्था में कोई उचित व्यायाम करनी भी बहुत जरूरी होता है। गर्भिणी स्त्री के लिए सब से अच्छी कसरत टहलना है। लेकिन उसे इतना टहलना भी न चाहिए जिससे कि शरीर में थकावट आ जाय। सगर्भावस्था में कोई उग्र व्यायाम—जैसे घोड़े की सवारी या साइकिल की सवारी—भूल कर भी नहीं करनी चाहिए। क्योंकि इससे गर्भ-स्राव या गर्भ पात हो जाने का डर रहता है। अगर किन्हीं कारणों से कोई भावी माता किसी तरह की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कसरत नहीं कर सकती तो उसके लिए शरीर के अंगों और पीठ की मालिश व्यायाम के अभाव की पूरक हो सकती है।

सगर्भावस्था में सहवास या मैथुन तो हरगिज न होना चाहिए। गर्भ के आरम्भिक महीनों यही गर्भ-स्राव का कारण बनता है। अगर बाद के महीनों में कोई स्त्री प्रसंग करती है तो उसके फलस्वरूप आगे चल कर प्रासव-सम्बन्धी विकार (Pueperal sepsis) पैदा हो जाने का आशंका रहती है। उदर की दीवार की त्वचा (चर्म) को मुलायम या लचीली बनाए रखने के लिए और पेट के अधिक उभर आने के कारण खेखसे न पड़ने देने के लिए सब से अच्छा उपाय यही है कि हर रोज रात के समय 'आलिव-आयल' या कोई भी तेल लगा कर हाथ से पेट की आहिस्ते आहिस्ते मालिश की जाय। सगर्भावस्था के आखिरी महीनो में स्तनों और चूचुकों को रोजाना पहले गरम पानी से धोना और फिर उसके बाद फौरन शीतल जल में किसी कपड़े को भिगो कर रगड़ना चाहिए और इस तरह उसे इस योग्य बना देना चाहिए जिससे कि बच्चा पैदा होने पर आसानी के साथ स्तन-पान कर सके। चूचुकों को हर रोज धीरे-धीरे खींचना चाहिए और दिन में एक बार दाँत साफ करने के मुलायम ब्रश या किसी रुखे कपड़े से रगड़ना चाहिए। ऐसा करने से चूचुक बढ़ जायंगे और इससे बच्चे को दूध पिलाते समय उसकी नाक स्तनों से न लगेगी और उसका दम नहीं फूलने पायेगा।

गर्भवती स्त्री के लिए क्षय रोग (तपेदिक) से ग्रसित होना बहुत भयानक है। इस रोग का गर्भाधान होने या सगर्भावस्था के सम्बन्ध में कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता। और प्रायः इस तरह की बहनों की सन्तानें भी साधारण रूप के तनदुरुस्त और क्षय रोग से मुक्त होती हैं, यहाँ तक कि सगर्भावस्था में स्वयं उस माता के भी स्वास्थ्य में अक्सर सुधार होता नजर आता है। लेकिन अन्ततोगत्वा उसका रोग तेजी बढ़ जाता है। जिन बहनों के फेफड़ों में तपेदिक का रोग (Pulmonary tuberculsis) हो उन्हें इस रोग से छुटकारा पा जाने के कई साल बाद ही गर्भ धारण की इच्छा करनी चाहिए। गरमी या सूजाक से पीड़ित होने वाली भावी माता के लिए यह अत्यन्त आवश्यक होगा कि वह स्वयं अपने और अपनी भावी सन्तति, दोनों के हित के लिए सगर्भावस्था में इन रोगों से छुटकारा पा जाय। उपदंश या गरमी की हालत में आमतौर से गर्भ स्राव हो जाता है और भावी माता के सूजाक की बीमारी रहने पर प्रसव के समय बच्चे की आंख पर जरब पहुँचने का खतरा रहता है।

सगर्भावस्था के कुछ रोग

वमन या कै होना—यह प्रायः सभी स्त्रियों के होता है। जो स्त्रियां कमजोर होती हैं उनको तो यह बहुत ही कष्टदायक होता है। साधारणतः इसकी कोई चिकित्सा करने की आवश्यकता नहीं होती। परन्तु यदि रोग अधिक बढ़ने पर कुछ उपचार की जरूरत हो तो—

(१) एनीमा के प्रयोग से अथवा गुलकन्द आदि कोई मृदु विरेचन से पेट साफ रखना चाहिए।

(२) बिस्तर से उठते ही गरम पानी में नीबू निचोड़ कर और उसमें थोड़ा नमक मिलाकर थोड़ा-थोड़ा पीना चाहिए। बरफ का पानी भी घूंट-घूंट कर पीना उत्तम है। निथरा हुआ चूने का पानी भी वमन को बन्द कर देता है।

(३) भूने हुए चने अथवा जौ का सत्तू खाना चाहिए। पके आम भी उत्तम फलदायक होते हैं।

(४) बरफ का टुकड़ा मुंह में डाल कर धीरे-धीरे चूसना चाहिए। नारियल का पानी देना भी उत्तम होता है।

(५) पूर्ण विश्राम करना चाहिए।

पाचन-क्रिया सम्बन्धी गड़बड़ी होने पर—

(१) हल्की, सुपच खूराक खाने को देना चाहिए। अजीर्ण की हालत में भोजन नहीं देना चाहिए। फलों के रस, या गेहूँ का दलिया, मटर आदि का शाक उत्तम है।

(२) अरुचि होने पर खट्टी वस्तुएं, जैसे शिकंजबीन, नीबू आदि दिया जा सकता है। इससे भोजन में रुचि उत्पन्न होती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

76283

अतिसार—गर्भवती स्त्री को यदि अतिसार या संग्रहणी हो जाय तो ऐसा उपचार करना चाहिए जिससे कि कोष्ठ (पेट) की सफाई हो जाय। एनीमा या किसी मृदु विरेचन का प्रयोग इसके लिए उत्तम होगा। कोष्ठ के शुद्ध हो जाने पर चूने का पानी दिया जा सकता है।

मुंह से लार गिरना—किसी-किसी स्त्री के मुँह से दिन भर में डेढ़-दो सेर लार गिरती है। इससे वह तंग आ जाती है। इस अवस्था में साधारण मृदु-विरेचन और हल्का तथा जल्द पच जाने वाला भोजन देने से आराम हो जाता है। फिटकिरी के पानी से गरारे करने से भी विशेष लाभ होता है। रात में बहुत देर से भोजन नहीं करना चाहिए।

पेशाब में सफेदी जाना—कई स्त्रियों के पेशाब में धातु (एल्ब्युमन) जाने लगती है। प्रायः थोड़ी मात्रा में सब स्त्रियों को सातवें मास में ऐसा होता है। इसका कारण वृक्क के ऊपर बढ़ते हुए गर्भ का दबाव होता है। परन्तु जब यह अधिक मात्रा में जाने लगता है, जिसका लक्षण आंख, योनिप्रदेश और पांव का सूजन होता है, तो यह विष का चिन्ह होता है। इसके लिए—

(१) यह आवश्यक है कि समय-समय पर मूत्र की परीक्षा करायी जाय।

(२) यदि थोड़ी मात्रा में हो तो गर्भिणी को चाहिए कि वह एनीमा का प्रयोग बराबर जारी रक्खे। इससे कोई हानि नहीं हो सकती।

(३) पानी यथेच्छ पीना चाहिए। जौ का सत्तू खाया जा सकता है। स्नान गरम पानी से करना चाहिए।

(४) भोजन हल्का और सुपच होना चाहिए। दूध इच्छानुसार पीना चाहिए।

सिर-दर्द होने पर—कई बार सगर्भा स्त्री को सिर-दर्द इतने जोर से होता है कि उसे नींद हराम हो जाती है। इसके लिए भोजन की मात्रा कम कर देनी चाहिए। मृदु विरेचन अथवा एनीमा का प्रयोग करना चाहिए। नित्य-प्रति स्नान, हलका व्यायाम और यथेच्छ पानी पीना चाहिए।

• मिट्टी खाने की आदत—प्रायः सगर्भा स्त्रियों को चिकनी मिट्टी या चूल्हे की मिट्टी खाने की आदत होती है। इससे या अधिक खट्टे पदार्थ खाने से गर्भ और गर्भिणी दोनों को हानि पहुँचती है। इस लिए इस आदत को रोकना चाहिए। यदि यह आदत न छूटे तो थोड़ा-सा वंशलोचन दिया जा सकता है।

रात में नींद न आना – सगर्भा स्त्री को प्रायः नींद न आने की शिकायत हुआ करती है। इसका मुख्य कारण यह है कि वह दिन में कुछ भी मेहनत न करके बराबर लेटी रहती है। वह खाना अधिक खाती है, जो अपचन उत्पन्न करता है। इसके लिए भोजन सुपच और हल्का होना चाहिए। दिन में हल्का व्यायाम तथा खुली वायु में सोना, स्नान करना उत्तम है। मलवारोध हो तो उसे प्राकृतिक उपायों से दूर करना चाहिए। चाय और काफी का इस्तेमाल हरगिज न करना चाहिए।

ऋतु-स्राव—ज्यादातर गर्भाधान हो जाने पर मासिक धर्म बन्द हो जाता है। लेकिन ऋतु-काल के दिनों में बहुत बार थोड़ी-थोड़ी मात्रा मे स्राव होता है। इसके लिए किसी विशेष उपचार की आवश्यकता नहीं होती। सगर्भावस्था के लिए बताए गए साधारण अहार-विहार का नियमित रीति से पालन करना ही पर्याप्त है। ऋतु-काल के दिनों में पूर्ण रूप से आराम करना चाहिए। भोजन हलका और सुपच होना चाहिए। परिश्रम से बचना चाहिए।

बहु-मूत्रता—सगर्भा स्त्री को बार बार मूत्र-त्याग करने की इच्छा होती है। यह एक स्वाभाविक बात है। इस लिए इसकी विशेष चिन्ता नहीं करनी चाहिए।

श्वेत प्रदर—बहुत बार सगर्भा स्त्री की योनि से श्वेत पानी आता है। यह रोग का चिन्ह है। इसका कारण मुख्यतः योनि-प्रदेश में विक्षोभ होना है। यह विक्षोभ चाहे गर्भाधान होने के पहले का हो या बाद का, इसका यथेष्ट उपचार करना चाहिए। सम्भोग से बचना चाहिए।

रक्त-स्राव—यह रक्त-स्राव दो प्रकार का होता है। (१) गर्भाशय से होने वाला स्राव और (२) गर्भाशय

[शेष २८ वें पेज पर]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लकवा या फालिज

डा० सुरेन्द्रप्रसाद, एम० ए०, एन० डी०

किसी भी अंग विशेष अथवा समस्त अंगों का एकाएक काम करने में असमर्थ हो जाना लकवा कहलाता है। उस समय हमारी इच्छा होते हुए भी रोगाक्रान्त भाग काम नहीं करता। हम उसे हिला-डुला नहीं सकते। कभी कभी उसमें दर्द बना रहता है और कभी कभी वह बिलकुल निष्प्राण हो जाता है। दुर्भाग्य से आजकल यह रोग अत्यधिक पाया जाता है। बच्चे भी इसके शिकार बनते हैं। स्त्रियों के प्रायः प्रसव के पश्चात् लकवा मार जाता है।

लोगों के मन में एक गलत धारणा अथवा भ्रम ने घर कर लिया है। वह यह कि लकवा किसी विशेष हवा के कारण होता है। वस्तुतः बात ऐसी नहीं है। लकवा का भी कारण वही है जो अन्य रोगों का। अर्थात् खान-पान रहन-सहन की खराबी से शरीर में विजातीय द्रव्य एकत्रित हो जाता है और वह शरीर में लकवा उत्पन्न कर होता है। बच्चे इस विजातीय द्रव्य को अपने माता-पिता से ग्रहण करते हैं। अनुभव से यह प्रकट हो चुका है कि भारी हानिकारक, विषैली दवाओं की प्रतिक्रिया भी आगे चल कर लकवे के रूप में होती है। जिनका शरीर भीतर से शुद्ध है उन्हें लकवे की बीमारी कभी नहीं होती। अतएव लकवे का कारण किसी वायु के झोंके में ढूँढ़ना भूल है।

यह बात भी सही नहीं है कि लकवे की मियाद होती है और उसके बाद रोगी मर ही जाता है। लेखक द्वारा कुछेक भयंकर एवं असाध्य माने जाने वाले लकवे के रोगियों की सफल चिकित्सा हुई है और वे आज भी स्वस्थ हैं। अलबत्ता इसकी चिकित्सा में समय तथा धैर्य की आवश्यकता है। यहाँ हम इसके दो उदाहरण पेश करते हैं।

उपवास एक अचूक दवा

एक ६० साल की अवस्था वाले वृद्ध व्यक्ति के आधे अंग में अचानक लकवा मार गया। रोग के होते ही उसने खाना बिलकुल ही छोड़ दिया। इस प्रकार लगभग ३३ दिन तक उसने सिवाय जल के और कोई वस्तु ग्रहण न की। उपवास के अन्य नियमों का भी—जैसे शुद्ध वायु में रहना, स्नान करना, एनीमा लेना आदि—उसने पालन नहीं किया। पर, हाँ प्रति दिन वह २-३ बार तेल की मालिश अवश्य कराता रहा। इतने पर भी यह रोगी ठीक हो गया और अब ठीक से चलने फिरने लगा है। इस उदाहरण से यह स्पष्ट है कि लकवे के जीर्ण रोग में कुछ समय तक भोजन-सुधार, फलाहार शाकाहार के उपरांत उपवास की आवश्यकता होती है।

दूसरा उदाहरण एक ४साल के बच्चे का है। उसका एक पैर बिलकुल काम न करता था। भोजन में साधारण सुधार करके उसके पैर पर प्रतिदिन डेढ़ घन्टे तक लाल शीशे का प्रकाश डाला जाने लगा। पेड़ू स्नान, गर्म पानी से पैर स्नान आदि का भी प्रयोग किया गया। लगभग डेढ़ मास में उसे कुछ लाभ होने लगा। पर इस स्थिति में उसकी माता ने धैर्य त्याग दिया और उसे गाँव ले गई। एक साल बाद सुना गया कि वह बच्चा मर गया। प्राकृतिक चिकित्सा छोड़ने के बाद बच्चे को कुछ फूँकी हुई दवाएँ तथा इन्जेक्शन दिए गए थे। अतः यह स्पष्ट है कि दवाओं से लकवा कत्तई ठीक नहीं होता, बिगड़ कर रोगी के ही प्राण ले लेता है।

एक महाशय ने मुझे रेल में यात्रा के समय बतलाया कि उनकी सगर्भा स्त्री की दुर्बलता देख कर एक डाक्टर ने किसी दवा द्वारा गर्भ-स्राव कराया। पर उसके १०-१५ दिन बाद ही उसके लकवा मार गया। उसके बाद अनेकानेक औषधियों की शरण ली गई पर रोगिणी के प्राण के नहीं बचाये जासके। 'सचमुच बहुत से लोगों को रोग का असली कारण और उसका उचित इलाज न मालूम होने की वजह से वे न केवल दुखी, चिन्तित एवं दरिद्र हो जाते हैं, बल्कि अन्त में उन्हें अपने प्राणों का भी मोल चुकाना पड़ जाता है। यदि रोग के होते ही प्रकृति की शरण ली जाय तो कोई कारण नहीं कि किसी भी प्रकार का जोखिम उठाना पड़े!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैजे पर

एक अनुभूत प्रयोग

श्री गोपालकृष्ण मल्लिक

मरीज की हालत खतरनाक हो चुकी थी, वह करीब-करीब चेतनाहीन हो चुका था। जब उसके निराश अभिभावकों को और कोई उपाय न सूझा तो, उन्होंने गाँव के सेवाश्रम की शरण ली। उन्हें मालूम था कि आश्रम में प्राकृतिक चिकित्सा होती है। आश्रम के संचालक और मैं दोनो उस रोगी को देखने गये। हम लोग अपने साथ 'जीवन-सखा' की वह प्रति, जिसमें हैजे की प्राकृतिक उपचार बताया गया है, और लूईकूने का 'प्राकृतिक चिकित्सा विज्ञान' आदि पुस्तकें भी लेते गये और साथ में इस चिकित्सा-पद्धति के प्रति अपनी श्रद्धा और विश्वास भी। एक बच्चा और एक युवक रोग-पीड़ित हो रहे थे। दोनों मरीज शरीर के भीषण ताप से तड़प रहे थे। इस बीमारी में इस तरह के ताप के कारण भी रोगी की मृत्यु हो सकती है, इसका मुझे अनुभव हो चुका है। मैं स्वयं एक बार हैजे का भुक्त भोगी हो चुका हूँ और प्राकृतिक चिकित्सा से जीवन-दान पाने के कारण ही इस उपचार में मुझे पूर्ण विश्वास और श्रद्धा है।

सर्व प्रथम हम लोगों ने तीन तरह का उपचार क्रमशः आरम्भ किया। कटि-स्नान, (हिपबाथ) पानी में नीबू मिलाकर पिलाना और कभी-कभी पेड़ू पर गीला कपड़ा या मिट्टी का लेप लगाना। उपचार की यह विधि हमने 'जीवन-सखा', 'प्राकृतिक चिकित्सा-विज्ञान' आदि पुस्तक से ढूँढ़ निकाली और यही मुख्य उपचार हम लोगों ने जारी रक्खा। इसके बाद रोगी में जो प्रतिक्रिया होती रही उसे भी पुस्तक से मिलाता जा रहा था। पुस्तक से इस तरह बार-बार सहायता लेने का अर्थ था इस विषय में हमारी योग्यता का अभाव। हम लोग प्राकृतिक चिकित्सा-विद् तो थे नहीं। सिर्फ उसमें श्रद्धा थी और उसका लाभ जनता की नजर में प्रकट कर देना था, इसी उद्देश्य से उपचार का सुयोग नहीं छोड़ सके थे। बाद में रोगी के लक्षण सब ठीक रहे। दस्त, कै, शरीर का असह्य ताप बगहा लगना, जबर्दस्त प्यास आदि लक्षणों में भी सन्तोषजनक परिवर्तन होता रहा, इससे हमारा उत्साह बढ़ता गया।

हम लोगों के पहुँचने के पहले उनके पड़ोसी और सगे-सम्बन्धी उन्हें देखने तक नहीं आते थे। सब भय से त्रस्त थे। घर से निकलने में उन्हें डर मालूम होता था। मैंने देखा, जो भी निकलते थे तथा उस रास्ते से गुजरते थे उनकी आँखों में भय और उपेक्षा के भाव और डग लम्बे थे। हम लोगों के उपचार करने के कुछ ही समय बाद लोग वहाँ धीरे-धीरे आने और हम लोगों से उनकी हालत के बारे में पूछ-ताछ करने लगे। घर के लोग शांत, आशान्वित दीखने लगे।

उपरोक्त उपचार में हमें सफलता दिखाई देने लगी। मुमकिन है कि इससे भी अधिक प्रभावकारी कोई अन्य प्राकृतिक उपचार हो, पर इतने से ही काम चल गया। इस उपचार-विधि को ही यदि धैर्य और विवेक से पालन किया जाय तो मरीज को राहत मिल सकती है, और चिकित्सक को सफलता। इसमें कोई शक नहीं कि रोगी की प्राण-रक्षा चिकित्सा-विधि पर निर्भर है। इस विश्वास को हृदय में जमाकर प्रयोग आरम्भ करना चाहिए। इसके बाद रोगी के पथ्य के समय भी धैर्य और विवेक से काम लेना चाहिए। क्योंकि अगर कुछ भूल हुई, तो रोगी की मृत्यु की आशंका हो सकती है। रोगी अधिक भूखा रहता है, अभिभावक उसकी अवस्था से काफी भावुक बन जाते हैं और वे कभी-कभी अविवेक पूर्ण कार्य कर बैठते हैं। ऐसे दृष्टान्त मुझे कई बार मिल भी चुके हैं। पथ्य हलका ही होना चाहिये। यदि वह संतरा के रस से आरम्भ हो तो बेहतर है। अगर ऐसा न कर सकें हों तो पतला बारली और उसमें नीबू का रस और नमक मिलाकर दिन में दो-तीन बार पिलाना चाहिये। इससे अधिक नहीं। यह तीन-चार दिन तक जारी रखना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रोगी खाने के लिये बहुत जिद करता है, पर इसका असर हम पर नहीं पड़ना चाहिये। इसके बाद घी रहित मट्ठा, और उसके साथ बिना मिर्च-मसाले के उबला हुआ शाक भी दिया जा सकता है। इस बात पर ध्यान रखना चाहिये कि रोगी की पाचन-शक्ति कैसी है। उसी के अनुसार भोजन का नियंत्रण होना चाहिये।

इसके पहले भी गाँव में चेचक, बुखार आदि कठिन रोगों पर प्राकृतिक-चिकित्सा का प्रयोग हो चुका था। प्राकृतिक चिकित्सा से मरीज को राहत मिलती है। उसकी अवस्था भी सुधर जाती है। एक बार मैं हैजे से पीड़ित हो गया। पहले तो मैंने उसे रोकने की कोशिश की। जब पाखाने की तलब होती थी तो उसे दबाने का प्रयत्न करता था। लोगों को मालूम न हो, यह मेरा विचार था। इसलिए मैं पाखाना भी छिप कर जाता था। इससे मेरी अवस्था और भी बिगड़ती हुई जान पड़ने लगी। आखिरकार मैंने लाचार होकर लोगों को अपनी हालत बताई। फिर प्राकृतिक चिकित्सा आरम्भ हुई।

इन रोगियों की भी हालत ऐसी ही रही, यह बाद में उनसे पूछने पर मालूम हुआ। ऐसा होने पर रोग के निराकरण में कुछ देरी होती है। इसलिए ऐसा करना भारी भूल है। अगर रोगी और उसके अभिभावक आरम्भ में ही सँभल जायं तो तकलीफ कम उठानी पड़ेगी।

———

[२५ वें पेज का शेषांश]

के अतिरिक्त अन्य प्रदेशों से होने वाला स्राव; जैसे नाक, मुख आदि से।

गर्भाशय से होने वाला रक्त-स्राव यदि थोड़ी मात्रा में हो तो भी भयानक है। उस अवस्था में यही उचित है कि किसी अनुभवी चिकित्सक या धात्री की सलाह ली जाय। साधारणतः रक्त-स्राव रोकने के लिए नीचे बताए गए उपाय काम में लाए जा सकते हैं।

१—पूर्ण विश्राम करना चाहिए। बिस्तर के पायताने जरा ऊँचे करके सोया जाय। योनि और योनि-प्रदेश में ठण्डे जल में भिगो कर कपड़े की पट्टी रखनी चाहिए। खाने के लिए द्रव भोजन के सिवाय और कुछ नहीं देना चाहिए। पेड़ू पर कुम्हार की चिकनी मिट्टी का लेप करना चाहिए।

नाक आदि के रक्त-स्राव हो तो शीत उपचार करना चाहिए। भोजन द्रव पदार्थ ही होना चाहिए।

[लेखिका की अप्रकाशित पुस्तक 'आरोग्य दर्शन' से।]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दाँतों की देख-रेख

डा० किशोरीलाल, एल०डी०एस०सी, एन०डी०डी०वाई

[इस लेख के लेखक प्रयाग के एक अनुभवी दन्त-चिकित्सक तथा प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली के मर्मज्ञ हैं। आपका पिछला लेख जनवरी के अंक में प्रकाशित हुआ था, उसी के सिलसिले में आपने यह दूसरा लेख लिखा है। शरीर के स्वास्थ्य के लिए दाँतों का कितना महत्व है, इस पर प्रकाश डालने के साथ ही साथ आपने दाँतों की रक्षा के लिए कुछ सरल उपाय भी बताए हैं, जिनका अनुसरण बाल्यकाल से ही होना चाहिए। —सं०]

जब बच्चे के दाँत निकलना शुरू होता है तो माता को चाहिए कि रुई या मलमल का साफ कपड़ा ५ प्रतिशत नमक के घोल (लोशन) से तर करके दिन में दो बार मसूड़ों और दाँतों की सफाई करती रहे। यह क्रिया तब तक जारी रहे जब तक बच्चे के पूरे दाँत न निकल आवें। जब दो चार दाँत निकल आवें तब भोजन में तबदीली कर देना चाहिए। यह इस बात की निशानी है कि अब बच्चे को चबा चबा कर खाए जाने वाले खाद्यों की जरूरत हैं। इसलिए उसे सेब या नासपाती का टुकड़ा खिलाना चाहिए ताकि जबड़े का व्यायाम होने के साथ ही बच्चे की बढ़ोतरी अच्छी तरह हो। दाँत निकलना एक ईश्वरीय लीला है। इसलिए इस कार्य के पूरा होने में किसी तरह की तकलीफ न होनी चाहिए। परन्तु आजकल जब बच्चों के दाँत निकलने का समय होता है तो वे तरह तरह के रोगों में फँस जाते हैं, जैसे-आँख का दुखना, दस्त होना, सिर-दर्द होना, कान का दर्द या बहना इत्यादि। आधे अधिक बच्चों की मृत्यु भी इन्हीं दिनों में होती है। इसलिए लोग बच्चे के दाँत निकलने को 'नया जन्म' कहते हैं। इसके लिए प्राकृतिक नियमों का पालन करना चाहिए। बच्चे के मुँह की सफाई रखनी चाहिए। उसे कब्ज न होने दें।

माता को भी अपने स्वास्थ्य का पूरा ध्यान रखना चाहिए, क्योंकि माता के स्वास्थ्य से बच्चे के स्वास्थ्य का गहरा सम्बन्ध है। ज़्यादातर मिठाई से परहेज रक्खें।

जब बच्चे के सब दाँत निकल आवें तो दाँतों की का पूरा ध्यान रक्खें। भोजन करने के बाद दाँतों को अंगुली से साफ कर देना चाहिए। भोजन धीरे धीरे करना चाहिए, इस तरह के विचार आरम्भ से ही बच्चे के दिमाग में बढ़ाने चाहिए, जिससे कि वह बड़ा होने पर अपने स्वास्थ्य का अपने आप ख्याल रखने लगे। अगर शुरू से ही दांतों की हिफाजत नहीं की गई तो दाँत खराब हो जायंगे। अक्सर लोग वह ख्याल करते हैं कि अगर दूध के दाँत खराब हो गए तो कोई परवाह नहीं, उनके इन दाँतों के बाद दूसरे दाँत निकलेंगे, जो हमेशा काम देंगे। उनका यह ख्याल गलत है। क्योंकि जिसके दूध के दांत खराब हो गए उनके मुस्तकिल दाँत भी खराब हो जायंगे। इसका कारण यह है कि दूध के दाँत की जड़ें मुस्तकिल दाँत के 'क्राउन' (शिरोभाग) पर होती हैं। जब यह दुधिया दाँत सड़ जायंगे, जब दाँत की जड़ भी सड़ जायगी, तो ये दोनों बातें नीचे के दाँतों को खराब कर देंगी। इसलिए दूधिया दाँत की पूरी देख भाल करनी चाहिए।

अगर बचपन में लापरवाही से दूधिया दांतों की देख रेख न की गई तो इस लापरवाही का नतीजा बुरी तरह भुगतना पड़ेगा। क्योंकि उस हालत में बच्चा न तो भोजन को अच्छी तरह चबा सकेगा और न जबड़े का पूरा व्यायाम ही हो सकेगा और इसके फलस्वरूप दाँत, मेदा (आमाशय) दिमाग, बल्कि यों कहिये कि समूचे शरीर के स्वास्थ्य पर आघात लगेगा। बच्चे के विकास का यही समय होता है। इस लिए दाँतों की सफाई की पूरी कोशिश होनी चहिए। दाँत और मसूड़ों के स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए उनका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यायाम होना जरूरी है। इस लिए बच्चे को ऐसा भोजन दें जिसके खाने से जबड़े और उसके साथ वाले अंगों का व्यायाम हो जाय। ताजे फल, साग-सब्जी, दूध, मक्खन का विशेष रूप से इस्तेमाल होना चाहिए। सोने से पहले बच्चे के दांत साफ कर दें। जब बच्चा सो जाय तो देखें कि उसका मुँह खुला तो नहीं रहता। अगर मुँह खुला रहता हो तो मुँह और सिर के इर्द गिर्द पट्टी बाँध दें। मुँह खुला रहने से दाँत बाहर निकल आते हैं।

बच्चे के मुस्तकिल (पक्के) दाँत निकलना

जब बच्चा छोटा रहता है, उसके दाँत और जबड़े भी छोटे होते हैं। बच्चा मुलायम भोजन खाता है। मगर जब सख्त खाना खाने का समय आता है, तब धीरे धीरे दूधिया दाँत गिरने लगते हैं और उनकी जगह पक्के चमकीले, खूबसूरत और मजबूत दांत निकलना शुरू होता है, जो कड़े भोजन को अच्छी तरह चबा सकते हैं। जब दूधिया दांत गिरने वाला होता है तो दांत की जगह पर खुजलाहट पैदा होती है। तब बच्चा वहां पर बार बार जीभ लगाया करता है। उसके कुछ ही दिन बाद दूधिया दांत गिर पड़ते हैं। पक्के दांत निकलते वक्त कोई तकलीफ नहीं होती, लेकिन दाढ़ निकलते वक्त कभी कभी कुछ दर्द जरूर होता है।

दुधिया दांत जब गिरने शुरू होजायँ तो उस हालत में यह जरूरी है कि किसी दन्त चिकित्सक से सलाह ली जाय। अगर ठीक समय से दूधिया दांत गिर न गया या निकाल न दिया गया तो पक्के दांत असली जगह के बजाय किसी और जगह निकल आयेंगे, जिससे पास के दांतों पर दबाव पड़ेगा। दबाव के पड़ने से वहभी बेकायदा होजायेंगे। पक्के दांत उम्र भर मनुष्य का साथ देते हैं। अगर इसकी पूरी देख भाल न की गई तो सारी उम्र मनुष्य रोगों के पंजे से छुटकारा नहीं पा सकता। इस लिये दाँतों को स्वस्थ रखने के लिये स्वास्थ्य के सभी नियमों का पालन करना चाहिये। सम्बन्ध में निम्न बातों को हमेशा ध्यान में रखन चाहिए।

(१) मुँह शरीर का दरवाजा है। इसलिए दांत और मसूड़ों को साफ रखना स्वास्थ्यप्रद है, क्योंकि ८० फी सदी रोग दांत और मुँह के साफ न रहने के ही कारण होते हैं।

(२) हमारे मुँह में दांत मोतियों की माला की तरह हैं। अगर माला से एक भी मोती गिर जाय, तो उसकी सुन्दरता नष्ट हो जाती है।

(३) अमेरिका के एक जनरल ने एक दफा लिखा था कि मैं लोगों को बन्दूक चलाने के बजाय ब्रश करना सिखाना ज्यादा पसन्द करता हूं।, (लेकिन मेरी राय में ताजा कीकर, मौलसिरी, तेजबल, नीम वगैरह की दातुन ही ज्यादा अच्छा है। यही हम भारतीयों के लिए पेस्ट और ब्रश का काम दे सकती है।)

(४) एक वृद्ध ने कहा, "मैं बहुत समय से प्रात: उठ कर शौच के समय नीचे-ऊपर के दांतों की पंक्तियों को एक दूसरे से कसकर दबाता हूं।" यही वृद्धावस्था में भी उसके दांत मजबूत बने रहने का एक रहस्य था।

[३२वें पेज का शेषांश]

उसका पहले का-सा कार्य-क्रम रक्खा गया था—युक्त-आहार, सुबह-शाम टहलना और हवा में रहना। जिस दिन उसके बच्चा पैदा होने वाला था उस दिन शाम को टहल कर वापस लौटने के बाद उसने हल्का भोजन किया था। रात में ३ बजे के करीब वह जगी और पाखाने गई। पाखाने से लौटने पर उसे कुछ दर्द-सा मालूम हुआ। नर्स बुलाई गई और ४ बज कर २० मिनट पर बच्चा पैदा हुआ। बच्चा होने के यह पहले या बाद में उसे कोई तकलीफ या परेशानी नहीं हुई।

प्राकृतिक चिकित्सा की इस आश्चर्य जनक सफलता ने मेरे जीवन के दृष्टिकोण में एक क्रान्ति-सी उत्पन्न कर दी है। मैं प्राकृतिक चिकित्सा का परम भक्त बन गया हूं। मुझे अनुभव हो गया कि प्रकृति की शक्ति अनन्त है। यदि हम स्वास्थ्य सम्बन्धी प्राकृत नियमों का पालन मात्र करते रहें तो वह हमारी समस्त अशंकाओं को कर सकती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रोगियों की राम कहानी

प्रसव का भय जाता रहा !

श्री देवेन्द्रदत्त गुप्त, नेवली, (यू० पी०)

यह मैं अपनी स्त्री के बारे में कह रहा हूँ। वह अमीर घराने की लड़की है। ज्यादातर अमीर घराने की लड़कियाँ आरामतलब हुआ ही करती हैं, लेकिन अपने माँ-बाप की इकलौती बेटी होने के नाते वह इस बात में दूसरी स्त्रियों के मुकाबले में और भी आगे बढ़ी हुई थी। वह बड़े दुलार और लाड़-प्यार के वातावरण में पली थी। इसका फल, जो बिलकुल स्वाभाविक था, यह हुआ कि वह कृष-गात बन बैठी थी। उसके जीवन का अधिकांश समय बीमारी में ही बीतता—कभी कफ की शिकायत, कभी बुखार और कभी सर्दी या मासिक धर्म की शिकायत, एक न एक बराबर लगी ही रहती थी।

> **क्या आपको भी कुछ कहना है ?**
>
> क्या आपने जीवन सखा के सिद्धान्तों के अनुसार खोये हुये स्वास्थ्य को पुनः प्राप्त करने का अनुभव किया है। यदि हाँ तो उसे दूसरों की सहायता, तथा मार्ग-प्रदर्शन के लिए भेजें। उन्हें हम जीवनसखा के इस स्तम्भ में सहर्ष स्थान देंगे। यदि सम्भव हो सके तो यह चिकित्सा करने के पूर्व और बाद का अपना फ़ोटो भी भेजें। आपका अनुभव दूसरों के बड़े काम का हो सकता है। अपने अनुभव निष्पक्ष भाव से तथा सचाई के साथ लिखें। यदि आपने किसी अन्य व्यक्ति को इस चिकित्सा-प्रणाली के द्वारा लाभ पहुंचाया हो तो उसके सम्बन्ध में अनुभव भेज सकते हैं—सम्पादक

अभी वह अपने जीवन के १८ वें वर्ष को पार भी न कर पाई थी कि उसके बच्चा होने को रह गया। जीवन में पहली बार वह माँ बनने जा रही थी। जब यह समाचार उसके माता-पिता को मिला तो वे उसकी दुर्बलता का ख्याल करके अधीर हो उठे। उन्हें आशंका होने लगी कि वह शायद प्रसव-काल की अग्नि-परीक्षा को सफलतापूर्वक पार न कर सकेगी। लेकिन उससे बच निकलने का कोई जरिया तो था नहीं, उस संकट-काल का चाहे जैसे भी हो सामना तो करना ही था। इसलिए उन्होंने हर तरह से उसके लिए हिफाजत के उपाय करने का निश्चय किया। वे उसे दिल्ली के 'विक्टोरिया जनाना अस्पताल' में ले गए। वहाँ की प्रधान लेडी डाक्टर से उन्होंने राय ली। डाक्टर ने कहा कि यह स्त्री बहुत कमजोर है और बच्चा पैदा होने में जान का खतरा है। उसने कुछ ताकत बढ़ाने वाली दवायें बताईं और सलाह दी कि इसे बहुत अधिक पोषक-पदार्थ भोजन कराये जाँय और गर्भ का नवां महीना शुरू होते ही अस्पताल में भर्ती करा दिया जाय।

गर्भ का दूसरा महीना चल रहा था। जब मुझे यह समाचार मिला तो उसे देखने के लिए ससुराल गया। मेरे श्वसुर जी ने, जो अपनी लड़की के स्वास्थ्य के सम्बन्ध में बड़े चिन्तित थे, मुझसे कहा कि आप लड़की के ही साथ रहें ताकि उसकी समुचित देखभाल हो। मैंने उनके इस प्रस्ताव को नापसन्द किया, क्योंकि मुझे अबतक प्राकृतिक चिकित्सा के बारे में कुछ जानकारी हासिल हो चुकी थी और मैं समझ गया था कि 'समुचित देख भाल' किसे कहते हैं। मैं जानता था कि इनके इस कथन का क्या मतलब है। उसे बराबर चारपाई पर पड़े रहने दिया जाय और इस बात पर बिना कोई ध्यान दिए ही कि उसे कितने मिकदार में पोषण तत्व की आवश्यकता है, उसकी पाचन-शक्ति कैसी है, उसे जहाँ तक बन पड़े खूब पौष्टिक आहार दिया जाय। इसलिए मैंने उनका यह अनुरोध मानने से इनकार कर दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैंने जो सब से पहली बात की वह थी उसके आहार के सम्बन्ध में। मैंने उसका आहार इस प्रकार का रक्खा जिसमें फल और ताजी साग-सब्जियों की मात्रा अधिक थी और दूध और रोटी की मात्रा कम। उसे बन्द कमरे में चारपाई पर लेटे रहने या सुस्त पड़े रहने नहीं दिया, हालाँकि आम तौर से दुर्बल शरीर वाली सगर्भा स्त्रियों को इसी तरह रक्खा जाता है। उसे बराबर खुली जगह में रखता। इसके फल स्वरूप उसमें इतनी शक्ति आ गई कि वह काफी दूर तक टहलने भी जा सकती थी। आप विश्वास करें कि तीसरे महीने से लेकर प्रसव के दिन तक वह हर रोज सवेरे ३ मील और शाम को २ मील टहल करती थी और इसमें उसे कुछ भी थकावट न मालूम होती थी। मैंने इस बात पर विशेष रूप से ध्यान रक्खा कि दस्त साफ हो। कब्ज की शिकायत न रहे। ७ वें महीने से लेकर प्रसव-काल तक मैं उसे हर रोज सुबह को २० मिनट तक मेहन-स्नान कराता।

मैं यह बात आरम्भ में ही कह चुका हूँ कि वह जन्म से ही अस्वस्थ थी। गलत तरीके से किए गए लालन-पालन से उसकी अवस्था और भी खराब हो गई। १४ साल की अवस्था से या शायद उससे भी पहले से वह श्वेत-प्रदर से पीड़ित हो रही थी। मेहन-स्नान करने से उसका यह स्राव और भी बढ़ गया। जिसे देखकर मैं घबड़ा उठा। अब तक मैंने लुई कूने की 'न्यु सांइन्स आफ हीलिंग' नामक पुस्तक का ही अध्ययन किया था। सौभाग्य से मुझे श्री जानकीशरण वर्मा की पुस्तक 'रोगों की अचूक चिकित्सा' की एक प्रति मिल गई। हम दोनों ने इस पुस्तक को मनोयोग पूर्वक पढ़ा। हम समझ गए कि चावल के धोवन का-सा होने वाले स्राव का अधिक बढ़ जाना एक शुभ लक्षण है, क्योंकि यह उसके शरीर में जमा हुए विजायतीय द्रव्य का शीघ्रता के साथ होने वाले विसर्जन रूप में है। मल-विसर्जन की यह क्रिया इसी प्रकार से के २० दिन जारी रही और उसके बाद धीरे धीरे स्राव बिल्कुल बन्द हो गया। इस प्रकार वह श्वेतप्रदर के इस जीर्ण रोग से महीने भर में बिल्कुल चंगी हो गई।

हाँ, मैं बता देना चाहता हूं कि मैंने उस लेडी डाक्टर की राय की पूरी तौर से उपेक्षा की। उसपर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। मैंने उसे कोई टानिक (ताकत बढ़ाने की दवा नहीं दिया, और न उस लेडी डाक्टर की राय के मुताबिक बहुत अधिक पौष्टिक आहार ही उसे दिया। जब नवाँ महीना शुरू हुआ तो उसके माता पिता ने चाहा कि उसे ले जाकर जनाना अस्पताल में भर्ती कर दिया जाय। इसलिए वे मेरे पास आये और उसे अस्पताल में भर्ती करा देने के लिये मुझसे कहा। मैं उनकी इस आतुरता और व्यग्रता से प्रभावित हो गया। उदासीनतापूर्वक उसे दिल्ली ले गया। लेकिन मैंने यह तय कर लिया था कि अस्पताल में भी कोई एलोपैथी दवा न खिलाने दूँगा।

अस्पताल के चीफ मेडिकल आफिसर ने उसे बच्चा पैदा होने तक अस्पताल में ही रखने पर जोर दिया और हिफाजत के तौर या उन्होने इनजेक्शन देने और टानिक खिलाने के लिए नुसखे लिखे। लेकिन मैंने इन सब बातों कुछ भी ध्यान न दिया। हम वहाँ पर अपने बड़े भाई के साथ ठहर गए। मैंने अपनी स्त्री को कोई दवा छूने तक नहीं दी। पर, हाँ पहले की तरह उसका सुबह शाम टहलना जारी रहा। १७ नवम्बर १९४२ को वह जब शाम को टहलकर वापस लौट रही थी तो उसने मेरी भाभी से कहा कि उसे कुछ दर्द मालूम हो रहा है। शाम को ८ बजे के करीब उसे अस्पताल ले गए और वहाँ पर परिवार के लोगों के रहने के लिए एक कमरा किराए पर ले लिया। उसका दर्द जल्द ही कम हो गया। रात के १२बजे वह सोने से जाग पड़ी और एक बार प्रसव-पीड़ा हुई और फिर रुक गई उसे प्रसव के कमरे में ले जाया गया। और उस समय वहाँ पर उसके एक स्वस्थ बालक पैदा हुआ जो डाक्टर और नर्स खड़ी थी उन सबको इस प्रकार बिना किसी कष्ट या परेशानी के और आसानी के साथ बच्चा पैदा हो जाते देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। उनको यह आशा नहीं थी कि इस तरह की दुर्बल-काय स्त्री इतनी आसानी के साथ प्रसव-काल को पार कर जायगी। प्रकृति के इस चमत्कार का सभी लोगों पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा।

इस साल उसके दूसरा बच्चा हुआ। इस बार भी

[शेष ३० वें पेज पर]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राकृतिक स्नान

लेखक—एडोल्फ जूस्ट

अनुवादक—विट्ठलदास मोदी,
संचालक, आरोग्य मन्दिर, गोरखपुर

लेखक

पिछली शताब्दी में अनेक प्रतिभा शाली एवं महान व्यक्ति प्राकृतिक चिकित्सा-प्रणाली के उन्नयन में लगे रहे। उनकी प्रतिभा ने उन्हें प्रकृति के नियमों से परिचित कराया। प्रेसनीज, स्क्राथ, ग्रेहम, रूसो, रिकली, नीप, कूने, डेसमूर, ट्राल आदि ने इस दिशा में महान कार्य किये और अक्षय-कीर्ति कमाई। उन्होंने अंधेरे में से प्रकाश की किरणें खोज निकालीं।

पर इन सभी सज्जनों ने नैसर्गिक बुद्धि को पथ-प्रदर्शन का मौका नहीं दिया और न कभी प्रकृति की अन्य सब आवाजों का पूरी ईमानदारी से अनुसरण किया। उन्होंने बच्चों और पशुओं के जीवन का भी पूरा अध्ययन नहीं किया। ये छोटे प्राणी आज भी इस सभ्यता के युग में पले प्रौढ़ मनुष्यों की अपेक्षा प्रकृति की राह का अधिक अनुसरण करते हैं। इन सज्जनों ने प्रकृति के उप-दानों एवं इच्छाओं पर भी ध्यानपूर्वक और समझदारी से विचार नहीं किया। इसलिए उनकी शिक्षा और उनका बताया मार्ग पूर्ण नहीं है। उसमें अनेक भूलें और गलतियां मिलती हैं। उनकी उपचार-पद्धति को लोग अधिकतर भूल गए हैं और वह दिन दूर नहीं है जब वे विस्मृति के गर्त में सर्वथा विलीन हो जायँगी।

मनुष्य को प्रकृति से अपना संबंध-विच्छेद किये हजारों वर्ष हो गए। अब धीरे ही धीरे वह प्रकृति और उसके नियमों के संबंध में अपना कर्त्तव्य समझ सकता है।

प्राकृतिक चिकित्सा-प्रणाली के निर्माण में हाथ बंटाने वाले सभी सज्जन हमारी अधिक से अधिक प्रशंसा के पात्र हैं। वे सर्वांगीण सत्य प्राकृतिक नियमों के निकट पूरी तरह से नहीं पहुंचे एवं उनकी पद्धति सदोष है। इसके लिए न तो हमें उनकी निन्दा करनी चाहिए न उन्हें दोषी ठहराना चाहिए।

अनुवादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुनिया के सभ्य समाज में हुये अब तक के सभी आन्दोलनों में प्राकृतिक चिकित्सा संबंधी आन्दोलन सबसे अधिक गंभीर और शक्तिशाली है। इसका संबंध मनुष्य की सब से बड़ी निधि—स्वास्थ्य—से है। स्वास्थ्य पर ही उसके जीवन के सारे आनंद एवं खुशियां निर्भर हैं, और स्वास्थ्य ही उसे प्रत्येक प्रकार के दुख-कष्ट और त्रास से बचा सकता है। अतः इस विषय पर अपने विचार प्रकट करते समय हमें न किसी के संबंध में चुप रहने, और न किसी के दोषों पर परदा डालने की जरूरत है। हमें चाहिए कि इस महान कार्य में लगे हुए लोगों पर अपनी सतर्क दृष्टि रखें और प्रत्येक वस्तु-हितों और व्यक्तियों को उसके सामने गौण समझें।

इस दृष्टि से मैं अपने पहिले की प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति और पुराने चाल के शाकाहार की गलतियाँ प्रकाश में लाने से नहीं रह सकूंगा। पर ऐसा करने में किसी को कष्ट पहुँचाने की मेरी जरा भी इच्छा नहीं है।

अब मैं एक ऐसी जीवन-पद्धति और चिकित्सा-पद्धति का जिक्र करूँगा जिसका विज्ञान से कोई संबंध नहीं है। इसमें हमें, जैसा कि मैंने पहिले कई बार कहा है, प्रकृति-गुरु से पथ-प्रदर्शन प्राप्त करना होगा और निश्चय ही एक दिन उज्वल सुन्दर प्रभात की वेला में तमसावृत गगन को भेद कर प्रकाश की किरणें प्रस्फुटित होंगी जिसका मानव जाति प्रसन्नता पूर्वक स्वागत करेगी।

यह चिकित्सा-पद्धति प्रकृति-गुरु की भांति ही अत्यंत सीधी सादी एवं सरल है। इस पद्धति में प्रत्येक रोग और रोगों की एक ही प्रणाली से चिकित्सा होती है और इसकी मान्यता है कि सभी रोगों का कारण अप्राकृतिक जीवन है तथा प्रकृति के नियमों एवं कार्यों में कहीं वैषम्य नहीं है। मेरी धारणा है कि सभी प्रचलित प्राकृतिक चिकित्सा पद्धतियाँ धीरे धीरे इस एक सच्ची प्राकृतिक चिकित्सा-पद्धति में विलीन हो जायँगी।

इस पद्धति में, जिसे सीखना कहा जाता है इस अर्थ में, सीखने को कुछ नहीं है। कोई भी, जिसने अपने को आधुनिक विज्ञान की चकाचौंध से मुक्त कर लिया है एवं बुद्धिमता को आधुनिक अर्थों में ग्रहण करने से अपने को बचा लिया है, इसका व्यवहार कर सकता है। इस पद्धति का अनुसरण करने वाला सारे चिकित्सक-समुदाय, भेषज-पंडितों आदि की गुलामी करने से और परवशता से बच जाता है।

प्रकृति कभी गलती नहीं करती। अतः प्रकृति में वह विरोधाभास और चूक नहीं है जिसके कारण लोग प्राकृतिक चिकित्सा-प्रणाली को अपनाते झिझकते हैं।

जो रोगी हर तरह का पथ-प्रदर्शन प्रकृति से ही प्राप्त करता है उसे प्रकृति बिना किसी प्रकार की कठोरता दिखाए, बड़ी कोमलता से, बिना कष्टकर अभावों में डाले, बड़े आराम, मौज, शीघ्रता और निश्चयात्मक भाव से स्वास्थ्य, शक्ति और जीवन के तेजवान कुसुमों भरे हरे भरे प्रकाशपूर्ण बाग का अधिकारी बनाती है। सब से बड़ी बात तो यह है कि सख्त से सख्त प्राणलेवा रोग, जिन्हें देख कर प्राकृतिक चिकित्सक अपने को असहाय पाता है, प्रकृति के हाथों पड़ कर अपनी भयंकरता खो देते हैं और नष्ट हो जाते हैं।

सची प्राकृतिक चिकित्सा-पद्धति की रोग-भंजक शक्ति मस्तिष्क और आत्मा तक पहुँचती है। दिमाग के काले परदे फट जाते हैं और आत्मा स्वास्थ्यदायक शक्ति-जल में अवगाहन करती है। मनुष्य पाप, दोष, घृणा, ईर्ष्या एवं अशुभ चिंतन से मुक्ति पा जाता है और पीड़ित मनुष्य के हृदय में फिर शांति, आनंद, एवं प्रसन्नता को स्थान मिलता है।

अंत में वसंत अपनी उषा सुन्दरी लिए अवतरित होता है और स्वर्गीय आनंद छा जाता है।

मैं अपनी चिकित्सा करते वक्त, एक बार प्राकृतिक चिकित्सा-प्रणाली की गलतियों, उलझनों, एवं इसके द्वारा मनुष्य और प्रकृति के बीच खड़े किए गए झगड़े को देख कर इससे भाग खड़ा हुआ था। जिस प्राकृतिक चिकित्सा-पद्धति का मैं वर्णन करने जा रहा हूँ, अंत में जाकर उसी में मुझे शांति और आनंद मिला।

जब इस शताब्दी में लोगों ने नैसर्गिक वृत्ति द्वारा प्रेरित होकर एक बार फिर प्रकृति की राह पकड़ी तो उन्हें ज्ञात हुआ कि सभी रोग शरीर एवं रक्त के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूषित होने—उनमें रोगों के कीटाणु एवं विजातीय द्रव्य के प्रवेश पाने—से होते हैं। इस सत्य की जानकारी के बाद औषधोपचार की सीख के अनुसार रोगियों के शरीर में विष एवं कोई भी असजातीय वस्तु, दवा आदि डाल कर रोग का भूत भगाने की कोशिश बंद कर दी गई। फिर लोगों ने रोगी शरीर में से विजातीय द्रव्य निकालने की कोशिश प्राकृतोपचार के केवल एक साधन—जल—द्वारा की।

इस दिशा में विंसेंट प्रिसनीज नामक एक किसान सज्जन अग्रणी थे। इस लिए उन्हें आधुनिक प्राकृतिक चिकित्सा-प्रणाली को सही नींव पर खड़ा करने वाला पहला आदमी जानना चाहिए।

आरम्भ में जल चिकित्सा-प्रणाली ही प्राकृतिक चिकित्सा-प्रणाली थी। पहिले पहल केवल जल चिकित्सालय स्थापित हुए।

इस लिए मेरी पहली कोशिश यही हुई कि मैं स्वयं पहले प्रकृति से जल के सही प्रयोग सीखूँ।

इस कोशिश में मैंने महसूस किया कि मेरी अंतर्ध्वनि, जिसे नैसर्गिक वृत्ति कहनी चाहिए, जल के किसी खास प्रयोग के लिए प्रेरित नहीं कर रही है।

पर मुझे कुछ वन वासियों से ज्ञात हुआ कि प्रकृति के प्रांगण में विचरने वाले पशु, जो अपने सारे कार्य नैसर्गिक वृत्त्यानुसार करते हैं, स्नान के विषय में कुछ खास नियम बर्तते हैं।

मैंने उनकी आदतों का अध्ययन करना आरम्भ किया और इन तथ्यों पर पहुँचा :

नदी में कूद कर सारे बदन को धोकर नहाना प्रकृति के अनुकूल नहीं है। नदी अथवा टब में नहाते वक्त सारे बदन को भिगोना प्रकृति के विरुद्ध है।

धरती पर विचरने वाले पशु नहाते वक्त सारे बदन को भिगोना नापसंद ही नही करते वरन् ऐसा करते घबराते भी हैं। अगर कोई किसी पशु (खास तौर से बंदर) को पानी में उछाल दें तो देखेंगे कि वह बड़ी आतुरता से किनारे पर पहुँचने की कोशिश करता है। ऐसा प्रतीत होता है कि सभी पशु बड़ी अनिच्छा से और सो भी दबाव पड़ने पर ही स्नान करते हैं।

अप्राकृतिक जीवन व्यतीत करने के आदी घरेलू पशुओं में से इक्के-दुक्के पानी से प्रीति करने वाले मिल जायँ तो उन्हें नियम का अपवाद ही समझना चाहिए।

देखा यह जाता है कि पृथ्वी पर विचरण करने वाले उच्च प्रकार के पशु (स्तनपायी पशु), खास तौर से जंगली सुअर और हरिन, मुक्त प्रकृति के साथ (जंगल में) रहते समय आदतन छोटे पंकिल दलदलों या गढ़ों में लोटते हैं। पहिले धरती से केवल अपना पेट सटाते हैं, फिर उसे कीचड़ में इधर उधर से रगड़ते हैं।

इसके बाद पशु उठता है और साधारणतया अपना कूल्हा और गुदाद्वार कीचड़ में गड़ा कर पैठता है। इसके बाद वह कुछ क्षण तक कीचड़ में लोटता है, सारा बदन धरती के संपर्क में आ जाता है और फिर उठकर सारे शरीर को सूखी जमीन, पेड़ या अन्य किसी चीज पर रगड़ता है। शिकारी पशुओं की इस क्रिया को 'गदह लोट' कहा करते हैं।

अब देखिए पक्षी क्या करते है। वे सोते या नाले पर जाकर अपनी गरदन पानी में डुबोते हैं और इस प्रकार और गरदन और पीठ के बीच बनी गहरी जगह के द्वारा और पंखों को पानी में छपक कर अपने शरीर पर पानी छिड़कते हैं। फिर वे अपनी चोंच, गरदन और पंख-कुहनियों—यह नाम में दो पंखो के जोड़ को दे रहा हूँ, उसकी शकल मनुश्य की कुहनी-सी होती है—से अपने शरीर को रगड़ते या घिसते हैं।

कई बार यह निरर्थक प्रश्न किया गया है कि जब कि पक्षी केवल स्वच्छ जल में स्नान करते हैं, हमारे जंगल का राजा सुन्दर लाल हरिण, जो हमेशा अपने शरीर को साफ रखता है, अपनी मांद को भी गंदी होने से बचाता है, और भी हर तरह से साफ रहता है पंकिल जल क्यों में लेटता है।

इस संबंध में मेरा मत यह है कि स्तनपायी पशु कीचड़ में इस लिए नहाते हैं कि वे अपने पेट और जननेन्द्रियों को अच्छी तरह रगड़ और घिस कर सकें। बहते स्वच्छ जल के नीचे की कठोर भूमि पर ऐसा करना संभव नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पक्षियों की बनावट पशुओं से भिन्न होती है। वे अपने शरीर को अपने अनेक अंगों से रगड़ और घिस सकते हैं। अतः उन्हें इस कार्य के लिए कीचड़ की जरूरत नहीं होती।

कीचड़ की आश्यकता शरीर को रगड़ने के लिए ही होती है, इस बात को जंगल में रहने वाले सभी लोग युक्तिपूर्ण मानते हैं।

इन सबसे यह बात तो साबित हो जाती है कि उच्च प्रकार के पशु स्नान करते हैं।

अन्य पशु इसलिए स्नान नहीं करते क्योंकि प्रकृति ने उन्हें ऊँचे पहाड़ और पथरीली जगह में रहने को बनाया है, जहाँ जल सदा नहीं मिलता। हिंसक जानवर भी स्नान नहीं करते। ये क्यों स्नान नहीं करते यह (†) भी स्पष्ट है। स्नान से शांति मिलती है, यदि शिकार पर जीने वाला पशु शांत हो जाय तो उसका काम ही बिगड़ जाय। उनके लिए यह स्वभाव आवश्यक है कि वे खूंखार और गरम बने रहें, तभी वे अपना शिकार मार सकते हैं। उनकी खून की यह चाह (※) उनके मांसाहारी होने के कारण है।

शिकारी कुत्ता जब तक उसे निरामिष भोजन दिया जाता है शिकार पर हमला न कर केवल शिकार को हांकने का कार्य करता है, पर ज्योंही उसे गोश्त खिलाने लगते हैं वह शिकार को पकड़ने और मारने का काम करने लगता हैं।

एक अजायब घर के एक बन्दर का स्वभाव बड़ा स्नेही और शांत था। पर जब उसे गोश्त खिलाने लगे तो वह बद मिजाज हो गया और अपने रखवाले को भी, जिससे पहिले उसकी बड़ी दोस्ती थी, काट खाने को दौड़ता।

यदि शिकारी जानवर क्रूर और खूंखार न हो तो शिकार कर ही न सके।

फिर कोई कारण नहीं कि जीवों में जीव मनुष्य क्यों न स्नान करे। मान यही लेना चाहिए कि प्रकृति चाहती है कि मनुष्य स्नान करे ताकि उसकी शारीरिक और आध्यात्मिक शक्ति बनी रहे और उनका पूर्ण विकास हो सके।

मनुष्य की नैसर्गिक वृत्ति हमेशा से उसे स्नान के लिए प्रेरित करती रही है। यद्यपि उसके अन्दर की आवाज उसे साफ-साफ बता नहीं रही है कि वह किस तरह स्नान करे। फिर भी प्रत्येक को अपना पेड़ू, मलद्वार, जननेन्द्रिय को जल द्वारा ठंडा रखने की आवश्यकता प्रतीत होती ही है।

अतः पशु अपने शरीर की बनावट के अनुसार अलग-अलग रीति से स्नान करते हैं। स्तनपायी पशु और पक्षी भिन्न भिन्न रीति से स्नान करते हैं।

जिस किसी ने पशुओं को ध्यान पूर्वक स्नान करते हुए देखा होगा उसे इस बात की प्रतीति हुई होगी कि पशु कीचड़ (या पानी) में स्नान करते वक्त अपनी जननेन्द्रिय को ठंडा करने या रगड़ने का बहुत ध्यान रखते हैं। इससे यह भली भाँति समझा जा सकता है कि मनुष्य को, जब कि वह खास तौर से खुले में बिना किसी बाहरी वस्तु या किसी व्यक्ति की सहायता से स्नान करता है, किस प्रकार स्नान करना चाहिए।

†मांसाहार के कारण शिकारी जानवर के मुँह में खून किस प्रकार लग जाता है, यह आसानी से समझा जा सकता है।

※घरेलू कुत्ता जब कभी तेज गर्मी पड़ती है तो कभी कभी पानी की जगह में चला जाता है, इसे स्नान का नाम नहीं दिया जा सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भोजन और स्वास्थ्य

[डा० सीताराम सिंह, एन० डी० डी० वाई०]

[प्रस्तुत लेख का विषय तो कोई नया नहीं है, लेकिन लेखक ने आहार सम्बन्धी अपने व्यावहारिक ज्ञान एवं अनुभव के द्वारा भोजन के आवश्यक तत्वों का जिस सरल और सुबोध ढंग से वर्णन किया है उसमें मौलिकता अथवा नयापन की छाप अवश्य है। इस लेख पर एक सरसरी निगाह डालिये, इसकी विशेषता अपने आप प्रकट हो जायगी। वास्तव में यह आहार-विज्ञान सम्बन्धी एक बहुत बढ़िया 'गाइड' है, जिससे कोई भी पाठक बड़ी आसानी से भोजन के मुख्य सिद्धान्तों की साधारण जानकारी प्राप्त कर सकता है।—सं०]

मनुष्य की शारीरिक तथा मानसिक वृत्तियों का विकास बहुत कुछ उसके भोजन पर निर्भर है। जैसा भोजन होगा वैसा ही शारीरिक और बौद्धिक विकास भी होगा। देश की धनहीनता हमारी शारीरिक दुर्बलता तथा अनेक व्याधियों का प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष कारण हो सकती है, पर अधिकतर भोजन-विज्ञान की अनभिज्ञता ही हमारे आरोग्य पर अधिक आघात कर रही है जिससे हम स्वास्थ्य के आवश्यक साधनों की उपलब्धि होते हुए भी खाद्य-पदार्थों का उचित उपयोग न जानने के कारण प्रायः व्याधियों के आखेट बनते रहते हैं। यही हमारे अल्पायु होने का प्रधान कारण है।

आहार के सम्बन्ध में कुछ कहने के पहले हमें यह जान लेना चाहिए कि हमारे शरीर में कौन-कौन से तत्व वर्तमान हैं और भोजन के रूप में हमें किन-किन तत्वों की आवश्यकता होती है।

हमारे शरीर में प्रोटीन, चर्बी, शर्करा, लवण और जल—ये ५ तत्व मुख्य रूप से पाये जाते हैं। जब हम परिश्रम करते हैं तब यही वस्तुएँ जल कर हमें शक्ति प्रदान करती हैं। इस प्रकार यदि हमारे शरीर के तत्व बराबर जल कर खर्च होते जायँ और उनकी पूर्ति हम न करें तो हमारा शरीर बराबर क्षीण होता जायगा। और अन्त में हमारी मृत्यु हो जायगी। अतः यह बहुत आवश्यक है कि हम अपने शरीर से जितने तत्व प्रति दिन परिश्रम आदि के रूप में खर्च करें उन की पूर्ति भी हम प्रति दिन भोजन द्वारा कर दिया करें। भोजन का मुख्य प्रयोजन शरीर की क्षतिपूर्ति करना ही है। इस से यह बात भी साफ समझ में आ जाती है कि हमारे भोजन में क्यों वे तत्व आवश्यक होने चाहिएँ जिनका व्यय हम शरीर की पूंजी से प्रतिदिन करते रहते हैं।

प्रोटीन (पुत्तनक)

मनुष्य के शरीर में १८ प्रतिशत प्रोटीन (पुत्तनक) का भाग होता है। इसमें शरीर को बढ़ाने और पुष्ट करनेवाले तत्व निहित हैं। इसका प्रधान कार्य वसा, पुट्ठे और रेशे आदि बनाना है। भोजन में इनकी कमी होने पर शरीर दुर्बल हो जाता है।

चर्बी और शर्करा

ये गर्मी और स्फूर्ति पैदा करने वाली वस्तुएँ हैं। चर्बी का अंश मनुष्य के शरीर में लगभग १५ प्रति शत होता है। भोजन में शरीर की आवश्यकता से जब अधिक चर्बी होती है तब वह शरीर में इकट्ठी हो जाती है और आगे जब आवश्यकता पड़ती है तब वह जल कर शक्ति उत्पन्न करने काम में आती है। चर्बी और शर्करा शरीर में जल कर शरीर को कार्य करने की शक्ति प्रदान करती हैं। भोजन में इनकी कमी होने पर शरीर के अन्य पोषक तत्व शक्ति उत्पन्न करने के लिए जलते हैं और इसका फल यह होता है कि शरीर धीरे-धीरे दुबला होता जाता है। इसलिए इन दोनों तत्वों का उचित अनुपात हमारे भोजन में होना बहुत आवश्यक और उपयोगी भी है।

लवण

लवण से शरीर को कोई शक्ति नहीं मिलती। इनका कार्य हड्डियों को पुष्ट करना है। साथ ही भोजन के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्य तत्वों का समीकरण करने में भी इनकी सहायता की आवश्यकता होती है। शरीर में इनका अंश ५ या ६ प्रतिशत होता है। भोजन में इनका उचित अनुपात न पर होने हड्डियाँ कमजोर जाती है और भोजन का समुचित रूप से परिपाक नहीं हो पाता और तभी नाना प्रकार व्याधियाँ सताने लगती हैं। अतः शरीर को स्वस्थ बनाये रखने के लिए इनका भोजन में रहना परमावश्यक है।

जल

जल का अंश हमारे शरीर में लगभग ६५ प्रतिशत है। शरीर की सारी रासायनिक प्रक्रियाएं पानी की उपस्थिति में ही होती हैं। इस कारण इसका उचित अंश भोजन के साथ होना बहुत ही आवश्यक है। पानी से दूसरा लाभ हमारे शरीर को यह होता है कि यह हमारे शरीर के ताप-क्रम सम भाव में बनाये रखता है।

विटामिन (खाद्योज)

उपर्युक्त तत्वों के अतिरिक्त हमारे स्वास्थ्य के लिए विटामिनों की भी आवश्यकता होती है। ये कई तरह के होते हैं और प्रायः हर एक प्राकृतिक खाद्य में कुछ-न कुछ अवश्य पाए जाते हैं। फलों तथा हरी सब्जियों में इनकी मात्रा सबसे अधिक होती है। इसकी मात्रा हर एक खाद्य पदार्थ में इतनी कम होती है कि इसे वैज्ञानिक रीति से उस वस्तु से शुद्ध रूप में निकालना असंभव-सा है। फिर भी यह बड़े आश्चर्य की बात है कि इन विटामिनों की जरा सी मात्रा कर हीं हमारे स्वास्थ्य पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है।

जीवन की धारा प्रायः शरीर में रक्त की पर्याप्तता पर निर्भर करती है। रक्त खारा होता है और उसे इसी तरह रखना उचित है। यदि किसी कारण से उसके अम्लता (खटाई) बढ़ जाती है तो उसके फल स्वरूप कई प्रकार की व्याधियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। रक्त का खारापन और खट्टापन हमारे भोजन पर निर्भर करता है। इस दृष्टि से खाद्य वस्तुओं को दो भागों में विभाजित कर सकते हैं क्षारमय और (२) अम्ल (खटाई पैदा करने वाले) पदार्थ।

क्षारमय भोजन खनिज-प्रधान होते हैं, जो पत्तीदार भाजियों और सब तरह के फलों में पाये जाते हैं। श्वेतसार प्रधान भोजन से रक्त में जो खटाई की मात्रा बहुत अधिक बढ़ जाती है उसका दोष क्षारमय भोजन से मिट जाता है। क्षारमय भोजन छीजे हुए तन्तुओं की मरम्मत करते और बीज कोषों को नया जीवन प्रदान करते हैं। वे शरीर में नया रक्त और स्फूर्ति पैदा करते है। सभी पके फल अपने मूल रूप में क्षारमय होते हैं। स्वास्थ्य के लिए हमें ८० प्रतिशत खारापन पैदा करने वाले और केवल २० प्रतिशत खटाई पैदा करने वाले पदार्थ भोजन करना चाहिए। शरीर को गर्म रखने के लिए २० प्रतिशत अम्ल भोजन पर्याप्त है। इसकी पूर्ति हम ताजी छीमी, केला या शकरकन्द खाकर कर सकते हैं। रक्त में खटाई की मात्रा अधिक होने का कारण भोजन ही है। यह अम्लता शरीर प्रणाली के लिए विषतुल्य ही है।

आरोग्य के लिए प्रत्येक मनुष्य को अपने भोजन में ऊपर लिखे तत्वों का मेल रखना चाहिये। यह अवश्य हैं कि इनका अनुपात प्रत्येक मनुष्य के लिए एक-सा नहीं हो सकता। मनुष्य की प्रकृति तथा उसके परिश्रम के अनुसार ही उसका भोजन निश्चित किया जा सकता है। जो लोग मानसिक श्रम करते हैं उनका भोजन शारीरिक श्रम करने वालो की तरह नहीं हो सकता। मानसिक श्रम करने वालों को प्रोटीन की अधिक आवश्यकता पड़ती है और शारीरिक श्रम करने वालों को शर्करा की। अनुभव से यह देखा जाता है कि साधारण रीति से एक मध्यम स्वास्थ्य वाले मनुष्य के लिए भोजन में २० प्रतिशत प्रोटीन, २० प्रतिशत चर्बी तथा ६० प्रतिशत शर्करा होना पर्याप्त है। इनके अतिरिक्त नमक और जल आवश्यकतानुसार होना चाहिए।

—:०:—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धारावाहिक लेख —

तत्त्व-चिकित्सा का पुनरुत्थान

श्री गंगाप्रसाद गौड़, 'नाहर'

फ़ादर सेबस्टियन नीप (Father Sebastian Kneipp)

जोहन स्क्रॉथ का समकालीन इस प्रकृति उपासक पादरी नें भी, असीम उत्साह और जबरदस्त लगन के के साथ प्राकृतिक-चिकित्सा-विधि का प्रचार किया और जल-चिकित्सा सम्बन्धी अनेक बहुमूल्य आविष्कार किए। जल-चिकित्सा के साथ-साभ वह जड़ी-बूटी द्वारा चिकित्सा का भी प्रवर्तक था। वह बवेरिया का रहने वाला था। नीप केवल एक महान चिकित्सक ही नहीं बल्कि एक शिक्षक तथा लोकसेवी भी था। चिकित्सक की हैसियत से उसने प्रायः हर तरह के रोग दूर करने में सफलता पायी थी। रोगी की बीमारी तथा उसकी शारीरिक प्रकृति के अनुसार विभिन्न प्रकार के तापमान के जल का प्रयोग चिकित्सा में करना यही उसकी मुख्य चिकित्सा-प्रणाली थी। उसका एक निजी स्वास्थ्य गृह था, जिसका संचालन उसने ४५ साल से अधिक समय तक बड़ी तत्परता एवं सफलता के साथ किया। आज भी जर्मनी में इसके नाम पर एक नहीं अनेक संस्थाएँ कायम हैं, जिनमें इसकी चिकित्सा-प्रणाली प्र .लित है। इन संस्थाओं के ५०००० से अधिक सदस्य हैं। जर्मनी के डुसेलडोर्फ नगर में एक 'नीप-स्टोर्स' भी है, जहाँ पर जड़ी-बूटियों, तेल, साबुन, तथा स्नान-सम्बन्धी सभी आवश्यक वस्तुएँ, तथा हर प्रकार के स्वास्थ्यप्रद प्राकृतिक भोजन का प्रदर्शन किया जाता है। नीप ने जल-चिकित्सा पर एक अति उत्तम पुस्तक लिखी है जो आज भी व्यापक रूप से पढ़ी जाती है। इसका देहान्त सन् १८९७ ई० में ७५ साल की अवस्था में हुआ।

आर्नल्ड रिक्ली (Arnold Rickli)

यह पहले एक व्यापारी था, बाद में प्राकृतिक-चिकित्सा के गुणों पर मुग्ध हो कर इसने अपना सारा जीवन ही इसके प्रचार में लगा दिया। इसने अपने देश आस्ट्रिया में क्रेन प्रान्त के अन्तर्गत टेल्डास नामक स्थान पर सन् १८४८ ई० में धूप और वायु का एक सेनिटोरियम स्थापित किया जो अपने ढंग का सर्व प्रथम प्रकृतिक-चिकित्सा-भवन था, और जिसकी नकल बाद में प्रायः सभी प्राकृतिक चिकित्सकों ने की। इसी डाक्टर ने पहले-पहल वायु और आतप द्वारा और सात्विक भोजन खिलाकर सारे रोगों को अच्छा करने की प्रणाली निकाली और तत्सम्बन्धी सिद्धान्तों का प्रचार किया। डा० रिक्ली की इस चिकित्सा को वायु-चिकित्सा Atmospheric cure कहते हैं। इसका प्रयोग वह मुख्यतः कब्ज के रोगियों के इलाज के लिए करता था, रिक्ली न केवल समूचे शरीर पर वायु, प्रकाश, तथा सूर्य के आरोग्यकारी प्रभाव का समर्थक तथा उपयोगकर्त्ता था, बल्कि वह निरामिष भोजन पर अत्यधिक जोर देता था। वह स्वयं भी कट्टर निरामिष भोजी था। प्राकृतिक-चिकित्सा के ठोस एवं कठोर नियमों को, जिनका वह प्रचार करता था, स्वयं बर्तता था। उसने ९७ वर्ष की लम्बी आयु का उपभोग किया और मरने के समय तक वह स्वस्थ और स्फूर्तिवान बना रहा।

डा० मेलजर (Meltzer) **डा० थियोडोर हैन** (Theodor Hann) तथा **डा० रसे** (Rause)

ये तीनों डाक्टर प्रसिद्ध प्राकृतिक चिकित्सक लूईकूने के पहले हुए थे। इन्हीं के आश्रमों में कूने ने अपने रोग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की चिकित्सा करवाई थी, और इसके फल-स्वरूप वह प्राकृतिक-चिकित्सा के गुणों पर मुग्ध हुए थे।

लूई कूने (Louis Kuhne)

तत्व-चिकित्सा-प्रणाली, विशेषकर जल-चिकित्सा का, पुनर्विकास करने तथा उसको वर्तमान उन्नति के शिखर पर पहुँचाने का श्रेय प्रिसनिज, नीप और कूने—तीनों को है। किन्तु वस्तुतः इन तीनों में कूने, प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति के सब से बड़े आचार्य माने जाते हैं, यहाँ तक कि प्राकृतिक-चिकित्सा-पद्धति का दूसरा नाम कूने के नाम पर ही कूने-चिकित्सा प्रणाली (Louis Kuhne System of healing) पड़ गया है। कूने साहब की जर्मन भाषा में लिखी कई पुस्तकों में 'न्यू साइन्स आफ़ हीलिंग' और 'साइन्स आफ फेसियल एक्सप्रेसन' संसार प्रसिद्ध हैं, जिनकी आजतक लगभग ६०-७० आवृत्तियाँ हो चुकी हैं। इन पुस्तकों का अनुवाद संसार की प्रायः सभी प्रसिद्ध-प्रसिद्ध भाषाओं में हो गया है, और उनके भी अबतक कितने ही संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। फ्रेञ्च, स्पैनिश, इंगलिश पोर्चुगीज डच, इटालिन, स्वीडिस, डैनिश, नार्वेजियन, रोमानियन हन्गारियन, सर्वियन, ग्रीक, आरमीनियन, मलायान, तैलगू तामिल, उर्दू, हिन्दी तथा बंगला में आज इन पुस्तकों के अनुवाद विद्यमान हैं, और दिनों दिन अन्यान्य भाषाओं में भी इनका अनुवाद होता ही जा रहा है। कूने का जन्म जर्मनी के अन्तर्गत लिपजिग (Leipzig) नगर में एक जुलाहे के घर हुआ था। इनके माता-पिता की मृत्यु औषधि-चिकित्सकों के हाथों हुई थी। अभी यह २० वर्ष के युवक ही थे कि स्वयं भी रोगी होकर मौत की घड़ियाँ गिनने लगे। इन्हें मस्तिष्क और फुफ्फुस के असाध्य रोग लग गये थे और पेट के भीतर भयानक फोड़ा हो गया था जो किसी तरह अच्छा न होता था। अंत में प्राचीन पंथी डाक्टरों के इलाज से ऊबकर सन् १८६४ ई० के लगभग इन्होंने प्राकृतिक चिकित्सा की शरण ली, जिससे बहुत शीघ्र इनका स्वास्थ्य सुधरने लगा और परिणामतः यह प्राकृतिक-चिकित्सा के पूर्ण रूप से भक्त बन गये। बाद में इन्होंने सालों तक प्राकृतिक-चिकित्सा प्रणाली का अध्ययन करके अंत में १० अक्टूबर सन् १८८३ ई० को लिपजिग स्थित फ्लास प्लैंटज (१५-२४) स्थान पर अपना का एक स्वास्थ्य-गृह खोला। जससे कूने की ख्याति, एक कुशल जल-चिकित्सक के रूप में दिग-दिगन्त तक फैलने लगी। कूने के प्राकृतिक-चिकित्सा-सिद्धान्तों में 'unity of all diseases' अर्थात् सब रोगों की जड़ एक ही, शरीर में विजातीय द्रव्य का एकत्र होना, है—मुख्य है। इनके उपचार के तरीकों में विविध प्रकार के स्नान, जैसे सूर्य-स्नान (Sun bath) वाष्प-स्नान (Steam-Bath) जल-स्नान (water Bath) उदर स्नान (hip Bath) आदि सम्मिलित थे। इनके विचार से केवल आन्तरिक सफाई से ही रोग दूर किये जा सकते हैं। यह अपने रोगियों को निरामिष आहार और मुख्यतः केवल रोटी पर रखते थे रोगी के रोग का पता लगाने के लिये यह विशेष कर रोगी के चेहरे और गर्दन का निरीक्षण करते। रोग-निदान की इस विधि का प्रतिपादन कुने ने अपनी पुस्तक 'आकृति निदान' (The science of Facial Expression) में बड़ी खूबी के साथ किया है। कूने ने 'बच्चों की रक्षा' आदि कई और किताबें भी लिखी हैं।

[सर्वाधिकार लेखक के आधीन]

(क्रमशः)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने विचार

'नये युग' का आरम्भ !

प्रायः ६ साल की विश्व-व्यापी संहार-लीला के उपरान्त अब संसार के इस विध्वंस-यज्ञ की सुदूर पूर्व में 'पूर्णाहुति' हो गई है। विजेता और विजित दोनों ही अब सुख-शान्तिपूर्ण नए विश्व सृजन की ओर अग्रसर हो उठे हैं। इस समय संसार में वही शान्ति व्याप्त हो रही है जो किसी प्रलयंकरी आंधी के समाप्त हो जाने पर चारों तरफ फैली हुई दिखायी देती है। लोकतंत्रवाद के 'रक्षक' मित्र राष्ट्रों ने इसे 'नए युग का आरम्भ' घोषित किया है ! यह 'नया युग' संसार के सामने किस रूप में प्रकट होता है, यह अभी देखना है। पर भविष्य की चाहे जो भी रूप रेखा हो, वह संसार को चाहे जिस दिशा की ओर अग्रसर करने वाली हो, आज तो इस सार्वभौमिक युद्ध से आक्लान्त विश्व इसकी समाप्ति पर सन्तोष की ही सांस ले रहा है !

प्रत्यक्ष रूप से हम भारतवासियों का सम्बन्ध इस द्वितीय महासमर के कारणों से उतना अधिक नहीं रहा है जितना कि इसकी भीषण प्रतिक्रियाओं से। छः साल की इस लम्बी अवधि में हमें अकथनीय कष्ट-सहन, त्याग और बलिदान करने पड़े हैं। अन्नाभाव, वस्त्राभाव, नागरिकोपयोगी वस्तुओं की कमी तथा जीवन-यापन और रहन-सहन की प्रत्येक दिशा में हमें अकल्पनीय अभाव का ही सामना करते रहना पड़ा है। लेकिन अब यह युद्ध समाप्त हो गया। अब 'नए युग' का समारम्भ हुआ है। हमारा उत्पीड़ित, अभाव-ग्रस्त और आक्लान्त हृदय इस नए युग का सहर्ष स्वागत करता है !

× × ×

यहाँ पर हम स्वभावतः इन ६ वर्षों का, जहाँ तक हमारा घरेलू सम्बन्ध रहा है, सिंहावलोकन करना चाहते हैं। 'जीवन सखा' का प्रकाशन १९३५ में आरम्भ हुआ था। इसकी अवतारणा केवल प्राकृतिक चिकित्सा-प्रणाली में अमिट विश्वास एवं आस्था रखने वाले कतिपय उत्साही व्यक्तियों की ही प्रेरणा से हुई थी। हृदय में लोक सेवा का भाव और मस्तिष्क में एक उच्चादर्श की कल्पना—बस यही हमारी 'पूंजी' थी। हम इसी 'पूंजी' के बल पर शारीरिक और मानसिक रोग-व्याधि पीड़ित जनता को कल्याणमयी माता प्रकृति का नैसर्गिक सन्देश सुनाने के लिए अपने मार्ग पर अग्रसर हुए थे। लेकिन हमारा मार्ग दुर्गम और कंटकाकीर्ण था। पग-पग पर हमें शत-शत विघ्न-बाधाओं से लड़ना पड़ा !

× × ×

युद्ध आरम्भ होने के पहले तक यद्यपि 'जीवन सखा' को स्वास्थ्यानुरागी जनता के बीच काफी लोकप्रियता मिल चुकी थी, फिर भी स्पष्ट था कि यह पत्र आत्म-निर्भर नहीं बन सका था। किन्तु हमारा उत्साह और साहस अक्षुण्ण था। हमने यह संकल्प कर लिया था कि चाहे जैसे भी हो 'जीवन सखा' नियमित रूप से प्रकाशित होकर जनता की सेवा करता ही रहेगा—हम विघ्न-बाधाओं से घबड़ा कर अपने पथ से विचलित न होंगे। इसी उत्साह के बल पर लड़ाई के प्रारम्भिक वर्षों में दो विशेषांक—'व्यायाम अंक' और 'भोजनांक' भी प्रकाशित हुए थे। स्वास्थ्य-प्रेमी पाठकों के बीच इन दोनों को अभूतपूर्व लोकप्रियता मिली। इसका एक सहज प्रमाण यही है कि 'भोजनांक' की तो हमारे कार्यालय में एक भी प्रति अवशेष नहीं रह गई और 'व्यायाम अंक' के लिए आज भी मांग होती रहती है।

इस अप्रत्याशित लोकप्रियता एवं सफलता का रहस्य 'जीवन सखा' के अनुरागी पाठकों के सुदृढ़ सहयोग एवं अपनापन के भाव में निहित था। लेकिन आगे चल कर युद्ध-कालीन नियंत्रण और भी सख्त बना दिए गए। एक ओर कागज पर नियंत्रण, पत्र-पत्रिकाओं के आकार-प्रकार पर नियंत्रण उग्र रूप धारण कर रहा था और दूसरी ओर थी असाधारण महँगाई !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन कारणों से 'जीवन सखा' अत्यधिक 'क्षीणकाय' बन गया, इसके प्रकाशन में भी असाधारण रूप से विलम्ब तथा अनियमितता होने लगी। इससे 'जीवन सखा' के प्रेमी पाठकों की भी इसके प्रति यदि श्रद्धा-भक्ति डांवाडोल हो उठी तो वह सर्वथा स्वाभाविक ही थी। हमें पाठकों की ओर से इस सम्बन्ध में बहुत शिकायतें सुनने को मिलतीं रहीं और हम उन शिकायत को दूर करने का यथा-शक्ति प्रयत्न भी करते रहे, लेकिन बीच-बीच में लगातार ऐसे कारण उपस्थित होते रहे जिनके सामने हमें शीश झुकना ही पड़ा।

× × ×

अब इस युग्मांक के साथ साथ हम अपनी इन आपदाओं की भी 'पूर्णाहुति' हुई समझते हैं। 'जीवनसखा' के प्रकाशन में अनियमितता की जो एक गहरी खाई उत्पन्न हो गई थी, उसी की पूर्ति के उद्देश्य से यह युग्मांक निकाला गया है। अब सितम्बर का अंक भी इस महीने के अन्त तक निकाल कर अगले मास से हम इसे आगे बराबर नियमित रूप से निकालने में समर्थ हो सकेंगे, यह हमारा दृढ़ विश्वास है।

× × +

अस्तु, 'जीवन सखा' के इतिहास में भी अब 'नए युग' के सूर्योदय की लालिमा क्षितिज को रंजित करती हुई दिखाई दे रही है। हमारे हृदय में एक नए उत्साह का अरुणोदय हो रहा है। और इस 'नए युग' की कल्पना करते हुए हम अपने इस पुनीत संकल्प को दुहराते हैं कि हम जिस पथ पर आरूढ़ हुए हैं उस पर और भी दृढ़ता तथा विश्वास के साथ अग्रसर होंगे। अंधकार का युग अब समाप्त हो गया है। अब सचमुच हमारे लिए यह एक नए युग का समारम्भ है, जिसका हम हार्दिक स्वागत करते हैं!

—:o:—

प्रिय–अप्रिय

इस अंक में अभी पाठकों ने 'सूर्य की ये सतरंगी किरणें!' शीर्षक लेख में एक स्थल पर पढ़ा होगा, "पीले फूल का रहस्य इसी में निहित है कि श्वेत किरणों से उसने केवल पीले रंग की प्रकाश-लहरियों को ही प्रिय समझ कर ग्रहण किया और अन्य छः रंगों को अप्रिय समझ कर उनका तिरस्कार!" वस्तुतः पीला रंग उसे प्रिय नहीं अप्रिय ही है। प्रिय तो उसे प्रकाश-लहरियों के वे छः रंग हैं जिनको उसने अपने में विलीन कर लिया, और पीले रङ्ग को अप्रिय समझ कर उसका तिरस्कार! किन्तु किंचित् असावधानी के कारण इस लेख में पीले फूल के साथ 'अन्याय' हो गया है। वास्तव में होना चाहिए था, "पीले फूल का रहस्य इसी में निहित है कि उसने प्रकाश-लहरियों के ६ रङ्गों को ही प्रिय समझ कर ग्रहण किया और पीले रंग को अप्रिय समझ कर उसका तिरस्कार।" प्रकृति ने उस त्याज-वर्ण को उसका 'प्रिय-परिधान' बनाया, इसके सम्बन्ध में तो हमें कुछ नहीं कहना है। पर हाँ, इस लेख में जो 'प्रिय' का 'अप्रिय' और 'अप्रिय' का 'प्रिय' छप गया है, इस का हमें हार्दिक खेद अवश्य है। इसके लिए हम पाठकों से तथा इस लेख के विद्वान लेखक से क्षमा-प्रार्थना करते हैं; और यदि वह सुन सके तो उस पीले रंग के फूल से भी!

—सम्पादक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रश्नोत्तर

[इस स्तम्भ में जिज्ञासु पाठकों के प्रश्नों के उत्तर दिए जाते हैं। पाठकों को चाहिए कि वे एक बार दो से अधिक प्रश्न पूछने का कष्ट न करें और जहाँ तक हो सके अपने प्रश्न संक्षेप में ही लिखें। यह ध्यान रहे कि इस स्तम्भ का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य यह है कि किसी एक व्यक्ति की जिज्ञासा का लाभ दूसरे पाठक भी उठावें।

प्रश्नों के भेजने के सम्बन्ध में आवश्यक नियम यह है कि प्रश्नों को प्रश्नोत्तर कूपन के साथ भेजा जाय। प्रश्नोत्तर कूपन कवर के तीसरे पेज के नीचे दिया गया है। —सं०]

प्रश्न—मेरी अवस्था अभी केवल १७ साल की है। किन्तु मेरे बाल अभी से सफेद होने लगे है। कुछ लोगों का कहना है कि यह नजला है। मुझे बड़ी चिन्ता हो रही है, कि क्या करूँ ? मैं प्राकृतिक उपचार में आस्था और विश्वास रखता हूँ। अतः आप से प्रार्थना है कि कोई ऐसी उपचार-विधि बता कर उपकृत करें जिससे कि असमय में बालों का सफेद होना रुक जाय।

—उमेन्द्र प्रकाश, मुरादाबाद

उत्तर—बालों के असमय में सफेद पड़ने के कई कारण होते हैं। किसी अंग अथवा अवयव को जब आवश्यक आहार तथा व्यायाम नहीं मिलता तो वह क्रमशः सौन्दर्य-विहीन और क्षीण होने लगता है। इसके अतिरिक्त असमय में और अनुचित रूप से वीर्य का नाश भी बाल के सफेद होने में विशेष योग देता है। इसके अतिरिक्त बाजारों में धड़ल्ले से बिकने वाले तरह-तरह के सुगंधित तैल, वैसलीन, लोशन, सैम्पू, साबुन आदि भी, जिसका आधुनिक शिक्षित समाज में विशेष प्रचार हो गया है, बालों को कम नुकसान नहीं पहुँचाते। अतः आप को बाल सफेद होने के इन ४ प्रधान कारणों को विशेष रूप से ध्यान में रखना होगा। आप का आहार इस प्रकार का होना चाहिए जिससे बालों को आवश्यक पोषण तत्व प्राप्त हो सके—अर्थात् आपके भोजन में कैलशियम, आयोडीन, मैगनीशियम सिलिकन, गन्धक, लौह, खनिज लवण प्रचुर मात्रा में विद्यमान हों। ये खनिज लवण निम्न खाद्य पदार्थों में विशेष रूप से पाये जाते हैं—ताजा दूध, (बिना उबाला हुआ), काला तिल, बादाम, नारंगी, सेब, अन्ननास, अण्डे की जरदी, प्याज, नाशपाती, पालक, अंजीर, पातगोभी, मूली, गाजर, शलजम, ककड़ी, हरे चने, हरी मटर, सम्पूर्ण जौ-गेहूं और लाल चावल।

सब से अच्छा नियम तो यह है कि हरी पत्ती वाली सब्जियों तथा सभी मौसमी फलों का भर सक काफी मात्रा में सेवन किया जाय। उससे खनिज लवणों की पूर्ति अपने आप हो जाती है। इसकी व्यायाम-चिकित्सा के लिए आपको शीर्षासन, सर्वांगासन, अथवा विपरीत-करणी, इनमें से किसी भी एक को नियमित रूप से कम से कम ६ महीने तक करना चाहिए। विपरीत करणी के सम्बन्ध में तो यह दावे के साथ कहा जाता है कि यदि ६ महीने तक लगातार और प्रति दिन नियमित रूप से इसे किया जाय तो सफेद बाल फिर से बिलकुल काले और चमकीले बन जायँगे। साथ में थोड़ा प्राणायाम भी करना भी विशेष लाभदायक होगा। इसके अतिरिक्त सिर में तेल लगाते समय बालों में अंगुली डाल कर इसे आहिस्ते-आहिस्ते ऊपर उठाना या खींचना चाहिए। सिर की त्वचा पर उँगलियों के पोरों से मालिश करना या रगड़ना चाहिए। बाल सँवारते समय कंघे से बालो को सामने या नीचे की तरफ न खींच कर ऊपर की तरफ ले जाने की कोशिश करें। इन कसरतों से बालों की जड़ों में रक्त-संचालन यथोचित रीति से होगा, जिससे बाल अपने असली रंग पर फिर आने लगेंगे। तीसरे कारण के सम्बन्ध में मैं केवल यही निवेदन करूँगा कि आप बालों की शिकायत दूर करने के लिये 'इन्द्रिय निग्रह' का कठोरता पूर्वक पालन और सात्विक जीवन व्यतीत करने की अभिरुचि को विशेष रूप से जाग्रत करें। बाजारों में आमतौर से बिकने वाले पेटेन्ट तथा सुगंधित तेलों का प्रयोग बिलकुल बन्द कर देना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहिए। बालों की सफाई के लिए आप साबुन के बजाय कागजी नीबू का रस, दही, आंवला, नमक का पानी या बेसन का इस्तेमाल करें। जहाँ तक तेल का सम्बन्ध है आप नारियल का शुद्ध तेल या साधारण तिल के तेल का व्यवहार करें। आशा है, यदि आपने ऊपर बताई गई विधियों का आपने पालन किया तो आपको अवश्य लाभ होगा।

प्रश्न—मेरी उम्र लगभल १८ साल की है। मैं बहुत ही अस्वस्थ हूँ। मुझे सब से अधिक शिकायत कब्ज की है, पेट कभी साफ नहीं रहता। इसके अलावा इधर डेढ़-दो साल से मैं स्वप्न-दोष से भी पीड़ित हो रहा था। महीने में ५-६ बार स्वप्न दोष हो जाया करता था। लेकिन पिछले दो महीने से यह शिकायत बहुत कम हो गई है और अब केवल एक या दो बार ऐसा होता है। तीसरी शिकायत है मुझे धातु-क्षीणता की। इसकी शुरूआत बचपन से ही हुई जिससे अबभी मुझे बिल कुल छुटकारा नहीं मिला है। यदि आप इसके सम्बन्ध में मुझे कोई उचित सलाह दें तो मुझ पर आप की यह विशेष कृपा होगी।

—जितेन्द्र मोहन, गया।

उत्तर—यह तो आप के प्रश्न से ही स्पष्ट है कि आप की इन सारी शिकायतों की जड़ कब्ज ही है। इस लिए यदि आप अपने रहन-सहन में सुधार करें और उसे प्राकृतिक जीवन के अनुरूप बना लें, खान-पान और व्यायाय पर विशेष रूप से ध्यान दें तो आप बहुत जल्द स्वास्थ्य लाभ कर सकते हैं। अभी आप युवावस्था में प्रवेश कर रहे हैं इस लिए इन बातों पर ध्यान देना आप के लिए और भी जरूरी है। आप को अपने अपने भोजन में मौसमी फल तथा पत्तीदार भाजियों को विशेष स्थान देना चाहिए। संध्या समय अपनी रुचि के अनुसार किसी एक मौसमी फल का व्यवहार करें। रात में यदि भोजन करें तो वह सोने से दो घंटे पहले ही समाप्त हो जाना चाहिए। सोते समय दूध का सेवन न करें, बल्कि इसके बजाय गुने गुने पानी में नीबू का रस निचोड़ कर पी लिया करें। सवेरे उठने के एक घंटा पहले पेट के बल बिस्तरे पर लेट जाया करें। कब्ज की शिकायत में मैदे या बेसन की बनी चीजें, दाल, आलू, कटहल और केला का एक दम बहिष्कार कर देना चाहिए। यह नियम उस समय तक जारी रखना चाहिए जब तक कि कब्ज की शिकायत से एक दम छुटकारा न मिल जाय। रात को सोते समय पेड़ू पर—नाभि के नीचे के भाग में—आधा इंच मोटी मिट्टी की पट्टी रक्खें। कुछ समय तक एक दिन का अन्तर देकर गुन गुने पानी में नीबू का रस निचोड़ कर एनीमा भी लेना चाहिए। जिस आटे की रोटी आप के लिए बनती हो उसमें से चोकर बिलकुल न निकाला जाय, इसकी ताकीद कर दें। बेहतर तो यह होगा कि उसमें कुछ और भी चोकर मिला दिया जाय। पर एनीमा शौच से लौट आने के बाद ही लें। एनीमा से जो पानी पेट में चढ़ाया जाय उसे कम से कम १० मिनट तक रोकने का प्रयत्न करें। भोजन के समय पानी मत पियें। पानी हमेशा भोजन करने के आधा या एक घंटा पहले या भोजन करने के एक या दो घंटे बाद पीना अधिक लाभदायक है। इसके अलावा शाक-तरकारियों अथवा फलों के छिलके उतार कर आप सेवन न करें। आहार में चोकर या फुजला अधिक रहने से बड़ी आंतो को अपना काम करने में विशेष सहायता मिलती है। मल की सफाई के लिए वह झाड़ू का काम करता है। व्यायाम के लिए या तो आप सर्वांगासन या पश्चिमोत्तान आसन करें या उड्डियान अथवा नौलि क्रिया। यदि आसन करने में कोई कठिनाई या असुविधा हो तो कम से कम आप प्रातः काल, शौच जाने से पूर्व, ४-५ मील तक टहल तो अवश्य ही लिया करें। यदि आप भिगोया हुआ चना (अंकुरित) या चने की रोटी खायें तो स्वप्न-दोष की बीमारी में आपको विशेष लाभ होता दिखाई देगा। मेहन-स्नान (सिट्ज बाथ) का भी आप प्रयोग कर सकते हैं।

प्रश्न—अण्ड वृद्धि का क्या कारण है। इसके कुछ उपाय बताने की कृपा करें।

—देवेन्द्र प्रसाद सिंह, बँभई, गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तर—अण्ड-वृद्धि के अनेक तात्कालिक कारण हो सकते हैं। जैसे, हाइड्रोसील—जिसमें अण्ड कोष में बहुत पानी भर उठता है—अथवा साजर या फाइलेरिया (Filaria) का दौरा होने, या हार्निया के कारण जिसमें आँतें नीचे खिसक आती हैं। किन्तु अण्ड कोष-वृद्धि का प्रधान कारण इनमें विजातीय द्रव्य का संचय ही होता है। यथार्थ में जब शरीर का कोई अंग अथवा अवयव फूल जाता या बढ़ जाता है तो वह उस अंग के बढ़ाव या फुलाव का मूल कारण होता है। अण्डकोष-वृद्धि से बचने के लिए यह निहायत जरूरी है कि पेट हमेशा साफ रहे; मलावरोध या कज की शिकायत बिलकुल न होने पावे। कब्ज से बचने के लिए, भोजन-सुधार और व्यायाम के अलावा एनीमा का भी नियमित रूप से प्रयोग होना चाहिए। कब्ज पैदा करने वाली वस्तुओं का सेवन बिलकुल न होना चाहिए। लंगोट बांधना भी लाभदायक होता है। व्यायाम के रूप में सर्वाङ्गासन और पश्चिमोत्तान आसन विशेष उपयोगी होते हैं। जिनके अण्ड कोष बिना किसी खास पेचीदगी के बढ़ गए हों, वे यदि सुबह शाम ५ मिनट से शुरू करके आध घंटे तक नियमित रूप से गरुड़ासन करें तो ५-६ महीने में उनकी यह शिकायत दूर हो जाने की आशा की जा सकती हैं।

—कामता प्रसाद अग्रवाल

लेखकों से नम्र नवेदन

'जीवनसखा' के लिये जो लेख भेजें वे सरल, सुबोध शैली और साफ अक्षरों में होने चाहियें। जहाँ तक हो सके अपने विचारों को स्पष्ट किन्तु संक्षेप में प्रकट करें। लेख को अनावश्यक रूप से लम्बा बनाने की प्रवृत्ति की सर्वथा उपेक्षा की जानी चाहिये। लेख की पंक्तियाँ घनी न होनी चाहियें। इससे सम्पादन करने में बड़ी असुविधा होती है। लेख के आदि अथवा अंत में लेखका नाम अवश्य लिखा होना चाहिये, पर साथ ही उसपर अपना पता भी लिख दें तो वह हमारे लिये और भी सुविधाजनक होगा।

—सम्पादक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तक-परिचय

वैज्ञानिक जल-चिकित्सा—लेखक श्री कुलरञ्जन मुखोपाध्याय; अनुवादक, प्रो० रामइकबाल सिंह, बी० ए०, बी० एल; प्रकाशक, श्री विनय भूषण मित्र, वैज्ञानिक जल चिकित्सालय, ११४।२ बी, हाजरा रोड, कालीघाट कलकत्ता; मूल्य २ रु०

श्री कुलरञ्जन मुखोपाध्याय बंगाल के गण्य-मान्य प्राकृतिक चिकित्सक हैं। कलकत्ता में आपका एक प्राकृतिक चिकित्सा गृह भी है। आपने बंगला में 'दैनन्दिन रोगेर जल चिकित्सा' तथा 'पुरातन रोगेर जल-चिकित्सा' नामक दो पुस्तकें लिखी हैं, जिन्हें अपने क्षेत्र में उल्लेखनीय लोकप्रियता मिली है।' प्रस्तुत पुस्तक का हिन्दी संस्करण बंगला का ही अनुवाद है। हमारी राय में इस पुस्तक के सम्बन्ध में जो सब से उल्लेखनीय बात जान पड़ती है, वह यह कि इस पुस्तक को लेखक ने अपने दीर्घ अनुभव, अध्ययन एवं प्रयोग के उपरान्त लिखा है, इससे चिकित्सा-क्रम बहुत उत्तम एवं प्रयोग की दृष्टि से सफल हुआ हैं। एक बार इस पुस्तक को पढ़ लेने पर उसमें आए हुए चिकित्सा-क्रम के बारे में कोई संदेह या जिज्ञासा की गुञ्जाइश नहीं रह जाती। और यही इस पुस्तक की सब से बड़ी सफलता है।

यद्यपि इस पुस्तक का नाम 'जल चिकित्सा' है किन्तु इसमें रोगोपचार के सभी प्राकृतिक साधनों—जैसे जल, मिट्टी, उत्ताप, वायु, प्रकाश, पथ्य, और उपवास आदि—का विस्तार पूर्वक वर्णन मिलता है। इसमें संदेह नहीं कि लेखक की इस उपयोगी पुस्तक को हिन्दी के क्षेत्र में भी उतनी ही लोकप्रियता मिलेगी, जितनी कि बंगला के क्षेत्र में प्राप्त हुई है। सवा दो सौ से अधिक पृष्ठों की इस सुन्दर एवं प्रामाणिक पुस्तक का मूल्य २ रु० अधिक नहीं है। उपयोगिता की दृष्टि से इसका अवलोकन तो एक बार तो प्रत्येक प्राकृतिक चिकित्सा प्रेमी को करना ही चाहिए।

तुम महान हो—लेखक डा० रामचरण महेन्द्र, एम० ए०, डी० लिट्, डी० डी० आई० (लन्दन), प्रो० अलबर्ट कालेज, कोटा, (राजपूताना); प्रकाशक; अखण्ड-ज्योति कार्यालय, मथुरा मूल्य ।=)

यद्यपि प्राकृतिक चिकित्सा के अन्तर्गत मानसोपचार का महत्व शारीरिक उपचार से किसी कदर कम नहीं है, फिर भी इस मानसिक पहलू पर प्रकाश डालने वाली सुन्दर पुस्तकें अब तक इनी-गिनी ही देखने में आई हैं, और उनमें से उपयोगिता एवं प्रभावकारिता की दृष्टि से उत्तम जँचने वाली पुस्तकों की संख्या तो शायद और भी कम या नहीं के बराबर होगी। प्रसन्नता की बात है कि डा० महेन्द्र ने अपनी इस सुन्दर कृति के द्वारा एक बहुत बड़ी कमी कीं पूर्ति की है। इसमें विषेशतः हीन-भाव (Inferiority Complex) के निवारण के लिये, जो कि विशेषतः मानसिक व्याधियों का उद्गम स्थल होता है, बहुत ही प्रभाव पूर्ण एवं रोचक ढंग से उपाय बताए गए हैं। इसमें प्रत्येक मनोभाव का का सुन्दर विवेचन बहुत थोड़े में किन्तु प्रभावोत्पादक ढंग से किया गया है। इसके प्रत्येक वाक्य, प्रत्येक शब्द में मनुष्य को निम्न मानसिक स्तर के ऊपर उठाने की सहज-स्वाभाविक प्रेरणा मिलती है। यह पुस्तक है तो छोटी, लेकिन इसकी उपयोगिता एवं महत्व बहुत महान है। इस तरह की कृतियां प्राकृतिक चिकित्सा-प्रणाली को सही माने में समादृत करने वाली हैं।

स्वास्थ्य-विज्ञान

स्वास्थ्य-पत्रक— लेखक, श्रीं गंगाप्रसाद गौड़ 'नाहर'; प्रकाशक मारवाड़ी सेवासदन, प्राकृतिक चिकित्सा मन्दिर, अकोला (बरार)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'नाहर' जी प्राकृतिक चिकित्सा-प्रणाली के हिमायती ही नहीं अभ्यासी भी हैं। आपका अध्ययन एवं अनुभव उच्च कोटि का है। प्रस्तुत पत्रक आहार सम्बन्धी एक सुस्पष्ट एवं सर्वांगपूर्ण तालिका के रूप में है, जो अनुभवी लेखक के ही शब्दों में 'ठोस एवं विशुद्ध आहार-विज्ञान एवं प्राकृतिक चिकित्सा शास्त्र के अकाट्य नियमों की रोशनी में तैयार हुआ है।'

चार्ट से पाठक बड़ी आसानी से समझ सकते हैं कि कौन कौन से भोज्य पदार्थ शरीर की किन-किन आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकते हैं। क्षारमय तथा अम्लोत्पादक (खून में खटाई पैदा करने वाले) खाद्य क्या हैं। इस तरह के खाद्यों की अलग-अलग तालिका इस में आपको मिलेगी। इसके अतिरिक्त लेखक ने इस स्वास्थ्य पत्रक में उन भोज्य पदार्थों की तालिका भी दे दी है जो ग्राह्य अथवा अग्राह्य मेल, या वे मेल अथवा संयोग-विरुद्ध हैं। किन-किन खाद्योंमें कौन-कौनसे खाद्योंजों अथवा विटामिनों की बहुलता रहती है, इसकी भी एक दृष्टि में जानकारी इस पत्रक के द्वारा सहज ही प्राप्त कर ली जा सकती है। साथही यहभी ज्ञात किया जा सकता है कि किस विटामिन का अभाव होने पर शरीर में कौन सा रोग उत्पन्न होता है।

प्राकृतिक चिकित्सा-प्रणाली के अन्तर्गत यह माना गया है कि आहार ही औषधि है तथा औषधि ही आहार है। इस उक्ति से सर्वथा स्पष्ट है कि प्राकृतिक चिकित्सा में आहार का कितना ऊंचा और महत्वपूर्ण स्थान है। इस में संदेह नहीं कि इस स्वास्थ्य पत्रक के रूप में 'नाहर' जी ने स्वास्थ्य प्रेमियों की सराहनीय सेवा की है। आप की यह कृति बहुत सफल तथा मूल्यवान है। यह चार्ट प्रत्येक स्वास्थ्य प्रेमी के घर में मौजूद रहना चाहिये।

अंग्रेजी पुस्तकें

'जेम्सआफ हेल्थ' (पहला भाग) लेखक तथा प्रकाशक श्री जटाशंकर नन्दी, एन० डी, (न्यूयार्क), एन० डी० (बेजवाड़ा), डी० डी० टी० एम० एन० एस० ए० डोसीवाड़ा, पाटन (गुजरात); सजिल्द मूल्य २)

इस पुस्तक के रचयिता गुजरात के एक सुप्रसिद्ध प्राकृतिक चिकित्सक हैं। आपने गुजराती में तो स्वास्थ्य सम्बन्धी कई पुस्तकें लिखी हैं। प्रस्तुत पुस्तक प्राकृतिक रोगोपचार सम्बन्धी एक अनोखी डायरी है। इसमें प्राकृतिक चिकित्सा के प्रवर्तक एवं प्रसारक आचार्यों तथा महारथियों के अमूल्य उपदेशों एवं विचारों का संग्रह मिलता है। इस पुस्तक के द्वारा आप किसी भी प्राकृतिक चिकित्सा-विधि या संसार के बड़े से बड़े अनुभवी प्राकृतिक चिकित्सकों की सम्मति जान सकते हैं। अंग्रेजी का साधारण ज्ञान रखने वाले व्यक्ति भी इसका पूरा लाभ उठा सकते हैं। इसकी उपयोगिता कतिपय शब्दों तथा वाक्यों में प्रकट नहीं की जा सकती। यह तो इस पुस्तक का अध्ययन, मनन तथा अनुसरण करने से ही प्रकट होगा।

प्राणायाम—(चतुर्थ संस्करण)—लेखक श्री शर्मा के० लक्ष्मण: प्रकाशक नेचरक्योर पत्रलिशिंग हाउस, पुडुकोटा और मद्रास, मूल्य ६ आना।

डा० शर्मा प्राकृतिक चिकित्सा के महारथियों में हैं। आपने प्राकृतिक चिकित्सा सम्बन्धी अंग्रेजी में कई उपयोगी पुस्तकें लिखी हैं। 'प्राणायाम' उन्हीं में से एक है। इस छोटी सी पुस्तिका में शर्मा जी ने स्वास्थ्य के लिए वायु तत्व के महत्व का विवेचन करते हुए प्राणायाम की महत्ता पर प्रकाश डाला है और इसके अभ्यास के लिए सरल उपाय बताए हैं। पुस्तक की लोकप्रियता का अनुमान केवल इसी से लगाया जा सकता है कि कुछ ही वर्षों के भीतर यह इसका चौथा संस्करण है। इसकी छपाई सफाई तथा गेट-अप बहुत आकर्षक है।

मासिक साहित्य

आर्य महिला (रजत-जयन्ती अंक)—प्रधान सम्पादिका श्रीमती सुन्दरी देवी, एम० ए०, बी० टी०; सम्पादक साहित्य भूषण ठाकुर आत्माप्रसाद सिंह, आर्यमहिला कार्यालय, जगतगंज; बनारस कैन्टोमेन्ट से प्रकाशित, वार्षिक चन्दा ५)

श्री आर्यमहिला हितकारिणी महापरिषद् की रजत जयन्ती के उपलक्ष्य में 'आर्य महिला' का अक्टूबर १९४४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से मार्च १६४५ तक का संयुक्त अंक विशेषांक (रजत-अंक) के रूप में प्रकाशित हुआ है।

'आर्य महिला' महिला समाज की प्रतिनिधि-पत्रिका है। इसका उद्देश्य महिला जगत में धार्मिक भावना को जाग्रत करना तथा सनातन धर्म में आस्था एवं विश्वास की वृद्धि करना है। इसके लेख धार्मिक भावों से ओत-प्रोत तथा स्त्री जीवन के उच्चादर्श के प्रतिपादक होते हैं।

'रजत-जयन्ती अंक' निस्सन्देह बहुत सुन्दर है। यों तो इसके प्रायः सभी लेख उच्च कोटि के एवं प्रतिष्ठित विद्वानों के लिखे हुए हैं, किन्तु 'स्त्री धर्म' 'देवता कहाँ रमते है?' 'स्त्री जाति और समाज' 'प्राचीन काल के पति-पत्नी' 'तुलसी की सीता' आदि लेख उच्च कोटि के हैं। इतने सुन्दर अंक के लिए बधाई। आर्य-ललनाओं के बीच इसे अधिकाधिक लोकप्रियता एवं प्रसिद्धि प्राप्त हो, यही हमारी हार्दिक कामना है।

आजकल—सम्पादक, कुंअर किशोर सेठ, यूनाइटेड पब्लिकेशन्स, पोस्ट बाक्स १६६, दिल्ली, द्वारा मुद्रित तथा प्रकाशित, वार्षिक चन्दा ५) एक प्रति का ।=)।

इस पत्र का मुख्य उद्देश्य विदेशों के—विशेषतः भारत के पड़ोसी राष्ट्रों के—जीवन एवं संस्कृति से भारतीय जनता को आवश्यक जानकारी प्राप्त कराना है। अतएव इसका क्षेत्र स्वभावतः अन्तर्राष्ट्रीय बन गया है। पर, साथ ही, राष्ट्रीय क्षेत्र भी इससे अछूता नहीं है। इसका जून का अंक हमारे सामने है। इसका पहला और प्रमुख स्तम्भ है 'संसार चक्र', जिसमें संसार के घटना-चक्र पर विहंगम दृष्टि डाली गई है। 'पुत्र के वध का प्रतिशोध' नामक चीनी कहानी, जिसकी लेखिका एक चीनी महिला हैं, चुंगकिंग की सैर, आदि उपयोगी लेखों के अलावा अनेक रोचक कहानियों, लेखों और कविताओं से यह परिपूर्ण है। अनेक चित्रों से सुसज्जित, आकर्षक छपाई तथा गेट-अप इसकी निजी विशेषता जान पड़ती हैं।

———

प्राकृतिक चिकित्सा के केन्द्र

आरोग्य मंदिर

में मिट्टी, पानी, धूप, हवा, आसन, प्राणायाम, मालिश एवं युक्ताहार द्वारा कठिन से कठिन रोग स्थायी रूपसे शीघ्र अच्छे किये जाते हैं। सचित्र परिचय-पत्र के लिए लिखिये।

मैनेजर—आरोग्य मंदिर, गोरखपुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पढ़िये ! **लाभ उठाइये !!**

सुन्दर, स्वस्थ और सुखी जीवन के इच्छुकों को ये पुस्तकें पढ़नी चाहिए

(१) रोगों की अचूक चिकित्सा (चतुर्थ संस्करण) : श्री जानकीशरण वर्मा, बी० ए० ५)
(२) मठा उसके गुण तथा उपयोग (परिवर्धित संस्करण) : श्री महेन्द्रनाथ पांडेय ।।=)
(३) हमारा भोजन—श्री महेन्द्र नाथ पाण्डेय ... ... ४)
(४) स्वास्थ्य के नुस्खे—'जीवन सखा' कार्यालय ... ... ।)
(५) क्या और कैसे खायें—डा० बालेश्वर प्रसाद सिंह ... ... ।=)
(६) ब्रह्मचर्य ही जीवन है—स्वामी शिवानन्द ... ... १।।)
(७) आनन्दमय जीवन—श्री शंकर लाल तिवारी ... ... ।।)
(८) कब्ज या कोष्ठबद्धता : डा० बालेश्वर प्रसाद सिंह .... १)
(९) शक्ति दर्शन—श्री शंकरलाल तिवारी .... ।।)
(१०) आँख का अचूक इलाज : श्री महेन्द्रनाथ पांडेय .... २)
(११) शाकों के गुण—श्री नारायण प्रसाद अरोड़ा .... १)
(१२) फलाहार—श्री नारायण प्रसाद अरोड़ा ... . १)
(१३) वैज्ञानिक जल चिकित्सा—श्री कुलरंजन मुखोपाध्यय .... ३)
(१४) सचित्र हठयोग—स्वामी शिवानन्द ... ... १।)
(१५) मन और उसका निग्रह (प्रथम भाग)—स्वामी शिवा नन्द .... १)
(१६) मन और उसका निग्रह (द्वितीय भाग) ... ... ३)
(१७) हम सौ वर्ष कैसे जीवें : श्री केदारनाथ गुप्त, एम० ए० ... . १।।।)
(१८) आरोग्य-साधन—महात्मा गांधी ... ... ।।।)
(१९) स्वास्थ्य साधन—श्री रामदास गौड़ ... ... ३।।।)
(२०) आहार ही औषध है : डा० एल० एन० रतरा .... १।)
(२१) जल चिकित्सा (पहलाभाग)—श्री राखालचन्द्र चट्टोपाध्याय ... १।।।)
(२२) Nature Cure by H. Lindlahr, M. D. ... 7 8
(२३) Food-de Medicine by Dr. L. N. Ratra, H. M. B. ... 1
(२४) Universal un-cooked food 3 8
(२५) Nature Cure of Eye defect By Dr. K. L. Sharma. 2 0

स्वास्थ्य सम्बन्धी पुस्तकें मिलने का पता :—

मैनेजर, स्वास्थ्य ग्रंथ-भण्डार लूकरगंज, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे जीवन से निराश हो चुके थे !

किन्तु वही अब देखिए क्या कहते हैं !

"दमा का दम तोड़ने के लिए मैंने क्या नहीं किया ? डाक्टरों और वैद्यों का इलाज विफल रहा।...मैं बिलकुल ही नाउम्मीद होकर **प्राकृतिक स्वास्थ्य गृह के संचालक डा० बालेश्वर प्रसाद सिंह,** के पास पहुँचा।...पेट की सफाई कर मैं लग गया अपनी चिकित्सा में। वस्त्रधौति की आज्ञा दी गयी।...यह तो जारी था ही मैंने कुछ आसन और प्राणायाम भी शुरू किया...वहीं अस्पताल में ही ये सब उन लोगों की निगरानी में करता रहा। धीरे धीरे दमा की शिकायत जाती रही।...इस तरह कड़े नियम से रह कर मैंने उस रोग से छुटकारा पाया जिसे बड़े बड़े नाम वाले डाक्टर लाइलाज और वैद्य असाध्य बतलाते हैं। यह सब कृपा है प्राकृतिक चिकित्सा की और उसके प्रचारकों की भी।"

—कुंवर कोशलेश प्रसाद शर्मा, बरांव राज्य,

इसी तरह के न जाने कितने असाध्य और निराश रोगियों को प्राकृतिक चिकित्सा-विधि से नया जीवन मिला है।

यदि आप भयानक से भयानक, व्याधि, अथवा जीर्ण रोग से पीड़ित हो रहे हैं तो उससे छुटकारा पाने के लिए नीचे लिखे पते से पत्र-व्यवहार करें। हमारे स्वास्थ्य गृह में प्रायः सभी प्रकार के रोगों का नैसर्गिक विधियों से सफलतापूर्वक इलाज होता है।

स्वास्थ्य गृह में रोगियों के रहने का प्रबन्ध

स्वास्थ्य गृह में रोगियों के आराम और सुविधा के ख्याल से दो श्रेणियां निर्धारित कर दी गई हैं। प्रथम श्रेणी के रोगी से १००) मासिक और द्वितीय श्रेणी के रोगियों से ७५) मासिक लिया जाता है, जिसमें चिकित्सा की फीस भी शामिल है। रोगियों को अपने भोजन का प्रबन्ध अलग से करना पड़ेगा। पूरा विवरण पत्र भेजकर प्राप्त करें। पत्र के साथ टिकट भेजना जरूरी है।

नोट—हमारे यहां संक्रामक रोगों से पीड़ित रोगियों के रखने का प्रबन्ध नहीं है

व्यवस्थापक:

प्राकृतिक स्वास्थ्यगृह, लूकरगंज, इलाहाबाद।

PRINTED BY M. L. PANDAY AT THE ABHYUDAYA PRESS, ALLAHABAD.
PUBLISHED BY SRI. BALESHWER PRASAD SINHA, 5, LUKER GANJ ALLAHABAD.
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन सखा

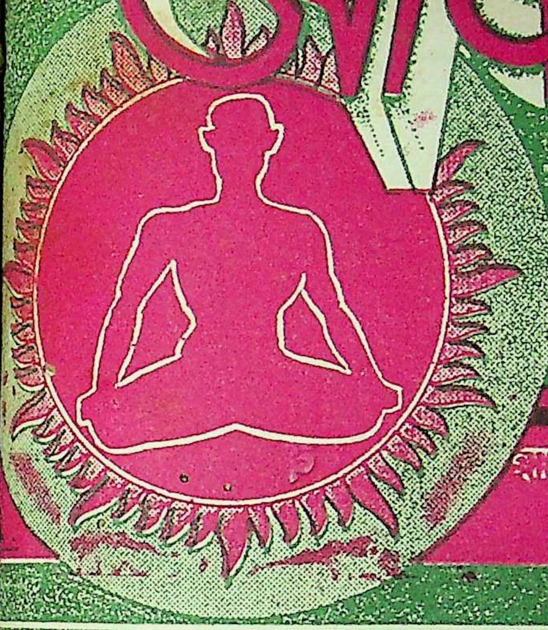

शारीरिक, मानसिक और नैतिक स्वास्थ्य का पथ-प्रदर्शक

...तम्बर, १९४५

संयुक्त प्रान्त, मध्य प्रान्त तथा बिहार के शिक्षा विभागों द्वारा स्वीकृत

इस अंक में पढ़िये

१—दवाइयों से रक्त की शुद्धि नहीं!—ले० डा० जे० एच० केलाग, एम० डी० ... १

२—प्राकृतिक चिकित्सा का इतिहास—ले० श्री विट्ठलदास मोदी, संचालक, आरोग्य मंदिर, गोरखपुर ... २

३—कुण्डलिनी-चक्र के अलौकिक चमत्कार!—ले० श्री गुलाबचन्द्र जैन ... ३

४—जीवन-सम्राट भोजन— ले० श्री ललितकुमार नागर ... ८

५—मानसिक थकावट—प्रो० लालजी राम शुक्ल, एम० ए०, बी० टी० ... १०

६—मुख-श्री की वृद्धि के कुछ सहज उपाय—डा० रामचरण महेन्द्र एम० ए०, डी० लिट्, एफ बी० टी० आई० (लन्दन) ... १२

७—मासिक-धर्म सम्बन्धी बीमारियां और उनका कारण तथा निदान—डा० इन्दुमती सिनहा, एन० डी० डी० वाई ... १४

८—शाकों का राजा बथुआ—ले० श्री पं० मूलनारायण मालवीय ... १८

९—शर्करा-चीनी के विषय में कुछ आश्चर्य जनक बातें—प्रो० भवानी प्रसाद, प्राकृतिक चिकित्सोपाध्याय ... २०

१०—तर्क-बुद्धि या विवेक-बुद्धि [सम्पादकीय] ... २२

११—प्रश्नोत्तर—श्री कामताप्रसाद अग्रवाल, एम० ए० ... २२

वार्षिक मूल्य ३)

प्रति अंक का ।=)

संचालक तथा सम्पादक

डा० बालेश्वरप्रसाद सिंह

कांगड़ी गुरुकुल में १६ नवंबर १९४५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आरोग्य-शास्त्र का प्रतिनिधि पत्र

जीवन सखा

सभी सम्मतियों का एक ही स्वर

Dr. S. C. Das, L. M. S. (Cal.), L.R.C.P. & S. (Edin.), L.R.F.P. & S. (Glas.) L.M. (Dub.), Sewagram, Wardha, C.P.

"A splendid and noble attempt to spread correct views about health & its preservation."

पं० बनारसीदास जी चतुर्वेदी, टीकमगढ़

"मुझे इस समय जितने पत्र निकल रहे हैं उनमें जीवन-सखा अत्यन्त महत्त्वपूर्ण जँचता है!",

श्री सीताराम जी सेकसरिया, कलकत्ता

'जीवन-सखा' निकाल कर आप लोग देश की सेवा कर रहे हैं। ऐसे पत्रों से पढ़नेवालों का भला होता है।"

जनार्दन राय नागर, सम्पादक 'बालहित', उदयपुर

'जीवन-सखा' ने तो मेरी माँ का जीवन ही बदल दिया। उन्होंने इसी को पढ़कर अपने शरीर का कल्प-सा कर दिया है। 'जीवन-सखा'......ने मेरी माँ को स्वास्थ्य बख़्शा है।"

'सरस्वती', प्रयाग

"प्रत्येक साध्य तथा असाध्य मर्ज का निवारण प्रकृति द्वारा हो सकता है, यही इस पत्र का संदेश है।"

'नवशक्ति', पटना

"यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि स्वास्थ्य सम्बन्धी पत्र-पत्रिकाओं में 'जीवन-सखा' का सर्वोच्च स्थान है।

'विशाल-भारत', कलकत्ता

"जीवन-सखा सब तरह से उपयोगी है।"

'जीवन-साहित्य', नई दिल्ली

"आरोग्य शास्त्र का सुन्दर मासिक होने से यह वास्तव में 'जीवन-सखा' ही है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्
NATURE ONLY HEALS

जीवन सखा

सम्पादक
डा० बालेश्वरप्रसाद सिंह

वर्ष १०] सितम्बर १९४५ [अङ्क ९

दवाइयों से रक्त की शुद्धि नहीं !

किसी तरह की दवा से खून की सफाई हो सकती है, रक्त को शुद्ध बनाया जा सकता है, यह सोचना भारी भूल है, जिसकी वजह से बाद में बहुत सी मुसीबतें झेलनी पड़ जाती हैं। खून को साफ और शुद्ध कर दे ऐसी संसार में कोई भी दवा या जड़ी बूटी नहीं। खून में कोई चीज मिला देने से नहीं बल्कि उसमें से वह चीज बाहर निकाल देने से ही खून को शुद्ध बनाया जा सकता है। जल शुद्धि करने का एक सार्वभौमिक साधन है जिसका उपयोग खून की सफाई के लिए होना जरूरी है। दवाइयों के प्रयोग से खून को शुद्ध बनाने का प्रयास कीचड़ से कीचड़ को धोकर साफ करने के बराबर है।

डा० जे० एच० केलाग
एम० डी०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राकृतिक चिकित्सा का इतिहास

ले० श्री विट्ठलदास मोदी, संचालक आरोग्य मन्दिर, गोरखपुर

[श्री विट्ठलदास मोदी, 'जीवन सखा' के भूतपूर्व सम्पादक, से पाठकों का परिचय कराना जैसे 'जीवन सखा' का ही परिचय कराना जान पड़ता है। आपने अपने सम्पादन-काल में जिस तत्परता, लगन और अदम्य उत्साह के सहित इसे अपने पथ पर अग्रसर किया था वह स्मृति की अक्षय निधि बन गई है, उसे कभी भुलाया नहीं जा सकता।

इधर वर्षों बाद मोदी जी ने 'जीवन सखा' की सुधि ली है। आपका एक लेख पिछले अंक में निकल चुका है और यह दूसरा पाठकों के सामने प्रस्तुत है। इसमें आप देखेंगे कि मोदी जी का प्राकृतिक चिकित्सा-प्रणाली की इतिवृत्ति का अध्ययन कितना गम्भीर और विवेचनात्मक हुआ है। इस लेख को मोदी जी ने प्राकृतिक चिकित्सा के अन्धभक्त के रूप में नहीं, एक अनुभवी तथा निष्पक्ष समीक्षक के रूप में लिखा है, और यही आपकी एक सबसे बड़ी विशेषता है। सं०]

प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली में शायद ही कोई ऐसी उपचार-पद्धति हो जिसका किसी न किसी रूप में आयुर्वेद में वर्णन न मिलता हो पर आयुर्वेद कभी वात, पित्त, कफ के झगड़े से ऊपर न उठा और उसे इनके शमन के लिए हमेशा औषधियों की आवश्यकता पड़ती रही। काष्ठ औषधियों का प्रभाव कम होने पर रस, भस्म आए और अब वह त्रिदोष को शांत करने के लिए इंजेक्शन की ओर दौड़ रहा है।

एलोपैथी में भी जल, वायु और धूप के प्रयोग विहित हैं पर उसकी सारी शक्ति कीटाणुओं का नाश करने के पीछे लगी हुई है। वस्तुतः किसी भी चिकित्सा पद्धति का प्राकृतिक चिकित्सा से वैषम्य उसके उपचार साधनों के कारण कम सिद्धांतों के कारण अधिक है।

प्राकृतिक चिकित्सा के आज के स्थापित सिद्धांतों को सामने रख कर यदि हम संसार के रोग निवारण के लिए प्रयत्न करने वालों के जीवन और कार्य पर ध्यान दें तो सबसे पहले हमारी दृष्टि हिपोक्रिटीज पर जाकर लगती है जो ४६०-३७७ ई० (ईसा के पूर्व) हुआ था। भ्रमवश लोग उसे औषधोपचार प्रणाली का जनक मानते हैं पर वह जीवन पर्यंत प्राकृतिक चिकित्सा के नियमों के अनुसार चिकित्सा करता रहा और इसी कारण उसे अपने समय में विशेष ख्याति मिली थी। उसने "उभाड़ की क्रिया" (Law of crisis) का अनुसंधान किया था और समझ लिया था कि शरीर अपने को शुद्ध करने के लिए विकारों को रोग के रूप में बाहर करने का यत्न करता है। हिपोक्रिटीज के इस अनुसंधान को आगे किसी ने बढ़ावा दिया हो ऐसा इतिहास नहीं बताता और एक बार प्राकृतिक चिकित्सा का यह अमूल्य सिद्धांत हिपोक्रिटीज के साथ ही संसार से लोप हो गया।

असल में प्राकृतिक चिकित्सा को ऐसे लोगों से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं, जो चिकित्सक थे, वरन् रोगियों से जन्म पाना था। आदि उन्नायकों में विंसेंट प्रिसनिज, फादर नीप, लुई

फादर नीप

कूने, एडोल्फ जुस्ट आदि सभी रोगी थे, जो दवाओं से हार चुके थे। इन लोगों ने अपने को स्वस्थ करने के प्रयत्न में ही प्रकृति की रोग निवारक शक्ति का परिचय

लुई कूने

पाया और भक्त बने। संसार में आज तक हुए यदि सभी प्राकृतिक चिकित्सकों का लेखा लिया जाय तो पचहत्तर प्रतिशत संभवतः ऐसे ही मिलेंगे जो रोगी थे और जिन्होंने प्रकृति पथ पर चलकर स्वास्थ्य प्राप्त किया, तदनंतर इसके अनुयायी एवं प्रचारक बने।

दवा की व्यर्थता समझने वाले एक दूसरे महात्मा भी हुए हैं जिनका नाम आज भी बड़े आदर से लिया जाता है और जगह जगह उनके अनुयायी मिलते हैं,—वे हैं हनीमैन। इन्होंने यह समझ लिया था कि जितने रोग शरीर में नहीं होते उनसे अधिक दवाएं पैदा करती हैं पर प्रकृति की शक्ति से परिचित न होने के कारण वे इसे निर्बल चिकित्सा समझते थे। अतः उसे बल पहुंचाने के लिए सम लक्षणों वाली दवा अत्यल्प मात्रा में देने के वे समर्थक थे। इनका सारा जीवन दवाओं के लक्षण

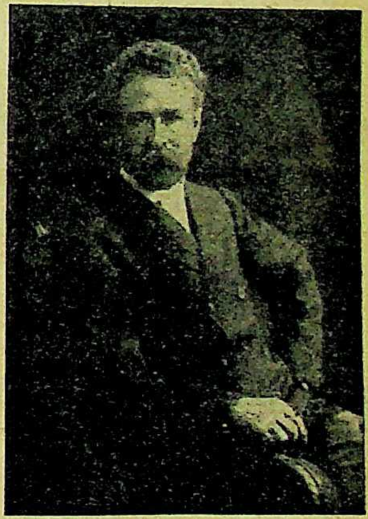

एडोल्फ जुस्ट

अनुसंधान में ही लग गया अतः इनका ध्यान रोगों के मूल कारण, खान-पान एवं रहन-सहन की गलती की ओर नहीं गया। इनके वृहद् चिकित्सा-ग्रंथों में भी पथ्यापथ्य के बारे में कोई स्पष्ट निर्देश नहीं है।

प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली, जो प्राकृतिक जीवन का एक अंग है, रहन सहन के ढंग के अतिरिक्त कुछ अधिक नहीं है। इसके उन्नायकों ने यह जाना कि शुद्ध वायु, निर्मल झरने, स्फटिक प्रकाश, शुभ्र ज्योत्स्ना में ही प्राणी को स्वस्थ करने की शक्ति है और ये ही उसकी काया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का कल्प कर सकते हैं। उन्हों ने जाना कि अप्राकृतिक भोजन रोग उत्पन्न करता है और प्राकृतिक भोजन—फल, तरकारियाँ और दूध—स्वास्थ्य। इन चीजों के जानने के लिए उन्हें विशेष कष्ट नहीं उठाना पड़ा, ये अपने आप उनके सामने स्पष्ट हो गई। शुद्ध वायु और जल के अभाव, धूप की कमी, कसरत में कोताही, भोजन के अप्राकृतिक ढंग ने उन्हें रोगी बनाया और इसके समुचित उपयोग ने उन्हें स्वास्थ्य प्रदान किया। इस प्रकार उन्हें ज्ञात हो गया कि यदि मनुष्य प्राकृतिक नियमों के अनुसार जीवन व्यतीत करे तो उसे बीमार पड़ने की जरूरत नहीं है।

पर इन सीधे सादे नियमों का प्रचार करने में प्राकृतिक चिकित्सा के आदि उन्नायकों को बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था। लोगों के लिए एक तो ये नियम नए थे और दूसरे औषधोपचारकों के लिए घातक। उन्हें अपनी रोटी छिनती दिखाई दी और ऐसे लोगों के हाथ, जिनका उनके मुकाबिले में न कोई अध्ययन था न उन्होंने उनकी तरह वर्षों स्कूल और कालेजों में कष्ट पूर्वक एवं बहुत साधन खर्च कर शिक्षा पाई थी, उन्हें हर प्रकार से कष्ट पहुँचाने की कोशिश करते थे। विंसेंट प्रिसनीज, जो प्राकृतिक चिकित्सा के पिता कहे जाते हैं, उनके इन प्रयत्नों को बेवकूफी समझ कर अपने चिकित्सालय के बाहर एक पत्थर पर लिखवा दिया कि "तुम्हें धैर्य धारण करना होगा"। इस प्रकार वे बताते हैं कि प्रकृति के गुण देखने के लिए समय की अपेक्षा है। अंत में वे सन् १८२६ में अपने ग्राम ग्रेफेनबर्ग में बड़ा चिकित्सालय खोलने में सफल हुए। यह दुनियाँ में सबसे पहिला आरोग्य मंदिर था। धीरे धीरे उनका आरोग्य मंदिर रोगियों के लिए तीर्थ-स्थान बन गया और दूर दूर से झुंड के झुंड रोगी उनके पास आने लगे, जिनमें सैकड़ों एलोपैथी, एवं अन्य पद्धतियों के सताए हुए रोगी थे। विद्यार्थी भी आए जिन्होंने इस चिकित्सा पद्धति को बढ़ाया और इसे परिपूर्ण किया। इस प्रकार प्राकृतिक चिकित्सा चल निकली।

सबके पहिले हान नामक अत्तार ने प्रिसनीज की शिष्यता ग्रहण की थी। यह उसके शिष्यों में प्रधान भी था। लुई कूने दूसरे शिष्य हुए। तीसरे रिकली हुए। कूने जुलाहे और रिकली कारीगर थे। एक फ्रैम्प नामक पादरी भी इनके शिष्य हुए, इन्हें चौथा शिष्य कहना चाहिए। लामान नाम के एक डाक्टर ने भी इनकी शिष्यता ग्रहण की और एडोल्फ जुस्ट नामक एक शिक्षक ने और टर्नफाटर यान ने भी। यों उनके सैकड़ों शिष्य हुए हैं पर ये सात प्रसिद्ध हैं। इनमें से प्रत्येक ने प्राकृतिक चिकित्सा के किसी न किसी अंग पर विशेष अनुभव एवं अध्ययन किया। अमेरिका के प्रसिद्ध एलोपैथिक डाक्टर ट्राल, जैक्सन और कैलाग भी प्रिसनीज के पास गए और उनके पास रहकर प्राकृतिक चिकित्सा सीखी। कैलाग के जितना बड़ा आरोग्य मंदिर दुनिया में दूसरा नहीं है इनका सा साधन-संपन्न चिकित्सालय किसी भी चिकित्सा पद्धति का शायद ही कहीं अन्य कोई हो।

प्रिसनीज और उनके शिष्यों को न शास्त्रों का ज्ञान था, न वे शास्त्र के अक्षरों पर जाते थे, न वे विरोधी सिद्धान्तों से घबराये, न 'जितने रोग और उतनी ही दवा' के चक्कर में पड़े। वे स्वास्थ्य, रोग और निदान के प्रश्नों को साधारण मनुष्यों की दृष्टि और बुद्धि से सुलझाते थे। इन सबका योरोप ने सिक्का माना और प्राकृतिक चिकित्सा का प्रचार बढ़ चला।

पर विशेष प्रगति मिली इसे डाक्टर लिन्डल्हार से और इन्हीं के कारण अमेरिका में प्राकृतिक चिकित्सा के कदम बैठे। डाक्टर लिन्डल्हार अपने समय के बहुत बड़े अमेरिका के प्रसिद्ध एलोपैथिक डाक्टर थे। इन्होंने प्राकृतिक चिकित्सा पर कई मूल ग्रंथों का प्रणयन किया और प्राकृतिक चिकित्सा के सिद्धान्तों को विज्ञान की भित्ति पर खड़ा किया जिसके कारण जो लोग प्राकृतिक चिकित्सा को अवैज्ञानिक कहकर हंसी उड़ाते थे उन्हें भी इसका लोहा मानना पड़ा और यद्यपि वे आज इसे संसार की श्रेष्ठ चिकित्सा प्रणाली कहते हिचकते हैं पर इसे अपनी प्रणाली के समकक्ष तो खुले तौर पर स्वीकार करते हैं। लिन्डल्हार के बाद प्राकृतिक चिकित्सा विशेष प्रचारित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एवं प्रस्फुटित हुई है और इसके साहित्य का भंडार भरा है एवं इस विषय पर अनेक स्वतंत्र पत्र पत्रिकाएं प्रकाशित होने लगी हैं। इनमें से बर्नर मेकफेडन के

लिन्डल्हार

'फिजिकल कल्चर' मासिक के जितने ग्राहक तो संसार के किसी भी मासिक के शायद ही हों।

आजकल अमेरिका, इंगलैंड एवं योरोप के सभी देशों में प्राकृतिक चिकित्सालय एवं शिक्षणालय स्थापित हो गए हैं जहाँ प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा चिकित्सा एवं इसकी शिक्षा होती है और इनकी संख्या बराबर बढ़ती जा रही है।

× × ×

हिन्दुस्थान में प्राकृतिक चिकित्सा के प्रचार का आरंभ श्री श्रोत्रिय कृष्णस्वरूप जी ने किया था। ये मुरादाबाद के रहने वाले थे। सौभाग्यवश इनका परिचय कूने की "न्यू साइंस आफ हीलिंग" नामक पुस्तक से हुआ जिसका इन्होंने हिंदी और उर्दू दोनों भाषाओं में अनुवाद कर प्रचारित किया और अपने जिले बिजनौर में एक चिकित्सालय स्थापति किया। इन्होंने पत्र द्वारा कूने से संबंध भी जोड़ा और बराबर रोगियों की चिकित्सा के बारे में उनसे सलाह लेते रहे एवं अपनी शंकाओं का समाधान करते रहे। आगे चलकर इसी पुस्तक का अनुवाद भारत की लगभग सभी भाषाओं में हो गया और लोग इस प्रणाली को 'जल चिकित्सा' के नाम से जानने लगे। इस पुस्तक के आधार पर चिकित्सा चलाकर कठिन से कठिन रोगों से मुक्त होने वालों की संख्या बहुत बड़ी है और इस पुस्तक के आधार पर लोगों की चिकित्सा बताने वालों की संख्या भी हजारों से कम नहीं है। अनेक कुटुम्बों ने इस पुस्तक को पढ़कर दवा से मुक्ति पा ली है और जरूरत पड़ने पर इसी के सहारे अपने को रोग मुक्त करते हैं।

दूसरी पुस्तक जिसने हिंदुस्तान में प्राकृतिक चिकित्सा का प्रचार संभवतः 'नवीन चिकित्सा विज्ञान' से भी अधिक किया है वह है गांधी जी का 'आरोग्य साधन'। यह पुस्तक गांधी जी के साथ ही भारत में आई। इसे गांधी जी ने दक्षिण अफ्रीका में रहते समय धारावाहिक रूप में अपने साप्ताहिक में लिखा था। इस पुस्तक का भी अनुवाद सभी भारतीय भाषाओं में हो गया है। गांधी जी का व्यक्तित्व और अनुभव तो इस पुस्तक के पीछे है ही पर जुस्ट की "प्रकृति की ओर लौटो" पुस्तक इस पुस्तक के मूल में है। इसी पुस्तक ने गांधी जी को प्राकृतिक जीवन की ओर आकर्षित किया। यह पुस्तक गांधीजी ने बैरिस्टरी पढ़ते समय इंगलेंड में पढ़ी थी।

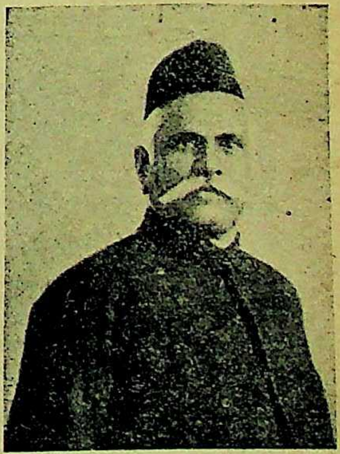

श्रोत्रिय कृष्णस्वरूप जी

आज भारत में भी जगह जगह प्राकृतिक चिकित्सक मिलते हैं और अनेक स्थानों में चिकित्सालय स्थापित हो गए हैं और होते जा रहे हैं। कई चिकित्सक तो ऐसे भी हैं जो विदेश से सीखकर आए हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुण्डलिनी-चक्र के अलौकिक चमत्कार !

श्री गुलाबचन्द्र जैन

[योग-साधन में कुण्डलिनी जाग्रत् करने की क्रिया अत्यधिक महत्वपूर्ण और इसके आश्चर्य जनक एवं अलौकिक प्रभाव अनन्त हैं। अनुभवी लेखक ने योग शास्त्र के इस अमोघ-अस्त्र का बहुत थोड़े में किन्तु बहुत सुन्दर परिचय कराया है। —सं०]

योग-साधन की सफलता के लिए कुण्डलिनी-जागरण अत्यावश्यक है। साधारणतया प्रत्येक प्राणी में यह सुषुप्तावस्था में रहती है। यह सर्पाकार है तथा इसकी गति भी सर्प की ही तरह है। योगाभ्यासी के शरीर में यह चक्रवत् गोल चलती तथा शक्तिवर्धन करती है। श्रीमती ब्लेवेटस्की का कहना है कि इसकी चाल प्रकाश की अपेक्षा कहीं अधिक तेज है। प्रकाश १८,५०० मील प्रति सेकेंड चलता है किन्तु कुण्डलिनी की गति ३४,५०० मील प्रति सेकेण्ड है। कुण्डलिनी मूलाधार चक्र में स्थिर होकर सोई रहती है। मूलाधार शरीर के ६ चक्राकार गतिमान् शक्ति केन्द्रों में से एक है। वर्तमान शरीर-विज्ञान की दृष्टि से ये स्थान (Nerves) नाड़ियों के समूह हैं। इनके नाम क्रमशः मूलाधार (Pelvic Plexus) स्वाधिष्ठान (Hypogastric Plexus) मणिपूरक (Epigastric Plexus) अनाहत (Cardiac Plexus) विशुद्ध (Carotid Plexus) तथा आज्ञा चक्र (Medulla Oblangata) हैं।

मूलाधार सुषुम्ना-दंड के निम्नभागों में स्थित है। कुण्डलिनी इसी स्थान पर सोई रहती है। स्वाधिष्ठान-चक्र प्लीहा के पास स्थित है। इसके पास ही मणिपूरक चक्र है जिसका स्थान नाभि है। मणिपूरक के ऊपर हृदयस्थ अनाहत चक्र है। विशुद्ध चक्र अनाहत चक्र के ऊपर पाया जाता है। इसका स्थान कण्ठ है। चुल्लिका ग्रंथियां (Thyroid glands)इसी से संबंधित हैं विशुद्ध चक्र के ऊपर आज्ञा चक्र है। यह दोनों भौंहों के बीच में कपाल में स्थित है। पीनल ग्लैंड (Pineal glands) तथा पिट्यूटरी बाडी (Pituatory body) इससे संबंधित हैं।

कुण्डलिनी जाग्रत् होकर मेरुदण्ड के मध्य में स्थित सुषुम्ना मार्ग से होकर इडा (सूर्यनाड़ी) पिंगला (चन्द्रनाड़ी) की सहायता से ऊपर की ओर प्रवाहित होकर इन षट्चक्रों को प्रज्वलित एवं प्राणयुक्त करती हुई अन्त में सहस्रार में जाकर योगी को पूर्णावस्था की प्राप्ति करा देती है।

मेरुवंश में से होकर ऊपर जाते समय जिस जिस चक्र में से होकर यह गुजरती है उस उस चक्र को यह जागरित करती तथा खोलती जाती है। स्वाधिष्ठान चक्र के जागरित होने पर मनुष्य सूक्ष्मतर लोक में स्वच्छंद विहार करता है। मणिपूरक की जाग्रति के साथ साथ आत्मरक्षा की शक्ति उसमें अधिक हो जाती है। अनाहत चक्र के खुलते ही उसे अन्तर्दृष्टि प्राप्त होती है। विशुद्ध चक्र का जाग्रत होना दिव्य श्रुति (Clariaudience) का कारण है। आज्ञा चक्र के जाग्रत होते ही साधक को 'दिव्यदृष्टि' (Clarivision) प्राप्त हो जाती है। आज्ञाचक्र के ऊपर ब्रह्मरंध्र में सहस्रार चक्र है। सहस्रारचक्र का जाग्रत होना ही कुण्डलिनी साधक का चरम ध्येय है।

सहस्रार के जाग्रत होते ही शरीर और आत्मा अपनी स्वतंत्र स्थिति को प्राप्त होते हैं। आत्मा शरीर से बाहर निकल कर मनचाहे स्थान पर जाकर एवं लौट कर पुनः उसी देह में प्रवेश कर सकती है। योग क्रियाओं द्वारा कुण्डलिनी जाग्रत कर षट् चक्र रूप द्वारों को खोलते हुए मस्तिष्क में स्थित सहस्रार चक्र में उसे ले जाना ही योग की सिद्धि व सफलता है।

कुण्डलिनी के जाग्रत होने के साथ वेग उत्पन्न होने वाला प्रथम शब्द है 'नाद'। नाद के ३ भेद हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महानाद, नादान्त और निरोधिनी। नाद से प्रकाश होता है और प्रकाश का व्यक्तरूप महा विन्दु है।

सम्पूर्ण चक्र कमल के आकार के माने गये हैं किन्तु इन की पंखड़ियों की संख्या में अंतर है। मूलाधार चक्र में चार दल, स्वाधिष्ठान में ६, मणिपूरक में १०, अनाहत में १२, विशुद्धिचक्र में १६, आज्ञाचक्र में २, सहस्रार में १००० दल है।

ये चक्र पंचतत्वात्मक हैं। मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत तथा विशुद्ध चक्र क्रमशः पृथ्वी, अप, तेज, वायु तथा आकाश के निदर्शक हैं। सहस्रार को शून्य चक्र भी कहते हैं।

अब हम उपरोक्त चक्रों का ध्यान करने के फल पर विचार करेंगे। आधार चक्र का ध्यान करने से मनुष्य वक्ता, मनुष्यों में श्रेष्ठ, सर्व विद्याओं का जानने वाला आनन्दित, आरोग्य तथा काव्य-प्रबंध में चतुर होता है। स्वाधिष्ठान चक्र का ध्यान करने से अहंकारादि विकार नष्ट होते हैं। वह श्रेष्ठ योगी, निर्मोही तथा गद्य-पद्य का कुशल रचयिता होता है। मणिपूरक चक्र का ध्यान करने वाला जगत का संहार व पालन करने में समर्थ होता है। जिह्वा पर सरस्वती निवास करती है और वाक्य-रचना में वह चतुर हो जाता है। अनाहत चक्र का ध्यान का फल ईशत्वसिद्धि, योगीश्वरत्व, इन्द्रियजितता तथा परकाया-प्रवेश शक्ति आदि हैं। विशुद्धाख्य चक्र के ध्यान में लीन योगी ज्ञानवान, उत्तम वक्ता, शान्तचित्त, त्रिलोकदर्शी सर्व हितकारी, आरोग्य-चिरंजीवी तथा तेजस्वी होता है। आज्ञाचक्र के ध्यान से वाक्य सिद्धि प्राप्त होती है। सहस्रार का ध्यान करते ही योगी अमर-मुक्त, उत्पत्ति-पालन में समर्थ, आकाशगामी तथा समाधि युक्त होता है।

कुण्डलिनी शक्ति जाग्रत होकर देहस्थ कफ पित्तादि दोष एवं त्याज्य पदार्थों को नष्ट कर डालती है। उसके ऊर्ध्व गमन करते ही देह के तमाम व्यापार बंद हो जाते हैं। हृदय तथा नाड़ी की गति भी बंद हो जाती है। कुण्डलिनी के सहस्रार में प्रवेश करते ही योगी मोक्ष प्राप्त करता है। चक्रों का प्रकाश युक्त कुण्डलिनी जागृति का द्योतक है।

सहायता और सेवा

हम जो कुछ कह रहे हैं, वह भार अकेले नहीं उठाया जा सकता—उसमें दूसरों की भी सहायता की जरूरत है। हम अब उन विघ्न-बाधाओं को पार कर गए हैं, जो कि पिछले ६ वर्षों में हमारी प्रगति के मार्ग में बाधक हो रही थीं। अब हम दूने, क्या कई गुने उत्साह से अपने पथ पर आगे बढ़ना चाहते हैं। हम माता प्रकृति के नैसर्गिक एवं लोक कल्याण कारक संदेश को प्रत्येक घर में पहुँचाना चाहते हैं। यह काम अकेले नहीं हो सकता, इसमें आपकी सहायता की जरूरत है।

आप 'जीवन सखा' के प्रत्येक अंक को पढ़ें और अपने आस-पास के प्रत्येक घर में इसका प्रचार करें। यही हमारी हार्दिक अभिलाषा है। आप अपने क्षेत्र के कम से कम ५ व्यक्तियों को 'जीवन सखा' का ग्राहक बना कर हमें बल दें। आपकी इस सहायता के लिए हम आपकी सेवा में साल भर तक निःशुल्क नियमित रूप से 'जीवन सखा' को भेजते रहेंगे।

—सम्पादक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन-सम्राट भोजन

श्री ललितकुमार नागर

[जीवन का 'जीवन' भोजन है, किन्तु भोजन का जीवन 'जीवन' नहीं। हम खाते हैं जीने के लिए, जीते हैं खाने लिए नहीं। पर सच पूछिए तो ऐसे कितने होंगे जो इस तरह जीते और खाते हैं। और यही हमारे समस्त शारीरिक और मानसिक संतापों की जड़ है।

प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली आहार-सम्बन्धी इसी मौलिक महत्व और इसी आधार भूत त्रुटि की ओर स्वास्थ्य-प्रेमियों का ध्यान आकृष्ट कराने का सतत् प्रयत्न करती है। आप इसे पढ़ें, फिर मनन और अनुसरण भी करें तभी इसकी सच्ची सार्थकता सिद्ध हो सकती हैं। —सं०]

शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिका आरोग्य एवं आनन्द का मूलाधार मनुष्य का आहार ही है। भोजन से मन, मन से बुद्धि और बुद्धि से आत्मा का विकास होता है और इस प्रकार शरीर के सुख-दुख, रोगारोग्य का संचालन-सूत्र 'जीवन-सम्राट' भोजन के ही हाथों में है। भोजन के रूप में विश्व-कल्याणी प्रकृति-माता ने हमें जो उपदान दिए हैं, उनका सही उपयोग करने में ही जीवन की सार्थकता निहित है। आहार के सम्बन्ध में हमारी छोटी-छोटी भूलें भी हमारे आरोग्य एवं स्वास्थ्य के लिए कितनी घातक सिद्ध हो सकती है, इसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते। अधिकांश लोग भोजन को शरीर-संरक्षण के लिए आवश्यकता की वस्तु न समझ कर अपनी स्वाद प्रियता की ही वस्तु समझते हैं। इसलिए उनकी दृष्टि में आहार की कुछ और ही उपयोगिता प्रतीत होती है, वे तरह-तरह के सुस्वादु भोजन असंतुलित एवं अनियमित रूप से ग्रहण करने में ही जीवन का सारा सुख समझते हैं। उनकी यही भ्रामक धारणा उन्हें प्रकृति से कोसों दूर घसीट कर भयानक शारीरिक एवं मानसिक व्याधियों के गर्त में ढकेल दिया है। आश्चर्य की बात तो यह है कि इतना होने पर भी वे अपने जीवन को सर्वथा 'सुरक्षित' और 'निरापद' समझ रहे हैं। फिर हमारे इस अज्ञान का यदि भयानक कुपरिणाम निकलता हो तो वह बिलकुल स्वाभाविक ही है।

अतः इस लिए हमारे लिए कल्याणमयी प्रकृति-माता का यही सन्देश है कि हम भोजन के वास्तविक महत्व को समझें, उसका समुचित रीति से उपयोग करें और इस प्रकार अपने जीवन को रोग-शोक से रहित एवं सुख, शान्ति तथा आरोग्यमय बनावें।

भोजन के सही उपयोग के लिए उसके वास्तविक स्वरूप गुण तथा उपयोगिता का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है। तभी हम इससे समुचित लाभ उठा सकते हैं। क्योंकि भोजन हमारा 'रक्षक' और 'भक्षक' दोनों है। जब हम जीवन-धारण के उद्देश्य से भोजन करते हैं तो वह हमारा रक्षक होता है और इसके विपरीत जब हम इसे भक्षण की दृष्टि से करते हैं तो यह भी हमारा 'भक्षक' बन जाता है। इसलिए हमारा धर्म यही है कि हम भोजन को 'खाने के लिए' नहीं, 'जीवन-धारण के लिए' ग्रहण करें। लेकिन यह केवल तभी हो सकता है, जब हम आहार के सम्बन्ध में आवश्यक ज्ञान प्राप्त कर लें।

भोजन का असली स्वाद और सच्चा लाभ सदा गरीबों को मिलता है। अधिक खाने वाले सौ में से सौ व्यक्ति मन्दाग्नि के शिकार रहते हैं और उसी से अनेक रोग होने की आशंका रहती है। भोजन के विषय में धनवान होना एक प्रकार का अभिशाप ही समझना चाहिये।

अल्पभोजन—इससे लाभ इतने अधिक है कि उनकी गणना नहीं की जा सकती। कहा गया है—"ये गुणालंघनेप्रोक्ताः से गुणास्वाल्पभोजने"। लंघन करने से जो लाभ होता है वही स्वल्प भोजन करने से भी होता है। प्रत्येक समय इतना भोजन किया जाय कि दूसरे समय अधिक ही भूख लगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भोजन में मुख्य तीन रासायनिक तत्व प्रधान माने जाते हैं—[१]—प्रोटीन [२] चर्बी [३] कार्बोहाइड्रेट। वैसे तो लवण, जल और विटामिन आदि का भी भोजन में एक महत्वपूर्ण एवं उच्च स्थान है। प्रोटीन और चर्बी के दो भेद होते हैं [१] प्राणिजन्य और [२] बनस्पति जन्य। मनुष्य को जीवित रखने वाले ये दो ही पदार्थ हैं, इनमें किसी एक के अभाव को ही व्याधि कहते हैं।

भोजन में शाक-भाजी का स्थान—भोजन में शाक-भाजियों को इतना महत्व दिया गया है जितना कि अमृत को भी नहीं। हमेशा हर एक भोजन में दो पकाये हुए शाक या भाजी का होना अत्यावश्यक है। कुछ हरी-कच्ची शाक भाजी भी होनी चाहिए। इस प्रकार तीन शाक भाजी का होना महत्वपूर्ण भोजन कहलाता है। आलू, गोभी, प्याज, बैंगन, गाजर, आदि में २५ फीसदी पौष्टिक तत्व हैं। इनके खाने से रक्त-विकार (स्कर्वी) तथा कब्ज रोग आदि उत्पन्न नहीं होते। आलू और गाजर को उबालने से प्रायः इनकी शक्ति नष्ट हो जाती है इसलिये ये भून कर खाने से सुस्वाद और गुणकारी दोनों होंगे।

मेथी, मूली, पालक, बथुआ सूआ आदि भाजियाँ खून को साफ कर उसको बढ़ाने की योजना करती हैं। इन्हें कच्चे ही काट कर काली मिर्च, जीरा और सेंधा नमक डालकर काम में लाया जाय तो प्लीहा, यकृत् और पेट की व्याधियाँ कोसों दूर भागती हैं। हमें एक और ईश्वरीय उपहार मिला है—टमाटर। इसके मुख्य तत्व जल प्रतिशत ९५·३, खानिज ५, नाइट्रोजन या स्नायु-रचनात्मकतत्व ६ रेशाद, गोधूमतत्व, (स्टार्च) आदि ३·७। रोगी मनुष्य को टमाटर कभी हानि नहीं करते लाभप्रद ही होते हैं क्योंकि इसमें एसिड (आम्ल) तत्व अधिक होने से जठर से शुद्ध कर रक्तवाहिनी नालियों को यहपुष्टि करता है। सब के लिये टमाटर उत्तम, शुद्ध व आरोग्यप्रद उपहार है।

फलों का सम्बन्ध—प्रकृति जिस ऋतु में जो फल लाभकारी होते हैं उन्हीं को उत्पन्न करती है। ऋतुफल समयानुकूल सेवन करने से कभी भी हानिप्रद नहीं होते। लेकिन इस बात को हमेशा याद रखना चाहिए—"अतिसर्वत्र वर्जयेत्"। भोजन के पूर्व या बाद में एक ताजा फल हमेशा खाना चाहिये। संतरा, अनार, एरण्ड ककड़ी, नाशपाती आदि फल भोजन के पहिले खाना हितकर होता है तथा सेव, जामफल, केला, मौसम्बी और ककड़ी आदि भोजन के बाद ठीक है। भोजन के बाद अंगूर या मौसम्बी का रस सेवन करने से पाचन-शक्ति बढ़ती है। हफ्ते में एक बार दूध और फलों पर रहना अरोग्यदायक है। फलों को जहाँ तक हो सके दांतों से काट कर ही खाना चाहिए। साथ ही एक महत्व की बात यह भी है कि फलों की विशेष शक्ति उनके छिलकों में रहती है अतः फलों को छिलके सहित खाना लाभप्रद ही अधिक होगा। जो छिलका पेट में जाता है वह रक्तसाफ कर कब्ज दूर करता है।

भोजन से नीबू का सर्वश्रेष्ठ सम्बन्ध है। किसी भी समय भोजन के साथ नीबू खाना अच्छा है। इसको जल में निचोड़ कर भी प्रयोग में लाया जाता है जो पेट के सब रोगों को दूर कर मन्दाग्नि हटाता है। यकृत्, आमाशय और आंत के रोग नीबू के सेवन करने से सदैव दूर रहते हैं।

जीवन और भोजन का सबसे बड़ा अंशमान एक और कहा गया है और वह है दूध। यह समस्त सांसारिक प्राणियों के लिये अमृत के समान है और बच्चों से वृद्ध मनुष्यों तक लाभप्रद स्वयं सिद्ध है। गृहस्थियों को तो इसका दो बार उपयोग करना श्रेष्ठ कहा गया है—प्रातः काल और रात में सोने के पहिले। दूध में प्रोटीन पदार्थ अधिक व सबसे ज्यादा मात्रा में पाया जाता है इसमें कैलशियन भी विद्यमान है तथा साथ साथ इसमें विटामिन ए, बी, और सी पूर्णरूप से पाये जाते हैं। परिश्रम के कारण जब शरीर के जीवाणु अधिक निर्बल हो जाते हैं उन्हें दूध ही पुनः नवीन जीवाणु निर्माण व विकसित करता है। दूध थोड़ा-थोड़ा एकएक घूँट पीना चाहिये। इस विषय पर आगे किसी लेख में और प्रकाश डाला जायगा।

[शेष ११ वें पेज पर]

२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानसिक थकावट

प्रो० लालजी राम शुक्ल एम० ए०, बी० टी०

[शरीर की भाँति मन को, मस्तिष्क को, भी भोजन और व्यायाम की आवश्यकता होती है। शरीर की भाँति मन भी थकता है। जिस प्रकार हम शरीर की थकावट मिटाना चाहते हैं उसी तरह हम मन और मस्तिष्क की भी थकावट मिटा सकते हैं मन की थकावट मिटाने के भी कुछ सरल नैसर्गिक उपाय है, जिनका उल्लेख आपको शुक्ल जी के इस सुन्दर लेख में मिलेगा। —सं०]

मानसिक थकावट को दूर करने का सर्वोत्तम उपाय सद्विचार है। मानसिक थकावट मानसिक अन्तर्द्वन्द्व और चिन्ता के कारण होती है। किसी भी काम को भार रूप मान कर करने से मानसिक थकावट शीघ्रता से आती है! जब किसी काम को भार मानकर किया जाता है तो वह आनंद उत्पन्न नहीं। करता उससे जो सुख होता है वह बोझ के हट जाने का सुख है। किसी काम के करने में थकावट का अनुभव करना उस काम के प्रति हमारे दृष्टिकोण पर निर्भर करता है। हम काम के विषय में जैसा सोचते हैं, वैसा वह हो जाता है। किसी भी कार्य को हम आनन्द दायक अथवा बोझ रूप बना सकते हैं।

जब काम आनन्द की दृष्टि से किया जाता है तो उससे थकावट नहीं होती। मनुष्य किसी प्रकार के काम में तीन प्रकार की मनोवृत्ति से लगता है—(१) उस काम से पिण्ड छुड़ाने के लिए (२) कर्त्तव्य पूरा करने के लिए (३) आनन्द की दृष्टि से। पहले प्रकार के व्यक्तियों की मनोवृत्ति दास-मनोवृत्ति होती है। ऐसे लोगों को सब से अधिक थकावट होती है। कर्त्तव्य-बुद्धि वाले व्यक्तियों को मानसिक थकावट अवश्य होती है पर पहले प्रकार के लोगों जैसी नहीं होती। तीसरे प्रकार के लोगों को काम करने के बाद थकावट होना तो दूर रहा और अधिक शक्ति की अनुभूति होती है।

मानसिक थकावट मिटाने के लिए प्रायः मनुष्य सो जाता है। मनुष्य नशा भी इसी लिए करता है। नशा और समाधि की अवस्था में चेतना निष्क्रिय हो जाती है। इससे थकावट दूर हो जाती है। पर इस प्रकार बार-बार इन अवस्थाओं का आसरा लेने से मन कमजोर हो जाता है। अधिक सोने वाला व्यक्ति और नशाखोर संसार का कोई महत्त्व का कार्य नहीं कर पाते हैं। मनुष्य को थोड़े ही काल इस संसार में रहना है। उसका जो समय सोने में बीत जाता है, वह व्यर्थ हो जाता है। नशा की अवस्था में समय का जाना और भी बुरा है। अधिक सोना जब आदत के रूप में हो जाता है तो उससे मुक्त होना कठिन हो जाता है।

अपनी चिन्ताओं को भुलाने के लिए मनुष्य गप्पें लगाने का भी सहारा लेता है। इस तरह वह कुछ काल के लिये अपने आप को भुलाने में समर्थ होता है। पर इस प्रकार उसकी चिन्ताओं का अंत नहीं होता, वे और भी बढ़ जाती हैं। गप्पें लगाने वाला व्यक्ति अपने समय को व्यर्थ खर्च कर देने के लिये अपने आपको कोसता रहता है। गप्प लगाना भी एक प्रकार की नशा-खोरी है, जिससे अपने आपको मुक्त करना बड़ा ही कठिन है।

थकावट काम करने से उतनी नहीं होती जितनी उसके विषय में चिन्ता करने से होती है। यदि मनुष्य अपनी चिन्ता का नाश करके अपना काम कर सके तो उसको थकावट की अनुभूति बहुत ही कम हो। चिन्ता का विनाश विचार के द्वारा होता है। वह विचार कोरा बुद्धिवाद नहीं होता, वह क्रियात्मक विचार होता है। चिन्ता काम के प्रति अपने दृष्टि कोण को बदल देने में नष्ट हो जाती है। पर इस प्रकार जीवन को सफल बनाना कठिन है। जिन के ऊपर सांसारिक जिम्मेदारियाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही नहीं, वे ही भविष्य के विषय में निश्चिन्त हो सकते हैं। सचमुच अपनी जिम्मेदारियों को अपने लिये कल्याणकारी मान कर ही चिन्ता नष्ट की जा सकती है।

मनकी साम्यावस्था मानसिक थकावट की विनाशक है। यह साम्यावस्था जिस काम को करना है उसके विषय में अच्छी भावनायें लाने से आती है। प्रत्येक काम करने में हमें आनन्द होता है। पर इस आनन्द को चिन्ता खा जाती है। यदि हम शान्त चित्त होकर काम के आनन्द के ऊपर मनन करें और आत्म निर्देश द्वारा इस आनन्द की वृद्धि करें तो मानसिक थकावट की अनुभूति कभी न हो।

इस प्रकार की मानसिक स्थिति लाने के लिये यह आवश्यक है कि हम उतावले होकर किसी भी काम को न करें। काम को जल्दी से समाप्त कर लेने की मनोवृत्ति काम से जी चुराने की मनोवृत्ति है। ऐसी अवस्था में किसी भी काम को करने में आनन्द की अनुभूति नहीं होती। उतावला होकर काम करने से बहुत जल्दी थकावट आ जाती है। इस प्रकार किया गया काम मानसिक शक्ति की वृद्धि न कर उसका ह्रास ही करता है। इससे व्यक्ति के स्वास्थ्य पर भी अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता।

योगियों का कथन है कि नींद से जितनी थकावट दूर होती है समाधि-अवस्था में पहुँचने से उससे कहीं अधिक थकावट दूर होती है। यह समाधि-अवस्था विचार होने से अथवा सद्भावनाओं के अभ्यास से प्राप्त होती है। मन को विचार-शून्य करना तभी सम्भव है जबकि मनुष्य एक ही तत्त्व को सर्वत्र देखने लगे। जब मनुष्य अपने को सब में और सब को अपने में देखता है, तब मन निश्चल हो जाता है। इस अवस्था में सब समय रहना कठिन होता है। साधारणतः 'सहज समाधि' का अभ्यास उपदेश है। इस प्रकार की समाधि प्रत्येक कार्य को कल्याणकारी मानने से और उसे रुचि के साथ करने से प्राप्त होती है। यदि हम किसी भी काम को श्रद्धा के साथ करें तो एक ओर हमें उसमें सफलता मिलती है और दूसरी ओर वह आनन्द और मानसिक शक्ति की वृद्धि करता है। काम को श्रद्धा के साथ करने से मानसिक थकावट की अपने आप निवृत्ति हो जाती है। इस श्रद्धा को बढ़ाने के लिये काम करने के पूर्व उसके विषय में सद्भावनाओं को दृढ़ बनाना आवश्यक है।

[६ पेज का शेषांश]

भोजन ही हमारे स्वस्थ्य और रोग का कारण है इसलिये इसमें जितनी सावधानी रक्खी जाय उतनी ही लाभदायक सिद्ध होगी भोजन करने का सबसे श्रेष्ठ नियम और समय [१] दिन के ११ बजे और [२] शाम को ६ बजे। भोजन करते समय इस प्रकार चबाना चाहिये कि वह बिलकुल पानी हो जाये। कोई भी समय भोजन के लिये निश्चित होना चाहिये।

आहार में उन ताजी वस्तुओं का सबसे ज्यादा हिस्सा होना चाहिये जो अपनी प्राकृतिक अवस्था में हो। ऐसा करने से आपके जीवन में एक विचित्र प्रकार का परिवर्तन होगा। जीवन में नवीन प्रकार का उत्साह, उमंग और आनन्ददायक विचारों से आप ओत-प्रोत हो जायँगे। आपको जीवन आरोग्यमय और प्रफुल्लित अनुभव होगा।

आपका जीवन एक स्वर्गीय जीवन हो जायगा। अगर आपने अपने आरोग्यकारी भोजन पर पूर्ण रूप से ध्यान दिया तो—किस व्याधि की ताकत है जो आपके सम्मुख दुःसाहस करके आ सके !

—:०:—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुख-श्री की वृद्धि के कुछ सहज उपाय

डा० रामचरण महेन्द्र, एम० ए० डी० लिट्, एफ० बी० टी० आई (लन्दन)

[आपने किसी के चेहरे पर वह सरल हंसी देखी होगी, जिसपर मानव का मन, उसका जीवन बार-बार निछावर होने लगता है। कितना सुन्दर, सुखदायक और आँखों को प्रिय लगता है ऐसा मुख-मण्डल। साथ ही आपने ऐसा मुख-मण्डल भी देखा होगा जिसमें आँखों से क्रोध की चिनगारियाँ निकलती हैं, भौंहें अभिमान से चढ़ी रहती हैं, अधर घृणा, ईर्ष्या, द्वेष से बिचके और नथने दम्भ से फूले रहते हैं!

पर आपने शायद इस पर विचार न किया होगा कि ये दोनों तरह के मुख-मण्डल अपनी सुन्दरता अथवा असुन्दरता की नहीं, हृदय की सुन्दरता अथवा असुन्दरता को प्रकट करते हैं। कारण, मुख-मण्डल मानव-हृदय को प्रतिबिम्बित करने वाला उज्ज्वल दर्पण है। आइने में हम मुख-मण्डल की सुन्दरता देखते हैं और मुख-मण्डल में हृदय की सुन्दरता। किन्तु साधारण दर्पण इस मुखमण्डल के दर्पण में एक खास विभेद भी है। साधारण दर्पण अपने को नहीं, दूसरों को प्रतिबिम्बित करता है। पर यह दर्पण पहले अपने को और बाद में दूसरों को भी। विद्वान लेखक ने इसमें सौन्दर्य के इसी मूल श्रोत का दिग्दर्शन कराया है।

यहाँ पर हम 'जीवन सखा' के पाठकों का आपसे परिचय भी करा देना चाहते हैं। डा० महेन्द्र हार्ट कालेज, कोटा (राजपूताना) में अंग्रेजी साहित्य के आचार्य हैं तथा मनोविज्ञान के एक धुरन्धर पण्डित। आपके लेखों में विषय की गम्भीरता और भावाभिव्यक्ति की सहज स्वाभाविक सरलता इन दोनों का सुन्दर सामंजस्य मिलता है। आपका विशेष परिचय तो पाठक आपके इस सुन्दर लेख के ही द्वारा प्राप्त करेंगे। —सं०]

बहुत से लोग अपने नित्य-प्रति के जीवन में अपनी मुख-मुद्रा (Expression) की ओर भूल कर भी ध्यान नहीं देते। वे कभी दर्पण में अपने चेहरे के प्रभावशाली केन्द्रों का निरीक्षण नहीं करते। अनेक व्यक्तियों के मुख-मण्डल पर जो झुर्रियाँ पड़ी रहती हैं, चेहरे पर जो बराबर मायूसी-सी छाई रहती है, इसका वास्तविक कारण क्या है, इस पर लोग बहुत कम विचार करते हैं। चेहरे के अवयवों पर अधिक जोर डालने से—जैसे मुँह बिचकाना, चिढ़ाना आदि—अपने आपको हर घड़ी दार्शनिक के रूप में बनाए रखने से, मुखमण्डल पर स्थायी रूप से झुर्रियाँ पड़ जाती हैं। इस तरह का मनुष्य समय आने से पहले ही वृद्ध दिखने लगता है। मुख-मण्डल मानव-हृदय को प्रतिबिम्बित करने वाला उज्जवल दर्पण है। अमुक व्यक्ति का हृदय कितना सुन्दर अथवा असुन्दर है, यह उसके मुख-दर्पण पर दृष्टिपात करके कोई भी व्यक्ति आसानी से समझ सकता है। संसार के मनोवैज्ञानिकों ने मनुष्य के चरित्र-विश्लेषण अथवा मनोविश्लेषण (Psycho-analysis) का मुख-मुद्रा को प्रमुख का साधन बनाया है। फिर यदि यह दर्पण धुँधला ही बना रहे तो, यदि मानव की आत्मा, मानव का हृदय प्रतिबिम्बित न होता रहे, तो भला मानव-जीवन किस प्रकार सुख-परिपूर्ण एवं आनन्दमय बन सकता है!

जिस प्रकार रेशमी वस्त्र में मोड़ने या तह लगा कर रखने के कारण सिकुड़न पैदा हो जाती है और फिर बारम्बार प्रयत्न करने पर भी वह दूर नहीं होती, वही बात चेहरे की झुर्रियों के भी सम्बन्ध में समझनी चाहिए। चेहरे की रगों और नसों को किसी विशिष्ट मुद्रा में बनाए रखने, मोड़ने या सिकोड़ने की आदत पड़ जाने पर वह आसानी से दूर नहीं की जा सकती। फिर तो मनुष्य अपनी इस आदत से लाचार हो जाता है—लाख प्रयत्न करने पर भी उससे छुटकारा नहीं मिलता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसे व्यक्ति यदि हँसना, खिलखिलाना अथवा उत्फुल्ल होना चाहें, तो भी उनके मुख-मंडल पर वह रौनक नहीं आ पाती जो वास्तव में आनी चाहिए। अपने वास्तविक मनोभावों को बरबस छिपाने और चेहरे को लगातार विद्रूपमुद्रा में बनाए रहने से मुखाकृति का बिगड़ जाना, उसकी सुन्दरता का नष्ट हो जाना सर्वथा स्वाभाविक है। निरन्तर क्रोध करने वाले व्यक्ति की आकृति भयानक हो जाती है और वह क्रोध की प्रतिमूर्ति बन जाता है। इसी प्रकार लगातार चिन्ता करते रहने से भी मुख-श्री को भारी आघात पहुँचता है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि मानसिक कारणों से नष्ट हुई चेहरे की सुन्दरता की क्षति-पूर्ति बाहरी उपकरणों से उतनी अधिक नहीं की जा सकती है जितनी कि प्राकृतिक साधनों से चेहरे को सुन्दर एवं प्रभावशाली बनाने के लिए दर्पण में सुतीक्ष्ण दृष्टि से अपनी मुखाकृति का अवलोकन करें। चेहरे का कौन-सा अवयव अथवा अंग सुडौल अथवा समानानुपातिक नहीं है, उसमें कौन-कौन से वैषम्य विद्यमान हैं, मुख-मण्डल पर किन-किन मनोभावों की स्पष्ट छाप पड़ती है, इन सारी बातों का अपनी मुख-मुद्रा के द्वारा पता लगाने का प्रयत्न कीजिए। इसके लिए किंचित् अभिनय (Acting) का भी अभ्यास करना चाहिये। प्रारम्भ में छोटे-छोटे मनोभावों को मुख-मण्डल पर मुद्रित करने का प्रयत्न करें और इसमें सफलता मिलने या क्रमशः अपेक्षाकृत गम्भीर मनोभावों का। उग्र मनोविकार मुख श्री को नष्ट कर देते हैं, इस बात को सदैव ध्यान में रखते हुए अपने को भूलकर भी मानसिक उद्वेगों—शोक, क्रोध, ईर्ष्या, घृणा आदि—का शिकार मत बनने दें। मन में शान्ति, आनन्द और उत्साह-वर्धक विचारों को स्थान दें। सद्विचार के स्थायित्व से ही मुखाकृति प्रभावशाली बनती है। जिसने अपने मनोविकारों पर अंकुश जमा लिया है, वह दूसरों को बड़ी आसानी से प्रभावित तथा आकर्षित कर सकता है। मन की एकाग्रता एवं अभ्यास से मनोद्वेग पर विजय प्राप्त की जा सकती है।

चेहरे को सुन्दर तथा प्रभावशाली बनाने के इस मानसिक साधन को समुचित रीति से उपयोग में लाने पर ही वाह्य उपकरण भी आंगिक उपचार के तौर पर चेहरे की सुन्दरता बढ़ाने में विशेष सहायक हो सकते हैं। किन्तु उसके लिए बाजारों में आमतौर से बिकने वाली पेटेन्ट दवाइयों, क्रीम, पाउडर आदि का प्रयोग न कर के प्राकृतिक उपचार करना श्रेयस्कर होगा। चेहरे की झाईं, मुहांसे, झुर्रियाँ, साधारण फुंसियां दूर करने के लिए नीबू का प्रयोग विशेष उपयोगी होता है। दही और छाछ मलने से चेहरे की स्वाभाविक लालिमा बढ़ती है, और मुख-मण्डल की त्वचा, स्वच्छ, सुकोमल और कान्तिवान् बन जाती है। इसी प्रकार के अन्य प्रकार के प्राकृतिक उपचार भी हैं जिनका बड़ी सफलता पूर्वक उपयोग किया जा सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मासिक धर्म-सम्बन्धी बीमारियाँ और उनका कारण तथा निदान

डा० इन्दुमती सिनहा, एन० डी० डी० वाई०

माहवारी के रोग कई प्रकार के होते हैं। जैसे—(१) पहली माहवारी में देर (२) माहवारी की रुकावट (३) अनियमित माहवारी (४) अनुकल्प रज, यानी माहवारी के बदले नाक आदि से खून जाना (५) स्वल्प रज, यानी बहुत थोड़ा स्राव होना (६) अतिरज—यानी बहुत अधिक मात्रा में स्राव होना (अत्यार्त्तव) (७) कष्ट के साथ माहवारी होना (कष्टार्त्तव) (८) श्वेत-प्रदर (९) माहवारी का बिलकुल बन्द हो जाना (Meno pause)

कभी कभी युवावस्था हो जाने पर भी माहवारी होने में देर होती है। कभी कभी ऐसा भी होता है कि एक बार माहवारी होने के बाद फिर बन्द हो जाय। स्नायुओं की कमजोरी, बहुत दिनों की बीमारी की कमजोरी, शरीर में खून की कमी, से ज्यादातर ऐसा होता है। कभी-कभी योनि के मुँह की झिल्ली न फटने से भी ऐसा होता है। इसका लक्षण है—माथे में भारीपन और दर्द, नाक या पाखाने की राह से खून आना, छाती धड़कना साँस लेने में तकलीफ होना, कमर और जांघों में भारीपन, निचले पेट में दर्द। अधिकता के साथ बिगड़े खून का जाना, अंग टूटना और दर्द होना माहवारी बिगड़ने की पहिचान है।

यह ध्यान रखना चाहिए कि माहवारी से सम्बन्ध रखने वाली बीमारियाँ बहुधा स्वयं कोई बीमारी न होकर बीमारी का लक्षण होती है। इस लिए इस तरह बीमारी का ठीक ठीक और सफलता के साथ इलाज करने के लिए यह आवश्यक है रोग के असली कारण का पता अवश्य लगा लिया जाय।

इतना निवेदन कर चुकने के बाद अब मैं माहवारी सम्बन्धी बीमारियों का अलग अलग और सविस्तार वर्णन करूँगी।

माहवारी का न होना (एमीनोरिया)

यह रोग दो प्रकार का होता है—प्राइमरी और सेकेण्डरी अगर कोई लड़की इस योग्य हो गई है कि उसे माहवारी हो लेकिन उसे माहवारी न होती हो तो यह प्राइमरी एमीनोरिया कहलाता है।

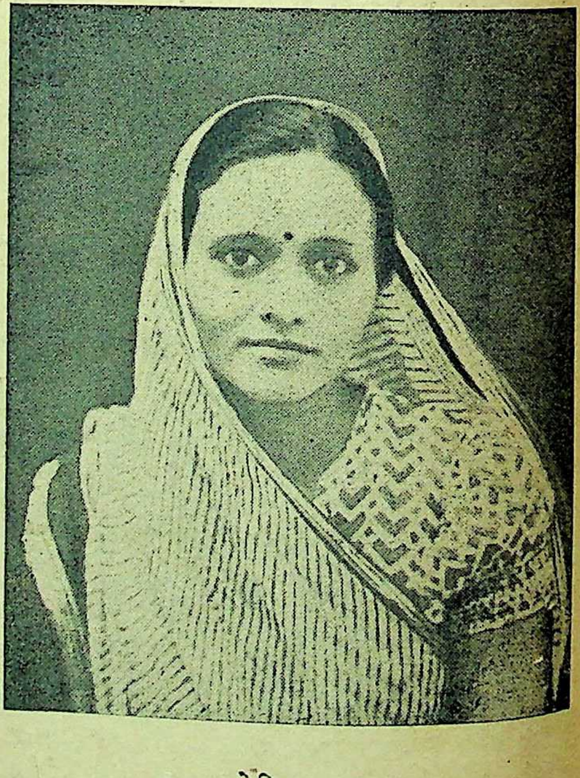

लेखिका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेकेण्डरी एमीनोरिया—कुछ समय के लिए, या बच्चा रह-जाने पर मासिक-धर्म का रुक जाना सेकेण्डरी एमीनोरिया कहलाता है। अगर माहवारी तो होती हो लेकिन उत्पादक-मार्ग में रुकावट होने के कारण इसका कुछ भाग अन्दर रुक जाता हो तो उसे क्रीप्टो मेनोरिया कहते हैं।

प्राइमरी एमीनोरिया के कारण—(१) शरीर संबंधी अवस्थाएं, जैसे खून की कमी, पीलिया (पाण्डुता), तपेदिक आदि शरीर को कमजोर करने वाले रोग। वामनापन भी इसका प्रायः कारण होता है।

(२) गर्भाशय और डिम्बकोष की बनावट में गड़बड़ी (३) सगर्भावस्था (बच्चा रह जाने की अवस्था) (४) भीतर के उत्पादक अवयवों की बनावट सम्बन्धी गड़बड़ी।

यह ध्यान रखना चाहिए कि मासिक-धर्म होने से पहिले भी गर्भ की स्थिति हो सकती है।

सेकेण्डरी एमीनोरिया के कारण—(१) शरीर सम्बन्धी अवस्थाएं (२) सगर्भावस्था, देर तक बच्चे को दूध पिलाना (३) शीत का लग जाना—जैसे माहवारी के दिनों में पांवों को गीला रखना। (४) मस्तिष्क के कुछ रोग (५) मस्तिष्क का धक्का (६) कुछ मार्फीमेनिया जैसे जहर और बुखार की वजह से। खून की कमी के कारण जब रजोदर्शन नहीं होता तब उसका विचित्र रूप होता है। रोगी के इतिहास से प्रकट होता है कि मासिक-धर्म धीरे-धीरे बन्द हुआ है। बिलकुल बन्द होने से पहले यह मटमैले रंग का या गंदला हो जाता है। कई महीनों और सालों तक अनियमित माहवारी होते रहने के बाद यह अवस्था आती है। रोगणी गहरी सांस नहीं ले सकती है। वह जल्दी थक जाती है, ओठ, नाखून, पीले हो जाते हैं। डिपथीरिया, चेचक, टाइफाइड बुखार, स्कारलेट (लाल) बुखार आदि अन्य कई कारणों से भी माहवारी नहीं होती, माता के दूध पिलाने का प्रभाव माहवारी पर अलग-अलग रूप में पड़ता है। कई बार के दूध पिलाने के कुछ समय बाद माहवारी होने लगती है और कइयों के एक साल तक दूध पिलाने के बाद, दूध छुड़ाने पर भी कुछ महीनों तक माहवारी नहीं होती।

इस अवस्था में यह भी हो सकता है कि समय से पहिले ही माहवारी होना बिलकुल ही बन्द हो जाय। मास्तिष्क का फोड़ा (अर्बुद) और पागलपन के कारण भी मासिक-धर्म बन्द हो जाता है।

उपचार—यदि सर्दी के कारण ऋतु बन्द हुआ हो तो रजोदर्शन के समय के पूर्व पांव को गरम पानी में रखना चाहिए। कटि-स्नान (हिप बाथ) और गरम पानी का एनीमा लेना चाहिये। आंतों की खूब सफाई रखनी चाहिये। शरीर को ताकत पहुँचाने वाला भोजन करना चाहिये। अन्ननास के मौसम में नित्य अन्ननास खिलाने से मासिक आरम्भ हो जाता है। नित्य मछली खाने से भी माहवारी होती है।

क्रीप्टोमेनोरिया—सयानी होने के एक या दो साल बाद सबसे पहले इस रोग का अनुभव होता है। ऋतु काल के समय ऐसा मालूम होता है कि जैसे रक्तस्राव होता हो, लेकिन बाहर किसी प्रकार का रजोदर्शन नहीं होता। उसकी दूसरी शिकायत यह होती है कि उसके पेट (कोष्ठ) का निचला भाग फूल रहा है, जो हर महीने बढ़ता जाता है और महीने के बीच में कुछ-घट सा जाता है।

स्त्री अपने को गर्भवती समझने लगती है। इसके इलाज के लिए योग्य चिकित्सक से सलाह लेनी चाहिए। बहुत अधिक खून जाना (अत्यार्तव)—इसमें माहवारी के दिनों में बहुत अधिक खून जाता है। किसी किसी में यह ३ दिन तक रहता है और किसी किसी में ७ दिन तक।

अकाल में ऋतु-दर्शन—इसमें ऋतु-काल के बिना भी गर्भाशय से रक्तस्राव होता है। ज्यादातर अत्यार्तव ही बढ़ कर इस अवस्था को पहुँच जाता है। इस लिए दोनों की जांच एक साथ करनी चाहिए।

इन दोनों में मुख्य अन्तर यह है कि अत्यार्तव का कारण शरीर सम्बन्धी या उत्पादन अंग सम्बन्धी कोई विकार होता है और अकाल में ऋतु-दर्शन का कारण अक्सर किसी रोग से शरीर में उत्पन्न हुई खराबी या विकार होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आयु	अत्यार्त्तव	अकाल में ऋतु
२५ वर्ष के पूर्व का कारण	गर्भाशय की शोथ जो ऋतु काल में शीत लगने से हो सकती है। गर्भाशय का भ्रंश (अपने स्थान के हट जाना)	म्युकस पोलीपस
२५ वर्ष से ४० वर्ष की आयु में उत्पन्न कारण	गर्भाशय की शोथ—गर्भाशय मे रक्त का जमाव होना। गर्भाशय का भ्रंश। गर्भाशय में किसी प्रकार का अर्बुद हो जाना।	म्युकस पोलीयस, गर्भाशय के विकार अर्बुद आदि गांठ पड़ जाना।
४० वर्ष की आयु के बाद	किसी प्रकार अर्बुद, गर्भाशय की शोथ, गर्भाशय में रक्त संचय गर्भाशय भ्रंश।	पूर्ववर्त्ती सब कारण

(१) अत्यार्तव के कारण—शरीर सम्बन्धी अवस्थाएं, शरीर में रक्त की अधिकता, यकृत में शोथ, अधिक भोजन करना या अधिक मद्य-पान, गर्मी का मौसम।

(२) स्थानिक कारण—गर्भाशय में रक्त का जमाव होना या गर्भाशय का अपने स्थान से हटजाना, गर्भाशय की शोथ, प्रसव के कुछ पदार्थ का अन्दर रुक जाना, गर्भाशय में तन्तुओं का बनना, डिम्ब-प्रणाली का शोथ या अर्बुद।

(३) अकाल में ऋतु—स्थानिक कारण—प्रसव कालीन किसी पदार्थ का अन्दर रुक जाना, गर्भाशय के बाहर रज और शुक्राणु का संयोग, सगर्भावस्था से मिला हुआ रक्त-स्राव गर्भाशय में अर्बुद आदि का होना।

इस बात को स्मरण रखना चाहिये कि अकाल में ऋतु का कारण शरीर सम्बन्धी अवस्थाएं नहीं हैं। इसका मुख्य कारण गर्भाशय सम्बन्धी विकार ही है।

सुगमता के लिये इन दोनों लक्षणों को दो भागों में बांट दिया गया है। जैसे—

१— वह अवस्था जब कि रुग्णा अविवाहिता हो।

२— वह अवस्था जब कि रोगिणी विवाहिता हो।

जब रुग्णा का विवाह कुछ समय पूर्व हुआ हो, और वह अत्यार्तव की शिकायत करे, साथ में गनोरिया के भी लक्षण बताए (जैसे बदबूदार स्राव, गँदला मूत्र) तो वह सम्भवतः गनोरिया से पीड़ित होगी।

परन्तु जहाँ कोई संक्रामक रोग की शिकायत न हो और अत्यार्तव के साथ कटि-शूल (कमर में पीड़ा) योनि से सफेद रंग का स्राव होता हो तो वहां पर यह समझना चाहिये कि सम्भवतः यह शिकायत गर्भाशय में खून का जमाव होने के कारण हुई है। यदि अकाल में बिना किसी गर्भावस्था के लक्षण के ऋतु-स्राव होता हो तो पोलिपस का अनुमान करना चाहिये। और यदि अकाल में ऋतु-दर्शन होने पर दर्द भी हो तथा कुछ समय के लिये मासिक धर्म बन्द हो जाय और फिर आरम्भ हो जाय, तो समझना चाहिये कि गर्भाशय के बाहर रज और शुक्राणु का संयोग हुआ है। ३५ साल की अवस्था वाली यदि किसी स्त्री में अत्यार्तव के बाद अकाल में मासिक सम्बन्धी रोग हो जाय तो गर्भाशय में अर्बुद होने की सम्भावना जाननी चाहिये।

जब रुग्णा गर्भवती हो—यदि ऋतु-दर्शन बन्द होने के कुछ दिनों के बाद फिर रक्त-स्राव हो, तो वह गर्भ-स्राव को सूचित करता है। यदि अनियमित रक्त-स्राव हो, रक्त की मात्रा थोड़ी परन्तु काला और थोड़े समय में बन्द होकर आता हो तो डिम्ब प्रणाली में गर्भ-क्षति का लक्षण समझना चाहिये। सगर्भावस्था के छठें या सातवें मास में यदि रक्त-स्राव हो, तो इसका कारण कमल का गर्भाशय के निचले मुख पर लगा होना अथवा उसके कुछ भाग का गर्भाशय से पृथक हो जाना है। गर्भाशय-ग्रीवा का अर्बुद भी अकाल में ऋतु उत्पन्न कर देता है।

जब रुग्णा गर्भवती हो चुकी हो—नूतन सगर्भावस्था में अपक्व डिम्ब के टूटने से रक्त-स्राव हो सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परन्तु जब यह रक्त-स्राव बन्द न हो और अकाल में भी होता रहे तो इसका कारण कमल का कुछ भाग गर्भाशय में बच रहा समझना चाहिये। यदि रोगणी की आयु ४० साल से ऊपर हो और वह कई बार गर्भवती हो चुकी हो उसमें यदि रक्त-स्राव होता है तो इसका कारण गर्भाशय-ग्रीवा का कैन्सर या गर्भाशय का शोथ होता है। वृद्धावस्था में गर्भाशय-शोथ के कारण भी ऋतु-दर्शन बन्द होने पर अकाल में ऋतु-रोग हो जाता है। इसके अतिरिक्त अर्बुद आदि के भी कारण रक्त-स्राव हो जाता है।

उपचार—शरीर सम्बन्धी कारण की चिकित्सा करनी चाहिये। स्वास्थ्य-सम्बन्धी बातों का, जैसे खान-पान का, थकान से बचने का गर्म या दुर्गन्धित वायु-मण्डल से दूर रहने का तथा सम्भोग से बचने आदि का ध्यान रखना चाहिये। अति सम्भोग से गर्भाशय में शोथ हो जाती है।

ऋतु आने के २-३ दिन पूर्व रोगिणी को बिस्तर पर रहना चाहिये और मृद विरेचन या एनिमा लेना चाहिये मलबन्ध (कब्जियत) के कारण वस्ति में प्रायः रक्त संचय हो जाता है।

ऋतु का बन्द होना—जिस समय अत्यार्तव बन्द होता है, उस समय वह कई रूप धारण कर लेता है। जैसे—रोगिणी को बिलकुल बेचैनी या किसी प्रकार की शिकायत नहीं होती। आर्तव ठीक प्रकार से होता हुआ अपने आप बन्द हो जाता है। यह प्रायः अविवाहित बहनों में होता है। दूसरी अवस्थाओं में मासिक धर्म अनियमित हो जाता है, रक्त की मात्रा बदल जाती है और एक लम्बे समय के पश्चात् अन्तिम बार जोर से और बहुत अधिक मात्रा में रक्त-स्राव होता है और फिर सदा लिए बन्द हो जाता है। परन्तु कइयों में वातिक लक्षण उत्पन्न होते हैं। जैसे—चक्कर आना, छाती में दर्द होना और जोड़ों का टूटना। पाचन-शक्ति बिगड़ जाती है, मल-बन्ध तथा अफारा रहता है, चर्बी बढ़ने लगती है। बहुत सी बहनें गिर जाती हैं और पागलपन की सीमा के समीप पहुँच जाती हैं। वस्ति-गह्वर में रचना-सम्बन्धी अन्तर आने लगता है। डिम्ब कोष छोटे हो जाते हैं और सिकुड़ जाते हैं। गर्भाशय आकार में छोटा हो जाता है।

कष्टार्तव—इसमें आर्तव के समय पीड़ा होती है। आम तौर से ६० से ७० प्रतिशत बहनों को ऋतु-काल में कष्ट होता है। परन्तु यहाँ पर उस पीड़ा से मतलब है जिसके कारण रोगियों को बिस्तर पर पड़ा रहना पड़े या उसकी उचित चिकित्सा की आवश्यकता पड़े।

प्रत्येक रोगिणी में दर्द का स्वभाव भिन्न-भिन्न होता है। जैसे—किसी में दर्द कोष्ठ में, नाभि या आमाशयिक प्रदेश पर, शूल के रूप में उत्पन्न होता है। यह दर्द नीचे नितम्ब और जंघाओं में से हो कर घुटनों तक पहुँचता है। किसी में दर्द कटि-भाग में होता है। रोगिणी को ऐसा प्रतीत होता रहता है कि उसकी कमर टूट रही है। कभी कभी सारे निचले भाग में दर्द होता रहता है।

कारण—इस लक्षण के कारण दो भागों में विभक्त किए जा सकते हैं। जैसे (१) शरीर-रचना-सम्बन्धी, और (२) स्थानिक। स्थानिक कारण भी कारण चार प्रकार के होते हैं—

(१) वस्ति गह्वर में रक्त-संचय—इसके कारण जब कष्टार्तव होगा, तब शरीर के निचले भाग में दर्द होता रहेगा। पीठ, पार्श्व (बगल) कोष्ठ, और जंघाओं में यह दर्द होता है। मासिक होने में एक या दो दिन पूर्व दर्द आरम्भ होता है और उसके एक दो दिन बाद तक रहता है। शरीर में भारीपन मालूम होता है। आतर्व के बीच के समय में सफेद पानी योनि से आता है। रोगिणी को अक्सर कब्ज की शिकायत रहती है।

(२) बनावट सम्बन्धी दोष—जब गर्भाशय का मार्ग तंग हो, या गर्भाशय की दीवारें मोटी हों—जिसमें आतर्व आने में दर्द होता है—गर्भाशय का झुकना या गर्भाशय के मुखका बन्द हो जाना, जो शोथ के कारण हो जाता है।

[शेष १९ वें पेज पर]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चयन

शाकों का राजा बथुआ

श्री मूलनारायण मालवीय

[बथुआ की गणना साग-पात की श्रेणी में की जाती है। अन्य शाक भाजियों की तरह इसे बोया नहीं जाता, इसकी खेती नहीं होती, बल्कि यह प्राकृति की एक नैसर्गिक देन के रूप में अपने आप खेतों में उपजता है। यह इतना सस्ता है कि शायद इसीलिए लोग इसे गरीबों का भोजन समझ कर इसकी अवहेलना करते हैं। पर, यदि इसके आहार-तत्वों पर ध्यान दिया जाय तो ज्ञात होगा कि यह मामूली साग पात समझी जाने वाली चीज नहीं, बल्कि मनुष्य के लिए एक अनमोल पदार्थ है।

इसमें ३·३ प्रतिशत खनिज पदार्थ, ४·७ प्रतिशत प्रोटीन, ४ प्रतिशत वसा (चिकनई), ३·० प्रतिशत कारबो हाईड्रेट, १५ प्रतिशत कैलशियम, ·०८ प्रतिशत फासफोरस और ४·२ मिली ग्राम प्रतिशत ग्राम लौह होता है। इसके विटामिन अभी ज्ञात नहीं हुए हैं किन्तु अब तक इसमें जिन तत्वों का पता लगाया जा चुका है उससे यह निर्विवाद है कि यह रोगी और निरोगी दोनों के लिए अत्यन्त लाभकारी और औषध-गुण सम्पन्न शाक है।—सं०]

यद्यपि वैद्यक शास्त्र में शाकाहार की निन्दा की गई है फिर भी निघंटु में शाकों के गुण वर्णित किये गये हैं। मेरी दृष्टि से थोड़ा सा शाक खाना लाभकारी और अधिक शाक सेवन करना हानिकारक है। प्रायः यह देखा जाता है कि हर ऋतु में लोग किसी न किसी प्रकार का शाक सेवन कर ही लेते हैं। बथुआ, करमुआ, चौलाई, पालक, कुलफा, पोई और लोनिया इत्यादि का शाक हर जगह सुलभता से प्राप्त हो जाता है। वर्षा ऋतु में खास तौर से शाक सेवन करना वर्जित है। कहावत प्रसिद्ध है कि "सावन साग न भादों दही" किन्तु करमुआ का साग अधिकतर वर्षा में ही पैदा होता है। उसका व्यवहार लोग बरसात में ही करते हैं; ग्रीष्म ऋतु में कुलफा और चौलाई तथा शरद् में पालक और बथुआ लाभकारी होते हैं।

बथुआ दो प्रकार का होता है, एक हरा और दूसरा लाल पत्तों का। दोनों के गुण एक समान हैं। एक प्रकार का जंगली बथुआ भी होता है पर वह व्यवहार में नहीं आता। बथुए को निघण्टुकारों ने 'शाकराट्' की उपाधि से विभूषित किया है जिसका अर्थ है शाकों का राजा। यह अधिकतर जौ के खेत में पाया जाता है। इस लिए इसे 'यवशाक' भी कहते हैं। बथुए का ऐतिहासिक महत्व भी बहुत है। यह प्रसिद्ध है कि विदुर के घर भगवान कृष्ण ने जो शाक खाया था वह बथुआ ही था "दुर्योधन घर मेवा त्यागी साग विदुर घर खायो।" आज भी बिजनौर में जो विदुर जी का आश्रम है वहां प्रसाद-स्वरूप बथुआ ही दिया जाता है।

गरीबों का आहार और व्यापार

बथुआ प्रकृति की देन है। यह बिना बोये अपने आप पैदा होता है। यह गरीबों के लिए एक बड़े सहारे की वस्तु है। आज भी इस कठिन महंगी के समय में पैसे दो पैसे सेर सुलभता से मिल जाता है। जिस प्रकार से बथुआ गरीबों का एक प्रकार से आहार है उसी प्रकार से यह उनका एक छोटा-सा व्यापार भी है, जो बिना पैसे के हो जाता है। गरीब ग्रामीणों की स्त्रियां और बच्चे अनेक सायंकाल खेतों में जाकर इसे उखाड़ लाते हैं और प्रातःकाल लाकर शहरों में बेंच जाते हैं। बथुए को व्रतों में भी फलाहार की जगह दीन-जन खाकर अपना धार्मिक कृत्य मना लेते हैं!

बथुआ इतना प्रिय और प्रसिद्ध शाक है कि इसके सम्बन्ध में तरह तरह की कहावतें भी प्रसिद्ध हैं। प्रसंगवश लोग यह कहा करते हैं कि "गेहूं के साथ बथुए में भी पानी लग गया" "सब साक शाकै है, बथुई का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शाक ईलाजै है।" यह प्रसिद्ध है कि एक बार बनारस के एक प्रसिद्ध कथावाचक को हथुआ राज से कथा बांचने के लिए बुलाया गया। लेन-देन में कुछ झगड़ा हो गया, कथावाचक जी ने यह कह कर हथुआ जाने से इनकार कर दिया कि "एक पैसे का खावंगे बथुआ, पर नहीं जायंगे हथुआ।" कहने का अभिप्राय यह है कि बथुआ प्रसिद्ध और सर्व प्रियदोनों है। गरीब और अमीर सभी के लिए यह हितकारी है।

अनेक रोगों की औषधि

दोनों प्रकार का बथुआ अग्निदीपक, पाचक, रोचक, हलका, नेत्रों को हितकारी, शुक्रकर्ता, बलकारक, दस्तावर तथा त्रिदोषनाशक है। इसके सेवन करने से ताप, तिल्ली, पित्त की बवासीर और कृमिरोग दूर होते हैं। औषधिरूप में इसे तरह तरह के कार्य में लाते हैं। प्लीहा में लहसुन के साथ सेवनीय है। आग के जले पर इसका रस लगाया जाता है। बथुए के रस में अजवाइन मिला कर खिलाने से चुरने, (चुन्न) जो मलद्वारा में लगते हैं, दूर होते हैं। इसे उबाल कर गर्म गर्म बांधने से वायुपीड़ा शान्त होती है। बथुए के बीज को उबाल कर काढ़ा बना कर देने से रुका हुआ मासिक-धर्म खुलता है। बथुए का साग खाने से दस्त साफ होता है। प्रसिद्ध यूनानी ग्रंथ "तिब्बे अकबरी" के लेखक ने लिखा है कि बथुए के साग अथवा बीज मीठे तेल में पकाकर खाने से अजीर्ण दूर होता है। साथ ही उसने बवासीर में इसका शाक खाने से विशेष लाभ बताया है। वैद्यक शास्त्र में भी अर्श पर यह गुणकारी माना गया है। बथुए को उबाल कर जल के साथ देने से प्रदर-रोग शान्त होता है। गौ आदि पशुओं के पेट फूल जाने पर बथुए के बीज को नमक मिला कर पीस कर गर्म पानी के साथ देने से आश्चर्यजनक लाभ होता है।

रुचिकर खाद्य

बथुए का सेवन नित्य प्रति के आहार में भी लोग करते हैं। इसके शाक को उबाल कर राई, नमक, हींग और भुने जीरे को मिलाकर दही अथवा माठे में रायता तैयार करते हैं। यह रायता रुचिकारी होता है। मेथी, हींग, जीरा और नमक मिलाकर इसकी भुजिया तैयार करके लोग दाल-भात के साथ बड़े स्वाद से खाते हैं। बथुए को उबाल कर निचोड़ कर मसाला मिला कर उर्द की तरह भर कर इसकी कचौड़ी बनाते हैं। अच्छी चीज तैयार होती है।

—संकलित

[१७ वें पेज का शेषांश]

(३) स्थिति का दोष—गर्भाशय का बाहर निकल आना या उलट जाना भी कष्टार्तव का कारण बनता है।

(४) वस्तिगह्वर की शोथ—यह प्रायः विवाहिता बहनों में कष्टार्तव के कारण होता है। इसमें गर्भाशय की शोथ, डिम्ब-कोष की शोथ, वस्ति-गह्वर के कारण भी शोथ का भी समावेश है जिसके कारण दर्द होता है।

शरीर सम्बन्धी कारण—पोषण-तत्वों के अभाव के कारण जब शरीर निर्बल हो जाता है तो गर्भाशय भी साधारण आकार से छोटा हो जाता है। मजदूर स्त्रियों में, जिनको देर तक काम करना पड़ता है, दूकान में काम-काज करने वाली, अथवा जिनको बहुत देर तक खड़ा रहना पड़ता है, या जो भीड़ या गन्दी हवा में काम करती हैं, उनको कष्टार्तव की शिकायत रहती है। बाल-प्रकृति की बहनों में भी यह शिकायत पायी जाती है।

उपचार—रोगिणी के स्वास्थ्य की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए। व्यायाम, सादा परन्तु पुष्टिकारक भोजन, विश्राम आदि की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए। दर्द कम करने के लिए ऋतु-काल से एक या दो दिन पहले मृदु-विरेचन या एनिमा देना चाहिए। इससे रक्त-संचय घट जायगा। गरम पानी में पांव रखना या गरम पानी में बैठना उत्तम है।

—:०:—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शर्करा (चीनी) के विषय में कुछ आश्चर्यजनक बातें

[प्रो० भवानी प्रसाद, प्राकृतिक चिकित्सोपाध्याय, कांगड़ी गुरुकुल विश्वविद्यालय, हरद्वार]

[सफेद चीनी को 'सफेद विष' कहा गया है। चीनी जैसी सुस्वादु, एवं दैनिक आवश्यकता की वस्तु को प्राकृतिक चिकित्सक 'सफेद विष' क्यों कहते हैं, इसका उत्तर आपको इस लेख में मिलेगा। साथ ही आप यह भी देखेंगे कि इसी शर्करा को यदि प्राकृत रूप में ग्रहण किया जाय तो वह हमारे स्वास्थ्य के लिए कितने उपयोगी तत्व प्रदान करती है।

बहुत सम्भव है कि साधारण शिक्षा तथा ज्ञान रखने वाले पाठक को विद्वान लेखक का यह सारगर्भित लेख आदि से अन्त तक पढ़ जाने और इसको हृदयंगम करने में कठिनाई हो, परन्तु धैर्य और मनोयोग पूर्वक एक बार इसे पढ़ जाने पर पाठक को कुछ 'प्राप्ति' होकर ही रहेगी, इसमें सन्देह नहीं। —सं०]

प्रशान्त महासागर में स्थित वेस्टइण्डीज़ West Indies द्वीप-समूह के अन्तर्गत हवाई Hawaii और ब्राजील Brazil नामक द्वीपों के निवासी ईख (गन्ने) को उसकी स्वाभाविक दशा में मुख्य आहार के रूप में खाते हैं। उसका मीठा कुछ अम्ल रस, जो उसको भली-भाँति चबाने से निकलता है, बहुत पोषक है। वहाँ के शिशु मीठे पके हुए गन्ने के लिए विशेष रुचि रखते हैं। उनके दाँतों की उत्तम दशा और उनके सुगठित, मृदु, एवं कान्तिवान् शरीर को देखकर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि गन्ने के स्वाभाविक रस में रक्त और अस्थियों का निर्माण करने वाले वे तत्व अवश्य होने चाहिएँ, जिनका बाजार में बिकने वाली सफेद चीनी में अभाव ही रहता है।

इस प्रकार हम जान सकते हैं कि श्वेत स्वच्छ शर्करा अस्वाभाविक आहार है। वह देह को कोई मुख्य पौष्टिक तत्व नहीं प्रदान कर सकती, क्योंकि उसमें जीवनदायक खनिज-लवण Mineral Salts और खाद्योज नहीं होते और इस प्रकार वह पाचन-शक्ति को नष्ट करने वाली होती है। श्वेत, स्वच्छ की हुई शर्करा देह को केवल ताप प्रदान करती है। वह स्वच्छ किया हुआ ऐसा ईंधन है जो देह-तन्तुओं में जल तो जाता है, किन्तु वह अपने पीछे मौलिक भस्म (क्षारीय तत्व) का अवशेष और खाद्योज देह को सुदृढ़ बनाने और सुधारने के लिए, नहीं छोड़ जाता।

शरीर-यंत्र के सम्यक् संचालन के लिए पूर्वोक्त तत्वों—मौलिक भस्म के अवशेष और खाद्योजों—का होना अनिवार्य रूप से आवश्यक है। शरीर-यंत्र इनके बिना अपना कार्य समुचित रीति से नहीं कर सकता और हम स्वस्थ नहीं रह सकते। किन्तु ये तत्व मिल की बनी सफेद चीनी में विद्यमान नहीं हैं।

प्रकृति के आधारभूत नियम के अनुसार प्रत्येक समान गुण वाला पदार्थ अपने समान गुण वाले अन्य पदार्थ को अपनी ओर खींच लेता है। पदार्थों का यह गुण रसायनशास्त्र की परिभाषा में रासायनिक प्राति कहलाता है। इसलिए देह में पचे हुए किसी पदार्थ की अतिरेक युक्त (अत्यन्त बढ़ी हुई) धनात्मक Positive वा ऋणात्मक Negative दशाएँ देहरचना में देहव्यायारात्मक रिक्त स्थानों Physiological Vacuums को जन्म देती हैं। अर्थात् यदि हमारे देह में विद्युत् की धनात्मक वा ऋणात्मक अत्यंत बढ़ी हुई दशाओं वाला कोई पदार्थ पचाया जाता है हमारी देह-रचना के इन्द्रियव्यापार में न्यूनता आ जाती है और यह न्यूनता किसी निशाचर के समान प्रत्येक क्षारीय पदार्थ Alkaline Substance और धातु पदार्थ Mineral पर, जहाँ तक उसके प्रभाव की पहुँच हो सकती है, इसलिए आक्रमण कर सकती है कि वह अपनी भग्न रासायनिक प्रीतियों Ruptured affinities की क्षुधा (भूख) की सन्तुष्टि कर सके अर्थात् समान प्राति वाले पदार्थों की बढ़ी हुई भूख को मिटा सके—उनकी न्यूनता की पूर्ति कर सके। अतएव यदि सम ऋणात्मक क्षारीय तत्ववर्जित स्वच्छ की हुई श्वेत शर्करा का सेवन करके उसको अपने देह में पचाते हैं तो वह हमारे देह में से स्ववर्जित विपरीत समान गुण वाले पदार्थों का आकर्षण अवश्य करती है। इसलिए जो स्वच्छ की हुई श्वेत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शर्करा के हानिकारक प्रभाव का वर्णन यहाँ हो रहा है उसमें कुछ भी अनुमानातिरेक वा अतिशयोक्ति नहीं है। अतः स्वच्छ की गई शर्करा लोह Iron सोडियम Sodium मग्न Maguesium और जल से रहित है और पोटाशियम Potassium गन्धक Sulphur खटिक Calcium की अत्यल्प लवलेशों से युक्त है, अतः वह उस निशाचर का रूप धारण कर लेती है, जो आमाशय Stomach में से ओषजन Oxygen को, मांसपेशियों Muscles में से सोडियम Sodium को, दाँतों और अस्थियों में से खटिक Calcium को और मस्तिष्क Brain में से स्फुर Phosphorus को, चूस लेता है। जिन स्वाभाविक आहार पदार्थों में से कृत्रिम रीति के द्वारा जो भिन्न भिन्न आहारतत्व निकाल लिए जाते हैं, उनसे हमारे देह की जीवन-शक्ति पोषण नहीं पा सकती।

इसलिए जब स्वच्छ की हुई शर्करा (चीनी), जो वस्तुतः पूर्णरूपेण अप्राकृतिक आहार denatured food है, खाई जाती है तो देह में उसके दहन Combustion होने या जलने से जो अम्ल Acids उत्पन्न होते हैं उनको हटाने के लिए आवश्यकता क्षारीय तत्वों Alkaline Elements को रक्त Blood में जुटाने के लिए देह कोष्ठक Body cells शीघ्रता पूर्वक टूटने लगते हैं। जब तक रक्त में लोह iron और सोडियम Sodium तत्वों का सतत नवीकरण न किया जाय, रक्त में पर्याप्त ओषजन को ग्रहण करने की शक्ति नहीं रहती है और ओषजन बिना रक्त शुद्ध नहीं रह सकता है। फलतः शर्करा के दाह द्वारा समुत्पन्न पदार्थों के दोष दूर नहीं किए जा सकते और उनको देह से बाहर नहीं किया जा सकता है। रक्त-धारा निरर्थक विषों से भर जाती है—अतिभारयुक्त हो जाती है और उससे दीर्घसूत्रता और शिथिलता (देह में सुस्ती और ढीलापन) आजाती है। देह के इस नियमित विषाक्तीकरण से बहुत से रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

स्वच्छ न की हुई कची शर्करा अर्थात् शक्कर में गन्ने का समग्र माधुर्य (पूर्ण मिठास) ही नहीं होता है, किन्तु उसमें उसके बहुत से सुगन्धित Aromatic और पोषक Nutritious तत्व भी होते हैं। कची शक्कर में जहाँ गन्ने के मौलिक और कृत्रिम क्रिया से अदूषित रस के स्वास्थ्यप्रद गुण विद्यमान हैं वहाँ, उस पर श्वेत शर्करा की अपेक्षा न्यूनतर स्वच्छीकरणक्रिया की गई है। और इसलिए उसमें बहुत बहुमूल्य क्षार (Minerals) स्थिर रहते है जो स्वच्छ की हुई श्वेत शर्करा में बिल्कुल ही नहीं है।

गन्ने के जाने पर उसे भूमि से मिलाकर काट लिया जाता है और कोल्हू में पेल कर उसका रस निकाला जाता है। रस का स्वच्छ करने के लिए उसमें खटिक द्विगन्धित Bisulphate of Lime मिलाया जाता है। इसमें उसमें से गन्धकाम्ल Sulphuric Acid निकलता है और वह अण्डश्वेतिमा सदृश पदार्थ Albumen को जमा देता है। उक्त श्वेतिमा शनैः शनैः रस के पात्र की नली में बैठती है और रस को दूसरे बर्तन (कढ़ाव) में निकालकर सीधा तीक्ष्ण अग्नि पर पकाए जाते हुए उस पर जो काष्ठोज cellulose लघु कण तैरते हैं वे दूर कर दिए जाते हैं। इसको भपी या झारा उतारना कहते है। पकते हुए रस की भपी इकट्ठी कर ली जाती है और उसमें से रम Rum नामक इक्षुमद्य (गन्ने की शराब) चुआ लिया जाता है। और बचा हुआ गाढ़ा किया हुआ रस ठण्ढा करने के लिए उथले कढ़ाव में रखा जाता है। ठंण्ढा होने पर शक्कर के रवे शीघ्र बन जाते हैं और यही कची शर्करा (शक्कर) कहलाती है। बचा हुआ अति गहरे रंग भूरे का तरल पदार्थ शीरा कहलाता है और उसमें गंधकाम्ल Sulphuric Acid का बड़ा अंश रह जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने विचार

तर्क बुद्धि या विवेक बुद्धि ?

यह बीसवीं सदी 'नयापन' का युग है—आधुनिकता का, आविष्कार का। आज का मानव बात-बात में नवीनता ढूँढ़ता है। वह 'स्टेल' या 'बासी' चीजों का नहीं 'ताजी' चीजों का शौकीन है। आहार-विहार की तरह वह आचार-विचार को भी 'ताजा' अथवा 'बासी' समझ कर उसका वह स्वागत अथवा तिरस्कार करता है। जिसमें कोई नयापन नहीं, उसे वह दकियानूसी का नमूना समझता है, उससे घृणा करता है। जिस बात में दिल नहीं जमता वह दिमाग में आ ही कैसे सकती है। दिल तो उसी में लगता है, दिल को वही बातें अच्छी लगती है जिसमें कुछ नयापन हो। यही है आज के मानव की मनोवृत्ति की रूप-रेखा—यही है उसकी सहज पहचान।

आधुनिक मानव-जीवन के चित्र का यह एक पहलू है, जो आँखों को चकाचौंध कर देने वाला है। लेकिन हमें इस पहलू पर नहीं उस दूसरे पहलू पर जो दुःखद, सन्ताप जनक और शोचनीय है उस पर विचार करना है।

आधुनिक वातावरण में रहने वाले आज सौ में ९० व्यक्ति—और सच पूछिए तो इससे भी अधिक—आपको ऐसे मिलेंगे जो किसी न किसी शारीरिक या मानसिक सन्ताप से पीड़ित हैं। इसका कारण क्या है ? आधुनिक विकास का युग आविष्कार का युग है। आज मानव-मस्तिष्क रात दिन नये नये अनुसंधानों में लगा हुआ है। फिर उसकी यह दुर्दशा क्यों ? उसने तो नए रोगों का पता लगाया और उनका नामकरण किया है। नई-नई दवाइयाँ तैयार की हैं, एक से एक बढ़कर। फिर भी किसी 'रक्त-बीज' की तरह मनुष्य को सताने वाले रोग नष्ट होने के बजाय बढ़ते ही क्यों जा रहें हैं। रोगों पर विजय पाने में आधुनिक मानव के उर्वर मतिष्क की यह असफलता क्यों ? एक प्रकृतिवादी की दृष्टि में सब रोगों की जड़ एक ही है, चाहे उसके अनगिनती रूप भले ही हों। इसलिए वह सब रोगों की दवा भी एक ही समझता है। उसकी दृष्टि परिणाम पर नहीं कारण पर पड़ती है। कारण वह सब रोगों का ही पाता है। बस इसीलिए वह सब रोगों को एक ही देखता और समझता है। लेकिन नवीनता के उपासक आधुनिक मानव मस्तिष्क को यही बातें समझ में नहीं आतीं। वह सोचता है, किसी की आँख की रोशनी मन्द पड़ गई है तो उसके लिए पेट की सफाई करने या खान-पान बदलने से क्या प्रयोजन ? इसके लिए तो आँखों में डालने की कोई दवा या ऐनक की जरूरत होनी चाहिए। उसकी जगह यह क्या ? रोगों की यह एकरूपता कैसी ?

तार्किक मस्तिष्क को यह समझाना कठिन ही है। लेकिन इसके विपरीत हम तो यही समझते हैं कि आहार के रूप में हम जो कुछ भी ग्रहण करते हैं उसी से वह रस तैयार होता है जो इस शरीर-यंत्र को परिचालित करने के लिए परमावश्यक है। उसी की अच्छाई-बुराई पर शरीर के रोग-आरोग्य निर्भर करते हैं। सभी रोग लक्षण अथवा परिणाम ही होते हैं। उनका मूल कारण तो आहार-विहार ही है। यदि कारण को दूर कर दिया तो परिणाम अथवा लक्षण अपने आप दूर हो जायंगे। प्राकृतिक चिकित्सा आज के पीड़ित किन्तु तार्किक मानव को यही समझाना चाहती है और सचमुच यह कार्य बहुमुखी रोग का निराकरण करने से भी कठिन है। यह समझने के लिए तर्क-बुद्धि की नहीं विवेक-बुद्धि की आवश्यकता है। आज का मानव इस पर विचार करे—आधुनिकता का टोप अपने सिर से हटा कर, प्रकृति की शीतल छाया में बैठकर। उसने परिणाम को दूर करने, उसका उन्मूलन कर डालने में अपनी असमर्थता देखली है। वह अब कारण को समझे, उसे मिटाने का प्रयत्न करे, और देखे कि इससे उसे इस कार्य में कहाँ तक सफलता मिलती है। बस यही हमारी एकान्त लालसा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

76283

प्रश्नोत्तर

[इस स्तम्भ में जिज्ञासु पाठकों के प्रश्नों के उत्तर दिए जाते हैं। पाठकों को चाहिए कि वे एक बार दो से अधिक प्रश्न पूछने का कष्ट न करें और जहाँ तक हो सके अपने प्रश्न संक्षेप में ही लिखें। यह ध्यान रहे कि इस स्तम्भ का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य यह है कि किसी एक व्यक्ति की जिज्ञासा का लाभ दूसरे पाठक भी उठावें।

प्रश्नों के भेजने के सम्बन्ध में आवश्यक नियम यह है कि प्रश्नों को प्रश्नोत्तर कूपन के साथ भेजा जाय। प्रश्नोत्तर कूपन कवर के तीसरे पेज के नीचे दिया गया है। —सं०]

प्रश्न—मुझे पिछले २५ वर्षों से आँख की तकलीफ है। दृष्टि-शक्ति बराबर क्षीण होती जा रही है। बायीं आँख बहुत कमजोर हो गई है और उससे मैं एक शब्द भी नहीं पढ़ सकता। मुख्य कारण शायद यह है कि मैं इसको काम में नहीं लाता, इसलिए समूचा जोर दाहिनी आँख पर ही पड़ता है। पर यह निष्प्राण अथवा निस्सतेज नहीं हो गई है। अतः क्या आप कुछ ऐसी हिदायतें करेंगे, जिनसे मैं लाभ उठा सकूँ ?

—एच. वी. कपूर, गुड्स क्लर्क,
मुजफ्फर नगर।

उत्तर—अन्य रोगों की भाँति आँखों की अनेक बीमारियों का भी कारण प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली के अन्तर्गत कब्ज ही बताया गया है। कब्ज का आँखों की बीमारी से बहुत गहरा सम्बन्ध है। इसलिए आपको अपने उपचार का आरम्भ भी यहीं से करना चाहिए। आपको लगभग दो महीने तक प्रतिदिन प्रातः काल शौच से लौटने के बाद गुनगुने पानी में नीबू का रस निचोड़ कर एनिमा लेना चाहिए। इसके अतिरिक्त आपको पेडू-नहान या हिप-बाथ भी १५-बीस मिनट तक करना आवश्यक होगा। अच्छा तो यह होगा कि आप सुबह शाम दोनों वक्त हिप-बाथ लें, पर यदि इसमें कोई विशेष असुविधा या दिक्कत जान पड़े तो कम से कम एक वक्त तो इस क्रम को चलाना ही होगा। आहार में खनिज लवणों का, विशेषतः विटामिन 'ए' का, अभाव होना भी नेत्र-रोगों का एक प्रभाव कारण बनता है। इस आहार-तत्व की पूर्त्ति आप इन खाद्य-पदार्थों के सेवन से कर सकते हैं—बिना उबाला हुआ ताजा दूध (यदि गाय का हो तो सर्वोत्तम) मक्खन, सभी हरी पत्तियों वाली शाक-भाजी, टमाटर, पीली गाजर, हरी धनिया, चने का शाक, पालक, कागजी नीबू, पका पपीता, हरी मटर, पात गोभी, और अण्डे की जरदी। इनमें से आप अपनी रुचि और सुविधा के अनुसार दो-तीन खाद्यों को चुन लें। अपने भोजन में आपको मौसमी फल, हरी शाक-सब्जियों, नीबू और मक्खन को विशेष स्थान देना होगा। घी चाहे तो न भी लें पर आँख के रोगी के लिए मक्खन जरूर लेना चाहिए। पेट की सफाई और आहार के अलावा आपको आँखों को आराम पहुँचाने के लिए कुछ खास तरकीबें भी करनी होंगी। सब से पहली बात तो आप यह करें कि कभी किसी चीज को टकटकी लगा कर (ऐसा करने से आँखों पर अनावश्यक और अनुचित दबाव या जोर पड़ता है) न देखें। पलकें बराबर धीरे धीरे गिराते रहें, आँखों पर बिना दबाव डाले। दिन में आध घंटे से लेकर एक घंटे तक आपको तीन बार पामिंग भी करना चाहिए। पामिंग करने का तरीका यह है। आप किसी कुर्सी पर (अगर आराम कुर्सी हो तो और भी अच्छा) बदन को ढीला कर के बैठ जायँ सामने एक छोटी सी टेबुल रख करलें। फिर उसी टेबुल पर हाथों की टेहुनियों को रख कर और फिर आंखें बन्द करके दोनों हथेलियों को प्याले के रूप में बनाकर आंखों को इस प्रकार ढक लें कि उन पर कत्तई कोई दबाव या बोझ न पड़ने पाये। दाहिने हाथ की अँगुलियां बाई हथेली की अँगुलियों के ऊपर रहनी चाहिये। इस अवस्था में जितनी देर तक हो सके बैठे रहें और नीले रंग की वस्तु में श्वेत रंग की धारियों की कल्पना करें। इस क्रिया से आपकी आंखों को बड़ा आराम मालूम होगा, क्रमशः आपको चीजें ज्यादा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साफ दिखाई देने लगेंगी, आंखों की रोशनी बढ़ेगी।

दिन में जितनी बार आप कुल्ला करें या मुँह धोयें, उतनी बार मुँह में पानी भर कर मुँह बन्द करलें और दोनों आंखों पर धीरे धीरे शीतल जल के छींटे दें। आपको तो ऐसे दिन में २०-२५ बार करना चाहिये। भोजन करने के उपरान्त हाथ धोकर दोनों गीली हथेलियों को आंखों पर थोड़ी देर तक फेरते रहें। पानी में दो-चार बूँद नीबू का रस मिलाकर उसे आंखों में डालना चाहिये। सुबह-शाम जब कि सूर्य की किरणें तेज नहीं रहती आप थोड़ी देर तक सूर्य की ओर मुख करके खड़े हो जायँ और आँखों को बन्द कर लें। इस प्रकार सिर को धीरे धीरे दाहिने बायें घुमाते हुये आंखों पर सूर्य-रश्मियों का लगभग १५ मिनट तक प्रयोग करें। उसके बाद साए में आकर पामिंग करें, फिर आँखों में ठण्डे पानी के छींटे मारिये और तब दृष्टि-परीक्षण चार्ट (Eye Test Card) को पढ़ने का अभ्यास कीजिए। खासतौर से बायां आँख से, जो कि आपकी कमजोर है। सूर्य-रश्मियों का प्रयोग आप ठीक-ठीक कर रहे हैं, इसकी पहचान यह है कि साए में आकर आँखें खोलने पर आपको चीजें अधिक साफ दिखाई देनी चाहिए, धुँधली नहीं। इस प्रकार का सूर्य-स्नान लेना आपके लिए बहुत जरूरी है। बस आपके रोग का यही उपचार है यहाँ पर जो बातें बताई गई हैं उनका यदि आप कुछ समय तक नियमित रूप से और ठीक-ठीक अनुकरण करें तो महीने-दो महीने में आपको लाभ अपने आप प्रतीत होने लगेगा।

(२) प्रश्न—मेरे एक चचेरे भाई हैं। उनके 'सिहुली' हो गई है जो करीब-करीब सारे बदन में फैल गयी है। चार-पाँच वर्ष से है। कभी अच्छी भी हो जाती है। लेकिन जड़से नहीं जाती कहने का मतलब यह कि कम हो जाती है। मैं आशा करता हूँ कि आप इसका कोई उपचार बतायेंगे जिससे कि मैं फौरन उनका इलाज शुरू कर दूँ।

—शोभानाथ, पण्डोई (बिहार)

उत्तर—'सिहुली एक प्रकार का चर्म रोग है। गलत खान पान व रहन-सहन से रक्त के दूषित हो-जाने पर ही विभिन्न चर्म रोग शरीर को सताते हैं। अतः सर्व-प्रथम रोगी के भोजन में सुधार होना परमावश्यक है। भोजन में से अप्राकृतिक व अम्लोत्पादक खाद्य-पदार्थों (जैसे—छना हुआ आटे की रोटी, वेसन व मैदे के बने पकवान, मिठाइयाँ व नमकीन, धोई हुई दालें, चाय, बिस्कुट, डबल रोटी, छीले हुए आलू व घुइयाँ का साग, खूब मसालेदार शाक-सब्जी, पालिश किया हुआ चावल आदि और रबड़ी-मलाई, शक्कर मिला औटाया दूध) आदि को कम-से-कम रोग की अवधि तक अवश्य निकाल देना चाहिए। इनकी जगह रोगी के आहार में मौसमी हरे शाक व फलों की बाहुल्य रखना चाहिए। चर्म रोगों में 'सल्फर' (गन्धक) व विटैमिन 'सी' वाले प्राकृतिक खाद्य-पदार्थ विशेष कर लाभदायक हैं। इनमें मूली, गोभी, करमकल्ला, प्याज, गाजर, शलजम, टमाटर, नीबू, शंतरा सेब और अमरूद आते हैं। अब जाड़े का मौसम आ रहा है ये सब पदार्थ बहुतायत से मिलेंगे इसलिए जाड़े भर रोगी के भोजन में इनकी प्रधानता रखिए। गाजर व टमाटर का रस भी चर्म रोग में बड़ा ही हितकारी है और रोगी को दिया जा सकता है। इसके अतिरिक्त रोगी को प्रथम तीन दिन नीबू के रसके साथ पानी पीकर उपवास करना चाहिए और कुछ दिन शौच हो आने के बाद प्रातः एक बार एनिमा लिया जाना चाहिए। प्रतिदिन १५ मिनट से आधे घण्टे तक प्रातः धूप स्नान लेना भी आवश्यक है। धूप स्नान लेते समय सर को अवश्य गीली तौलिया से ढक लेना चाहिये क्यों कि सर में गर्मी न पहुंचना चाहिये। सप्ताह में एक बार यदि भाफ नहान का प्रबन्ध हो सके तो उसे लेना भी लाभदायक होगा इनके अतिरिक्त महीने दो महीने पेड़ू-स्नान (Hip Bacth) दोनों समय १०-१५ मिनट के लिये लिया जा सकता है। रात में सोने के पूर्व मिट्टी की पट्टी पेड़ू पर रख एक गिलास गुनगुने पानी में एक या दो कागजी नीबू का रस मिलाकर पीना चाहिये। आशा है उपर्युक्त भोजन सुधार, जल-चिकित्सा व धूप-स्नान आदि उपचारों करने पर आपके भाई अवश्यमेव रोग से मुक्ति पा जायँगे।

—कामता प्रसाद अग्रवाल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पढ़िये ! **लाभ उठाइये !!**

सुन्दर, स्वस्थ और सुखी जीवन के इच्छुकों को ये पुस्तकें पढ़नी चाहिए

(१) रोगों की अचूक चिकित्सा (चतुर्थ संस्करण) : श्री जानकीशरण वर्मा, बी॰ ए॰ ५)
(२) मठा उसके गुण तथा उपयोग (परिवर्धित संस्करण) : श्री महेन्द्रनाथ पांडेय ॥=)
(३) हमारा भोजन—श्री महेन्द्र नाथ पाण्डेय ... ... ४)
(४) स्वास्थ्य के नुस्खे—'जीवन सखा' कार्यालय ... ... ।)
(५) क्या और कैसे खायँ—डा॰ बालेश्वर प्रसाद सिंह ... ... ।=)
(६) ब्रह्मचर्य ही जीवन है—स्वामी शिवानन्द ... ... १॥)
(७) आनन्दमय जीवन—श्री शंकर लाल तिवारी ... ... ॥)
(८) कब्ज या कोष्ठबद्धता : डा॰ बालेश्वरप्रसाद सिंह ... ... १)
(९) आँख का अचूक इलाज : श्री महेन्द्रनाथ पांडेय ... ... २)
(१०) शाकों के गुण—श्री नारायणप्रसाद अरोड़ा ... ... १)
(११) फलाहार—श्री नारायणप्रसाद अरोड़ा ... ... १)
(१२) वैज्ञानिक जल चिकित्सा—श्री कुलरंजन मुखोपाध्याय ... ... २)
(१३) सचित्र हठयोग—स्वामी शिवानन्द ... ... १।)
(१४) मन और उसका निग्रह (प्रथम भाग)—स्वामी शिवनन्द ... १)
(१५) मन और उसका निग्रह (द्वितीय भाग) ,, ... ३)
(१६) हम सौ वर्ष कैसे जीवें : श्री केदारनाथ गुप्त, एम॰ ए॰ ... ... १॥।)
(१७) आरोग्य-साधन—महात्मा गाँधी ... ... ॥।)
(१८) स्वास्थ्य साधन—श्री रामदास गौड़ ... ... ३॥)
(१९) आहार ही औषध है : डा॰ एल॰ एन॰ रतरा ... ... १।)
(२०) जल चिकित्सा (पहलाभाग)—श्री राखालचन्द्र चट्टोपाध्याय ... १॥।)
(२१) Nature Cure by H. Lindlahr, M. D. 7-8-0
(२२) Food-de-Medicine by Dr. L. N. Ratra, H. M. B. ... 1-0-0
(२३) Universal un-cooked food 3-8-0
(२४) Nature Cure of Eye defect By Dr. K. L. Sharma. . 2-0-0
(२५) Practical Nature cure ,, ,, ,, 8-8-0

स्वास्थ्य सम्बन्धी पुस्तकें मिलने का पता :—

मैनेजर, स्वास्थ्य ग्रंथ-भण्डार लूकरगंज, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे जीवन से निराश हो चुके थे !

किन्तु वही अब देखिए क्या कहते हैं !

"जिन दिनों मैं कालिज में था, खूब खाता और कसरत करता था। कभी किसी चीज की थी नहीं। कब्ज की शिकायत थोड़ी बहुत बनी रहती पर उसकी परवाह कौन करता ? जब वकालत शुरू की, खाना तो वही जारी रहा पर वर्जिश कम हो गई। इसका असर यह हुआ कि पेट में गड़बड़ी बढ़ने लगी। दस्त भी होने लगी। कुछ दिनों बाद सिर खाली खाली सा रहने लगा, दिमागी काम से जी हटने लगा। बड़ी परेशानी उठा रहा था। इसी बीच **प्राकृतिक स्वास्थ्यगृह, प्रयाग** की बाबत जानकारी हुई। इलाहाबाद में रह कर इलाज कराने लगा। कभी रोग बढ़ता दिखता और कभी इलाज से फायदा मालूम होता। कुछ दिन इस तरह बीतने के बाद मेरी तबियत सुधरने लगी और मैं पूरा भला चंगा हो गया।"

—गुरुचरनप्रसाद सिन्हा वकील व ज़मीदार सीतापुर

इसी तरह के न जाने कितने असाध्य और निराश रोगियों को प्राकृतिक चिकित्सा-विधि से नया जीवन मिला है।

यदि आप भयानक से भयानक, व्याधि, अथवा जीर्ण रोग से पीड़ित हो रहे हैं तो उससे छुटकारा पाने के लिए नीचे लिखे पते से पत्र-व्यवहार करें। हमारे स्वास्थ्य गृह में प्रायः सभी प्रकार के रोगों का नैसर्गिक विधियों से सफलतापूर्वक इलाज होता है।

स्वास्थ्य गृह में रोगियों के रहने का प्रबन्ध

स्वास्थ्य गृह में रोगियों के आराम और सुविधा के ख्याल से दो श्रेणियां निर्धारित कर दी गई हैं। प्रथम श्रेणी के रोगी से १००) मासिक और द्वितीय श्रेणी के रोगियों से ७५) मासिक लिया जाता है, जिसमें चिकित्सा की फीस भी शामिल है। रोगियों को अपने भोजन का प्रबन्ध अलग से करना पड़ेगा। पूरा विवरण पत्र भेजकर प्राप्त करें। पत्र के साथ टिकट भेजना जरूरी है।

नोट—हमारे यहां संक्रामक रोगों से पीड़ित रोगियों के रखने का प्रबन्ध नहीं है

व्यवस्थापक:

प्राकृतिक स्वास्थ्यगृह, लूकरगंज, इलाहाबाद।

PRINTED BY M. L. PANDAY AT THE ... ALLAHABAD.
PUBLISHED BY SYT. BALESHWER PRASAD SINHA, 5, LUKER GANJ ALLAHABAD.
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन सखा

शारीरिक, मानसिक और नैतिक स्वास्थ्य
पथ-प्रदर्शक

संयुक्त प्रान्त, मध्य प्रान्त तथा बिहार के शिक्षा विभागों द्वारा स्वीकृत

इस अंक में पढ़िये

१—वचनामृत ······महात्मा गांधी·······	...	१
२—होमियोपैथी बनाम प्राकृतिक चिकित्सा—डा० शत्रुहन प्रसाद सिंह	....	२
३—टांसिलका अपरेशन क्यो ?—प्रो० भवानी प्रसाद, कांगड़ी गुरुकुल, हरद्वार		५
४—मांसाहार—श्री धन्य कुमार जैन		११
५—हमारे मनोभावनाओं का स्वास्थ्य पर प्रभाव—डा० रामचरण महेन्द्र एम० ए० डी० लिट्०		१५
६—वंध्यत्व रोग या बांझपन और उसका प्राकृतिक इलाज—डा० इन्दुमती सिनहा, एन० डी० डी० आई०	...	१६
७—भृङ्गराज—चरकतीर्थ श्री दिगम्बर बक्षी, आरोग्य मंदिर, राजकोट	...	२३
८—प्राकृतिक स्नान—एडोल्फ जुस्ट, अनुवादक श्री विट्ठलदास मोदी,		२५
९—सोडावाटर—श्री वेंकटरमैया, सम्पादक 'प्रकृति' तथा इण्डियननेचुरो पैथ....	....	२८
१०—अपने विचार—[सम्पादकीय]		२९
११—प्रश्नोत्तर—श्री कामता प्रसाद अग्रवाल	....	३१

वार्षिक मूल्य
३)

सम्पादक

प्रति अंक का
।=)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

डा० बालेश्वर प्रसाद सिंह

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राकृतिक चिकित्सा के केन्द्र

आरोग्य मंदिर

में मिट्टी, पानी, धूप, हवा, आसन, प्राणायाम, मालिश एवं युक्ताहार द्वारा कठिन से कठिन रोग स्थायी रूप से शीघ्र अच्छे किये जाते हैं। सचित्र परिचय-पत्र के लिए लिखिये।

मैनेजर—**आरोग्य मंदिर, गोरखपुर**

लेखकों से नम्र निवेदन

'जीवनसखा' के लिये जो लेख भेजें वे सरल, सुबोध शैली और साफ अक्षरों में होने चाहियें। जहाँ तक हो सके अपने विचारों को स्पष्ट किन्तु संक्षेप में प्रकट करें। लेख को अनावश्यक रूप से लम्बा बनाने की प्रवृत्ति की सर्वथा उपेक्षा की जानी चाहिये। लेख की पंक्तियाँ घनी न होनी चाहियें। इससे सम्पादन करने में बड़ी असुविधा होती है। लेख के आदि अथवा अंत में लेखक का नाम अवश्य लिखा होना चाहिये, पर साथ ही उसपर अपना पता भी लिख दें तो वह हमारे लिये और भी सुविधाजनक होगा।

—सम्पादक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्
NATURE ONLY HEALS

जीवन सखा

सम्पादक
डा० बालेश्वरप्रसाद सिंह

वर्ष १०] अक्टूबर १९४५ [अङ्क १०

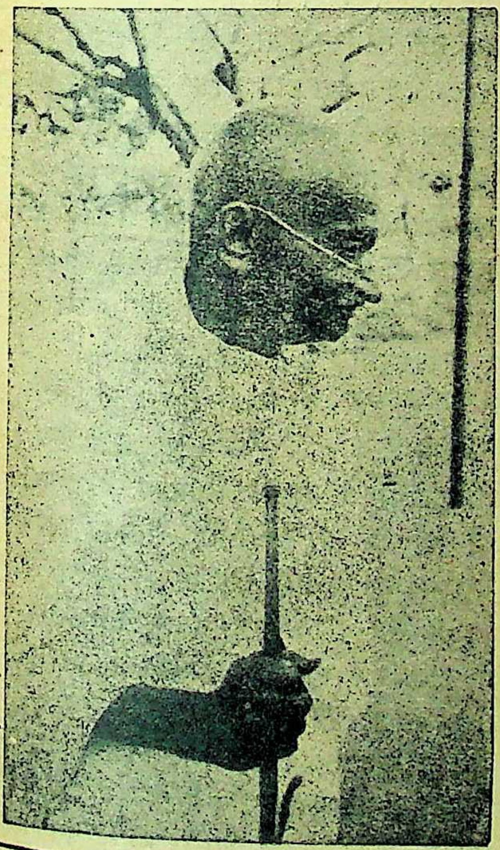

बापू के वचनामृत

'हम सब के वर्ष एक के पीछे एक बहते जा रहे हैं। हम छोटे होते जा रहे हैं, यह कहना कदाचित् अधिक ठीक होगा। है न ? जितने साल जाते हैं उतने आयु से कम हुए। उतने अंश में हम छोटे ही हुए, ऐसा कहना चाहिए। इससे मुझे यह तात्पर्य निकलना है कि हमें अधिकाधिक सावधान होना चाहिए। हमें सौंपी गई पूंजी कम होती जा रही है। जो बाकी है उसका पूरा उपयोग करना सीखें।'

—बापू

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होमियोपैथी बनाम प्राकृतिक चिकित्सा

[डा० शत्रुहन प्रसाद सिंह]

चिकित्सा का उद्देश्य यह होना चाहिये कि रोग को जड़ से दूर करके रोगी को बिलकुल नीरोग कर दिया जाय। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए यह आवश्यक है कि ऐसी चिकित्सा-प्रणाली को अपनाया जाय जो केवल रोग के लक्षणों को दबा देने वाली न हो। हम देखते हैं कि प्राकृतिक चिकित्सा और होमियोपैथी ये दोनों प्रणालियां ऐसी हैं जिनका उद्देश्य रोग के लक्षणों का दमन करने के बजाय उनका मूलोच्छेदन कर देना ही है। पर एक प्राकृतिक चिकित्सक होमियोपैथिक दवा का व्यवहार नहीं करता और उसी प्रकार एक होमियोपैथ प्राकृतिक चिकित्सा-विधियों को काम में लाने से अपनी अनिच्छा प्रकट करता है। ऐसा क्यों?—यह एक विचारणीय प्रश्न है।

होमियोपैथी के अन्तर्गत शरीर में 'सोरा', 'सिफलिस' और 'साइकोसिस' नामक विकार ही रोगोत्पत्ति के मूल-कारण बताये गये हैं। प्राकृतिक चिकित्सकों का भी कहना है कि रोग का कारण शरीर में चिरसंचित मल अथवा विकार ही होते हैं। दोनों चिकित्सा-पद्धतियां यह स्वीकार करती हैं कि यह मूल दोष अथवा विकार, जो रोग उत्पन्न करते हैं, रोगी को अपने माता-पिता से विरासत के रूप में प्राप्त हो सकते हैं। इन दोनों चिकित्सा-प्रणालियों ने अपने-अपने ढंग से इनका वर्गीकरण भी किया है। जिस प्रकार होमियोपैथी में 'सोरा' 'सिफलिस' और 'साइकोसिस' का वर्णन मिलता है उसी प्रकार लुईकुने साहब ने भी अपनी 'आकृति निदान' (The Scince of Facial Expression) नामक पुस्तक में (१) सामने का बादीपन, (२) बगल का बादीपन और (३) पीछे का बादीपन—इन तीन श्रेणियों में बादीपन को विभाजित किया है। इन दोनों ही प्रणालियों में रोगी की जीवन-शक्ति के ही अनुसार रोग को साध्य अथवा असाध्य बताया गया है। दोनों ही प्रणालियां तेज़ दवाओं द्वारा दबाये गये रोग को कठिन अथवा दुःसाध्य समझती हैं। वे 'उभाड़ क्रिया' (Law of crisis) का प्रतिपादन तथा रोग के लक्षणों को दबाने का प्रबल विरोध करती हैं। 'उभाड़' के सम्बन्ध में भी इन दोनों पद्धतियों में एक उल्लेखनीय साम्य मिलता है। वह यह कि प्राकृतिक चिकित्सक और होमियोपैथ दोनों का यही प्रयत्न होता है कि रोगी के लिए 'उभाड़' का कोई विकट रूप न उपस्थित होने पावे।

फिर यह विरोध क्यों?

होमियोपैथी और प्राकृतिक चिकित्सा में इतना साम्य होते हुए भी इन दोनों प्रणालियों में मेल अथवा सामंजस्य क्यों नहीं स्थापित होता? मेरे विचार में इसके कुछ खास कारण हैं। पहला तो यह कि किसी विशिष्ट सिद्धान्त का अनुसरण करने वालों में ज्यादातर ऐसे लोग होते हैं जो उस मत अथवा सिद्धान्त के समर्थन के जोश में आकर दूसरे लोगों की बात सुनना बिलकुल ही नहीं चाहते और वे केवल अपने ही मत को संसार के लिए कल्याणकारी समझते हैं। इसका एक दूसरा कारण है उनकी गलतफहमी। मुझे लुईकुने की पुस्तक 'Am I well or sick' का हिन्दीसंस्करण 'मैं निरोग हूँ या रोगी,' देखने को मिली है। उस पुस्तक के पृष्ठ ३५-३६ पर होमियोपैथी के सम्बन्ध में लिखा है,"...पर परीक्षा-विधि में यह एलोपैथी से भी गई बीती है, क्यों कि उसी की तरह यह भी हजारों रोग मानती है और उनमें से हर एक के लिए खास-खास दवाएँ बताई गई हैं। पर उनका असर तब होता है जब परीक्षा द्वारा रोग की जाँच हो जाय।"

मैंने लुईकूने साहब की मूल पुस्तक नहीं पढ़ी है। लेकिन अगर यह अनुवाद ठीक है तो मैं यही कहूँगा कि होमियोपैथी के विरुद्ध यह आक्षेप न्यायोचित नहीं है। होमियोपैथी के बारे में ऐसा कहना उसके प्रति अन्याय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करना है। होमियोपैथी में रोग के नामकरण पर जोर नहीं दिया गया है। उसमें तो रोग का लक्षण जिस दवा के लक्षण से मिलते हैं वही दवा रोगी को दी जाती है, रोग का चाहे जो भी नाम हो। उदाहरण के लिए उसकी एक दवा 'आर्सेनिक' को लीजिये। उसके प्रधान लक्षण इस प्रकार बताये गये हैं, "बेचैनी, जोरों की प्यास, ताप आदि।" हैजे की बीमारी में ये लक्षण प्रायः देखने में आते हैं और साथ ही मलेरिया तथा अन्य रोगों में भी। अब अगर कोई होमियोपैथ रोगों के नाम के पीछे दौड़ तो उसका काम कैसे चल सकता है? वह हैजा को मलेरिया कहे या मलेरिया को हैजा? असल में बात तो यह है कि उसे जहां भी 'आर्सेनिक' के लक्षण मिलेंगे वहीं वह उसका (आर्सेनिक का) प्रयोग करेगा। होमियोपैथी में किसी खास रोग के लिए कोई खास दवा नहीं दी जा सकती, क्योंकि एक ही नाम वाले रोग के भिन्न-भिन्न रोगियों में उनकी प्रकृति के अनुसार भिन्न-भिन्न लक्षण प्रकट होते हैं जो विभिन्न प्रकार के रोग के लक्षणों से मिलते हैं। अगर कूने साहब ने होमियोपैथी की उपर्युक्त लक्षण मिलाने की पद्धतियों को ही रोगों के नामकरण की संज्ञा दी है, तो यह ठीक नहीं है। कारण यह कि होमियोपैथी प्रणाली के अन्तर्गत किसी एक खास लक्षण मिलने पर कोई दवा नहीं दी जा सकती। ऐसा करना दवा को पेटेन्ट बना देना होगा। पेटेन्ट रूप में दवाओं का प्रयोग एलोपैथी में ही होता है। इस तरह से दी जाने वाली होमियोपैथिक दवा कोई फायदा पहुँचा ही नहीं सकती। होमियोपैथी में तो जब तक रोग का लक्षण-समूह दवा के लक्षण-समूह से नहीं मिलता तब तक कोई दवा नहीं दी जा सकती। रोग के लक्षणों से दवा के लक्षणों का मिलान करना भी एक कठिन कार्य है, क्योंकि एक ही लक्षण कई प्रकार की दवाओं के पाये जाते हैं। जैसे प्यास लगना 'आर्सेनिक' का भी लक्षण और 'ब्रायोनिया' का भी। लेकिन दोनों में अन्तर यह है कि 'आर्सेनिक' में रोगी एक बार थोड़ा ही जल पीता है और 'ब्रायोनिया' में अधिक।

होमियोपैथिक दवा के व्यवहार पर किसी विशेष जाँच का कोई खास प्रभाव नहीं पड़ता। विशेष जांच का प्रभाव तो रोग के निदान पर ही पड़ता है, और जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, होमियोपैथी रोग के निदान पर जोर नहीं देती। अगर रोगी के कलेजे में सुई चुभने जैसी पीड़ा होती हो और वह पीड़ा हरकत के साथ बढ़ती हो (तथा ब्रायोनिया' के अन्य लक्षण भी मौजूद हों) तो 'ब्रायोनिया' ही दिया जायगा। इसलिये यह समझ में नहीं आता कि लुई कूने साहब की उस पुस्तक में होमियोपैथी का उपर्युक्त रूप किस प्रकार चित्रित किया गया है।

इसी प्रकार सुप्रसिद्ध भारतीय प्राकृतिक चिकित्सक डा० के० लक्ष्मण शर्मा अपनी अंग्रेजी पुस्तक 'प्रैक्टिकल नेचर क्योर' (Practical Nature cure) में लिखते हैं:"Nature cures and system gets the credit" अर्थात् "रोग को दूर तो प्रकृति करती है, लेकिन उसका श्रेय मिलता है चिकित्सा प्रणाली को" यह तो अगर किसी को अयोग्य या बेवकूफ साबित करना हो तो किसीप्रकार वैसा साबित करने के प्रयास के समान है। हर हालत में प्रकृति ही रोग को दूर करती है, चिकित्सा का काम तो इस में प्रकृति को सहायता पहुँचाना ही है। प्राकृतिक चिकित्सा में भी तो असली काम प्रकृति ही करती है! कोई रोगी किसी होमियोपैथ के इलाज से अच्छा हुआ, तो उसको रोगोन्मुक्ति में होमियोपैथिक दवा ने कुछ काम नहीं किया, इसको शर्मा जी ने कैसे मान लिया? इसके लिए उन्हें होमियोपैथिक दवाओं को बिलकुल बेअसर साबित करना होगा, जो कि मेरे विचार में असम्भव है।

कुछ प्राकृतिक चिकित्सकों की राय है कि चूंकि होमियोपैथी में दी जाने वाली दवाओं की मात्रा एलोपैथिक दवाओं की अपेक्षा बहुत ही कम होती है, इसलिए यह एलोपैथी से अच्छी है। परन्तु वास्तव में होमियोपैथी एलोपैथी से इसी लिए अच्छी नहीं है, उससे अच्छी तो यह इसलिए है क्योंकि यह रोग को दबाने के लिए नहीं उभाड़ने के ही लिए दवा का प्रयोग करती हैं। इसमें दवा कम देने की प्रथा इसलिए रक्खी गई है कि दवा का असर तो अधिक हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेकिन 'उभाड़' कष्टकर न हो। होमियोपैथिक दवा रोग दूर करने के बाद अपना असर नहीं छोड़ जाती, उसका असर तो रोग के साथ-साथ गायब हो जाता है।

प्राकृतिक चिकित्सा के विरुद्ध होमियोपैथ लोगों की कोई दलील मुझे पढ़ने को नहीं मिली है जिसका उत्तर मैं यहाँ देने की कोशिश करूँ। लेकिन वे भी अपनी चिकित्सा-प्रणाली के समर्थन के जोश में आकर उसे ही एकमात्र चिकित्सा-प्रणाली मानते हैं और पथ्य आदि के विषय में इसकी स्थिति दयनीय होते हुए भी वे प्राकृतिक चिकित्सा की ओर से उदासीन रहते हैं।

मेरी समझ में होमियोपैथी और प्राकृतिक-चिकिसा दोनों ही मानव-समाज के लिए कल्याणकारी हैं। अगर दोनों को एक साथ चलाया जाय तो यह स्वर्ण में सुगंध के समान हो जाय। बहुत दिनों तक होमियोपैथ की हैसियत से कार्य करते रहने के उपरान्त मुझे प्राकृतिक चिकित्सा के चमत्कारों का पता चला, मैंने उसका अध्ययन किया। मैं अब इन दोनों को साथ-साथ चलाता हूँ और इसके उत्तम फल का भी मुझे अनुभव हो चुका है। जो भी उपचार प्रकृति के अनुकूल पड़ते अथवा उसके सहायक होते हैं उनको मैं प्राकृतिक चिकित्सा में ही शामिल करता हूँ। उसे दूसरे की चीज बताकर त्याज्य समझने की प्रवृत्ति का मैं तिरस्कार करता हूँ। अगर ऐसा करूँ तो मुझे ब्रुश का प्रयोग करना भी छोड़ देना पड़ेगा क्योंकि उसे एलोपैथ लोग काम में लाते हैं। ऐसा करते हुए मैं अपने को प्राकृतिक चिकित्सक समझता हूँ और इस नैसर्गिक प्रणाली के प्रति मेरा विश्वास भी किसी से कम नहीं है।

ऊपर मैंने जिन सज्जनों के आक्षेपों के उत्तर दिए हैं उनकी होमियोपैथी की आलोचना मुझे संतुष्ट नहीं कर सकी है। हो सकता है कि होमियोपैथी के विषय में मुझे अब कुछ ऐसी बातें बताई जायं कि जिससे मैं भी होमियोपैथी के विरुद्ध अपनी राय कायम कर सकूं। लेकिन अभी तक मुझे जो दलीलें मिली हैं वे ऐसी नहीं हैं कि उनकी मान्यता स्वीकार करते हुए होमियोपैथी की उपेक्षा कर दी जाय। एलोपैथिक दवाइयों की खराबियां देख कर हमें 'दवा' शब्द से चिढ़ नहीं जाना चाहिये और होमियोपैथी का सिर्फ इसी लिए विरोध नहीं करना चाहिए कि वह रोगी को दवा खिलाती है। अगर होमियोपैथी रोग का मूलोच्छेद करने के उद्देश्य को पूर्ण कराने में हमारी सहायता करती है तो हमें मानव-जाति के कल्याण के लिये उसका अवश्य आदर करना और उसे अपनाना भी चाहिए।

अन्त में, मैं चाहता कि इस सम्बन्ध में कोई निर्णय हो जाय। मैं प्राकृतिक चिकित्सकों को इस सम्बन्ध में 'जीवन सखा' में अपनी राय प्रकट करने के लिए निमंत्रित करता हूँ और साथ ही मैं 'जीवन-सखा' के सम्पादक से प्रार्थना करता हूं कि इस सम्बन्ध में आने वाले लेखकों को अपने पत्र में स्थान देंगे। प्राकृतिक स्वास्थ्य-गृह के संचालक डा० बालेश्वर प्रसाद सिंह से, जब कि अपनी चिकित्सा कराने के लिए वहाँ पर पहुँचा था, इस सम्बन्ध मैंने जो बातें की थी उससे यही लक्षित हुआ था कि वह शायद होमियोपैथी के ज्यादा विरोधी नहीं हैं। इसी प्रकार एक दूसरे लब्धप्रतिष्ठ प्राकृतिक चिकित्सक श्री जानकी शरण वर्मा से इलाहाबाद में ही थोड़ी देर के लिए मुलाकात करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उनकी बातों से मुझे जान पड़ा कि वह होमियोपैथी के जानकार हैं, पर मैं यह नहीं जान सका कि होमियोपैथी के समर्थक हैं या विरोधी। उक्त दोनों सज्जनों को इस सम्बन्ध में अपनी राय जाहिर करनी चाहिए, क्योंकि उनकी बातों का अधिक वजन होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टांसिल का अपरेशन क्यों ?

प्रो० भवानीप्रसाद, कांगड़ी गुरुकुल विश्वविद्यालय, हरद्वार

[टांसिल की बीमारी के लिए एलोपैथ डाक्टरों के पास केवल एक ही इलाज है—अपरेशन। किसी शारीरिक विकृति को दूर करने के लिए वे अपनी बुद्धि से कम और चाकू से अधिक काम लेना चाहते हैं और लेते भी हैं। लेकिन इसका परिणाम भोगना पड़ता है बेचारे रोगी को। सभ्यता के कलेवर में पाशविकता या बर्बरता के सिवा यह और क्या कहा जा सकता है ? हमें शल्य-चिकित्सा के विरुद्ध उतनी आपत्ति नहीं जितनी कि उसके अनावश्यक अथवा अनुचित उपयोग के विरुद्ध। इस प्रकार की शल्य-चिकित्सा स्वतः आजकल के डाक्टरों की ओषध-चिकित्सा की असफलता की द्योतक है। विद्वान् लेखक ने प्रस्तुत लेख में इसी तथ्य का विवेचन किया है।—सं०]

अधिकांश शल्य-क्रियाएं (अपरेशन) अपराधी में सुधार करने के बजाय उसके अपराध के परिणाम को दूर करने के प्रयत्न के समान हैं—यह इङ्गलैण्ड के प्रसिद्ध विशेषज्ञ डा० एलिसन का कथन है। आप ने अपने इस कथन की सत्यता प्रमाणित करने के लिए कुछ ऐसे 'अत्याचारों' का उल्लेख किया है जो बहुत से शल्य चिकित्सक अनावश्यक रूप से रोगी पर करते हैं। जैसे—शीत-प्रकोप, प्रतिश्याय (जुकाम), श्वास, तथा बधिरता आदि रोगों में नासा मध्य-प्राचीर भूत तरुणी अस्थि (Cartiginous Septum) को काटकर निकाल दिया जाता है, किसी अस्थि को खुरच दिया जाता है, कई तरुणास्थिओं के टुकड़े हटा दिए जाते हैं तथा अन्य कई अस्थि-कोटरों और कर्ण-खातों (Sinuses) में छिद्र कर दिए जाते हैं। यह सब ओषध-चिकित्सक की असफलता का ही द्योतक है—इससे यही प्रकट होता है कि रोग को दूर करने के लिए उसके पास चाकू के सिवाय और कोई दूसरा साधन ही नहीं है।

डा० एलिसन इस प्रकार की शल्य-क्रियाओं की बहुत कम आवश्यकता बताते हैं। आपका यह निश्चित मत है कि तात्कालिक (Acute) रोगों में शल्य-क्रिया आवश्यक नहीं। तात्कालिक रोग तो साधारणतः उपवास से ही शान्त हो जाते हैं। वास्तव में यदि कोई रोग बिना चीर-फाड़ या अपरेशन के ही दूर किया जा सकता हो तो उसके लिये यथासंभव शल्य-क्रिया का प्रयोग न करना चाहिए। कारण यह कि बहुधा किसी एक रोग से छुटकारा दिलाने के लिए की जाने वाली शल्य-क्रिया का परिणाम दूसरे भयंकर रोगों में प्रकट होता है। नाक की बहुत सी शल्य-क्रियाओं के संबंध में यह देखा गया है कि उसके फल स्वरूप श्वास-रोग उत्पन्न हो जाता है और कभी-कभी तो अपरेशन से श्वास-रोग घटने के बजाय और बढ़ जाता है। कई रोगों में शल्य-क्रियाएं सफल भी होती हैं किन्तु उनकी असफलताओं की भी संख्या इतनी अधिक है जिससे कि शल्य-क्रिया के विरुद्ध किए जाने वाले आक्षेपों का औचित्य ही सिद्ध होता है। जब शल्य-क्रिया विफल हो चुकने पर हम कई रोगियों को अच्छा करने में सफलता प्राप्त करते हैं, तो शल्यक्रिया होने से पूर्व यदि हमको चिकित्सा का अवसर मिलता, तो हमको कितनी अधिक सफलता प्राप्त होती, इसका अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। कई रोगियों को यह कह कर भयभीत कर दिया जाता है कि यदि अपरेशन न हुआ तो वे मर जायंगे। किन्तु बिना अपरेशन के भी उनकी चिकित्सा में पूर्ण सफलता प्राप्त हो सकती और होती है, ऐसा प्राकृतिक चिकित्सकों का दावा है। डा० एलिसन का कथन है कि कर्ण-खात-शोथ (Sinusitis), नासा-कला-शोथ (Rhinitis) जैसे श्लैष्मिक शिरोविकार, जहाँ तक मेरा अनुभव है, उपवास से शान्त हो जाते हैं। लघुतर तात्कालिक रोगों तथा अधिक बढ़े हुए जीर्ण रोगों के लिए यदि छोटे-छोटे उपवास करा या और संयत आहार दिया जाय और उसके साथ-साथ स्थानिक उपचार यथा—प्राणायाम, जलचिकित्सा और मर्दन क्रियाएँ कराई जायँ, तो उनसे बहुत लाभ होता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। इसी प्रकार कर्ण-विद्रधि (कान की फुंसी) की चिकित्सा देह की अन्य विद्रधियों (फुंसियों) की चिकित्सा से भिन्न की जाय। हमारा शरीर एक प्रकार की छिद्र बनाने की प्रक्रिया के रूप में फोड़े फुंसी निकालता है और उसका परिणाम यह होता है कि देह के विकृत तथा रोगयुक्त तन्तु (Tissues) या विकार पूर्ण द्रव्य का सीधा सम्बन्ध स्वस्थ तंतुओं से नहीं रहता है। जब कोई फोड़ा या फुंसी स्वाभाविक रूप से स्वयमेव फूटती है तो फुंसी फोड़े के देह के उपरितल पर पहुँचने

चित्र नं० १

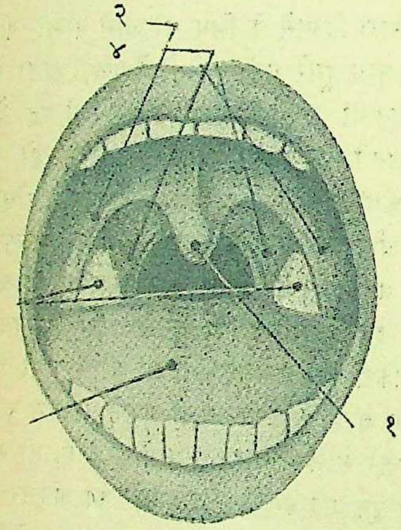

१—अलि-जिह्वा—घांटी
२—पिछली गलस्तम्भिका
३—उपजिह्विका (टांसिल)
४—अगली गलस्तम्भिका
५—जिह्वा

तक स्वस्थ तथा नीरोग तन्तु एक ओर को हट जाता है—वह रोगी तन्तु से पृथक् हो जाता है। शल्य-क्रिया में फुंसी फोड़े की जड़ तक पहुँचने के लिए नीरोग तन्तुओं को काटा जाता है और उससे इन नीरोग तन्तुओं में भी रोग का संक्रमण हो जाता है जो उत्तरोत्तर बढ़ता ही जाता है। यही बात कान की फुंसी के सम्बन्ध में भी लागू होती है। यदि कर्णपटह (कान का ढोल) फुन्सी से स्वाभाविक रूप से स्वयमेव फूटता है, तो वह जैसा स्वतः अच्छा हो जाता है वैसा वह शल्य-चिकित्सक के शस्त्र से कटा हुआ अच्छा नहीं होता है। शल्य-चिकित्सक की शल्यक्रिया का मुख्य कारण यह होता है कि उसको यह भय बना रहता है कि कहीं रोग विषम न हो जाय। उसको संकट से उद्धार करने वाली प्रकृति की शक्ति पर विश्वास नहीं होता। किन्तु उसके भय और अविश्वास बिलकुल निराधार ही हैं। आज कल कंठ की शल्य-क्रियाओं की संख्या बढ़ रही है। उपजिह्विका (Tonsils) और अधोगल-शुण्डिका (Adenoids) (यह नाक के पिछले भाग और कंठ के बीच में स्पंज के समान तन्तुओं का एक संघात होता है और कभी-कभी फेफड़ों में वायु भरने में बाधक होता है) की शस्त्र-क्रियायें विशेष उल्लेखनीय हैं। ये शस्त्र क्रियायें इस भय से की जाती हैं कि रोग विषम न बन जाय। बहुधा शस्त्र चिकित्सक या डाक्टर उपजिह्विकाओं और अधोगल-शुण्डिकाओं को यह कह कर दूषित बतलाया करते हैं कि वे पूतियुक्त (Septic) हैं अर्थात्, उनमें मवाद पड़ गया है। किन्तु वे वस्तुतः वैसे नहीं होते हैं। उपजिह्विकाओं को काट कर निकाल देने के लिए बहुत से कारण उपस्थित किये जाते हैं। एक कारण यह बताया जाता है उपजिह्विकाओं वा अधोगलशुण्डिकाओं के शोथ या प्रदाह से अर्थात् उनके बढ़ जाने से बहरापन आ जाता है। एक और कारण यह कहा जाता है कि उनसे रोग के संक्रमण की संदेहास्पदता बढ़ जाती है, तीसरा कारण एक यह बतलाया जाता है कि उनसे (वक्षःस्थल) छाती और मस्तिष्क के विकास में बाधा पड़ती है। कभी कभी इन बातों में आंशिक सत्य होता हैं। किन्तु क्या उपजिह्विकाओं को काट कर निकालने से यह रोग अच्छे हो जाते हैं, यह तो एक दूसरा ही विचारणीय प्रश्न है। उपजिह्विका या अधोगलशुण्डिका-शोथ या प्रदाह का कारण दूध और शर्करा का अतिप्रयोग (अति आहार), असंतुलित अन्नाहार का आधिक्य और अन्य भोजन के दोष तथा कंठ में संक्रमित रोगों के मिथ्योपचार होते हैं। उपजिह्विका प्रदाह के रोगी बालक को शीतप्रकोप अथवा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसके कंठ में कोई रोग हो जाने पर, यदि उसको ३ दिन तक फलों का रस पिलाकर उपवास कराया जाय तो प्रबल सम्भावना है कि उपवास की अवधि में ही रोग चला जायगा। और इसके बाद उसकी दशा अधिक न बिंगड़ेगी। कई रोगियों की उपजिह्वकाएँ वर्षों तक शोथयुक्त रहती हैं। किन्तु यदि उनका रोग भयंकर दुःखदायक न हो तो उसके विषय में चिन्ता का कोई विशेष कारण नहीं है। यदि इस रोग के होते ही शिशुओं की उचित चिकित्सा की जाय और यदि उनका पोषण कठोर और कच्चे आहार से किया जाय, यदि उनको रबड़ी, मलाई, पेड़ा आदि (दुग्ध के बने पदार्थ) हलवे के समान श्वेतसार युक्त और शर्करामय आहारों से बचाया जाय और यदि उनको शुद्ध तथा स्वच्छ वायु सेवन खूब कराया जाय तो भय प्रकट करने की कोई आवश्यकता नहीं है, अधिकांश दशाओं में रोग अपने आप शान्त हो जायगा।

उपजिह्विका-प्रदाह द्वारा बधिरता के विषय में बहुत से रोगियों की दशाएँ यह प्रकट करती हैं कि उपजिह्वका-प्रदाह से बधिरता बहुत ही कम होती है। कई रोगियों में बधिरता उपजिह्विका-प्रदाह के साथ साथ पाई जाती है और उपजिह्वकाओं के छेदन से बधिरता नहीं जाती है। उपजिह्विकाएँ, रोगसंक्रमण से बचाव के लिए हमारे शरीर की रक्षात्मक यंत्र-रचना में प्रथम पंक्ति का काम देती हैं। उनको काट कर दूर करना सर्वथा अनुचित है। उपजिह्विका और अधोगलशुण्डिका-प्रदाह से उत्पन्न रोगों का कारण जानना चाहिए तथा उसी को दूर करना चाहिए। बुद्धिमान चिकित्सक को यह विचारना चाहिए कि कि प्रत्येक रोग कोई न कोई विशेष उद्देश्य लेकर उत्पन्न होता है और उपजिह्वका-प्रदाह इस नियम का अपवाद नहीं हो सकता। साधारणतः उपजिह्वका तालु की दो ग्रंथियाँ होती हैं। ये कंठ (गल बिल द्वारा) में दोनों ओर अगली और पिछली गलस्तम्भिकाओं के मध्य में जिह्वा-तालव्य तोरण और ग्रसनिका-तालव्य तोरणों के मध्यवर्त्ति त्रिकोणाकार स्थान में दोनों ओर स्थित हैं। उनकी रचना लसीकाग्रंथि के समान है और वे लसीकातन्तुओं की बनी हुई हैं। उपजिह्विकाओं में छोटे छोटे छिद्र होते हैं और उन छिद्रों का सम्बन्ध उन प्रणालियों से होता है, जो इन तन्तुओं के बीच में से होकर जाती है। इन उपजिह्विकाओं में अन्तर्हानव्या धमनी (Internal Maxillary Arteries) में से रक्त का संचार होता रहता है। इनमें नाड़ी संस्थान से सूक्ष्म नाड़ियाँ भी आती हैं। गले में अंगुली डालकर ये दोनों उपजिह्विकाएँ (बादाम के समान आकार वाली) अंगुली से स्पर्श की जा सकती हैं। डाक्टरों का यह विचार है कि उपजिह्वकाओं का कार्य लसीकाग्रंथियों के ही समान है और वे

चित्र नं० २

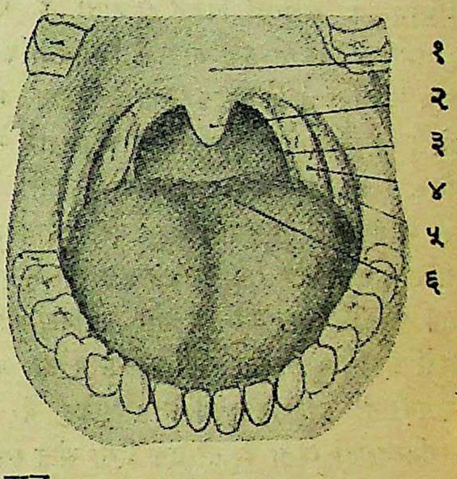

१—तालु
२—अग्नि-जिह्वा—घांटी
३—अगली गल-स्तम्भिका
४—उपजिह्विका—टांसिल
५—पिछली गल स्तम्भिका
६—जिह्वा-मूल

रक्त के श्वेतकणों के निर्माण में सहायक होती हैं और शरीर में कीटाणुओं के प्रवेश को रोकने और दूषित द्रव्य को निकालने से शरीर की रक्षा में सहायता देती हैं। यदि उपजिह्विकाएँ अस्वस्थ, अमर्यादित दशा में होती हैं तो उनके रक्षणात्मक व्यापार में हीनता आ गई समझी जाती है और वे रोगों के संक्रमण के केन्द्रों का काम देती हैं। इनके द्वारा रोगों का संक्रमण सीधा रक्त और लसीका में हो जाता है। अतः एलोपैथिक डाक्टर उनके बढ़ जाने पर उनको शल्य-क्रिया द्वारा निकलवा देने की सम्मति देते हैं। प्राकृतिक चिकित्सकों के सिद्धान्तानुसार उपजिह्विकाएँ मलनिस्सारक ग्रंथियां हैं और वे देह के निस्सरण-संस्थान का बहुमूल्य अंग हैं। प्रकृति ने उनको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी प्रयोजन से सिरजा है कि वे देह को मलों से शुद्ध करती रहें।

उपजिह्विकाओं के व्यापार के विषय में मतभेद हो सकता है, किन्तु उनके विषय में विचार क्रियात्मक दृष्टि से होना चाहिए। उपजिह्विकाओं के शोथ (प्रदाह) अर्थात् बढ़ जाने पर नासिका-श्वास-मार्ग रुकने लगता है और शिशु मुख से श्वास देने लगता है। इससे सब प्रकार के जीर्ण रोग हो सकते हैं। यथा—वक्षःस्थल बेडौल हो जाता है। मुखाकृति में परिवर्तन आ जाता है। कभी कभी मानसिक अवस्था विकृत हो जाती है और दैहिक और मानसिक विकास रुक जाता है। शल्यचिकित्सक यह निश्चय दिलाता है कि शल्य-क्रिया से ये सब कष्ट चले जांयगे। वस्तुतः बहुधा उपजिह्विका के कटवाने से तात्कास्थानिक कष्ट दूर हुआ प्रतीत होता है, किन्तु साधारण स्वास्थ्य पर इसका बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। शस्त्रचिकित्सक और रोगी के संरक्षक केवल तात्कालिक प्रभाव का ही विचार करते हैं और स्थायी और पिछले प्रभावों की चिकित्सा नए रोगों के रूप में की जाती है। यदि बढ़ी हुई उपजिह्विकाओं के द्वारा देह में से दूषित द्रव्य निकालता रहता है, तो एक ऐसा स्रोत स्थापित हो जाता है, जिसके द्वारा देह में से विष निकलते रहते हैं। यदि शल्यक्रिया से मल के निकास का यह द्वार उपजिह्विकाओं को काट कर रोक दिया जाता है तो दूषित द्रव्य या तो देह से निकलने के लिए कोई अन्य मार्ग ढूँढ़ने के लिए विवश होता है या देह में ही एकत्रित होता रहता है। साधारणतः उपजिह्विकाओं के कटवा डालने पर दूषित द्रव्य को अधोगलशुण्डिकाओं (Adenoids) या नाक की झिल्लियों में से होकर निकलने का निकटतम मार्ग मिल जाता है और ये अङ्ग अपने ऊपर आ पड़े हुए मलनिष्कासन के कार्य में अत्यन्त क्रियाशील और शोथ या प्रदाह युक्त हो जाते हैं। यदि उपजिह्विका से पूर्व अधोगलशुण्डिकाएँ रोगी हो जाती हैं और यदि उनसे शल्य-क्रिया द्वारा छुटकारा प्राप्त किया जाता है, तो क्रम उलट जाता हैं और उपजिह्विकाएँ रोगी हो जाती हैं। जब अधोगलशुण्डिकाएँ दोनों कटवा दी जाती हैं, तो नाक की झिल्ली पर रोग का आक्रमण होता है और वह सूज जाती है। इसका परिणाम यह होता है कि नाक में नासिकांकुर (Polghi) और अन्य उभार निकल आते हैं। नाक का मार्ग रुक जाता है और रोगी पुनः मुख से श्वास लेने लगता है। इस प्रकार प्रकृति द्वारा लाक्षणिक चिकित्सा का विरोध होने पर भी आधुनिक विज्ञान प्रकृति से शिक्षा लेना नहीं चाहता। जब मलनिष्कासन का कार्य नाक की झिल्लियों पर आ पड़ता है, तब वही चिकित्साविधि चलती रहती है और उससे नवीन तथा और भी भयंकर रोगों का प्रादुर्भाव होता है। नासिकामार्ग का पिछला भाग और कंठ पुराने प्रतिश्यायरोग से और अधिक कष्ट पाते हैं। गले में कफ के रुक जाने से और कफ के विकार के आमाशय और आँखों तक फैल जाने से बहुधा बहुत कष्ट होता है। कभी कभी ये विकार ऊपर की ओर मस्तिष्क में भी पहुँच जाते हैं और रोगी चिड़चिड़ा या सुस्त अथवा चेतनाशून्य हो जाता है। शिशुओं के रोगों में दूषित द्रव्य पूयस्राव (Pus) के रूप में कर्णपटहों से होकर निकलने लगता है और इससे बहुधा मस्तिष्क-कला-शोथ, विक्षिप्तता और मानसिक दौर्बल्य वा बालपक्षाघात आदि रोग हो जाते हैं। डा० लिंडलार का कथन है कि उसने बहुत बार कर्णमूलशोथ का रोग उपजिह्विका और अधोगलशुण्डिका कटने से ही होता देखा हैं। ऐसा कहा जाता है कि इन रोगों में शल्यचिकित्सक सिर की खोपड़ी पर शल्यक्रिया करता है और कर्णमूलकोष्ठिकाओं पर जारणप्रतिरोधक औषधि लगाता है और शोथ को दबा देता है। डा० लिंडलार ने ऐसे विनाशक प्रयोग कभी नहीं किए, और उनकी चिकित्सा में एक भी रोगी नहीं मरा।

यदि दबाव हुए विष नीचे की ओर चले जाते हैं तो ग्रन्थियों की लसीका में विकार उत्पन्न होता है और अधिक दमनात्मक शल्य-क्रिया से विष श्वास की नालियों और फेफड़ों में फैल जाते हैं। वहाँ उनको फुफ्फुसप्रदाह (निमोनिया) और राजयक्ष्मा के रोगाणुओं के प्रसार के लिए उर्वरा क्षेत्र मिल जाता है। इस प्रकार के रोगों श्लैष्मिक विकारों से और तत्पश्चात् राजयक्ष्मा से देह के स्वरयंत्रों में दारुण रोग हो जाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन पश्चात्प्रभावों की हानियों के अतिरिक्त शल्य-क्रिया में कई और कष्टों की आशंका रहती है जो विचारणीय है शल्य-क्रिया के पक्षपाती कहते हैं कि आजकल शल्य-क्रिया के विज्ञान का इतना अधिक विकास हो गया है कि कष्टों की आशंका का प्रतिशत मान बहुत घट गया है आशंका चाहे कितनी ही न्यून क्यों न हो, यदि उससे बचा जा सके तो बचना चाहिए। जैसा कि पहले कहा जा चुका है उपजिह्विकाओं की वृद्धि की चिकित्सा सफलतापूर्वक फल और शाकाहार और लघु उपवासों से हो सकती है। उपजिह्विकाशोथ और अधगलशुण्डिकावृद्धि और तत्सम्बन्धी अन्य रोगों की यही प्राकृतिक तथा युक्तियुक्त चिकित्सा है।

सम्प्रति रायल सोसाइटी ऑफ़ (Royal Society of Medicine) की कार्यवाही से डा० एलिंसन ग्लोर (Dr. Allinson Gloare) का एक निबंध स्कूल के शिशुओं की उपजिह्विका काट कर निकालने में प्रकाशित हुआ है। इस निबंध में यह दिखलाया गया है कि स्कूल-चिकित्सा सेवा (School Medicine.) के कार्य आरंभ होने के पश्चात् उपजिह्विका काट कर निकालने की गति सन् १९३१ तक कितने वेग से बढ़ती गई है। सन् १९३१ के प्रथम वर्ष में १२८००० शिशुओं की उपजिह्विकाओं पर शस्त्रक्रिया की गई इस बर्बरता सवेग वृद्धि को देखकर सर जार्ज न्यूमैन और दूसरे पुरुषों को चेतावनी देने के लिए विवश होना पड़ता, इसका फल हुआ यह कि सन् १९३५ में यह संख्या ८३९००० हो गई, किन्तु १९३७ में वह बढ़ कर फिर ९४००० हो गई। मेडिकल रिसर्च कौंसिल ने यह सम्मति प्रकट की है कि उपजिह्विका को काटकर निकालने के लिए जो शिशु चुने जाते हैं, उसमें कितने विवेक से काम लिया जाता है और हम इस परिणाम पर पहुँचे बिना नहीं रह सकते कि किसी विशेष युक्ति और किसी विशेष परिणाम का विचार किए बिना ही प्रतिरोधात्मक प्रचलित क्रिया के रूप में शल्यक्रिया की प्रवृत्ति (झुकाव) चल पड़ी है।

'मेडिकल वार्ड' नामक पत्र के १९ सितंबर सन् १९३१ के अंक का यह लिखित उद्धरण इस बात को प्रकट करता है कि उपजिह्विकाओं पर शल्य-क्रिया किस प्रकार बिना विचारे की जाती है। प्रारम्भिक स्कूल के बालकों का प्रचलित निरीक्षण अधिकतर ऐसे निम्नश्रेणी के चिकित्सक के हाथ में है, जिनमें अनुभव की कमी है और जिनको रोगियों के समुचित चुनाव के लिए अपेक्षित समय की भी कमी रहती है। वे यह रिपोर्ट कर देते हैं कि उपजिह्विका निकाल जाय और वे ऐसे शस्त्र चिकित्सकों द्वारा काट कर निकाल दी जाती हैं जिनके मन में यह विचार ही नहीं उठता कि हमारे द्वारा की गई यह शल्यक्रिया आवश्यक है या नहीं। अधिकांश में उपजिह्विकाओं की केवल आकारवृद्धि का विचार किया जाता है। मामूली स्कूलों की अपेक्षा बड़े-बड़े और अधिक व्यय उठानेवाले स्कूलों के बालकों पर की जाने वाली शल्य-क्रिया की संख्या और अधिक है। सार्वजनिक स्कूल में चुनाव सम्भव होना चाहिए, किन्तु वहाँ अन्य बातों का भी विचार किया है।

यदि कोई विशेषज्ञ ऐसी उपजिह्विकाओं का निरीक्षण करे तो वह वास्तविक स्थिति को समझ सकता है, किन्तु माता-पिता और शस्त्रचिकित्सक बहुधा विशेषज्ञ महाशय की बुद्धि को समानरूप से बौखला देते हैं। यह विचारचिकित्सा व्यावसायियों के लिए प्रतिष्ठा को बढ़ाने वाले नहीं हैं, किन्तु क्या कोई उनकी सभ्यता का निषेध कर सकता है? इन सहस्रों निरर्थक और भयानक उपजिह्विका प्रदाह के लिए क्या हम चिकित्सव्यवसायी के रूप में नैतिकता की दृष्टि से उत्तरदायी नहीं हैं।

'मेडिकल आफिसर' नालक पत्र के ८ अक्टूबर १९३८ ई० के अंक का निम्नलिखित उद्धारण उल्लेखनीय है—

कुछ पीड़ा न देने वाली कंठ की उपजिह्विकाओं को यह कह कर निकाल दिया जाता है कि उससे भविष्य में होने वाले, वधिरंता, आमसन्धिवात (गठिया), प्रसवावस्था में प्रतिश्याय की पूति से समुत्पन्न रोग श्वास तथा अन्य रोग समूह उत्पन्न न होंगे। इन रोगों से बचने के लिए उपजिह्विकाओं को काटकर निकलने की उपयोगिता वा अनुपयोगिता के पक्ष वा विपक्ष में हमारे पास कोई प्रमाण नहीं है। इस विषय में साधारण सम्मति डाँवाडोल रहती है—इधर उधर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बदलती रहती है। इसी विषय में हमारे ऊपर अपराध का आरोप किया जाता है और वस्तुतः यह अपराध स्कूल मेडिकल सर्विस का है। विद्यार्थियों के स्वास्थ्य की संरक्षक सेवा विभाग पर यह अपराध लागू है क्योंकि वह इस विषय की साक्षियाँ संग्रह करने में समर्थ है। इसके लिए अन्वेषण कार्य में बहुत वर्ष लगने चाहिएँ। यदि अन्वेषण कार्य सुसंघटित और संतुलित हो तो उससे इस कठिन कार्य की सिद्धि हो सकती है। जिस गति से हम चल रहे हैं उससे यह उलझन कभी सुलझेगी। इस देश में प्रतिवर्ष प्रायः दो लाख उपजिह्विकाएँ काट कर निकाली जाती हैं। इस कार्य में ५ लाख पौंड धन का व्यय अवश्य होता होगा और न जाने कितने जीवन जाते होंगे। सचमुच ही यह अवस्था बहुत असन्तोष-जनक है।

१४वें पेज का शेषांश

खाद्य वस्तु	प्रोटीन	चिकनाई	शक्कर	नमक	पानी	भोजनयोग
बँधी गोभी	++	+++	+++			
टमाटर	++	+++	+++			
मटर की फली	++	++	+			
सन्तरा (नारंगी)	+	++	+++			
सेव	+	++	+++			
अंगूर	+	++	+++			
अनन्नास	++	++	+++			
बादाम	+	++	+			
अखरोट	+	++	+			
नारियल की गिरी	+	++	+++	+		
पपीता	+	++	++			
गन्ना और गुड़	+	+	चीनी में नहीं है			

खाद्य पदार्थों में रहनेवाले तत्त्वों का पृथक्करण

खाद्य वस्तु	प्रोटीन	चिकनाई	शक्कर	नमक	पानी	भोजनयोग
दाल	२५·१	२·३	५६·८	२·८	१·२	८५·६
मेवा	१८·५	५१·६	६·६	२·४	२६·२	८२·२
अनाज	१०·६	२·३	७२·५	२·१	१२·०	८७·८
सब्जी	१·४	०·३	८·६	८·८	८७·७	११·१
ताजे फल	१·०	०·६	१६·०	०·६	८१·४	१८·५
मांस	१०·०	१७·६	०·०	२·१	६२·६	३७·०
मछली	११·६	१·२	०·०	१·२	८६·१	१·३
अण्डा	१४·०	१०·५		१·५	६४·४ ६४·४	२६·०

इन कोष्टकों से यह बात स्पष्ट मालूम हो जाती है कि मांस के विषय में जनता में जो भ्रम फैला हुआ है कि मांस खाने से शक्ति बढ़ती है, वह कितना निराधार है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मांसाहार

श्री धन्यकुमार जैन

'मांस खाने से मांस बढ़ने' का दावा करने वालों को लेखक ने यहाँ पर जो चुनौती दी है, उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। अनेक विद्वानों, मनीषियों और व्यायामियों के उदाहरण देकर लेखक ने सिद्ध किया है कि मांसाहार मनुष्य की पैशाचिक वृत्ति का परिचायक है। आहार-तत्व की दृष्टि से भी यह सर्वथा अवांछनीय तथा त्याज्य ही है। पाठक देखेंगे कि लेखक ने अपने विचारों का कितने युक्तियुक्त एवं तर्क संगत रीति से प्रतिपादन किया है।—सं]

मनुष्य सिर्फ खानेके लिये ही पैदा नहीं हुआ और न खानेके लिए जीता ही है; बल्कि वह सत्यको पहचानकर अपने उत्थान के लिए पैदा हुआ है और इसी काम के लिए जीता है। सत्य की पहचान शरीर और मन की सहायता के बिना नहीं हो सकती, और भोजन के बिना शरीर और मन की रक्षा नहीं हो सकती। "शरीरमाद्यं खलु धर्म-साधनम्" का यही निचोड़ है। "जैसा खावे अन, वैसा हो मन" का यही मतलब है कि भोजन के अनुसार मन बनता है। जिसका मन शुद्ध और स्वस्थ है, वही शुद्ध और स्वस्थ मानव है। वास्तव में पूर्ण और स्वस्थ मनुष्य उन्हीं लोगों को समझना चाहिये, जिनके शुद्ध शरीर में शुद्ध मन का वास हो।

हमारे शरीर के समस्त अवयव और बनावट को देखते हुए यह स्पष्ट मालूम होता है कि हम मांस खाने के लिए नहीं पैदा हुए। डाक्टर किंग्सफोर्ड और हेग ने मांस की खुराक से मनुष्य-शरीरपर होनेवाले बुरे असर को बहुत स्पष्ट-रूप से दिखलाया है। इन दोनों विद्वान चिकित्सकों ने यह सिद्ध कर दिखलाया है कि मांस खाने से जो ऐसिड पैदा होती वही मांस खाने से भी होती है; इसलिए मांस की आवश्यता दाल से ही पूरी हो जाती है। मांस खाने से दाँतों को नुकसान पहुँचता है और सन्धि-वात हो जाता है। दाल खाने से इन हानियों से बचा जा सकता है। यही नहीं, बल्कि मांस खाने से मनुष्य में क्रोध बढ़ जाता है, जो उसकी आरोग्यता को नष्ट करता है। वास्तव में मांसाहारी कभी नीरोग नहीं कहे जा सकते; क्योंकि उनके मन में अकसर विकार उत्पन्न हुआ करते हैं, और विकार-युक्त मन-धारी मानव कभी स्वस्थ नहीं कहा जा सकता।

क्या भारत और क्या योरोप और अमेरिका, जहाँ जो भी महान शक्तियाँ हुई हैं, उन्होंने मांस-भक्षण तो किया ही नहीं, बल्कि मांसाहार को रोकने के ही उपाय किये हैं। हजारों में से कुछ नाम यहाँ दिये जाते हैं—भगवान महावीर और बुद्ध, श्रीरामचन्द्र और श्रीकृष्ण, महादेव और बाबा नानक साहब, सम्राट् अशोक और महाराजा विक्रमादित्य, सुकरात, अरस्तू, पैथोगोरस, मनु, मैथ्यू, गैरीबाल्डी; मिल्टन, नेलसन, शेली, गोल्ड स्मिथ, पोप, एली, रिव्यू, जेम, जोनीस्टर जेम्स, पीटर आदि।

संसारके प्रसिद्ध मनीषी महात्मा टाल्सटायने मांसके सम्बन्धमें अपने विचार इस प्रकार प्रकट किये हैं—"क्या मांस खाना अनिवार्य है? कुछ लोग कहते हैं, यह अनिवार्य है? कुछ लोग कहते हैं, यह अनिवार्य तो नहीं, लेकिन कुछ बातोंके लिए जरूरी है। मैं कहता हूँ कि यह जरूरी नहीं है। मांस खाने से मनुष्य की पाशविक प्रवृत्तियाँ बढ़ती हैं, काम उत्तेजित होता है, व्यभिचार करने और शराब पीने की इच्छा होती है। इन सब बातोंके प्रमाण सच्चे और शुद्ध सदाचारी नवयुवक हैं, विशेषकर स्त्रियाँ और जवान लड़कियाँ हैं, जो इस बात को साफ-साफ कहती हैं कि मांस खानेके बाद काम की उत्तेजना और अन्य पाशविक प्रवृत्तियाँ आप-ही-आप प्रबल हो जाती हैं। मांस खाकर सदाचारी बनना असम्भव है।'

शारीरिक बल और सहनशक्ति की होड़ के खेलों में निरामिष-भोजी लोग अकसर बाजी मार ले जाते हैं। लार्ड राबर्ट का कहना है कि शाकाहारी हिन्दुस्तानी सिपाही मांसाहारी गोरे सिपाहियों से बल, पुरुषार्थ साहस किसी में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी कम नहीं होते। वैज्ञानिकों का कहना है कि मांस खाकर बल और आरोग्य प्राप्त करना वैसा ही है, जैसे चाबुक के जोरसे घोड़े को तेज करना।

यह मानी हुई बात है कि मांसाहारी पशुओंमें वनस्पति खानेवाले हाथी की ताकत के बराबर ताकत नहीं होती। रेगिस्तान या वालूके मैदानों में ऊँट की परिश्रमशीलता और कष्ट-सहिष्णुता प्रशंसा करने योग्य है। फुरतीके लिहाज से भी देखा जाय, तो घोड़ा, हिरन और नीलगाय की-सी फुरती मांसाहारी किसी भी जानवरमें नहीं पाई जाती। हाँ, क्रूरता और दुष्टता जरूर उनमें ज्यादा होती है।

पचीस वर्ष पहले अमेरिकाके येल-विश्वविद्यालयके प्रोफेसर आरविंग फिशरने मांस खानेवाले और न खानेवाले और न खानेवाले ४६ आदमियोंकी परीक्षा की थी। ये सभी पहलवान थे। हाथ की पकड़में मांसाहारी पहलवान ज्यादा-से-ज्यादा २२ मिनट ठहर सके, मगर शाकाहारी पहलवानोंमें एक १६० मिनट, दूसरा १७६ मिनट और तीसरा २०० मिनट तक ठहर सका। बैठक की कसरत में मांसाहारी ज्यादासे ज्यादा ३८३ बैठक कर सके, जब कि शाकाहारी ७३१ बैठक कर गये। जर्मनी में भी इस तरह की परीक्षा की गई थी, जिससे मालूम हुआ कि मांसाहारियों से शाकाहारी परिश्रम और सहन-शक्ति में ड्योढ़े होते हैं। वहाँ १२॥ मील की एक दौड़ हुई थी, जिसमें ३२ आदमी शामिल हुए थे। उनमें प्रथम आनेवाले छहों आदमी शाकाहारी थे। इंग्लैण्ड में १०० मील की तेज चाल में प्रथम आनेवाले जार्ज ऐलेन तथा प्रसिद्ध टेनिस-चेम्पियन युस्टस माइल्स शाकाहारी थे। सन् १६०४ का जिक्र है, वहाँ ३१५ मील की तेज चालकी होड़ हुई थी, जिसमें ३ मांसाहारी और १ शाकहारी; कुल ४ आदमी शामिल हुए थे। उसमें तीनों मांसाहारी बीच में ही दम तोड़ बैठे और शाकाहारी बाजी मार ले गया।

केलीफोर्निया-विश्वविद्यालय में फलाहार सम्बन्धी प्रयोग किये गये थे, उनसे मालूम हुआ कि फलाहार से कठिन परिश्रम करने पर पुरुषों की सहन-शक्ति और परिश्रम-शीलता बढ़ती है, स्त्रियों की कान्ति और स्वास्थ्य की वृद्धि होती है, और बालक-बालिकाओं में अधिक चपलता तथा कुशाग्रबुद्धि उत्पन्न होती है। इस तरह के अनेक दृष्टान्त है, और आये दिन देखने में आते हैं, जिनसे स्पष्ट मालूम होता है कि मांसाहार के पक्ष में जो ताकत बढ़ने की दलील दी जाती है, वह कोई दलील ही नहीं—महज मजाक है।

निरामिष भोजन का महत्व

असल में आहार का उद्देश्य है—(१) शरीर की छीजन पूरी करना, (२) शारीरिक अवयव और इन्द्रियों में काम करने योग्य शक्ति लाना, और (३) शरीर की गरमी कायम रखना। इन बातों की पूर्ति के लिए भोजन-द्रव्य में प्रोटीन या खाद्योज, स्नेहज, श्वेतसार, लवण-क्षार और जल का होना जरूरी है। वनस्पतियों में ये पाँचों ही तत्त्व पाये जाते हैं, बल्कि मांस में श्वेतसार का भाग नहीं होता। मांस में खनिज-द्रव्य कम होते हैं, और खाद्य-प्राण (विटामिन) की दृष्टि से भी मांस को कोई महत्व नहीं दिया जा सकता। मांस खाने से अम्लपित्त और खट्टी डकार के विकार अकसर हो जाते हैं। शाकाहार में ये सब खतरे नहीं हैं।

मांस खानेवालों को अकसर कोष्ठबद्धता हो जाया करती है, परन्तु शाक-सब्जी खानेवालों के कोष्ठबद्धता या कब्ज की शिकायत होती ही नहीं। शाकाहारी का हाजमा दुरुस्त रहता है और मन भी ठीक रहता है।

संसार प्रसिद्ध निरामिष-भोजी महात्मा गान्धी की मानसिक और आध्यात्मिक उन्नति आज संसार-भर में विख्यात है। और, आज तक जितने भी पहुँचे हुए महात्मा और मनुष्य उन्नति पथपर चलानेवाले नेता हुए हैं, वे सब निरामिष-भोजी थे। मांसाहारी विद्वान अपनी तेज बुद्धि से वायुयान, बम-गोला, पनडुब्बे जहाज, प्राणघाती गैस आदि नाशकारी आश्चर्यजनक चीजें भले ही बनाले, पर प्राण-रक्षा, शान्ति और मुक्ति के उपाय निकालने में उनकी बुद्धि काम नहीं करती। आज हम जिन टाल्सटाय, एमरसन, थ्योरो, एड्वर्ड कारपेन्टर, रोमाँ रोलाँ आदि विदेशी मनीषियों का नाम सुन रहे हैं, वे सभी जन्म से मांसाहारी होने पर भी अन्त में जाकर निरामिष-भोजक के परिणाम पर पहुंचे हैं। इससे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मालूम होता है कि हम मनुष्यों के लिए निरामिष-भोजन ही उपादेय और ठीक है।

एक बात और। शाकाहार निरापद भी है, परन्तु मांसाहार से अनेक रोग उत्पन्न हो सकते हैं। गो-मांस, शूकर-मांस और भेड़ के मांस में अकसर कोढ़ और क्षयरोग के कीटाणु रहा करते है। इसके अलावा यह निर्णय करना भी कठिन ही नहीं, बल्कि असम्भव है कि कौन-सा मांस बीमार जानवर का है और कौन सा नीरोग का ? हिन्दुस्तान में तो अकसर लोग बीमार जानवरों को ही लालच-वश बेचकर अपना पिण्ड छुड़ाते हैं, जिससे मास खानेवालों को अकसर बीमार जानवरों का ही मास खाने को मिला करता है, और बाजार से खानेवालों की तो कुछ पूछिये मत ! क्षय-रोगवाले जानवरों का मांस खाने से क्षयरोग होने में देर ही क्या लगती है ?

मारगेरेट हास्पिटल ब्रामलेके सीनियर फिजिशयन डाक्टर जोशिया आल्ड फील्ड कहते हैं—

"मांस अप्राकृतिक भोजन है। इसीलिए वह शरीर में अनेक उपद्रव करता है। आजकल का सभ्य समाज इस मांस खाने के कारण कैन्सर, क्षय, ज्वर, कृमि आदि भयानक रोगों से, जो एक मनुष्य से दूसरे मनुष्य में फैलते हैं, बहुत अधिक पीड़ित होता है। इसमें कोई अश्चर्य नहीं कि मांसाहार उन भयानक रोगों के कारणों में से एक कारण है, जो १०० में से ६६ को सताते हैं।"

इसी प्रकार सिलपेस्टर, ग्रेहम, ओ० एम० फालर, जे० स्मिथ, डाक्टर ओ० ए० आलक्ट, हिडकलैरड आदि कितने ही डाक्टरों (प्रवीण चिकित्सकों) ने अनेक दृढ़तर प्रमाणोंसे यह सिद्ध किया है कि मां-मछली खाने से शरीर रोगों का घर बन जाता है। यकृत, यक्ष्मा, राजयक्ष्मा, मृगी, फीलपाँव, संधिवात, नासूर और क्षयरोग आदि रोग उत्पन्न हो जाते हैं, जिससे मनुष्य को बड़ी-बड़ी तकलीफें उठानी पड़ती हैं। इन डाक्टरों ने प्रत्यक्ष उदहरण द्वारा यह प्रकट किया है कि मांस-मछली खाना छोड़ देने से मनुष्य के उत्कट रोग समूल नष्ट हो गये हैं। डाक्टर एस० ग्रहेमन, डब्ल्यू० एस० फूलर, डाक्टर पार्मली लेम्ब, बैनिस्टर वेलर, जे० पोर्टर, ए० जे० नाइट और स्मिथ आदि डाक्टर स्वयं मांस खाना छोड़ देने पर यक्ष्मा, अतिसार, अजीर्णता और मृगी आदि रोगों से विमुक्त होकर सबल और परिश्रमी हुए हैं। इसी प्रकार उन्होंने अन्य रोगियों को मांस छुड़ा कर तन्दुरुस्त किया है।

सर बेंजमिन डब्ल्यू० रिचर्डसन, ए० डी०, एम० आर० सी० एम० ने एक बार पब्लिक हेल्थ (सर्वजनिक स्वास्थ्य) पर भाषण देते हुए कहा था—"मैं सच्चे हार्दिक भाव प्रकट करता हूँ और पूर्ण आशा करता कि उन्नीसवीं शताब्दी के समाप्त होने से पहिले ही सब बूचड़-खाने समूल नष्ट कर दिये जायँगे, और मांस का प्रयोग भोजन में पूर्णतया बन्द कर दिया जायगा।"

इसके सिवा जानवरों के शरीर के जोड़ों, हड्डियों और मांस के बड़े-बड़े टुकड़ों के अन्दर जो कीटाणु होते हैं, वे पकाने पर भी बने ही रहते हैं, और उनसे रोग होना कोई आश्चर्य की बात नहीं। दूसरे, मांस में रोग-कीटाणु न होने पर भी कभी-कभी उसमें अपने ही आप विषैली चीज पैदा हो जाती है, जिससे कै-दस्त होते-होते कभी-कभी मौत तक हो जाती है। तीसरे पशु-शरीर के कई दूषित पदार्थ मांस में कुछ न कुछ रहते ही हैं। उनसे बचने का कोई उपाय ही नहीं। परन्तु फल-मूल और अन्न खाने वाले इन खतरों से बचे रहते हैं।

इसके अलावा मांसाहार में और भी खतरे हैं। मांस नाइट्रोजन-पूर्ण होने के कारण जरा अधिक खाते ही शरीर में जरूरत से ज्यादा नाइट्रोजन पहुँच जाता है, जिससे यकृत और मूत्रपिण्ड का काम बढ़ जाता है; लिहाजा उनमें खराबी पैदा हो जाती है और शरीर की मल निकालने की क्रिया भी ठीक-ठीक नहीं हो पाती। इससे शरीर रोगी बन जाता है। दूसरी बात यह कि मांस में अम्ल बढ़ानेवाले अंश ज्यादा होते हैं, जिससे शरीर की आरोग्यता बिगड़ती हैं।

इन्हीं सब कारणों से आज पश्चिमी वैज्ञानिक और डाक्टर लोग अपने देशवासियों को मांसाहार का परिमाण घटाने की सलाह दे रहे हैं; और यही वजह है कि मांस के बदले वहाँ दूध, फल, शाक अनाज वगैरह का अधि-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काधिक प्रचार होता जा रहा है। जब शीत-प्रधान देशों में निरामिष-भोजन उपयोगी सिद्ध होता जा रहा है, तब भारतवर्ष जैसे ग्रीष्म-प्रधान देश के लिए तो निरामिष भोजन अमृत-तुल्य है।

मांस के मुकाबले के अन्य पौष्टिक पदार्थ

हमें दुनिया में मांस से बढ़कर बलदायक बहुत सी चीजें मिल सकती हैं। दूध, घी, मक्खन, दही, टमाटर, नारंगी, बादाम, अखरोट, आलू, पालक आदि खाद्य-पदार्थ शरीर को तो पुष्ट करते ही हैं, और साथ ही हमारी मानसिक शक्ति को भी बढ़ाते हैं। इन चीजों के खाने में खतरा कम से कम है, और मानवीय भोजन की दृष्टि से भी ये सर्वोत्कृष्ट प्रतीत होती हैं।

इसी प्रकार 'न्यूयार्क ट्रिब्यून' के सम्पादक मि० होरेस ग्रीरेले लिखते हैं—"मेरा अनुभव है कि मांसाहारी की अपेक्षा शाकाहारी १० वर्ष अधिक जी सकता है।"

सन् १९०८ ई० में प्रसिद्ध विद्युत शास्त्रज्ञ ए० ई० वेरिस ने २५ वर्ष तक लगातार अपनी प्रयोगशाला में परिश्रम करने के बाद यह सिद्ध किया है कि सब प्रकार के फल और मेवों में एक प्रकार की बिजली भरी हुई है, जिससे शरीर का पूर्ण रूप से पोषण होता है।

प्रो० जोहन रे, एफ० आर० एस०, लिखते हैं कि मनुष्य जीवन के पालन-पोषण के लिए जिस-जिस वस्तु की आवश्यकता है, वह सब वनस्पति द्वारा प्राप्त हो सकती है।

प्रो० लारेन्स कहते हैं—"मांसाहार जैसे शरीर की शक्ति और हिम्मत कम करता है, और तरह-तरह की बीमारियों का मूल कारण है, वैसे ही वनस्पति आहार के साथ नाताकती डरपोकपन और बीमारियों का कोई सम्बन्ध नहीं।"

सैकड़ों डाक्टरों ने अपने अनुभवों के बाद यह घोषणाएँ की हैं कि हमें कुदरत ने ऐसे बलदायक अनेक पदार्थ दिये हैं, जो कि मांस से कहीं बढ़कर और साथ ही अन्य दुर्गुणों से रहित हैं।

यहाँ हम कोष्ठक देकर कुछ खाद्य-पदार्थों के विटामिन (खाद्योज) दिखाते हैं। इसमें दिये हुए चिह्नों का अभिप्राय इस प्रकार है:—एक चिह्न (+) विटामिन साधारण मात्रा में है। दो चिह्न (+ +) विटामिन अधिक है। तीन चिह्न (+ + +) अमुक विटामिन बहुत अधिक मात्रा में है। और (—) चिह्न है, वहाँ समझना चाहिए कि विटामिन थोड़ा नाममात्र को है। प्रश्नवाचक (?) चिह्न का मतलब है—अभी निर्णय नहीं हुआ; और शून्य (०) के मानी हैं—विटामिन है ही नहीं।

विटामिन (खाद्योज) के कोष्टक

खाद्य पदार्थ	विटामिन 'ए'	विटामिन 'बी'	विटामिन 'सी'	विटामिन 'डी'	विटामिन 'ई'
कच्चा दूध	+++	++	++	++	
एक उफान का दूध	+++	++	+	++	
गाढ़ा दूध	+++	++	+	++	
मक्खन	+++	++	+		
दही	+	+++	+		
माठा	+	+++	+		
घी	+++	+	+		
छाना (फटा)	++	++	+		
मलाई	+++	++	+		
मोटे आटे की (रोटी दूध में)	++	+×	?	+	
गेहूँ	+	++			+
गेहूँ का आटा	+	++			+
गेहूँ का चोकर	++	++			
मका	+	++			
जुआर	+	++			
हरी मूंग	+	++	++		
अन्य सभी दालें	+	++			
चना	+	++	++		
आलू	+	++	++		
गाजर	++	++	++		
शलगम	+	++	+++		
ताजी सेम	++	++	+++		
पालक	+++	+++	+++		

(शेष दसवें पृष्ठ के नीचे)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेखक

हमारे स्वास्थ्य पर मनोभावों का प्रभाव

[प्रोफेसर रामचरण महेन्द्र, एम. ए., डी. लिट्. डी. डी.]

पाश्चात्य मनोवैज्ञानिक अनेक प्रयोगों के उपरान्त इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि मनुष्य का मन ही समस्त जड़-चेतन का कारणभूत है—जीवन का कण-कण उसी से सम्बन्धित है। मनुष्य की ९० प्रतिशत व्याधियाँ केवल निम्नमनः स्थिति से प्रारम्भ होती हैं। शरीर के रोग हमारे मन की ही देन हैं। मानसिक दुर्बलताएं ही शारीरिक व्याधि की कारण हैं। अतःप्रत्येक स्वास्थ्यार्थी को स्वास्थ्य एवं आरोग्य के इस मानसिक पहलू की न केवल कदापि उपेक्षा न करनी चाहिए वरन् उसे स्वस्थ, सबल एवं समुन्नत बनाए रखने के लिए सतत प्रयत्नशील भी रहना चाहिये।

बहुधा यह देखने में आया है कि अनेक व्यक्ति हाथ मलते, नाखून चबाते, पैर हिलाते, बार-बार गर्दन मोड़ते या गुप्तांग का स्पर्श करते रहते हैं। इस प्रकार की बे मतलब की क्रियाएं मनुष्य के मानसिक दौर्बल्य की ही द्योतक होती हैं। इनसे निराशा, चिन्ता, निरुत्साह, मानसिक अस्वस्थता आदि का ही परिचय मिलता है। फ्रायड तथा जुंग जैसे मनोवैज्ञानिकों ने यह सिद्ध कर दिया है कि बाल्यावस्था के छोटे-छोटे दुर्गुण, मनमानियाँ, भूलें, विस्मृति आदि बड़े होने पर मनुष्य के शरीर में आश्चर्यजनक परिवर्तन कर देती हैं। हकलाना और यहाँ तक कि लकवा जैसे भयानक रोग के मूल में मन की विकृति ही पाई गई है। इसी प्रकार क्षय जैसे नर-संहारक रोग का भी अन्य कारणों के साथ मनोवैज्ञानिक कारण भी होता है। अतः यह स्पष्ट है कि मानव-जीवन की अधिकांश रोग-व्याधियों का मनुष्य की मानसिक स्थिति से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। रक्ताल्पता, हृदय रोग, हिस्टीरिया, स्नायुदौर्बल्य, वीर्यदोष आदि अनेक बीमारियों के मूल में मानसिक विकृति अनिवार्य रूप से पाई जाती है।

मनोवेगों का प्रभाव

जब मनुष्य भयभीत हो जाता है तो उसके हृदय की गति अत्यन्त तीव्र हो जाती है। मन में धुक-धुकी-सी मच जाती है, मनुष्य थर-थर काँपने लगता है। परीक्षा के समय विद्यार्थियों को याद की हुई बातें भी भूल जाती हैं। आकस्मिक उत्तेजना के कारण लिखते नहीं बनता और कभी कभी तो स्नायुदौर्बल्य के कारण उनके हाथ पैर भी फूल जाते हैं। स्टेज पर प्रथम बार आने वाले अभिनेताओं या वक्ताओं को भी ऐसी ही आकस्मिक उत्तेजना के शिकार बनना पड़ता है। 'इन्टरव्यू' के समय अनेक व्यक्ति कुछ का कुछ कह जाते हैं। जब चोर भागता है तो उसके पाँव आगे बढ़ने की जगह पीछे पड़ते हैं। जब हम कड़वी कुनैन पीना चाहते हैं तो पीने के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहले ही उबकाई आने लगती है और शरीर उसे ग्रहण न करने का उपक्रम करने लगता है—इन सब से यह स्पष्ट इंगित होता है कि हमारी समस्त शारीरिक क्रियाओं पर मन का जबदस्त प्रभाव पड़ता है।

उत्तेजित मनोद्वेग की अवस्था में शरीर यंत्र की रासायनिक प्रक्रियाओं में महान अन्तर हो जाता है। गुस्से की हालत में ऐसे विष उत्पन्न हो जाते हैं जिनसे शरीर की बढ़ोतरी मारी जाती है। अत्यधिक क्षुब्ध अवस्था में शरीर निःशक्त बन जाता है—उसकी कार्य सम्पादन शक्ति पंगु-सी प्रतीत होने लगती है। फिर कल्पना करें, यदि मनुष्य बराबर इस तरह के प्रबल मनोद्वेगों की स्थिति में अपने को बनाए रहे तो उसके स्वास्थ्य पर कितना भयानक प्रभाव पड़ेगा। अतः मन की प्रसन्न, उत्फुल्ल मुद्रा ही मनुष्य के सच्चे आरोग्य एवं स्वास्थ्य की पहली सीढ़ी है।

आपने देखा होगा कि कुछ व्यक्तियों के चेहरे पर सहानुभूति, मृदुता, शान्ति, सौजन्य, दृष्टिगोचर होता है। उसके विपरीत कुछ लोगों के चेहरे पर काम, क्रोध, उत्तेजना, विक्षोभ आदि मनोविकारों की स्पष्ट छाप अंकित रहती है, जो सहज ही पहचानी जा सकती है। जिन पुरुषों ने अपने जीवन में सत्यता पूर्वक दूसरों की सहायता की है, मृदुल प्रेम के निर्झर में आत्मा को निमज्जित कराते रहे हैं, उनकी वृद्धावस्था अस्ताचलगामी अंशुमाली की भांति शान्ति और सन्तोष से परिपूर्ण व्यतीत होती है। उनकी मृत्यु भी एक विश्रान्ति ही होती है। अन्तिम समय तक वे आनन्दमय जीवन बिताते हैं और उनके आन्तरिक आभा से उनका मुख-मण्डल देदीप्यमान बना रहता है।

अपनी आकृति का ध्यानपूर्वक अवलोकन कीजिये। क्या उससे आत्म-तेज की विद्युत् प्रकाशित होती है, आनन्द, शान्ति, सौन्दर्य प्रकट होता है? यदि नहीं, तो इसका अर्थ है कि आप उत्तम मनोभावनाओं के नन्दन-कानन में विचरण नहीं करते। स्मरण रक्खें, आपकी मुखाकृति आपके अन्तर्जगत का प्रतिबिम्ब मात्र है।

> मनुष्य की ६० प्रतिशत बीमारियाँ केवल निम्न मनः स्थित से प्रारम्भ होती है। शरीर के रोग-व्याधि हमारे मन की ही देन हैं। हम जैसी मनोभावना प्रकट करते हैं, वैसी ही वृत्ति की हृदय में अनुभूति भी होती है—यही महेन्द्र जी के इस सुन्दर लेख का निचोड़ है।—सं०

मनोवेगों का भोजन पर प्रभाव

हम जो भोजन करते हैं, केवल उसी के द्वारा हमारा शरीर नहीं बनता, प्रत्युत भोजन करते समय हमारी जैसी मनःस्थिति होती है, जैसे मनोभावों में हमारी आत्मा निवास करती है, जिन संस्कारों को इस भोजन के साथ ग्रहण करते हैं, वे ही शरीर में क्रमशः बस जाते और शरीर की मांस पेशियों का निर्माण करते हैं। अतः भोजन के समय आन्तरिक मनःस्थिति की स्वच्छता वाह्य उपकरणों की अपेक्षा कहीं अधिक आवश्यक है।

स्मरण रखिए, पौष्टिक से पौष्टिक और सुस्वादु से सुस्वादु भोजन भी निषेधात्मक दूषित मनःस्थिति से हानिकारक बन सकता है। कामी, लम्पट, धनिक मेवा-मिष्ठान्न खाकर भी निर्बल, अशक्त बने रहते हैं। इसके विपरीत सीधा-सादा सरल हृदय कृषक सूखी रोटी खाकर ही मस्त बना रहता और दीर्घायु प्राप्त करता है। हँसते-हँसते दूध पीने वाला फूल-सा नन्हा शिशु कैसा स्वस्थ और सुडौल बनता जाता है। इस प्रकार निर्दोष, निश्चिन्त और आनन्दपूर्वक किया हुआ साधारण भोजन भी बड़ा लाभकर होता है।

हमारे जीवन के विकास के साथ-साथ हमारे अर्ध-चेतन मन (Sub-conscious mind) की शक्ति भी विकसित होती रहती है। यह शक्ति हमारे शरीर में अज्ञात रूप से बड़ा महत्वपूर्ण कार्य करती है। पोषण, रुधिराभिसरण, मल-विसर्जन, पाचन-क्रिया, नवशक्ति का उत्पादन बहुत कुछ इस आन्तरिक मन द्वारा ही सम्पन्न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ करता है। हम नित्य प्रति के जीवन में अपने मनोभावों के अनुसार अपनी कार्योत्पादक शक्तियों को बढ़ाते या पंगु करते रहते हैं। दोष हमारे मनोभावों का है। यदि हम सदा पूर्ण स्वास्थ्य, सुख, शान्ति के मृदुल स्वास्थ्यप्रद मनोभावों में रमण करने लगें और समझ लें कि इस परम पुनीत शरीर-मन्दिर में दूषित मनोवेग हमारी शक्तियों को पंगु बनाते हैं, तो हमें अक्षय स्वास्थ्य की प्राप्ति हो सकती है।

व्यायाम के समय हमारे मनोभाव

कितने ही व्यक्ति व्यायाम करते समय अपनी आन्तरिक स्थिति पर ध्यान नहीं देते। वे अपने भाव-पक्ष की अभिवृद्धि नहीं करते। वे अपने रग-रेशों को झटक-फटक कर थका डालते हैं, नसों में रुधिर की गति तीव्र कर लेते हैं, डम्बल एवं मुगदर घुमाफिरा कर पसीने-पसीने हो जाते हैं, तरह-तरह के पौष्टिक आहार ग्रहण करने में धन व्यय करते हैं, किन्तु सबसे अधिक मूल्यवान वस्तु—स्वास्थ्यप्रद मनोभाव—पर तनिक भी ध्यान नहीं देते।

एक सज्जन मुझे लिखते हैं, "मैं चार वर्ष से व्यायाम कर रहा था। शारीरिक दुर्बलता तो थी ही, किन्तु मानसिक स्थिति भी स्थिर न थी। मन कहता—"तुम जैसे दुर्बल आदमी मजबूत नहीं बन सकते।" यही कारण है कि मैं व्यायाम करते हुए भी अपने को बहुत दुर्बल अनुभव कर रहा था। अब जब से मैंने मानसिक परिष्कार किया है, मुझ में जान आने लगी है। अब मुझे स्वयं अनुभव हो गया है कि मजबूत बनाने की क्रिया का सूत्रपात मन से ही होता है।"

यदि हम अपनी अंतरात्मा की शुद्धि का प्रयत्न करें अपने मनः प्रदेश में विजातीय तत्वों का प्रवेश न होने दें तथा सदैव शक्ति, शान्ति, एवं स्वास्थ्य के शुभ्र मनोभावों में रमण करते रहें तो पूर्ण आरोग्यमय जीवन का आनन्द प्राप्त करने के अधिकारी बन सकते हैं।

जैसा भाव वैसा अनुभव

इस सम्बन्ध में एक वैज्ञानिक सत्य (Truth) बड़े काम का है। आप अपने शरीर से जैसी मनोभावना प्रकट करेंगे, वैसी ही वृत्ति की अनुभूति भी हृदय में करेंगे। यदि आप आनन्ददायक मनःस्थिति वाले व्यक्ति का अभिनय करेंगे—खिलखिलायेंगे, हँसे-खेलेंगे, चार मित्रों में क्रीड़ायें करेंगे तो आप आन्तरिक जगत् अर्थात् अपने हृदय में भी आनन्द का अनुभव करेंगे। यदि आप चिंतित, क्रोधी, दुःखी व्यक्ति का अभिनय करेंगे तो हृदय एक अज्ञात पीड़ा से रो उठेगा। यदि उत्साह प्रसन्नता, खुशी प्रकट करेंगे तो वास्तव में आनन्दित होंगे और असाधारण स्वास्थ्य-लाभ कर सकेंगे। चिड़चिड़े, क्रोधी, चिन्तित दुःखी रह कर आप स्वास्थ्य का दिवाला निकाल लेंगे। जो भाव प्रकट (Express) करेंगे; वही वास्तव में हृदय में अनुभव (Feel) भी करेंगे।

प्रातःकाल किसी सुन्दर भजन का उच्चारण करते हुये शय्या-त्याग करने से आन्तरिक स्थिति बड़ी आनन्दित रहती है, उद्वेग नहीं सताता, काम में बड़ा उत्साह रहता है। दिल में एक अद्भुत मस्ती छाई रहती है। प्रातःकाल अव्यक्त मन में जैसे मनोभाव दृढ़ कर लिए जाते हैं, पूरे दिन वैसे ही रहते हैं। यदि प्रातःकाल ही आप किसी पर क्रुद्ध हो उठे तो समझ लीजिए कि समूचा दिन बिगड़ गया। किसी कार्य में मजा न आवेगा।

मनोभावों ने अन्तर्जगत का निर्माण किया है। जो कुछ हम हैं वह अपने मनोभावों की बदौलत। यदि हमारे मनोभाव उग्र, निम्न, या निकृष्ट हैं तो हमारे साथ नीचता उसी प्रकार रहती है जैसे व्यक्ति के पीछे छाया। यदि हमारे मनोभाव पवित्र हैं तो हमारे मुख पर उनका दिव्य प्रकाश सदैव देदीप्यमान रहता है।

आप अपने मनोभावों की उन्नति एवं पतन के अनुसार अपनी दुनियाँ को अमृतमयी या विषैली बना रहे हैं। उत्थान एवं पतन का चक्र निरंतर मनः प्रदेश में चल रहा है। अनजाने में आप कहीं अपना सर्वनाश न कर लें, यह ध्यान रखिए।

मन में केवल पवित्रता, आनन्द एवं पूर्ण स्वास्थ्य के ही मनोभावों को स्थान दीजिए। "मैं अधिकाधिक बलवान् हो रहा हूँ, मेरा तेज बढ़ रहा है, मैं सुखी, पवित्र, एवं मजबूत बन रहा हूं—" ऐसी भावनाओं में आत्मा को निमज्जित कराने से सब प्रकार की दुर्बलताओं का नाश होता है। अतः मन की दुनिया का निर्माण सोच समझ कर ही कीजिये।*

*लेखक की नवीन पुस्तक "जीवन का नया साथी—मनोविज्ञान" से।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

—२७वें पेज का शेषांश

वरन् नुकसान उठाता है। इस लिये अनेक प्राकृतिक चिकित्सक अपने रोगियों को गीली जगह में घंटों टहलने की और कुछ देर खड़े रहने की राय देते हैं और उन्हें ऐसी चीज पर बैठने से मना करते हैं जिससे गुदाद्वार में गरमी पहुँचने का डर हो और गुदाद्वार से थोड़ा पानी चढ़ा कर रोकने की भी सलाह देते हैं। यह सभी जानते हैं कि गुदाद्वार के अंतिम छोर पर मल के रुके रहने और बवासीर वगैरह हो जाने से वहां गरमी पैदा होती है जिसका असर मस्तिष्क पर बहुत बुरा पड़ता है। अतः इस स्नान से सिर की शिकायतें दूर हो जाती है। पैर और नितम्बों के पानी में रहने से रक्त संचालन सम होता है। पेड़ू की गर्मी के कारण रोग होता है और रोग में पेड़ू की गर्मी बढ़ जाती है, ऐसी हालत में पेड़ू को ठडा करना कितने अधिक लाभ का होगा !

प्राकृतिक स्नान में प्राकृतिक चिकित्सा शास्त्र के विशिष्ट प्रतिनिधियों द्वारा रोग निवारणार्थ लाई जाने वाली सभी विधियों का जैसे—नंगे पाँव टहलना, पानी में खड़े रहना, मल द्वार को गरम होने से बचाना, एनिमा का प्रयोग, वायु और प्रकाश स्नान, पेड़ू की ठंडी पट्टी, पेड़ू नहान, जल स्नान, जननेन्द्रियों को ठंडक पहुँचाना, नीप का तरेरा, पेड़ू और शरीर की मालिश, समावेश हो गया है। इतनी विधियों के एक साथ प्रयोग की विधि प्रकृति का आविष्कार है, अतः प्राकृतिक नहान सब विधियों से अधिक प्रभाव शाली और मनुष्य जाति के लिए लाभदायक है।

इन प्राकृतिक उपादानों का व्यवहार करने पर शरीर में उनकी एक जोरदार प्रतिक्रिया होती है जिसके फल स्वरूप शरीर का विजातीय द्रव्य स्थान-च्युत होकर निकलने लगता है और निश्चयात्मक रूप से रोग निवारक उभाड़ होता है जो कष्टकर पीड़ा और उसकी अनुभूति के रूप में प्रगट होता है।

उपचार जितना ही अधिक प्राकृतिक होता है, अक्सर उतना ही जोरदार होता है।

पर इन उभाड़ों से डरने की जरूरत नहीं है, ये सर्वदा स्वागत करने योग्य हैं। वे अक्सर चिकित्सा के आरंभ में ही होते हैं, इनसे डरकर या इनके होने पर नहान बंद करने की जरूरत नहीं है।

डा० कुलरंजन मुखोपाध्याय लिखित

वैज्ञानिक जल-चिकित्सा

जल, मिट्टी, गर्मी, हवा, धूप और पथ्य प्रभृति द्वारा चिकित्सा की सर्व श्रेष्ठ पुस्तक। मूल्य दो रुपया। पुस्तक मिलने का पता—

डा० कुलरञ्जन मुखोपाध्याय,
वैज्ञानिक जल-चिकित्सालय,
११४।२ वी हाजरा रोड,
कालीघाट, कलकत्ता,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

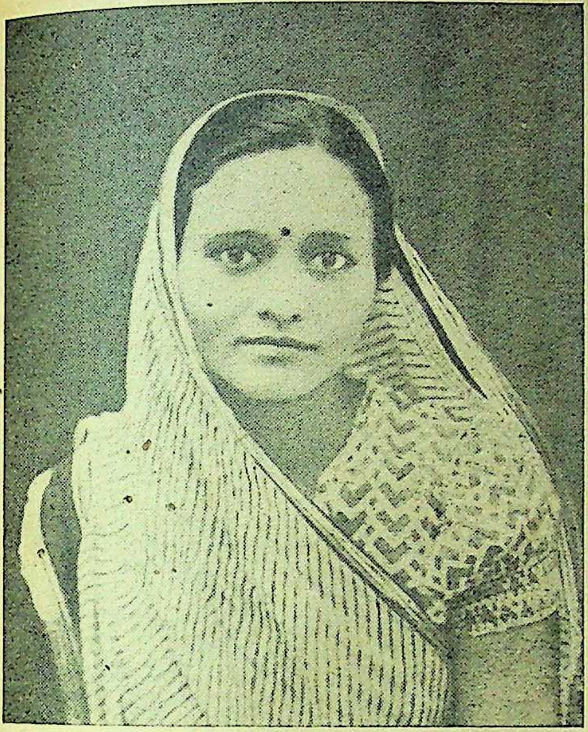

लेखिका

बंध्यत्व रोग या बांझपन और उसका प्राकृतिक इलाज

[डा० इन्दुमती सिनहा, एम० डी० डी० वाई०]

पिछले कई अंकों में हमने डा० इन्दुमती सिनहा एन० डी० डी० वाई० के लेख प्रकाशित किए हैं, जिन्हें अधिकाँश पाठकों ने बहुत पसन्द किया है। कइयों ने उनके बारेमें विशेष पूछ ताछ भी की हैं। अतः हम इस लेख के साथ आपका परिचय भी दे देना चाहते हैं। आप हमारे स्वास्थ्गृह में महिला विभाग की प्रधान हैं। आपका प्राकृतिक-चिकित्सा का ज्ञान उत्तम कोटि का और रोगिणी बहनों और माताओं की परिचर्या सराहनीय है। आपने अबतक न जाने कितनी ही रोग-ग्रस्त बहनों की सफल चिकित्सा कर के उन्हें स्वास्थ्य एवं आरोग्य के मार्ग पर पुनः अग्रसर किया हैं। इस समय आप अपने अनुभवों के आधार पर 'नारी आरोग्य दर्शन' नामक एक वृहद ग्रन्थ तैयार करने में लगी हैं। आशा की जाती हैं कि यह स्त्रियों के लिए एक बहुत ही उपयोगी पुस्तक प्रमाणित होगी। —सं०

साधारण तौर से बांझ (बंध्या) और विधवा इन दोनों की परिवारिक तथा सामाजिक स्थिति में कम या नही के बराबर अन्तर पाया जाता है। कारण यह कि हिन्दू-समाज के भाग्यवादी या कट्टर पंथी लोग वैधव्य की भाँति बंध्यत्व को भी पूर्व-जन्म का संस्कार या विधि-विधान समझते हैं। इसीलिए ऐसे पतियों की संख्या वास्तव में बहुत कम पायी जायगी जो सन्तान न होने पर दूसरी शादी की इच्छा प्रकट करने के बजाय अपनी स्त्री का उपचार या इलाज करने की कोई बात सोचें। वे तो यही समझ लेते हैं कि 'इस स्त्री के सन्तान का मुख देखना भाग्य में लिखा ही नहीं है।' फिर तो यह कहने को आवश्यकता नहीं कि बाँझपन या बंध्यत्व रोग से पीड़ित होने वाली १० बहनों में मुश्किल से एक या दो ऐसी मिलेंगी जिन्हें इस कलंकपूर्ण रोग के कारण अपने पति के सुख से वंचित न होना पड़ा हो। ऐसी अवस्था में बांझ की दशा तो विधवा से भी अधिक शोचनीय इस दृष्टि से बन जाती है कि विधवा को तो अपने मरे हुए पति के बिछोह को सहना पड़ता है लेकिन बांझ को अपने पति के जीवित रहते हुए भी वैवाहिक जीवन के सुख-सौभाग्य से अलग हो जाना पड़ता है।

लेकिन हमारे इन भाग्यवादी या कट्टरपंथी लोगों के विपरीत एक चिकित्सक दूसरे रोगों की तरह बाँझपन को भी एक प्रकार की बीमारी ही समझता है उसका इलाज करता है और कई मामलों में वह सफल भी होता है। खास करके प्राकृतिक चिकित्सा-प्रणाली तो मनस्ताप-पीड़ित बन्ध्या के लिए भी आशा का सन्देश रखती है। और इसमें भी सन्देह नहीं कि अगर धैर्य, लगन, तथा विश्वास पूर्वक प्राकृतिक चिकित्सा का सहारा लिया जाय तो कई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मामलों में इस कलंकी रोग से सहज ही छुटकारा भी मिल सकता है।

इस सम्बन्ध में सबसे पहले यह जान लेना होगा कि बांझपन का नपुंसकता से कोई खास सम्बन्ध नहीं है। नपुंसकत्व में तो इंद्रिय-चालन की शक्ति बिलकुल ही नहीं रहती, जब कि बांझपन के सम्बन्ध में ऐसी बात नहीं कही जा सकती। उसमें जहाँ तक इंद्रिय-चालन का सम्बन्ध है, स्त्री और पुरुष दोनों के समर्थ होने पर भी वे सन्तान-सुख का उपभोग नहीं कर सकते।

बाँझपन के लिए अधिकतर पति के बजाय पत्नी को ही दोषी बताया जाता है, लेकिन प्रत्येक ६ मामले पीछे एक मामले में इसका दोष स्त्री पर होकर पुरुष पर ही होता है। पति में जननेन्द्रिय सम्बन्धी कोई रोग या विकार होने पर भी स्त्री के सन्तान नहीं पैदा होती है।

बाँझपन के दो प्रकार

बाँझपन भी दो तरह का होता है। एक तो वह जिसमें स्त्री को गर्भाधान या प्रसव का सौभाग्य ही नहीं प्राप्त होता। और दूसरे प्रकार का बाँझपन वह है जिसमें एक बच्चा पैदा हो जाने के बाद वह फिर गर्भधारण करने में असमर्थ हो जाती है। इस दूसरे तरह की बंध्या को "इकलौठ" कहते हैं।

साधारण वंध्यत्व दोष के दो प्रकार बताए गये हैं: (१)आपेक्षिक Relative (२)अनापेक्षिक Absolute

आपेक्षिक वंध्यत्व दोष में स्त्री गर्भधारण तो करती है लेकिन वह पूर्ण नहीं हो पाता, बीच ही में गर्भस्राव या गर्भपात हो जाता है। आपेक्षिक वन्ध्यत्व दोष में स्त्री के डिम्ब कोष में ही गड़बड़ी पायी जाती है। उसमें गर्भधारण की शक्ति ही नहीं होती, इसी वजह से यह रोग होता है।

संक्षेप में आपेक्षिक वंध्यत्व दोष के कारण इस प्रकार के बताए गये हैं—शुक्राणु का मौजूद न होना, या गर्भाशय तक पहुँचने में असमर्थ होना या शुक्राणुओं का रास्ते में ही नष्ट हो जाना, गर्भाशय तक शुक्राणुओं के पहुँचने में यांत्रिक (बनावट सम्बन्धी) अवरोध या रुकावट होना, जैसे गर्भाशय-द्वार या गर्भाशय-ग्रीवा का अवरुद्ध या बन्द हो जाना, आदि।

स्थानीय कारण

आंगिक बनावट में कोई पैदाइशी खराबी या विकृति होना जैसे—अविकसित गर्भाशय, गर्भाशय-ग्रीवा का छोटा होना, गर्भाशय ग्रीवा या गर्भाशय ग्रीवा में छोटा सा बारीक छेद होना, गर्भाशय का पीछे की तरफ (पश्चाद् भ्रंश) हट जाना, बीज-ग्रन्थि (ovary) का ठीक ठीक विकास न होना या वहां पर डिम्बों का उपस्थित न होना, या गर्भाशय की नली में कोई ऐसी बीमारी या विकृति होना जिससे उसका मार्ग अवरुद्ध हो जाय, संयोग के समय पीड़ा होना अथवा गर्भाशय सम्बन्धी अन्य रोग बांझपन के स्थानीय कारण होते हैं। नशीली वस्तुओं के सेवन की आदत होने, कोई मानसिक रोग होने, उपदंश या गरमी की बीमारी होने अथवा इन्द्रिय-चालन का अभाव हो जाने से भी यह रोग हो सकता है। इसके अलावा समुचित भोजन अथा भोजन में प्रोटीन, विटामिन आदि पोषक-तत्वों का अभाव, कण्ठमणि तथा श्लैष्मिक झिल्लियों की गिरी हुई अवस्थाएं भी इसका कारण बन सकती हैं। कण्ठमणि शरीर के समस्त रासायनिक परिवर्तन पर और श्लैष्मिक झिल्लियाँ गर्भाशय पर अपना प्रभाव डालती हैं, इसलिए इन दोनों के कार्यों में भी गड़बड़ी होने से बांझपन की अवस्था उत्पन्न हो सकती है।

बाँझपन का उपचार

आजकल के एलोपैथ चिकित्सक गर्भाशय की नली (Fallopian tube) की धारण-शक्ति और उसकी कार्यकारिता (Potency) की परीक्षा के लिए धातु की बनी ट्यूब को योनिमार्ग से गर्भाशय में डालकर जाँच करते हैं। उन डाक्टरों का कहना है कि बांझ स्त्रियों की यह परीक्षा उनके लिए दवा का भी काम देती है और बहुत मामलों में इस रीति से परीक्षा करने के बाद गर्भ की स्थिति हुई है।

लेकिन जहाँ तक प्राकृतिक चिकित्सा का सम्बन्ध है बांझपन या वंध्यत्व दोष का कारण भी शरीर में, और खास कर जननेन्द्रिय, गर्भाशय आदि में विजातीय द्रव्य का पैदा या इकट्ठा होना है। यदि विजातीय द्रव्यों का परिमाण अधिक न होगा और रोगिणी की जीवन-शक्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक दम नष्ट न होगई होगी तो बन्ध्यत्व दोष भी प्राकृतिक चिकित्सा के विधान के अनुसार अच्छा हो सकता है। इस दोष को दूर करने का प्राकृतिक उपचार इस प्रकार होना चाहिए—हर रोज आध घन्टे से लेकर एक घन्टे तक दिन में दो बार मेहन-स्नान, दो बार कटि-स्नान और सर्वांग स्नान। इसके साथ ही भोजन भी इस प्रकार का होना चाहिए जिससे पेट गर्म न हो जाय। भूख न लगे तो भोजन न करना, हल्की और आसानी से पच जाने वाली चीजें खाना। सप्ताह में एक बार सुबह को कटि-स्नान के पहिले वाष्प स्नान (स्टीम बाथ) लेना। कम से कम एक वर्ष तक इस क्रम को जारी रखने पर बांझपन की अवस्था दूर हो जाने गर्भ और धारण करने की बहुत कुछ सम्भावना है।

पर यदि वंध्या स्त्रियों के शरीर में संचित विजातीय द्रव्य की मात्रा उतनी अधिक न हो और उनकी जीवन-शक्ति एक दम नष्ट न हो गई हो तो ऐसी अवस्था में लूई कूने के मत से कई प्राकृतिक विधियां—कटि स्नान, स्टीम-बाथ, सूर्य स्नान—नशा या उत्तेजना पैदा करने वाली चीजों का पूर्ण रूप से बहिष्कार आदि—मनोवाँछित परिणाम दिखला सकती है।

बाँझपन के उपचार के लिए आसन भी बड़ा उपयोगी होता है। गर्भाशय के अपने स्थान से हट जाने या गर्भ-स्खलन हो जाने की अवस्था में उड्डियान, सर्वांगासन, विपरीतकरणी, अश्विनी आदि योगिक क्रियाएं बहुत ही लाभदायक सिद्ध हुई हैं। पश्चिमोत्तान, योग मुद्रा, और हलासन का भी अप्रत्यक्ष रूप से गर्भाशय पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ता है। इन क्रियाओं से गर्भाशय सम्बन्धी अवयवों पर रुधिर का संचार उत्तम रीति से होने लगता है। पेशियों के आकुंचन और प्रसरण आदि के गुण में वृद्धि होती है। इस बात को ध्यान में रखते हुए कि गर्भाशय तथा वहाँ के वाह्य स्नायुओं में जितना अधिक लचीलापन होगा, उनका कार्य भी उतना ही अधिक उत्तम होगा अश्विनी क्रिया से विशेष लाभ उठाया जा सकता है।

मोटापा—बाँझपन का एक कारण

कभी कभी मोटापा रोग का भी बाँझपन से सम्बन्ध होता है। डा० लोरैएड तथा अन्य विशेषज्ञों के विचारानुसार कुछ स्त्रियों को मोटापा रोग पैदा हो जाता है जो किसी संक्रामक रोग के कारण या जल्दी जल्दी गर्भ धारण करने, बहुत अधिक विषयासक्ति होने, या ऐसे पदार्थों का जो शरीर में जहर फैलाता हैं, सेवन करने से डिम्ब कोषों में खराबी पैदा हो जाने के कारण होता है। इस तरह के मोटापा रोग को 'एएडोजेनस, (Endogenous) कहते है और इसका बाँझपन बहुत अधिक सम्बन्ध होता है। इस तरह की स्त्रियों को बहुत अधिक कब्ज की शिकायत रहती है और उन्हें बहुत कम पसीना निकलता है। उनका चेहरा पीला दीख पड़ता है, बदन की खाल रूखी और ठण्डी रहती है इस तरह के मोटापा रोग के साथ ही साथ उन्हें बाँझपन का रोग भी रहता है। बहुत से चिकित्सक इस तरह स्त्रियों का मोटापा दूर करने के लिए उपवास चिकत्सा का प्रयोग करते हैं लेकिन इससे उन्हें नहीं के बराबर लाभ पहुँचता है और वे बाँझ ही बनी रहती है।

इन अवस्थाओं में निश्चय ही उन्हें सर्वांगासन के उपचार से बहुत लाभ पहुँचाया जा सकता है। कण्ठमणि के स्वस्थ होने से शरीर की रासायनिक प्रक्रिया में सुधार होगा और मोटापा रोग दूर हो जायगा। इसके द्वारा डिम्ब ग्रंथियों को स्वास्थ्य और शक्ति प्राप्त होगी और तब उनके गर्भ रहने की भी आशा हो सकेगी।

यहाँ पर मैं अपनी बहनों से एक विशेष निवेदन करना अपना कर्त्तव्य समझती हूँ। यह तो सभी जानते हैं कि प्राकृतिक चिकित्सा में किसी रोग को दूर करने के लिए कोई खास दवा नहीं दी जाती। प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली इसी सिद्धांत पर अटल हैं कि रोगों का चाहे जो भी रूप हो, अथवा उनके जो भी नाम दिए जाते हों, किन्तु उनका मूल कारण शरीर के अन्दर उत्पन्न हुए अथवा चिरसंचित विकार ही होते हैं। अतः इस चिकित्सा प्रणाली के अनुसार स्वतः रोग का कोई इलाज न करके उन कारणों को दूर कर देने के उपाय किए जाते हैं जिनसे रोगों की उत्पत्ति होती है। यहीं नियम बन्ध्यत्व रोग के लिए भी लागू है। यदि शरीर में कोई विकार नहीं है, मासिक धर्म नियमित और समुचित रीति के प्रति मास होता है, यदि गर्भाशय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की स्थिति आदि के सम्बन्ध में कोई दोष या विकृति नहीं है तो कोई कारण नहीं कि गर्भ की स्थिति न हो। इसी आशा और विश्वास को लेकर प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली का बाँझ स्त्रियों के लिए आशा का सन्देश रखती है। हमारे स्वास्थ्यगृह में इस तरह की कुछ एक बहनों का सफलता पूर्व का उपचार हुआ है और वे प्रकृति माता की कृपा से जीवन में मातृत्व-सुख का अनुभव कर रहीं हैं। इनमें से एक बहन का उदाहरण मैं दे रही हूँ।

राजपूताना से वह बहन हमारे स्वास्थगृह में आई। उनकी अवस्था लगभग २८ साल की थी। उनकी शादी १४ साल की ही अवस्था में हो चुकी थी। उन्होंने प्रथम बार किस अवस्था में गर्भ धारण किया यह तो मुझे स्मरण नहीं, किन्तु उनकी शिकायत यह थी गर्भाधान के दो तीन महीने के भीतर गर्भ स्राव हो जाता। उनकी यह अवस्था वर्षों तक जारी रही। डाक्टरों ने इसे एक प्रकार का बंध्यत्व दोष बताया था। उनके इस तरह के ५ या ६ बार गर्भ स्राव हो चुके थे इस शिकायत के साथ-साथ उन्हें मोटापा और मासिक धर्म की गड़बड़ी की भी शिकायतें थीं। उनके शरीर की ऊंचाई ४ फीट १० इंच और वजन १मन ३२ सेर था। मासिक धर्म उन्हें बड़े कष्ट के साथ और स्वल्प मात्रा में होता था। नियमित रूप से उन्हें तो माहवारी कभी हुई ही नहीं थी।

हमने उनकी चिकित्सा का आरम्भ उपवास से किया। उन्हें सात दिनों का उपवास कराया गया। उपवास के साथ साथ अन्दरूनी सफाई के लिए एनिमा और मिट्टी की पट्टी भी दी गई। दूसरे सप्ताह उन्हें फलाहार पर रक्खा गया। सुबह-शाम मिट्टी की पट्टी और एनिमा का प्रयोग इस सप्ताह भी चलता रहा। पर अब उन्हें गरम और ठण्डे पानी का डूश भी देना शुरू किया गया। इन दो हफ़्तों के उपचार में रोगिणी में कोई खास परिवर्त्तन दृष्टिगोचर नहीं हुए। हां, केवल उनका वज़न ४ सेर छट गया था।

तीसरे सप्ताह में उन्हें फल और सब्जी पर रक्खा गया। चिकित्सा का क्रम प्रायः वही था। हाँ, इस सप्ताह गरम और ठण्डे जल के डूश की जगह एक समय गरम और ठण्डा कटि-स्नान कर दिया गया। तीसरे सप्ताह के अन्त में उनके मासिक धर्म हुआ। पहले उन्हें मासिक धर्म समय जितना कष्ट होता था उसकी अपेक्षा इस बार उनका कष्ट आधा हो गया। स्राव भी पिछले महीनों की अपेक्षा अधिक मात्रा में, और साफ हुआ। यह स्राव ३ दिन तक हुआ और इन तीन दिनों में उपचार के सभी क्रम बन्द कर दिए गए थे लेकिन भोजन का क्रम पूर्ववत् था मासिक धर्म की अवधि समाप्त हो जाने पर उनके उपचार का क्रम फिर जारी हो गया।

चौथे सप्ताह के अन्त में उन्हें रोटी दी गई इस सप्ताह से गरम और शीतल जल का कटि-स्नान दोनों समय कर दिया गया। आगे का उपचार-क्रम यही रहा। महीने में एक बार भाप-नहान भी दिया जाता था। दूसरे महीने में उनका वजन ८-९ सेर कम हो गया। शरीर में कोई दुर्बलता या कमजोरी के लक्षण प्रकट होने के विपरीत उनमें काफी अधिक फुर्ती और क्रिया शीलता तथा प्रसन्नता दीख पड़ने लगी। वह प्रतिदिन शाम को घंटे-दो घंटे तक बैडमिन्टन आदि खेल खेलतीं। थकावट बिलकुल नहीं मालूम होती थी।

दूसरे महीने में मासिक धर्म के समय दर्द नाम-मात्र को हुआ। स्राव भी पहले से साफ और काफी सुर्खी लिए हुए चटकीले रङ्ग का हुआ। इस बार मासिक धर्म के ही समय से उन्हें एक सप्ताह के लिए रसाहार पर रखा गया। दूसरे सप्ताह से फल और भाजी और तीसरे सप्ताह से उनका क्रम फिर पूर्ववत् कर दिया गया। हाँ, इस बार जो उन्हें दूसरा रसाहार कराया गया उसके बीच उन्हें कुछ उभाड़ हुआ, इनफ्लुएंजा के रूप में। दो-तीन दिन बुखार रहा, शरीर में पीड़ा भी थी लेकिन उसके बाद यह उपद्रव अपने आप शान्त हो गया।

उनके बाद तो उनकी हालत में स्पष्ट रूप से सुधार दृष्टि गोचर हुए। आरम्भ में उनका इरादा स्वास्थ्य गृह में दो तीन महीने तक रहने का था। लेकिन बाद में वह पूरे ६ महीने तक रह गईं। यहाँ से वापस लौटने पर उनके गर्भ रह गया। समय से बच्चा पैदा हुआ—स्वस्थ और सुन्दर। प्रकृति का वरदान उन्हें प्राप्त हुआ। इन पंक्तियों के लिखते समय उनका बच्चा डेढ़ साल का हो चुका है। इसी तरह के कुछ और भी उदाहरण हैं, जिनमें प्राकृतिक चिकित्सा को अद्भुत सफलता मिली है। स्थानाभाव से उनका वर्णन यहाँ करने में असमर्थ हूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भृंगराज

[चरकतीर्थ श्री दिगम्बर जी बच्ची, आरोग्य मन्दिर, राजकोट

[प्राकृत रूप में वनस्पतियों का उपयोग प्रकृतिक चिकित्सा का एक विशिष्ट अङ्ग है। कुछ वनस्पतियों का तो हम अहार के रूप में प्रयोग करना सीख गए हैं, लेकिन अभी बहुत सी ऐसी भी पड़ी हैं जिनका हमारे धार्मिक अथवा साधारण नित्य-कर्म में प्रयोग होते हुए भी उनके महत्व एवं उपादेयता से हम अपरचित ही बने हुए हैं। भृङ्गराज इसी प्रकार का एक ओषधि-गुण-सम्पन्न वनस्पति है। इसे हिन्दी में भृँगरैया या भाँगरा, मराठी में भाका और गुजराती में भाँगरो कहते हैं। भृङ्गराज तथा भार्कव यह उसके संस्कृत नाम हैं।

दिगम्बर जी ने अपने आरोग्य-मन्दिर में अनेक रोगियों पर इस वनस्पति के प्रयोग किये हैं और इसे शरद् ऋतु के अनेक बीमारियों के लिए बड़ा उपयोगी पाया है। गजकरणी-क्रिया के साथ भृङ्गराज के प्रयोग से तो अनेक बीमारियों में विशेष लाभ होता है, ऐसा लेखक का अनुभव है। बीमारियों के अलावा साधारण स्वास्थ्य की अवस्था में भी इसका प्रयोग विशेष लाभदायक होता है। यह स्वास्थ्य जिज्ञासुओं के जानने की चीज है।]—सं०

हमारे धार्मिक संस्कारों अथवा साधारण दिनचर्या में कुछ ऐसी वस्तुएं ग्रथित हो चुकी हैं जो अपनी उपयोगिता की दृष्टि से हमारे स्वास्थ्य एवं आरोग्य के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं। तुलसी, बिल्व (बेल)-पत्र आदि प्रतिदिन पूजा-कर्म में उपयोग की जाने वाली वस्तुओं में हैं। इस प्रकार भाका (भँगरैया) भाद्रपद मास में पितृ-पूजन के लिए व्यवहृत की जाने वाली एक उपयोगी वस्तु है, जिसका औषधि के रूपमें विशेष महत्व है।

भाद्रपद मास में प्रायः शीत-ज्वर की व्याधि बढ़ती है और पित्त का बिगाड़ रहता है। शीत ज्वर का भी विशेषतः पित्त का बिगड़ना ही मुख्य कारण होता है। इस महीने में पित्त का अपने मार्ग से सम्यक संचालन होना बहुत आवश्यक है। यह काम भाका विशेष रूप से करता है, ऐसा मेरा अनुभव है। इसके साथ ही साथ गजकरणी क्रिया भी, जो कि पेट को धो डालती है प्रतिदिन प्रातः काल यदि की जाय तो इससे शीत-ज्वर का प्रकोप न हो सकेगा और अनावश्यक पित्त इस क्रिया, से साफ हो जाने तथा भाका से यकृत ठीक तरह से संचालित होने के कारण इसके प्रयोग से शरद्ऋतु की अन्य बहुत सी बीमारियों से भी बचाव हो सकता है।

यकृत और आँतों पर भाका का विशेष प्रभाव पड़ता है, ऐसा देखा जा चुका है। टायफायड के सम्बन्ध में यह देखा गया है कि रोग की शुरुआत में ही भाका का थोड़ा-सा रस दिए गए रोगियों में से एक को भी किसी विषमता का सामना नहीं करना पड़ा और बीमारी की अवधि भी आसानी के साथ और बिना किसी कष्ट या परेशानी के साथ पार होगई और वह बहुत शीघ्र अपनी पूर्वावस्था को प्राप्त हो गया। इस प्रकार हम देखते हैं कि आँतों पर परिशोधन (Dis infectant) के रूप में भाका का कार्य बहुत उत्तम होता है।

टायफायड हो जाने के बाद बहुत से रोगियों में कुछ न कुछ आंत सम्बन्धी खराबी रह जाती है। बद-हजमी, पेट में वायुभरा रहना, अग्निमांद्य, आँतों की कमजोरी, संग्रहणी, आदि उपद्रव प्रायः नजर आते हैं। ऐसी हालत में भिन्न-भिन्न उपद्रवों के लिए अलग-अलग दवा और कतिपय 'मिक्श्चर' सेवन कर के मनुष्य अपने शरीर में नई-नई व्याधियाँ पैदा कर लेता है। इस मौके पर भाका का सेवन अत्यन्त लाभदायक पाया गया है। हर रोज सुबह को एक १ तोला से २ तोला तक भाका का रस लेना चाहिए।

उदराध्मान (Flatulance) की शिकायत आजकल ज्यादातर सुनने में आती है। इसका कारण केवल एकही होता है और वह है आंतों के अन्दर पाचक रसों की अल्पता। भाका के रस के सेवन से प्रमुख पाचक अवयव, यकृत, अपना कार्य उचित रीति से करने लगता है। उससे पित्त रस सम्यक रीति से झरने के कारण में खुराक का सड़ाव नहीं होने पाता और उदराध्मान की कोई सम्भावना नहीं रहती।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केशरंजक भाका

भाका केश के लिए भी शक्ति-वर्धक है। त्वक केश का स्थान है। भाका त्वगेन्द्रिय का शोधन करता है। त्वगेन्द्रिय की खराबी का प्रधान कारण होता है आँतों की गड़बड़ी। आँतों के अन्दर जितना अधिक सड़ाव होता रहेगा उतनी ही अधिक त्वचा भी दूषित होती जायँगी। भाका आँतों को शुद्ध और मलरहित कर देता है। अतः इसकी खराबी से उत्पन्न हुए त्वचा-दोष से भी छुटकारा मिल जाता है। सिर के बाल स्वस्थ, सुन्दर काले और चमकीले बन जाते हैं। इस लिए भाका, को केशरंजक भी कहते हैं। यदि मानसिक श्रम आदि कारणों से बाल सफेद या रूखे हो गए हों तो उस हालत में भाका का सेवन विशेष उपयोगी नहीं होता।

बहुमूत्र या मधुमेह की बीमारियों में भाका विशेष उपयोगी पाया गया है। इसके सेवन से एक सप्ताह के अन्दर ही मूत्र का परिमाण कम हो जाता है।

भाका की उपयोगिता केवल रोगियों के ही लिए नहीं, स्वस्थ मनुष्यों के भी लिए देखी गई है। शारीरिक क्रियाओं को यथोचित रीति से संचालित रखने के लिए यह विशेष उपयोगी सिद्ध हुई है। इस वनस्पति में लौह तथा अन्य क्षार, जिनका शरीर में बड़ी आसानी के साथ और शीघ्रतापूर्वक समीकरण हो जाता है, प्रचुर मात्रा में विद्यमान हैं। इसके सेवन से ७-८ दिन में ही नाखून में लाली दौड़ती हुई दिखाई देने लगती है। आँतों पर इसका जो आश्चर्यजनक प्रभाव पड़ता है, उसे देखते हुए आजकल के मौसम में तो इसका उपयोग विशेष लाभदायक होगा।

भाका के साथ आहार

भाका का सेवन केवल दूध और फलों पर रहते हुए करने से विशेष लाभदायक होगा। प्रति दिन प्रातः काल एक या दो तोला इसका रस लेना चाहिए। रस को छान कर ही ले। इसके साथ भोजन में दूध, मठा, फल—इस तरह की वस्तुएँ रक्खे। एक या दो सप्ताह के प्रयोग से इसका उत्तम फल प्रतीत होने लगेगा।

भाका स्वाद में कड़ुवा और उग्र गंधवाला होता है। इस लिए इसकी यात्रा अधिक होने से जी मचलाने लगता है और वमन (कै) हो जाता है। ऐसा होने पर भाका की मात्रा कम कर देनी चाहिए।

हमारे यहाँ, आरोग्य मन्दिर में, बहुत से रोगियों तथा स्वस्थ मनुष्यों पर इसका प्रयोग किया गया है। आसन आदि क्रियाओं के इलाज के साथ एक या दो सप्ताह भाका का सेवन करने से आंत्र-शुद्धि ठीक होती है। इसके अतिरिक्त अनेक प्रकार के दर्द में भी इसकी विशेष गुणकारिता देखी गई है।

भाका के साथ यदि केवल दुग्धाहार ही अनुकूल न हो तो सात्विक अल्पाहार भी ले सकते हैं। इसके साथ ही आसनों का भी क्रम जारी रखना चाहिए इस विधि से भाका का उपयोग विशेष लाभदायक देखा गया है।

अन्य उपयोगी वनस्पतियाँ

इसी प्रकार तुलसी, बिल्व (बेल), कुमारी, भिलावा आदि वस्तुओं को हमारे यहां आजमाया गया है। इनके अलावा ऐसी और भी वनस्पतियाँ हैं जिनका उपयोग हम शाक-भाजी के रूप में अपने आहार में कर सकते हैं। काक माजी, गोजिह्वा, पुनर्नवा इत्यादि वनस्पतियों के शाक सुस्वादु होते हैं और साथ ही उनमें आहार तथा जीवन-तत्व एवं लोहांश भी विशेष मात्रा में पाए जाते हैं। इस ऋतु में यह उपरोक्त शाक विपुलता से मिलती है। इसका प्रयोग कर के देखना चाहिए।

गजकरणी—थोड़ा सा नमक मिलाया हुआ दो लोटा कुन कुना पानी पीकर तुरन्त उल्टी कर के जल को बाहर निकाल देने की क्रिया को गजकरणी कहते हैं। इससे पेट भी सफाई होती है और फाजिल पित्त या कफ निकल जाता है। कुछ ही दिनों के अभ्यास से यह क्रिया अवगत हो सकती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुवादक

प्राकृतिक स्नान

[लेखक—एडोल्फ जुस्ट; अनुवादक—श्री विट्ठलदास मोदी]

[प्राकृतिक चिकित्सा शास्त्र में 'रिटर्न टु नेचर' अर्थात् 'प्रकृति की ओर लौटो' प्रकृति की रोगनिवारक शक्ति का परिचय कराने एवं उसके प्रति प्रेम तथा श्रद्धा, उत्पन्न करने में बेजोड़ है । गाँधी जी के जीवन पर इस पुस्तक का बहुत अधिक असर पड़ा है, जिसे गाँधी जी ने अपनी 'आत्म-कथा' में खुले तौर पर स्वीकार किया है। मूल पुस्तक जर्मन भाषा में है। किन्तु अंग्रेजी, फ्रेंच आदि दर्जनों भाषाओं में अब तक इसके अनुवाद प्रकाशित हो चुके हैं । भारत में तामिल, तेलेगू, उर्दू गुजराती, इन चार भाषाओं में इसके अनुवाद से हम परिचित हैं । किन्तु हिन्दी में अभी तक कोई अनुवाद देखने को नही मिला था । प्रसन्नता की बात है कि इस पुस्तक का अनुवाद मोदी जी ने अपनी नजर वन्दी के ११ महीनों की अवधि में जेल में किया है। पुस्तक के पहिले अध्याय का एक अंश का अनुवाद हम 'जीवन सखा' के जुलाई-अगस्त के संयुक्तांक में प्रकाशित कर चुके हैं। आगे का अंश पाठकों के सामने है।—सं०]

अब मैं प्राकृतिक स्नान का वर्णन करूँगा। इन दिनों सब लोग घर में कमरों में ही स्नान करते हैं और सब को सब समय बाहर खुली जगह में स्नान की सुविधा भी नहीं है। अतः लोगों को पानी रखने के लिये टब की या किसी पात्र की आवश्यकता पड़ती है । इस स्नान के लिये कोई भी पात्र या टब हो सकता है पर वह इतना बड़ा जरूर होना चाहिये कि उसमें पैर सिकोड़ कर घुटने ऊँचे किये हुये आसानी से बैठा जा सके।

स्नानार्थी को अपने टब में साढ़े तीन इंच गहरा पानी, जो स्वाभाविक ठंडा हो, भरकर इस प्रकार बैठना चाहिये कि जल उसके पैर, नितम्ब और जनेन्द्रिय के अधिकतर भाग पर आ जाय । नितम्ब और पैर के तलवे टब के पेंदे से लगे रहें और घुटने हमेशा ऊपर उठे रहें।

इस प्रकार टब में बैठने के बाद सटे हुए घुटने फैला दिये जाते हैं और पानी को हाथ की तलहथी (चिल्लू) से पेड़ू पर जोर से मारा जाता है।

इस प्रकार पेड़ू पर पानी मार लेने के बाद तुरंत पेड़ू के बीच के भाग को दोनों किनारों को और सारे पेड़ू को ही एक या दोनों हाथों से तेजी से मला जाता है। पानी मारना और पेड़ू रगड़ना थोड़ी ही देर चलता है और फिर यदि स्त्री यह स्नान ले रही है तो उसे उरु-संधि (दोनों जांघों के बीच का भाग) और जनेन्द्रिय के ऊपरी भाग को खुले हाथ से जलके अन्दर (टब के पेंदे में नितम्ब लगे रहेंगे तो यह भाग जल के अंदर ही रहेगा) रगड़ना चाहिये। पुरुष की उरु-सँधि के चारों ओर, अंडकोष को और मलद्वार और जनेन्द्रिय के बीच

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के सीवन के चारों ओर पानी के अंदर ही खुले हाथ से रगड़ें। इसके बाद हाथों से पानी ले ले कर सारे शरीर को धो डालना चाहिये। शरीर धोने में देर न लगे इसके लिये इस काम में किसी दूसरे आदमी से भी सहायता ली जा सकती है। फिर सारे शरीर को खुले हाथों से (तौलिए या अँगोछे से नहीं) रगड़ रगड़ कर अच्छी तरह सुखा लेते हैं। इस स्नान के बाद शरीर को सुखाने के लिए तौलिए या अँगोछे का बिलकुल व्यवहार न करना चाहिए।

अच्छा हो कि स्नान के बाद रगड़ने की सारी क्रिया खुद ही करें। इससे कसरत का भी लाभ मिलेगा। जरूरत समझी जाय तो शरीर को दूसरे से भी रगड़वा कर सुखाया जा सकता है। इससे भी लाभ ही होगा, हानिकी कोई सम्भावना नहीं है। शरीर रगड़ने के सम्बन्ध में अपने विचार मैं विस्तार से फिर कहूँगा।*

स्नान के बाद कमरे में सुविधा हो तो खुले में थोड़ी देर खुले बदन टहलना अच्छा है। पर स्नान के बाद शरीर में गर्मी आ जाय, इसका सदा ध्यान रखना चाहिये। तेजी से टहलने कसरत या किसी भी श्रमसाध्य कार्य से गरमी जल्द आजाती है। यदि टहलने, कसरत आदि द्वारा गरमी न लाई जा सके तो कम्बल वगैरह कुछ गरम चीज ओढ़ कर लेट रहना चाहिये।

उष्णता और शक्ति के श्रोत धूप में रह कर शरीर में गरमी पै.ा करना अति उत्तम है।

प्राकृतिक स्नान कितनी देर तक किया जाय? इसका उत्तर शरीर की स्थिति और गर्मी पर निर्भर है। इस विषय में प्रत्येक को अपनी रुचि समझने और अंदर की आवाज सुनने की कोशिश करनी चाहिए। ठंडक के दिनों में दो से पाँच दिनों तक यह स्नान करना काफी होता है। गरमी के दिनों में और खूब गरमी हो तो यह स्नान दस मिनट तक या इससे अधिक समय तक भी लिया जा सकता है। जितना समय स्नान में लगाया जाय उस समय का आधा पेडू और जनेन्द्रिय भाग के मलने में लगाया जाय।

स्नान के लिए जो समय यहाँ निश्चित किया जा रहा है उसमें स्नान के बाद सारे शरीर को धोने और उसे रगड़ कर सुखाने में लगने वाला समय सम्मिलित नहीं है। कितनी बार यह स्नान किया जाय? इन प्रश्न का उत्तर भी प्रत्येय व्यक्ति को स्वयं देना चाहिए।

ग्रीष्म ऋतु में यह स्नान नित्य किया जा सकता है और यदि खुली जगह में सूर्य के प्रकाश में या प्रकाश भरे कमरे में किया जाय तो दिन में दो बार भी स्नान कर सकते हैं। जाड़े के दिनों में यह स्नान दो-तीन दिन में एक बार करना काफी होगा। कभी कभी कुछ समय के लिए इस स्नान को बिल्कुल भी बंद कर दे सकते हैं।

ज्वर से जलते हुए रोगी और पुष्ट शरीर वाले आदमी, ठंडी देह वाले कमजोर रक्ताभाव के रोगी की बनिस्वत अधिक बार स्नान करेंगे।

कई लोग यह स्नान थोड़ी देर तक करते हैं और कई बार करते हैं; कई देर तक करना और देर में करना पसंद करते हैं। ये दोनों बातें प्रकृति के सम्पर्क में रहने वाले वन के पशु में भी देखी जाती है।

प्राकृतिक स्नान के लिए गरम पानी कभी न लिया जाय। यदि यह स्नान कमरे में किया जाय तो उसकी खिड़कियाँ खुली रहनी चाहिए ता कि कमरा ठंडा रहे।

स्नान के बाद पैरों और मलद्वार को अच्छी तरह साफ पानी से धो डालना चाहिए। इससे ये स्थान साफ रहेंगे। स्वास्थ्य की दृष्टि से यह बहुत आवश्यक है।

यह साफ बात है कि खुली जगह में स्नान करना अत्युत्तम और अधिक प्राकृतिक है।

*स्नान के साथ जनेन्द्रिय धोने और रगड़ने की जो क्रिया बताई है वह खास तौर से स्त्रियों के लिए है पर पुरुषों के लिए भी बहुत लाभदायक है। इससे जनेन्द्रिय की उत्तेजना और जलन खास तौर से दूर होती है।

टब जस्ते और लकड़ी दोनों ही प्रकार के हो सकते हैं पर लकड़ी के बने टब को अधिक लाभकर समझना चाहिए।

खुले में स्नान करने के लिए पत्थर या सीमेंट के टब बनवाये जा सकते हैं। सभी टब कुशादा होने चाहिए। छोटे टब में अच्छी तरह स्नान करते नहीं बनता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खुले में प्रकृति स्नान की सुविधा हर कहीं भी मिल सकती है क्यों कि जहाँ आदमी रहते हैं वहाँ थोड़ा बहुत पानी तो आसानी से मिल जाता है।

सारा शरीर डुबो कर स्नान करने की सुविधा, प्रकृति के प्रांगण में हर जगह नहीं है। ऐसा स्नान बहुत थोड़ी सी जगह में किया जा सकता है केवल उन्हीं जगहों में जहाँ बड़ा नाला, नदी, झील या तालाब होता है। इसलिए खुले में प्राकृतिक स्नान की सुविधा साधारण स्नान की सुविधा की बनिस्बत अधिक जगहों में और आसानी से पाई जा सकती है।

प्राकृतिक स्नान जिस प्रकार बैठकर लेते हैं उसमें बड़ा आराम मिलता है। कष्टकर तो वह आसन किसी प्रकार है ही नहीं।

प्राकृतिक स्नान जल के अन्य सभी प्रयोगों से भिन्न है खास तौर से इस माने में कि यह स्नान करते समय नहाने वाला चुप चाप बैठा या लेटा नहीं रहता बल्कि शरीर के कुछ विशेष अंगों को हरदम रगड़ता रहता है और अंत में अपने सारे शरीर को तौलिये या इसी तरह की किसी अन्य चीज से नहीं बल्कि खुले हाथ से रगड़ता है।

आज तक के प्रचारित जल के सभी प्रयोग इस प्राकृतिक स्नान से भिन्न हैं। अतः वे प्राकृतिक नहीं हैं। उनसे लोगों को कभी समुचित लाभ नहीं हुआ और अनेक बार वे नुकसान करते देखे गये हैं। प्रकृति यह चाहती है कि लोग उसकी इच्छानुसार ही चलें। अब तक के प्रचलित सभी स्नानों से प्राकृतिक स्नान प्रत्येक दृष्टि से अधिक सरल और लाभकर है। इसमें थोड़े से पानी (गरम पानी की तो बिलकुल नहीं) की जरूरत होती है और यह अपने आप लिया जा सकता है, इसमें किसी सहायक की आवश्यकता नहीं होती। इसके लिए जिस टब की जरूरत होती है वह बहुत साधारण प्रकार का होता है और अन्य टबों की बनिस्बत आसानी से हटाया उठाया जा सकता है। खाट के नीचे सरका दे सकते हैं और सवेरे उठते ही इसमें स्नान कर सकते हैं।

इसलिए यह आशा की जाती है कि इस स्नान का अन्य जटिल स्नानों की बनिस्बत कुटुम्बों में और साधारण जनता में होगा अधिक शीघ्रता से प्रचार होगा।

यात्रा करते समय या अन्य किसी मौके पर इस स्नान के लिए आवश्यक टब या कोई बड़ा पात्र न मिले तो यह स्नान एक अन्य सरल रीति से किया जा सकता है। इस रीति में केवल हाथ धोने वाली चिलमची (टीनिया) की जरूरत होती है।

स्नान करने वाला पानी से भरी चिलमची पर बैठ जाता है और मल द्वार को धोता तथा जनेन्द्रिय पर हाथ से कुछ मिनट तक पानी डाल डालकर ठंडा करता रहता है। इसके बाद क्रम से पेड़ू और सारे शरीर को धोकर बदन को रगड़ रगड़ कर सुखाते हैं।

इस तरह का स्नान कहीं भी किसी समय भी किया जा सकता है और इससे सरल और सादा दूसरा स्नान संभवतः है भी नहीं।

यह स्नान इस प्रकार से लेने के बाद भी थोड़ी देर नँगे बदन टहलना अच्छा है। इससे स्नान के लाभ में वृद्धि होती है।

प्राकृतिक स्नान चाहे किसी रीति से भी क्यों न लिया जाय, सभी प्रचलित जल प्रयोगोंसे अधिक लाभकारी हैं।

मैंने इस स्नान की रीति पर जितना ही अधिक विचार किया मुझे अधिकाधिक स्पष्ट होता गया कि स्नान की यह रीति नहान की अन्य सभी रीतियों से निश्चय ही श्रेष्ठ है। यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि पृथ्वी के आदिम निवासी को हफ्तों और सम्भवतः कभी कभी महीनों तक गीली जगह में चलना पड़ता था और कभ कभी उसे बरफ पर भी चलना पड़ता था। और बहुत सम्भव है कि उसे घन्टों ऐसी जगह में खड़ा रहना पड़ा होगा और जमीन पर चूतर रख कर बैठना भी पड़ा होगा। इसलिये प्रकृति ने मनुष्य के पैरों और नितंबों की अवश्य ही ऐसी रचना की है कि वे पानी और ठंडक बर्दाश्त कर सकें। पर प्रकृति ने जो रचना आवश्यकता-वश की है उसमें मनुष्य का सबसे बड़ा लाभ भी छिपा है। आज का सुसभ्य मनुष्य अपने पावों को और मलद्वार को अप्राकृतिक रीति से गरम रखता है जिसकी वजह से भीतर सूजन आ जाने के कारण कहीं कहीं खून की हरकत रुक जाती है (बवासीर का मस्सा वगैरह हो जाता है) और फलतः एक बड़े लाभ से वह वंचित ही नहीं रहता

(शेष पृष्ठ १८ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोडावाटर

[डा० पूच्चा वेंकटरमैया , सम्पादक 'प्रकृति' (तेलेगू) और 'इण्डियन नेचुरोपैथ']
अनुवादक—श्री सी० कृष्णराव

आम तौर से लोगों का यही विश्वास है कि सोडा लेमोनेड आदि पेय, जिसमें कर्बन-द्विअम्ल वायु (Carbonic Acid gas) मिला रहती है, शरीर को कोई हानि नहीं पहुँचाते बल्कि पाचन क्रिया को उद्दीप्त करते हैं। यहां तक कि डाक्टर और वैद्य भी यह नहीं मानते कि सोडा स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है।

वास्तव में सोडा लेमोनेड आदि पेय पदार्थ पाचन-क्रिया को खराब कर देते हैं। यह कैसे और क्यों होता है, इन प्रश्नों का जवाब देने के ही विचार से मैंने यह सवाल उठाया है।

आमाशय में साधारणतया भोजन और पानी पहुँचाया जाता है। थोड़ी सी हवा भी पहुँचती है। लेकिन वह केवल बाहरी वायु ही है जिसमें नवासार वायु: अंगार वायु और प्राण वायु समान अनुपात में मिली रहती है। इनसे आमाशय में किसी भी प्रकार का उद्रेक या उफान नहीं होता। लेकिन सोडा आदि पेय में सिर्फ़ अंगार वायु (Carbonic Acid gas) मिली रहती है आमाशय को जिसकी कोई जरूरत नहीं होती। भोजन करते समय मुँह से लालाजल निकलता है और वह भोजन के साथ आमाशय में पहुँचता है। लालाजल स्वभावत: क्षारयुक्त होता है। वह आमाशय के जाठर रस के साथ मिलकर भोजन को पचा देता है। यह नित्य की क्रिया है। इस क्रिया से पाक-स्थली में कोई आन्दोलन नहीं होता। लेकिन सोडा पीने के बाद पाक-स्थली में मानों प्रलय ही उत्पन्न हो जाता है। उस समय पाचक रस भी अधिक मात्रा में निकलता है जिसका परणिाम यह यह होता है कि पाक स्थली और छोटी आँतों का भोजन अजीर्णावस्था में ही नीचे की ओर ढकेल दिया जाता है और भोजन के सार को शरीर ग्रहण नहीं कर पाता अर्थात् भोजन रस, रक्त आदि धातुओं में परिणत नहीं हो पाता। सारा भोजन मल बन जाता है। इस क्रिया से पाचन-प्रणाली पर इतना भार पड़ता है कि वह थक कर अशक्त हो जाता है। यदि हम अपनी अज्ञानता या नादानी के कारण रोजाना सोडा पीते रहें तो पाचन-प्रणाली जवाब दे देती है जिसके फलस्वरूप मन्दाग्नि, पाण्डु आदि रोग उत्पन्न हो जाते हैं। मैं यह विवरण किसी को आतंकित करने या घबड़ा देने के इरादे से नहीं दे रहा हूँ। यह तो विज्ञान सम्बन्धी थोड़ी भी जानकारी रखने वाले सज्जनों को ज्ञात हो चुका है।

हिन्दुस्तान के प्रत्येक प्रान्त में स्वच्छ और शीतल जल पीने को मिलता है जो शरीर को ठंढक पहुँचाता और रक्त को शुद्ध करता है। जल पीने से मुँह में कोई अरुचि नहीं उत्पन्न होती, फिर सर्वोत्तम पेय के रूप में जल का ही प्रयोग न क्यों किया जाय ? सोडा कोई स्वादिष्ट वस्तु नहीं। उल्टे स्वास्थ्य को भी हानि पहुँचाता है। इस अवांछनीय पेय के लिए विद्वान और मूर्ख, बूढ़े और जवान, रोगी और निरोगी, अमीर और गरीब और यहां तक बड़े-बड़े नामधारी पण्डित-पुजारी भी, जो पूजा-पाठ किए बिना मुँह में पानी डालना तक पाप समझते हैं, इतना क्यों आसक्त रहते हैं, यह मेरी समझ में नहीं आता। मैं तो समझता हूँ कि यह नई सभ्यता रूपी विष-वृक्ष का कड़ुवा फल है। वास्तव में यह सर्वथा त्याज और निषिद्ध वस्तु ही है और इससे जितना ही दूर रहा जाय उतना ही अच्छा होगा। ईश्वर करे, लोग इस सत्य को अच्छी तरह समझ जायँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने विचार

आश्चर्य जनक रहस्योद्घाटन !

इसी अक्टूबर के महीने में समाचार पत्रों में लखनऊ की एक खबर छपी है, जिसे पढ़ कर सचमुच बड़ा आश्चर्य होता है। युक्त प्रान्त में राजकीय प्रश्रय प्राप्त एलोपैथी चिकित्सा-प्रणाली की शिक्षा देने का केन्द्र-स्थल लखनऊ ही समझा जाता है। प्रान्त ही क्या भारत भर में प्रसिद्ध किंग जार्ज मेडिकल कालेज भी यहीं पर है। इसके अलावा यह और भी आधुनिक चिकित्सालयों से भरपूर है। किन्तु लखनऊ के ही 'चेस्ट एक्सपर्ट' (सीने की जाँच करने वाले विशेषज्ञ) डा० फरीदी ने प्रकट किया है कि लखनऊ की आबादी का ७१.९ प्रतिशत क्षय रोग के कीटाणुओं से आक्रान्त है। ५ और ६ साल की अवस्था के बीच क्षय रोग का संक्रमण होने की संख्या ५०.९ प्रतिशत है। डा० फरीदी का कहना है कि क्षय रोग का सब से अधिक शिकार होने वाले नए रोगियों की अवस्था ८ और ११ वर्ष के बीच पाई जाती है और ७ साल तक अवस्था वाले बालकों की संख्या, जिनके सीने में क्षय रोग के कीटाणुओं का संक्रमण हुआ है, कुल आबादी कि ५० प्रतिशत है, जब कि २५ साल तक अवस्था वाले इस रोग से ग्रस्त व्यक्तियों की संख्या ८४ प्रतिशत है !

डा० फरीदी ने यह आश्चर्य जनक रहस्योद्घाटन अपनी कोरी कल्पना या अनुमान के आधार पर नहीं विस्तृत जांच-पड़ताल से प्राप्त हुए आंकड़ों के बूते पर किया है। उन्होंने १९४१-४२ में विस्तृत रूप से जांच-पड़ताल की, क्षय-रोग के कीटाणुओं से ग्रसित हुए व्यक्तियों तथा उनके कुटुम्बियों से सम्पर्क स्थापित किया, लखनैऊ में ६००० रोगियों की परीक्षा की थी। इस जांच के नतीजे के ही आधार पर यह बात कही है। अतः यह सुनकर टाल देने की बात नहीं ध्यान पूर्वक मनन और विचार करने तथा किसी निर्दिष्ट निष्कर्ष पर पहुँचने की बात है।

डा० फरीदी ने स्यालकोट के डाक्टर सी०एल०साहनी की इस बात से सहमति प्रकट की है कि क्षय रोग का संक्रमण मुसलमानों में और विशेषतः मुसलिम स्त्रियों में हिन्दुओं की अपेक्षा अधिक होता है। अतः यह प्रकटहोता है कि आमिष भोजन द्वारा क्षय रोग के कीटाणुओं से अपनी रक्षा नहीं की जा सकती और यह कि शाका हारियों की अपेक्षा मांस भोजियों को यह रोग होने की अधिक सम्भावना पाई जाती है और यह कि मुसलिम स्त्रियां क्षय रोग से सबसे अधिक ग्रसिता होती हैं, और उन्हीं से क्षय रोग के कीटाणु बच्चों में भी पहुँच कर उन्हें आक्रान्त करते हैं। इसकी पुष्टि इस बात से भी हो जाती है कि १५ साल तक की अवस्था वाले ७० प्रतिशत मुसलिम बालक क्षय रोग के कीटाणुओं के ग्रस्त हैं।

किन्तु इस सम्बन्ध में आशावादिता प्रकट करते हुए डा० फरीदी ने अपने नोट में लिखा है कि क्षय रोग बहुत आसानी से दूर किया जा सकता है। गरीबी को आपने इस रोग का एक मुख्य कारण बताया है और किसी देश या जाति के रहन-सहन के मान-दण्ड से इसका प्रत्यक्ष सम्बन्ध प्रमाणित किया है। इस रोग के निवारण के लिए आपने प्रत्यक्ष उपाय भी बताए हैं। क्षय रोग के उपचार के लिए तत्काल ही समुचित साधनों से सम्पन्न चिकित्सा-गृह खोले जाने की आवश्यकता पर जोर देते हुए ८ साल से ११ साल तक की अवस्था वाले छात्रों को मुफ़ दूध बाटने, बाहर मैदान में खेल-कूद को प्रोत्साहन देने आदि के सुझाव पेश किए हैं।

गरीबी, गुलामी और अज्ञानता तो क्षय रोग का प्रधान कारण हैं ही, परन्तु इसकी बहुत अधिक जिम्मेदारी दमनकारी औषधियों का प्रयोग करने वाले एलोपैथिक डाक्टरों पर भी है। उदाहरण के लिए एलोपैथिक डाक्टर मलेरिया में कुनैन का धड़ल्ले के साथ व्यवहार करके रोग को दबा देने में सिद्धहस्त हैं। इस दमन के क्या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिणाम हो सकते हैं, इस जहरीली कुनैन का आगे चल कर शरीर पर क्या प्रभाव पड़ेगा, इस बात की ओर ध्यान देने की बात तो उनके दिमाग में घुसती ही नहीं। आखिर ये रोग के कीटाणु आते कहाँ से हैं, इसके पैदा करने वाले कौन हैं ? यदि इस बात पर ध्यान एवं मनोयोग पूर्वक विचार किया जाय, तो यह अपने आप स्पष्ट हो जायगा हमारा गलत-रहन, अनुचित आहार-विहार ही इस आपदा का मूल कारण है। पर्याप्त धन और साधन का अभाव, ज्ञान का अभाव, तथा समुचित आहार का अभाव होने के साथ साथ विवेक-बुद्धि का अभाव भी हमें सता रहा है। बस इसीलिए हम इस रोग का निवारण अथवा निराकरण करने में निरुपाय हो रहे हैं। हम अपने को आरोग्य एवं स्वस्थ बनाये रखने के लिए प्रकृति के बजाय दवाओं और उनके प्रचारक डाक्टरों पर अधिक भरोसा रखते हैं। सब से अधिक दुर्भाग्य की बात तो यही है। प्राकृतिक चिकित्सा इसी पीड़ित मानवता को कल्याण का नैसर्गिक सुनाने के अवतरित हुई है। हम प्रकृति के इस कल्याणकारी सन्देश को सुनें, फिर ये रोग-व्याधियाँ हमें इतना न सता सकेंगीं, जितना कि अदूरदर्शी तथा स्वार्थ-साधन में निरत एलोपैथ डाक्टरों के हाथों में पड़ कर सताती हैं। डा० फरीदी का यह वक्तव्य इसी सत्य का संकेतक है।

[३२वें पेज का शेष]

अतिरिक्त यदि आप प्रातः १५ मिनट के लिये पेडू स्नान (हिप-बाथ) और सायकाल १५-२० मिनट के लिये मेहन-स्नान (सिट्ज़-बाथ) ले सकें तो आपको बहुत लाभ होगा उन दोनों स्नानों की विधि आप किसी प्राकृतिक चिकित्सा की पुस्तक में देख लीजिये अथवा 'जीवन सखा' के मई ४९ के अंक में मैंने दोनों की सरल विधिया दी थीं, उनको पढ़ जाइये। स्नायु-जाल के फिर सशक्त बनाने के लिये तथा वीर्य को ऊर्ध्वगाथी करने के लिये व्यायाम के के रूप में शीर्षासन, सर्वाङ्गासन, अंगुष्ठपाद आसन, धनुरासन तथा सर्पासन विशेष उपयोगी हैं। अन्त में आप से अनुरोध करूँगा कि आप 'जीवन सखा' कार्यालय से 'ब्रह्मचर्य ही जीवन है' नामक पुस्तक को मंगा कर पढ़ जाइये। उसमें वीर्य पात के विषय में पूरा विवेचन है तथा अनेकानेक सुन्दर प्राकृतिक उपचार दिये हैं। उनसे एक आपको मैं यहां बता दूँ और उसे आप अवश्य प्रतिदिन करें। वह यह है कि शौच जाने के बाद या शौच के समय किसी एकान्त स्थान अथवा पैखाने में ही जननेंद्रिय के मुँह पर पानी की बारीक धार ज़रा ऊँचे से आंठ दस मिनट तक बहुत धीरे धीरे प्रतिदिन दोनों समय डाला कीजिए। इससे आपकी सम्पूर्ण स्नायु मन्डलना शीतलता पहुचेगी क्यों कि जननेन्द्रिय सम्पूर्ण स्नायु-जाल का केन्द्र है। आशा, है, उपयक्त प्राकृतिक उपचार का भली भाँति उपयोग कर आप शीघ ही अपने को पुनः स्वस्थ, सबल, सशक्त, सतेज और कांतिमय बनाने में सफल होंगे।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पढ़िये ! लाभ उठाइये !!

सुन्दर, स्वस्थ और सुखी जीवन के इच्छुकों को ये पुस्तकें पढ़ना चाहिए

(१) रोगों की अचूक चिकित्सा (चतुर्थ संस्करण) : श्री जानकीशरण वर्मा, बी० ए० ५)

(२) मठा उसके गुण तथा उपयोग (परिवर्धित संस्करण) : श्री महेंद्रनाथ पांडेय ॥≈)

(३) हमारा भोजन—श्री महेन्द्र नाथ पाण्डेय ... ... ४)

(४) स्वास्थ्य के नुस्खे—'जीवन सखा' कार्यालय ... ... ।)

(५) क्या और कैसे खायँ—डा० बालेश्वर प्रसाद सिंह ... ... ।≈)

(६) ब्रह्मचर्य ही जीवन है—स्वामी शिवानन्द ... ... १॥)

(७) आनन्दमय जीवन—श्री शंकरलाल तिवारी ... ... ॥)

(८) कब्ज या कोष्ठबद्धता : डा० बालेश्वरप्रसाद सिंह ... ... १)

(९) आँख का अचूक इलाज : श्री महेन्द्रनाथ पांडेय ... ... २)

(१०) शाकों के गुण—श्री नारायणप्रसाद अरोड़ा ... ... २)

(११) फलाहार—श्री नारायणप्रसाद अरोड़ा ... ... १)

(१२) वैज्ञानिक जल चिकित्सा—श्री कुलरंजन मुखोपाध्यय ... ... २)

(१३) सचित्र हठयोग—स्वामी शिवानन्द ... ... १।)

(१४) मन और उसका निग्रह (प्रथम भाग)—स्वामी शिवनन्द ... १)

(१५) मन और उसका निग्रह (द्वितीय भाग) ,, ... ३)

(१६) हम सौ वर्ष कैसे जीवें : श्री केदारनाथ गुप्त, एम० ए० ... ... १॥।)

(१७) आरोग्य-साधन—महात्मा गाँधी ... ... ॥।)

(१८) स्वास्थ्य साधन—श्री रामदास गौड़ ... ... ३॥)

(१९) आहार ही औषध है : डा० एल० एन० रतरा ... ... १।)

(२०) जल चिकित्सा (पहलाभाग)—श्री राखालचन्द्र चट्टोपाध्याय ... १॥।)

(२१) Nature Cure by H. Lindlahr, M. D. 7-8-0

(२२) Food-de-Medicine by Dr. L. N. Ratra, H. M. B. ... 1-0-0

(२३) Universal un-cooked food ... 3-8-0

(२४) Nature Cure of Eye defect By Dr. K. L. Sharma. 2-0-0

(२५) Practical Nature cure ,, ,, ,, 8-8-0

स्वास्थ्य सम्बन्धी पुस्तकें मिलने का पता :—

मैनेजर, स्वास्थ्य ग्रंथ-भण्डार लूकर, इलाहाबाद

कूपन
अक्टूबर, १९४५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन सखा का नया उपहार

जल-चिकित्सा अंक

आगामी जनवरी में प्रकाशित होगा।

पिछले कुछ वर्षों से हम जीवन सखा के अपने जीवन के नए वर्ष में पदार्पण करने के अवसर पर एक सुन्दर विशेषांक निकालते रहे हैं, किन्तु पिछले दो वर्षों में युद्धकालीन कठिनाइयों के कारण हम कोई विशेषांक प्रकाशित करने में असमर्थ ही रहे किन्तु अब प्रसन्नता की बात है युद्धकालीन परिस्थितियों का तनाव ढ़ीला होने के साथ साथ आगामी जनवरी मास में जब कि 'जीवन सखा ११ वें वर्ष में पदार्पण करेगा, हमने एक सर्वाङ्ग सुन्दर, एवं वृहद् विशेषांक निकालने का आयोजन किया है। प्राकृतिक चिकित्सा में जलोपचार का कितना अधीक महत्व है, इसे दृष्टि में रखते हुए यह बताने की आवश्यकता नहीं कि प्राकृतिक चिकत्सा के अनुयायी स्वास्थ्या-र्थियों केलिए यह विशेषांक कितना उपयोगी होगा। यह अपने विषय का एक सुन्दर, सर्वांगपूर्ण एवं संग्रहणीय थ केवल परिसीमित संख्या में ही छपेगा। अतः 'जीवन सखा' के स्थायी ग्राहकों को मिलने के बाद इसकी बहुत ही कम प्रतियां बच रहेंगी जिससे अन्य प्राकृतिक स्वास्थ्य प्रेमियों की मांग हम बहुत कम संख्या में पूरी कर सकेंगे। अतः इसे प्राप्त करने के लिए अभी से ग्राहक बनिए, जिससे आपको निराश न होना पड़े।

संयुक्तांक

जल-चिकित्सा अंक की तैयारी में लगे रहने के कारण हम 'जीवन सखा' के नवम्बर और दिसम्बर के अंक अलग न प्रकाशित करके ४८ पृष्ठों के संयुक्तांक के ही रूप में प्रस्तुत करेंगे। आशा है, हमारे प्रेमी पाठकों को यह स्वीकार होगा।

सम्पादक

PRINTED BY M. L. PANDAY AT THE ABHYUDAYA PRESS ALLAHABAD.
PUBLISHED BY SKT. ... SINHA ... LUKER GANJ ALLAHABAD.
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन सखा

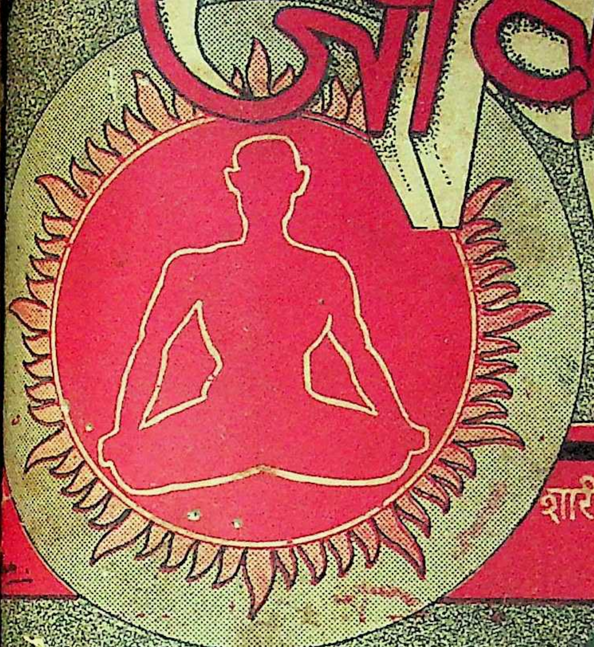

शारीरिक, मानसिक और नैतिक स्वास्थ्य पथ-प्रदर्शक

-दिसंबर
१९४५

संयुक्त प्रान्त, मध्य प्रान्त तथा बिहार और उड़ीसा के शिक्षा विभागों द्वारा स्वीकृत

१—शारीरिक स्वास्थ्य का मूलाधार—बरनर मैकफेडेन १
२—सुन्दर कौन ?—श्री 'अनाम' २
३—महात्मा कौटिल्य के स्वास्थ्य संबंधी सदुपदेश—श्री महेन्द्रकुमार, 'मानव', एम० ए० ३
४—प्राकृतिक स्नान—श्री एडोल्फ जुस्ट : अनु० श्री विट्ठलदास मोदी ५
५—'चिकित्सा स्वातंत्र्य'—श्री कामताप्रसाद अग्रवाल, एम० ए०, एन० डी०-डी० वाई, विशारद ९
६—जीवन-ज्योति—डाक्टर पुच्चा वेंकट रमैया, संपादक 'प्रकृति' (तेलगू) १३
७—बालक रोते क्यों हैं ?—मि० डी० डबल्यू० विन्निकोट, एम० आर० सी० एस० १७
८—चिन्ता और रोग—श्रीमती योगेश्वर गुलेरी २१
९—कोष्ठबद्धता : उसका प्राकृतिक उपचार—श्री दीनेश्वर नारायण शर्मा २३
१०—व्यायाम—बख्शी भगवतीप्रसाद राय श्रीवास्तव २५
११—हास्योपचार सर्वोत्तम—प्रोफेसर डा० रामचरण महेन्द्र, एम० ए०, डी० लिट् ३०
१२—गर्दन तोड़ बुखार अच्छा हुआ !—डा० एम० एल० राठौर, जबलपुर ३२
१३—गर्भाशय सम्बन्धी बीमारियाँ—डा० इन्दुमती सिनहा, एन० डी० डी० बी० ३३
१४—रसोई घर में समझ की जरूरत—डा० रमाचरण, डी० एच० डी० ३६
१५—तत्त्व-चिकित्सा का पुनरुत्थान—श्री गंगाप्रसाद गौड़ 'नाहर' ४१
१६—मलेरिया पर प्राकृतिक चिकित्सा का सफल प्रयोग—श्री रामदास चौधरी, मुजफ्फरपुर ४२
१७—अपने विचार—[सम्पादकीय] ४३

वार्षिक मूल्य ३)

सम्पादक डा० बालेश्वर प्रसाद सिंह

प्रति अंक का ।=)

का० ७ कुल प्र० प्राप्त २१ जनवरी ४६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आरोग्य-शास्त्र का प्रतिनिधि पत्र

जीवन सखा

सभी सम्मितियों का एक ही स्वर

Dr. S. C. Das, L. M. S. (Cal.) L. R. C. P. & S. (Edin.), L. R. F. P. & S. (Glas) L. M. (Dub.) Sewagram, Wardha, C. P.

"A splendid and noble attempt to spread correct views about health & its preservation."

पं० बनारसीदास जी चतुर्वेदी, टीकमगढ़

"मुझे इस समय जितने पत्र निकल रहे हैं उनमें जीवन-सखा अत्यन्त महत्वपूर्ण जँचता है !',

श्री सीताराम जी सेकसरिया, कलकत्ता

'जीवन सखा' निकाल कर आप लोग देश की सेवा कर रहे हैं। ऐसे पत्रों से पढ़नेवालों का भला होता है।"

जनार्दन राय नागर, सम्पादक 'बालहित', उदयपुर

'जीवन सखा' ने तो मेरी माँ का जीवन ही बदल दिया है। उन्होंने इसी को पढ़कर अपने शरीर का कल्प-सा कर दिया है। 'जीवन सखा'......ने मेरी माँ को स्वास्थ्य बख्शा है।"

'सरस्वती', प्रयाग

"प्रत्येक साध्य तथा असाध्य मर्ज का निवारण प्रकृति द्वारा हो सकता है, यही इस पत्र का संदेश है।"

'नवशक्ति', पटना

"यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि स्वास्थ्य सम्बन्धी पत्र-पत्रिकाओं में 'जीवन सखा' का सर्वोच्च स्थान है।

'विशाल-भारत', कलकत्ता

"जीवन सखा' सब तरह से उपयोगी है।"

'जीवन-साहित्य', नई दिल्ली

"आरोग्य शास्त्र का सुन्दर मासिक होने से यह वास्तव में 'जीवन-सखा' ही है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Reg. No. 1-172
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शारीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्
NATURE ONLY HEALS

जीवन सखा

सम्पादक

डा० बालेश्वरप्रसाद सिंह

वर्ष १०]   नवम्बर-दिसम्बर   [अङ्क ११-१२

शारीरिक स्वास्थ्य का मूलाधार

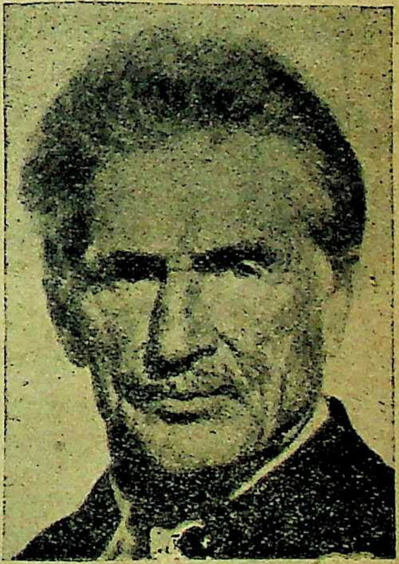

लेखक

आहार-सम्बन्धी एक सुन्दर एवं सुदृढ़ आधार-शिला पर शरीर-मंदिर को प्रतिष्ठि करें, इसके लिए प्रयत्नशील बनें। केवल वही भोजन ग्रहण करें जो आपके अनुकूल पड़े और जिसे आप समझते हों कि वह 'सम्पूर्ण' है। तथाकथित आहार शास्त्रियों अथवा विशेषज्ञों के आहार सम्बन्धी विस्तृत सिद्धान्तों पर किंचिन्मात्र ध्यान न दें। 'सम्पूर्ण' एवं उत्तम भोजन ग्रहण करें। ठूस-ठूस कर भोजन करने की प्रवृत्ति का तिरस्कार कीजिए। भोजन वही करें जिसे आप आसानी से पचा सकें। अनावश्यक वस्तुएं पेट में भर कर आमाशय को व्यर्थ कष्ट मत दीजिए। अगर आपको एक वक्त भूख न मालूम होती हो, तो बेहतर होगा कि आप उपवास कर जायँ और दूसरी वक्त भूख लगने पर ही भोजन करें। यदि आप २ या ३ वक्त या आवश्यकतानुसार ३ या ४ दिन तक निराहार रह जायँ तो इस उपवास से बहुत लाभ होगा। मैं तो अक्सर कुछ समय का अन्तर देकर उपवास कर जाता हूँ और इससे मैंने अपेक्षाकृत कहीं उत्तम स्वास्थ्य का अनुभव किया है।

—बरनर मैकफेडेन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन्दर कौन ?

श्री 'अनाम'

[फूल हमें सुन्दर इसलिए लगता है, क्योंकि उसके लिए हमारी चाहना सुन्दर होती है। व्यक्ति हमें तभी सुन्दर लगता है, जब कि उसके सौन्दर्य में हम अपनी आत्मा का दर्शन करते हैं। इस प्रकार हम जिसे सुन्दर समझते हैं, वह असुन्दर और जिसे असुन्दर समझते हैं वह वस्तुतः सुन्दर बन सकता है। मननशील लेखक ने यहाँ पर इसी वास्तविक सत्य का निरूपण किया है। लेख सुन्दर है। --सं०]

अंग्रेजी में एक कहावत है, 'Beauty is not skin deep' अर्थात् सौन्दर्य की गहराई, केवल त्वचा तक ही सीमित नहीं है। सचमुच सुन्दरता-असुन्दरता का रहस्य सौन्दर्य की इस पाश्चात्य परिभाषा से भी अधिक निगूढ़ है। यह तो पाश्चात्य-मर्मज्ञ भी समझते हैं कि केवल शरीर की—खाल की—सुन्दरता ही मनुष्य के सौन्दर्य की परिमिति नहीं है। सौन्दर्य वस्तुतः इससे कोई भिन्न—पृथक—वस्तु है जिसकी आभा मात्र से वाह्य-शरीर उद्भासित हो उठता है!

सौन्दर्य के दो स्वरूप

सौन्दर्य के दो स्वरूप हैं—वाह्य और आन्तरिक। वाह्य-सौन्दर्य देखने में आँखों को चाहे जितना भी प्रिय या आकर्षक लगे परन्तु वास्तव में स्वतः उसका कोई अस्तित्व नहीं, वह असत्य है, प्रतिबिम्ब मात्र है। सत्य तो वह है जो आन्तरिक है। वह आत्मा है जिसकी अनुभूति हृदय को अप्रत्यक्ष रूप से ही हो सकती है। मानव मन को प्रभावित करने वाला, अपनी ओर खींचने वाला यह आन्तरिक सौन्दर्य ही होता है, वाह्य सौन्दर्य कदापि नहीं।

यहाँ पर मन में यह जिज्ञासा स्वभावतः उत्पन्न हो सकती है—तो क्या वाह्य—स्थूल अर्थात् शारीरिक सौन्दर्य का कोई महत्व नहीं, क्या यह सचमुच सार-हीन है? इसकी स्वीकारोक्ति में एक विरोधाभास-सा झलकता है, यह एक उल्टवांसी सी जान पड़ती है, अजीब गुत्थी-सी पैदा हो जाती है। इसे हम सत्य का अनादर नहीं कह सकते। क्योंकि जो बात दिल में नहीं बैठती उसे स्वीकार करने में हिचक होती ही है। अतः इस पर मनोयोगपूर्वक और मन ही मन विचार करने की आवश्यकता है।

यह बात तो प्रायः सभी के अनुभव में आ चुकी होगी कि वाह्य सौन्दर्य केवल तभी तक आकर्षक लगता है जब तक हम उससे बराबर कुछ दूरी ही पर रहते हैं—जब तक हम उसके निकटतम नहीं पहुँचते। क्योंकि अक्सर यह देखने में आता है कि दूर से जो, सुन्दर जान पड़ता है, जो आकर्षण करता है, उसका निकटतम निरीक्षण, अवगाहन किए जाने पर वही असुन्दरता, अनाकर्षण का रूप धारण कर लेता है! बस यहीं पर सौन्दर्य के वास्तविक स्वरूप के सम्बन्ध में उत्पन्न हुई शंका दृढ़तर बन जाती है। एक हत्यारे का मिसाल दूँ, जिसे भगवान् ने शारीरिक सौन्दर्य प्रदान किया है। उसकी सुन्दर रतनारी आँखें, सुडौल चेहरा, बदन की सुन्दर गठन, उससे अपरिचित रह कर दूर से अवलोकन करने में कितना मनोहर जान पड़ता है। लेकिन उससे सम्पर्क स्थापित हो जाने पर उसका वास्तविक परिचय प्राप्त कर लेने पर वह ठीक उसी प्रकार आँखों से ओझल हो जाता है जिस प्रकार तृषार्त हिरण को जलती धूप में अपनी ओर खींचने वाली मृग-तृष्णा या मृग मरीचिका! किन्तु इसके विपरीत, आपको ऐसे मिसाल भी मिल सकते हैं जब कि दूर से असुन्दर जान पड़ने वाला व्यक्ति अथवा पदार्थ सुन्दर ही नहीं महान आकर्षक बन जाता है। तो फिर सुन्दर कौन?—यह प्रश्न बहुत ही विचारणीय बन जाता है।

'मन की सुन्दरता ही सच्ची सुन्दरता है'

मन की सुन्दरता ही सच्ची सुन्दरता है। तन की सुन्दरता क्षणिक, मन की सुन्दरता स्थायी होती है। मन की सुन्दरता में ही सौन्दर्य की आत्मा निवास करती है। यदि मन सुन्दर

(शेष पृष्ठ ८ कालम १ के नीचे)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महात्मा कौटिल्य के स्वास्थ्य संबंधी सदुपदेश

श्री महेन्द्र कुमार, 'मानव' एम० ए०

[महात्मा चाणक्य कूटनीति के आचार्य ही नहीं आदि प्रवर्तक भी माने जाते हैं। वे प्राचीन भारत के कितने महान् कूटनीतिज्ञ थे, इसका अनुमान इस बात से सहज ही लगाया जा सकता है कि आज हम 'चाणक्य नीति' को कूटनीति का ही पर्याय समझते हैं। किन्तु कौटिल्य-शास्त्र के अन्तर्गत मानव जीवन के प्रत्येक पहलू—स्वास्थ्य एवं आरोग्य के सम्बन्ध में भी—के सम्बन्ध में उनके वचनामृत पाए जाते हैं जो समान रूप से महत्वपूर्ण एवं कल्याणकारी हैं।

यहां पर लेखक ने स्वास्थ्य एवं आरोग्य सम्बन्धी उनकी अमृतवाणी का रसास्वादन कराया है। स्वास्थ्यार्थियों के लिए यह लेख विशेष रुचिकर प्रतीत होगा।—सं०]

भारत तथा विदेशों में भी कौटिलीय अर्थशास्त्र की प्रभूत ख्याति है। इसके निर्माता कौटिल्य थे जिनका प्रचलित नाम चाणक्य है। भारतीय कुटुम्बों में इन्हीं की बनाई हुई एक छोटी सी पुस्तक 'चाणक्य नीति' अति प्रसिद्ध है। भारत में माता पिता अपनी सन्तानों को इसके श्लोक, जो वास्तव में नीति के खजाने हैं, कंठस्थ करा देते हैं। चाणक्य ने बीच बीच में स्वास्थ्य-सुधार-संबन्धी काफी उक्तियाँ लिखीं हैं जिनका निदर्शन मैं नीचे कराता हूँ।

आप प्रारंभ में ही कहते हैं, 'भोज्य भोजन शक्तिश्चा नल्पस्य तपसः फलाम्।' जो लोग जन्मान्तर को न मानते हों उनको इसके समझने में कठिनाई होगी! किन्तु जब हम संसार पर नज़र डालते हैं तो यह बात स्पष्ट हो जाती है कि निस्सन्देह पूर्व कर्मों के कारण ही लोग स्वस्थ, रोगी, विद्वान आदि होते हैं। तत्पश्चात् आप कहते हैं कि व्याधि से कौन पीड़ित नहीं हुआ अर्थात् इस जगत् में ऐसा कोई विरला ही होगा जो रोग ग्रस्त न हुआ हो।

आपका कहना है कि 'अजीर्णे भोजनं विषम्', सो ठीक ही है क्योंकि जिस अन्न को हम पचा नहीं पाते वह हमको स्वयं पचा लेता है। फिर आपने भिन्न भिन्न जाति के पशुओं से भिन्न भिन्न गुण लेने को कहा है। आप कहते हैं कि 'प्रत्युत्थानं कुक्कुटात्', निश्चय ही जो जन कुक्कुट (मुर्गे) के साथ उठते हैं वे लोग दीर्घ काल तक इस संसार का सुख भोगते हैं। आगे चलकर आप कहते हैं 'गूढ़ं च मैथुनं', जो सर्व विदित ही है।

बिना स्नान के शरीर स्वच्छ नहीं रहता। परन्तु विशेष अवसरों पर तो स्नान आवश्यक ही नहीं अनिवार्य हो जाता है। वे अवसर कौन से हैं? सुनिए—

तैलाभ्यंगे चिता धूमे मैथुने क्षौरकर्मणि।
तावद्भवति चाण्डालो यावत् स्नानं न चाचरेत्॥

आज कल जल पीने के सम्बन्ध में भिन्न भिन्न मत प्रचलित हैं। कुछ प्राकृतिक चिकित्सकों का कथन है कि पानी भोजन के ३ घंटे उपरान्त पीना चाहिए, कुछ कहते हैं कि भोजन के एक घंटे पूर्व जल पान करना चाहिए, तथा कुछ का मत है कि भोजन के साथ ही साथ जल पीना चाहिए। चाणक्य का मत है—

अजीर्णे भेषजं वारि जीर्णे वारि बलप्रदम्।
भोजने चामृतं वारिं भोजनांते विष प्रदम्॥

भोजन के बाद तुरन्त जल कभी न पीना चाहिए। यदि भोजन पराधीन हो तो भी मनुष्य का स्वास्थ्य ठीक नहीं रह सकता। जिस समय वह भोजन करना चाहता हो अथवा जो वह खाना चाहता हो वह उसके लिए संभव नहीं है, 'शुद्ध भूमि गतं तोयं' ही सेवन करने योग्य है।

यह मेदिनी, चाणक्य की राय में, मांस भक्षण और सुरापान से भाराक्रान्त है। तथा सब सौख्यों में अशन ही प्रधान है, सो विदित ही है कि क्षुधा के समान कोई दुःख नहीं है। महात्मा चाणक्य कहते हैं कि 'वस्त्रपूतं पिबेज्जलम्।' यह काम आजकल सिर्फ जैनों की बपौती रह गई है कि वे पानी छान कर पीते हैं। जैन शास्त्रों में रात्रि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में भोजन न करने का बड़ा फ़ल बताया गया है। परन्तु आधुनिक स्वास्थ्य विज्ञान से ये बातें सिद्ध हो गई हैं कि छना हुआ (filtered water) पानी तथा सोने के ३ घंटे पूर्व भोजन करना स्वास्थ्य के लिए अति आवश्यक है।

किन किन खाद्यों में शक्त्युत्पादन की कितनी मात्रा रहती है, यह निम्न लिखित श्लोक से प्रकट होता है:—

'अन्ना दशगुणं पिष्टं पिष्टा दशगुणं पयः।
पयसोष्ट गुणं मांसं मांसा दशगुणं घृतम् ॥'

अर्थात्—अन्न से दशगुणी शक्ति आटे में रहती है आटे से दश गुनी शक्ति दूध में रहती है। दूध से आठ गुनी शक्ति मांस में होती है मांस से दश गुनी शक्ति दूध में रहती है। वृद्ध चाणक्य में एक श्लोक है कि—

शाकेन रोगा वर्द्धन्ते पयसा वर्द्धन्ते तनुः।
घृतेन वर्द्धते वीर्यम् मांसान्मासं प्रवर्द्धते ॥

'शाकेन रोगा वर्द्धन्ते', यह सिद्धान्त प्राकृतिक चिकित्सा (Nature cure) के विरुद्ध है। शाक भाजी (Vegetables) का आज कल अधिक मान है। उनमें विटामिन (Vitamins) भी अधिक मात्रा में पाए जाते हैं। परन्तु ज्ञात होता है चाणक्य का अभिप्राय हानिकर तथा भारी शाक-भाजियों से था जैसे शकरकन्द, कटहल, आलू-गोभी आदि। यह सिद्धान्त आयुर्वेद के अनुकूल पड़ता है जिसका उस समय अधिक प्रचार था। वैद्यक शास्त्र में लंघनों के बाद शाक आदि वनस्पति रोगी को बहुत दिन तक चखने को नहीं मिलती। आगे चलकर कौटिल्य जी मौन भोजन का उपदेश देते हैं—

येनु संवत्सरम् पूर्णं यित्यं मौनेन भुञ्जते।
युग कटि सहस्त्रान्ते पूज्यन्ते स्वर्गविष्टपे ॥

अर्थात्—जो लोग एक वर्ष तक मौन रह कर भोजन करते हैं वे कोटि सहस्र युगों तक स्वर्ग में पूजे जाते हैं। समौन भोजन का विधान आधुनिक स्वास्थ्य शास्त्र सम्मत है क्योंकि भोजन करते समय बातचीत करने से एक तो भोजन अच्छी तरह से नहीं चबाया जा सकता, दूसरे मुख द्वारा शरीर की उष्णता निस्सरित हो जाती है।

फिर आप कहते हैं:—

कुचैलिनं दन्तमलोप धारिणं।
बह्वाशिनं निष्ठुर भाषिणं च ॥
सूर्योदये चास्तमिते शयानं।
विमुञ्चति श्रीर्यदि चक्रपाणिः॥

अर्थात् मैले वस्त्र धारण करने वालों को, दांतों का मैल साफ न करने वालों को, ठूंस-ठूंस कर खाने वाले को, निष्ठुर भाषी को, सूर्योदय तथा सूर्यास्त के समय सोने वाले श्री छोड़ देती है चाहे वह स्वयं चक्रपाणि ही क्यों न हो।

आप कहते हैं, **"आहारे व्यवहारे च त्यक्त लज्जा सुखी भवेत्।"** आहार व्यवहार ही स्वास्थ्य का मूल है। इन बातों में लज्जा नहीं करनी चाहिए।

आजकल एक नई चिकित्सा प्रणाली निकली है जिसमें मानसिक परिवर्तन से ही रोगी को अच्छा किया जाता है। यदि मन रोगी हो तो शरीर भी रोगी है। यदि शरीर स्वस्थ हो तो मन भी स्वस्थ रहता है। कहा भी है (Sound mind in a sound body) अर्थात् स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मन का वास होता है। निस्सन्देह मन और शरीर का अन्योन्याश्रय संबंध है। चाणक्य महाराज भी कहते हैं **'मन एव मनुष्याणां कारणं बन्ध मोक्षयोः'** अर्थात् मनुष्यों के बंधन और मोक्ष का कारण मन ही है।

अन्त में मैं एक बात और कहना चाहता हूँ कि आज कल नई रोशनी की बाढ़ सी आ गई है जिसके कारण लोग प्रचीन ग्रंथों को, प्राचीन आचार-विचारों को तुच्छ समझने लगे हैं। उनको विवेक बुद्धि से काम लेना चाहिए और कालिदास का निम्न लिखित श्लोक याद रखना चाहिए।

पुराण सित्येव न साधु सर्वम्।
न चापि काव्यं नव मित्य वद्यम्॥
सन्तः परीक्ष्या न्यतरद्भजन्ते।
मूढ़ पर प्रत्यय नेय बुद्धिः॥

उपर्युक्त प्रमाणों से यह बात सिद्ध हो जाती है कि चाणक्य मुनि आयुर्वेद के प्रकांड ज्ञाता तथा शिव के उपासक थे जैसा कि उन्होंने कहा भी है—'आतिथ्यं शिव पूजनं प्रति दिनम्।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राकृतिक स्नान

लेखक—श्री एडोल्फ जुस्ट
अनुवादक—विट्ठलदास मोदी, संचालक आरोग्य मंदिर, गोरखपुर

मनुष्य प्रकृत-पथ से दूर जा पड़ा है। वह धरती माता द्वारा खुले हाथों दिए गए फलों पर जीवन-पालन नहीं करता, वह नंगा नहीं रहता और प्रकृति के उसके लिए बनाये वायु, पृथ्वी, जल आदि से बंधे नियमों को कुचलता है। फलतः वह रोगी हो गया। वह अब पुनः प्रकृति से सामंजस्य स्थापित कर स्वास्थ्य लौटा सकता है। उसे प्रकृति से फिर पथ-प्रदर्शन प्राप्त करना चाहिए। इसके लिए किसी तरह की चालाकी की जरूरत नहीं है, न इसके लिए कुछ जानने या सीखने की जरूरत है। वरन् स्वास्थ्य का सही रास्ता पाने के लिए उसे उन सभी झूठी और आवश्यक बातों को भुला देनी चाहिए जो जबरदस्ती उन्हें सीखनी पड़ी हैं, उसे अपने सिर पर से अक्ल के सारे बोझ को उतार फेंकना चाहिए। इस बोझ के नीचे आत्मा और मन दबे रहते हैं और इसने मनुष्य जाति को मूर्ख और अंधा बना रखा है। जब मनुष्य प्रकृति के बोल सुनने लगता है तब उसे और किसी चीज के जानने की इच्छा नहीं रह जाती। वह यह नहीं जानना चाहता कि प्रकृति के नियमों पर चलने पर रोगों का क्यों नाश हो जाता है और क्यों शरीर का स्वास्थ्य एवं शक्ति बढ़ जाती है और न उसे शरीर मन एवं आत्मा के व्यापार के समझने की ही जरूरत रह जाती है। मनुष्य का आज का ज्ञान अविश्वसनीय है, मनुष्य इसके चक्कर में पड़ कर भटक जाता है।

बच्चे की तरह प्रकृति माता की गोद में अपने को डाल देने में ही मनुष्य जाति का कल्याण है।

प्रकृति विरोधी सभी आदतें एक साथ छोड़ सकना सम्भव नहीं है। यदि कुछ आदतें अच्छी हों तो मैं उन्हें भी बुरी आदतों के साथ धो बहाना नहीं चाहता और आज के मनुष्य की हर एक चीज को सकारण समझने की आदत को भी तरजीह देना चाहता हूँ।

इसलिए मैं रोग की उत्पत्ति के सम्बंध में अपने विचार समय समय पर उपस्थित करता रहूँगा और प्रकृति-युक्त स्नान एवं अन्य प्राकृतिक चिकित्सा के उपादानों के उग्र प्रभाव-शाली होने का कारण बताऊंगा।

रोग अप्राकृतिक भोजन करने अर्थात् ऐसा भोजन करने से जिसे प्रकृति ने मनुष्य के लिए नहीं बनाया है और न उसकी पाचन प्रणाली ही उसके पचने योग्य बनी है, पैदा होते हैं। ऐसी दशा में अप्राकृतिक खाद्यों के पेट में जाने पर या तो उनका पाचन बिल्कुल होता ही नहीं और यदि होता भी है तो आधा-पर्धा। जिस अंश का पाचन नहीं होता वह विजातीय द्रव्य होकर शरीर में पड़ा रहता है, अंग प्रत्यंग में घुस जाता है, सड़ने लगता है और मनुष्य के लिए रोग, दुःख और कष्ट का कारण बनता है।

आजकल अधिकतर जीर्ण रोग के ही रोगी देखने में आते हैं। जब विजातीय द्रव्य तेजी से सड़ने लगते हैं तो शरीर में एक क्रांति सी मच जाती है। ऐसी दशा में शरीर विजातीय द्रव्य को एकाएक और शक्ति शाली ढंग से निकालने लगता है। शरीर की इस क्रिया से तीव्र रोग (जुकाम, मियादी बुखार, निमोनिया आदि) होते हैं। शरीर में जब इतना बल नहीं होता कि तीव्र रोग पैदा कर सके तो वह जीर्ण रोगों का आवास बन जाता है।

जल, प्रकाश आदि के प्रभाव के समान मनोभावों का कठिन आवेग भी स्नायु सम्बंधी क्रिया और पाचन-क्रिया को बिगाड़ कर और पंगु बना कर तथा विजातीय द्रव्य के सड़ने में सहायक होकर या प्रोत्साहन देकर रोगों का पोषण करता है और रोगों की उत्पत्ति का कारण होता है।

सड़न गर्मी पैदा करती है जिसमें रोगों के घातक और हानिप्रद तत्व निवास करते हैं।

रोग नाशन के लिये सबसे पहले हमें शरीर की भीतरी गर्मी को शान्त करना चाहिए। किन्तु जीवन शक्ति को भी उद्दीप्त करना आवश्यक है—इस शक्ति के सहारे ही शरीर भोजन से पोषण (शरीर की मरम्मत के लिए सामान) ग्रहण करता है और विजातीय द्रव्य (रोग का विष) को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पसीने, पेशाब, पाखाने के द्वारा निकलता है। जीवन शक्ति पर ही मनुष्य का जीवन निर्भर है।

यह स्पष्ट है कि प्रकृति-युक्त स्नान इन दोनों लक्ष्यों की पूर्ति करता है।

रोगों के उत्पत्ति-केन्द्र पेड़ू पर और स्नायुओं के मुख्य केन्द्र जननेन्द्रिय पर ठंडे जल का प्रयोग कर हम शरीर को भीतरी गर्मी को शीघ्र से शीघ्र कम करने में सफल होते हैं। स्नान के समय की रगड़ने की क्रिया भी स्नायुओं को जगाती हैं और शरीर के भीतर की गर्मी कम करने में सहायक होती है।

इस स्नान में गुदा द्वार का धुल जाना और ठंडा हो जाना इसका विशेष अंग है।

सभी औषधियां जो प्रकृति से नहीं ली गयी हैं एवं जो प्रकृति के नियमानुकूल नहीं हैं चाहे उन्होंने ऊपरी लाभ बार बार दिखाया हो पर अंत में निरर्थक ही साबित होती हैं। अप्राकृतिक औषधियों के बहुत से धोखे हैं। सभी अप्राकृतिक औषधियों से निश्चयपूर्वक नुकसान होता है और यह नुकसान चिकित्सा के आगे पीछे जरूर दिखाई देता है। कभी कभी ये औषधियां जब भीतर भीतर बहुत अधिक नुकसान पहुंचा देती हैं तभी उसका असर बाहर प्रगट होता है। ऐसे सब अप्राकृतिक उपचार अथवा ऐसे उपचार जो पूरी तरह प्रकृति नियमानुकूल नहीं हैं आते जाते रहते हैं। उन्हें कभी समाज में स्थायी स्थान नहीं मिलता।

औषधि संसार में रोज ही नई दवायें ईजाद होती हैं, उनका प्रचार होता है और जितनी शीघ्रता से उनका प्रचार होता है उतनी ही शीघ्रता से वे मिट भी जाती हैं। आज कहा जाता है कि कार्बोलिक एडिस से दुनिया का उद्धार हो जायगा, कल सैसीसाइलिक एडिस का नाम लिया जाता है; परसों किसी नये दर्दनाशक के गुण गाये जाते हैं, फिर किसी और औषधि पर संसार के भाग्य टिके बसाये जाते हैं और अन्त में ये सभी औषधियां हानिप्रद एवं अनर्थकारी सिद्ध होती हैं। आज तो लोग चुपचाप अपने को उन भयानक अवषधियों की भेंट कर देते हैं जिनका भयानक फल भविष्य के गर्भ में छिपा रहता है।

डाक्टर फास्ट ने अपने स्वर्गवासी पिता के साथ अनेक बार लोगों को औषधियां और जादू भरे नुसखे बांटे थे। ईस्टर के दिन लोग इसके लिये उनके प्रति भक्ति प्रदर्शित करने आये तो वे दवा के रूप में विष बांटने के अपने पश्चाताप को छिपा न सके। कविवर गेटे ने उनके हृदयगत पश्चाताप को उनके मुंह से इस प्रकार प्रकट कराया है।

"यदि आप लोग मेरे अन्तरतंम के भावों को जान सकते तो जानते कि मैं अपने पिता और अपने को आप के समाज के कितना अयोग्य समझता हूँ। हम लोगों की दवा करती क्या थी? रोग को नहीं रोगी को ही समाप्त कर देती थी। किसी ने इसके लिये हमसे कभी जवाब तलब नहीं किया। आज मैं ही पूछता हूँ यदि किसी ने हमारी औषधियों से लाभ प्राप्त किया है तो सामने आये। आप की इन सुन्दर एवं पवित्र घाटियों और पहाड़ियों में हमारी नारकीय गोलियां महामारी की तरह आयीं। मेरे दिये उस जहर ने हजारों को मौत के घाट उतारा और आज हमारे ऐसे बेशर्म खूनियों की दुनियां प्रशंसा कर रही है और उसे सुनने के लिये मैं जीवित हूँ।"*

प्रकृति की शरण में जाने के बाद से जब कभी मैंने अपने स्वास्थ्य और उसकी कुशलता के लिये सच्चा उपाय जानने की कोशिश की है तब हर बार मैंने देखा है कि ये उपाय सर्वदा प्राकृत होते हैं, अर्थात् जो कुछ जब कभी मैंने प्रकृति से जाना है उसकी परीक्षा करने पर वह पूर्णतया सत्य साबित हुआ है। जब प्रकृति के नियमानुकूल सभी कार्य किये जाते हैं तब उन कार्यों की सत्यता की जांच व्यर्थ है।

(शेष पृष्ठ ८ कालम २ के नीचे)

* गत शताब्दि के अन्त में मनुष्य के रोगी-वृक्ष में एक सजीव शाखा-प्राकृतिक-चिकित्सा-स्फुटित हुयी। महाकवि गेटे ने इसका प्रकाश पहले से ही पा लिया था। इस महान शक्ति के सामने सभी चीजें पूर्ण स्पष्ट नहीं हुयी थीं—यह उनके अन्तिम वाक्य हैं—"ईश्वर हमारा हृदय प्रकाश से भरदो।" इसी से प्रगट होता है कि प्रकृति में जो सत्य है उसके निकट वे पहुंच गये थे। प्राकृतिक चिकित्सा के जन्म की सूचना उन्हें मिल गई थी। गेटे ने अपनी महान् कृति "फास्ट" में जगह जगह अपनी ओजपूर्ण कविता में आज की सभ्यता की बेहूदगियों की कटु आलोचना की है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'चिकित्सा स्वातंत्र्य'

(श्री कामता प्रसाद अग्रवाल, एम० ए०, एन० डी०-डी० वाई, विशारद)

आज जब प्रधानतया अमेरिका द्वारा 'चार स्वतंत्रताओं' के व्यक्तिगत मौलिक व आधारभूत अधिकारों और सिद्धान्तों को उच्च स्वर से घोषित किया जाता है तब मुझे जरा भी आश्चर्य नहीं होता, क्योंकि जहाँ वह एक ओर व्यक्ति के इन 'चार स्वतन्त्रताओं' के अधिकारों की दुहाई देता है, वहाँ दूसरी ओर उसने चेचक तथा अन्य बीमारियों के टीके लगवाना सार्वजनिक रूप से अनिवार्य न कर व्यक्तिगत चिकित्सा स्वातन्त्र्य के मौलिक स्वत्व का अपहरण भी नहीं किया है। ऐसा कर उसने यथार्थ में 'स्वतन्त्रता' के प्रति अपने सच्चे प्रेम का परिचय दिया है और चिकित्सा क्षेत्र में भी व्यक्तिगत स्वातन्त्र्य की महत्ता को स्वीकार किया है। अमेरिका ने जहाँ विल्सन, रूजवेल्ट, विल्की तथा प्रेसीडेन्ट ट्रूमन जैसे महान राष्ट्र-नायकों को जन्म दिया है वहाँ उसे डा० लिण्डल्हार, डा० ड्यूई, डा० केलाग व डा० बर्नरमैकफेडन जैसे महान प्राकृतिक चिकित्सकों को उत्पन्न करने का भी गौरव प्राप्त है। चिकित्सा-क्षेत्र में भी व्यक्तिगत स्वातन्त्र्य का यह अधिकार प्रत्येक देश व राष्ट्र के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण है। विशेष कर भारत के लिए। हमारे देश के लिए तो चिकित्सा-स्वातंत्र्य का प्रश्न जीवन-मरण का प्रश्न है—क्योंकि देश अब भी इतना अशिक्षित है, क्योंकि परतंत्रता के कारण देश का सञ्चालन उसकी अपनी संस्कृत अथवा प्रतिभा के अनुकूल नहीं किया जा रहा है, क्योंकि हमारी औसत आयु आज हमारे असली आयु की चौथाई भी नहीं रह गई है, क्योंकि यहाँ की जलवायु उष्ण प्रधान है, जो आये दिन छोटे-बड़े तीव्र रोगों को उत्तेजित करती रहती है और जिनके शमन के लिए ही सरकार कानून द्वारा टीका लगाने की प्रथा को सार्वजनिक रूप से अनिवार्य करती है। देश के प्रत्येक नागरिक को यह स्वतंत्रता देना स्टेट या गवर्नमेंट का परम कर्त्तव्य होना चाहिए कि वह जिस चिकित्सा प्रणाली को चाहे उसे अपने परिवार तथा अपने आश्रितों के लिए अपनावे, उसका अनुसरण करे, उसे प्रयोग में लावे, उसका दूसरों के हित के लिए प्रचार व प्रसार करे तथा जिस चिकित्सा-पद्धति में वह कतई विश्वास नहीं करता, जिसे वह अंतःकरण से दूषित व घातक समझता है उसे प्रयोग में लाने के लिए वह कानूनन बाध्य न किया जाय। जीवन-मरण से संबंध रखने वाले उस मौलिक व आधारभूत स्वत्व की रक्षा के लिए हम प्राकृतिक-चिकित्सकों का यह प्रथम कर्त्तव्य होना चाहिए कि हम समय-समय पर इस चिकित्सा स्वातन्त्र्य के महत्व को उद्घोषित करते रहें। बल्कि प्रयत्न तो यहाँ तक करना चाहिए कि 'व्यक्तिगत चिकित्सा-स्वातन्त्र्य' के अधिकार को भारत के विधान में एक धारा द्वारा सम्मिलित कर दिया जाय जिससे कोई भी गवर्नमेंट उसे कुचल न सके।

आजकल जैसी चिकित्सा-प्रणाली को प्रोत्साहन दिया जा रहा है उसके अनुसार रोगों की उत्पत्ति को रोकने के लिए टीके लगवाने की प्रथा को अनिवार्य करना सार्वजनिक स्वास्थ्य पर ही कुठाराघात करना है। किसी भी गवर्नमेंट या सरकार को चिकित्सा-पद्धति को अनिवार्य करने का तभी अधिकार है और हो सकता है जब वह निर्विवाद रूप से सिद्ध कर दे कि उस चिकित्सा या उपचार से जिस विशेष रोग के लिए उसका अनुसरण कराया जाता है वह उत्पन्न होगा ही नहीं तथा भविष्य में भी वह ही उपचार उसका किसी प्रकार शमन कर अन्य किसी व्याधि का जन्म होने नहीं देगा। इतना ही नहीं, उसका यह भी नैतिक कर्त्तव्य है कि वह इस बात की गारण्टी दे कि जिस उपचार का वह सार्वजनिक रूप से प्रयोग करती अथवा कराती है वह भविष्य में देर या सवेर स्वस्थ व्यक्ति के मृत्यु का कारण न होगा। यदि गवर्नमेंट यह सब करने में असमर्थ है तो उसे कोई अधिकार नहीं कि वह अमुक चिकित्सा पद्धति को सर्वसाधारण के लिए अनिवार्य कर दे। ऐसी दशा में यदि वह किसी विशेष चिकित्सा-प्रणाली को सब पर कानून द्वारा लादती है, तो क्या यह सर्वथा उचित नहीं है कि उससे जो अनुपकार होता है, स्वास्थ्य को जो महान क्षति पहुँचती है, सरकार उसके लिए उत्तरदायी बने और उसका मुआवजा भी दे। प्राकृतिक चिकित्सा ने अपने अचूक व अटल सिद्धान्तों द्वारा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनिवार्य रूप से लगाई जाने वाली चेचक तथा अन्य बीमारियों के अवरोध के लिए, टीके की दूषित प्रथा का भण्डाफोड़ कर दिया है। प्राकृतिक चिकित्सा का यह सिद्धान्त है कि दैनिक रहन-सहन और खान-पान में शरीर के साथ जो अशक्य असंयम बर्ता जाता है उसके फलस्वरूप जो विषैला द्रव्य शरीर में उत्पन्न होता रहा है उसी का निश्चित परिणाम होता है विभिन्न नामधारी रोगों का जन्म। इस प्रकार चेचक के टीके आदि के रूप में एक जो और बाह्य विषैला पदार्थ (पीव) शरीर के अन्दर हठात् ठूंसा जाता है वह मलारोध के दूर करने में कैसे समर्थ हो सकता है?— यह मेरी कल्पना शक्ति के बाहर की चीज है।

(पृष्ठ २ का शेषांश)

है तो शरीर सुन्दर अपने आप बन जाता है। शरीर के अंग-अंग पर विचार करने में असुन्दर जान पड़ने वाला व्यक्ति आन्तरिक सुन्दरता की आभा से उद्भासित हो कर सर्वांग सुन्दर बन जाता है!

मन की सुन्दरता का मूल श्रोत है उत्तम भाव और विचार—सद्विवेक। विचार और मनोभाव सुन्दर होने पर आचरण सुन्दर होता है। आचरण सुन्दर होने पर, वाह्य-जगत से सम्पर्क स्थापित करने की क्षमता भी सुन्दर बन जाती है—वह दूसरों को अपनी ओर आकर्षित करने लगती है। अपने मन की सुन्दरता दूसरों के मन की सुन्दरता से मेल स्थापित करना चाहती है और जहाँ पर दो मन की सुन्दरता का मेल होता है वहीं पर मूर्त्त पदार्थ अथवा व्यक्ति असुन्दर होता हुआ भी सुन्दर बन जाता है। इसीलिए मनोविज्ञान के आचार्यों ने सुन्दरता को सापेक्ष (Objective) न बता कर निरपेक्ष (Subjective) ही बताया है। उनका कहना है कि कोई भी मूर्त्त पदार्थ हमें तभी तक सुन्दर जान पड़ता है, जब तक उसमें हमें अपनी आत्मा के दर्शन होते रहते हैं—जब तक हम उसमें अपने ही अन्तर्जगत का प्रतिबिम्ब देखते रहते हैं। उस प्रतिबिम्ब के विलुप्त होते या धूमिल पड़ते ही उसमें आकर्षण का भी अन्त हो जाता है। स्वतः वह व्यक्ति या पदार्थ हमें आकर्षित नहीं करता, आकर्षित करने अथवा होने वाला हमारा मन ही होता है। और सौन्दर्य की अक्षय निधि भी यहीं पर निहित रहती है। संक्षेप सुन्दर-असुन्दर की यही परिभाषा है।

चेचक का टीका

देखिए यह चेचक का टीका क्या है और कैसे घृणित रूप अथवा निर्दयता से तैयार किया जाता है? आपरेशन के मेज से बछड़े को बाँधने के बाद, उसके पेट के नीचे के भाग की मुलायाम मुंड़ी हुई (बाल के ऊपर व अण्डकोष पर एक सूखे नुकीले औज़ार (Lancet) द्वारा २-३ इञ्च लम्बे १५० घाव बनाये जाते हैं। फिर उस पीब (Vesicle pulp) को, जो शवच्छेद के कमरे में चेचक निकलने के प्रारम्भिक अवस्था के समय ही चल बसने वाले कुछ चुने हुए केसों से प्राप्त की जाती है, ग्लीसरीन में मिला कर प्रत्येक जख्म पर अलग—अलग रगड़ा जाता है (स्वभावतः ज्वर हो आता है और जख्मों में चकत्ते व फफोले पड़ जाते हैं जिनमें पस (पीव) रहता है। ६ठें दिन पीव (Lymph) को चिमटियों द्वारा प्रत्येक फफोले से अलग-अलग निकाल लिया जाता है—वह पपड़ी (Crusts) लैन्सेट की नोक से सावधानी से निकाली जाती है। फिर वह पपड़ी एक वाच ग्लास (watch glass) में एकत्रित कर ली जाती है और बच्चों के टीका लगाने के काम में लायी जाती है। पाठक सोचें यह वैक्सीन लिम्फ़ (Vaccine lymph) यह पस, यह पीव, यह गन्दगी शरीर के अन्दर जाकर क्या कुछ अनर्थ नहीं कर सकती या करती होगी?

आज यह हमारे और आपके कल्पना की वस्तु नहीं रह गयी कि चेचक का टीका, चेचक के विरुद्ध कुछ भी संरक्षण नहीं प्रदान करता बल्कि अनेकानेक अच्छे हो जाने वाले रोगियों को मृत्यु के घाट उतार देता है, शरीर में बहुत से घातक रोगों का जन्म देता है, चेचक के प्रकोप होने पर मृत्यु संख्या की बृद्धि में बहुत योग देता है तथा स्वयं इसका प्रयोग चेचक की अपेक्षा अधिक घातक व अधिक मृत्यु का

(पृष्ठ ६ का शेषांश)

जो कार्य प्रकृति की इच्छानुसार होते हैं उन्हें हमेशा सत्य समझना चाहिये। पशु और पृथ्वी के आदिम निवासी जब वे प्रकृति के संघर्ष में रहते थे तो क्या वे स्नान और भोजन पर प्रयोग करके जानते थे कि उन्हें कैसे नहाना चाहिये और क्या खाना चाहिए? प्रकृति स्नान को भी किसी ऐसे प्रयोग में पड़ने की जरूरत नहीं हुयी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारण बनता है। **आज इस बात को तो विश्व-इतिहास ने भी स्पष्ट रूप से अङ्कित कर दिया है।**

इङ्गलैंड में क्या हुआ ?

इतिहास इस बात का साक्षी है कि इङ्गलैंड में जब १८७१-७२ ई० में चेचक का भीषण प्रकोप हुआ था उस समय जनता में जितना चेचक का टीका लगाया गया वह अभूतपूर्व था। फिर भी इन दो वर्षों में वहाँ ४२००० व्यक्ति चेचक के शिकार हुए। टीका के प्रयोग से सार्वजनिक स्वास्थ्य पर जो घातक प्रभाव पड़ रहा था उसके विरुद्ध वहाँ की जनता ने आन्दोलन किया और जोरदार माँग पेश की कि चेचक के टीके की उपयोगिता व चेचक के कारण होने वाली इतनी अधिक मृत्यु की जाँच के लिए एक रायल कमीशन बिठाया जाय। फलस्वरूप जनता के रोष को शान्त करने के लिए एक कमीशन १८८९ ई० से १८९६ ई० तक बैठा। ७ साल की खोज के बाद उसने १९०३ के लगभग दो रिपोर्टें प्रकाशित कीं। अपनी रिपोर्ट में उसने इस तथ्य का स्पष्ट रूप से उद्घाटन किया कि चेचक का टीका पर्याप्त संख्या में मृत्यु का कारण होता है तथा उससे कहीं अधिक संख्या में गम्भीर रोगों को उत्पन्न करता है। कमीशन के सब लोग इस बात पर सहमत थे कि उस माता पिता के अपने द्वितीय बच्चे के टीका लगवाने से इनकार कर देने पर ध्यान न देना अमानुषिक होगा जिसका एक बच्चा टीके के ही कारण मर चुका है। इन रिपोर्टों के फलस्वरूप और जनता को शान्त करने के लिए वहाँ की सरकार ने एक कानून पास किया जिसे कि 'आत्मिक आक्षेप' (Conscience clause) कहते हैं। इस कानून का आशय केवल यही है जिस व्यक्ति की आत्मा चेचक के टीका लगवाने की कतई गवाही नहीं देती तथा उसको सर्वदा प्राणघातक समझती है, उसके लिए टीका लगवाना **अपवाद-स्वरूप** होगा और वे टीके के क़ानून से किसी प्रकार अनिवार्यतः बाध्य न होंगे।

अन्य देश के आँकड़े क्या सिद्ध करते हैं ?

सर्वप्रथम उन देशों को लीजिए जो चेचक के निवारण के लिए टीके के परम अन्ध भक्त रहे हैं और उसका अनिवार्य रूप से खूब प्रयोग करते रहे हैं:—

जर्मनी—१८७१-७२ में जब वहाँ चेचक का भीषण प्रकोप हुआ तब चेचक के शिकार होने वालों में उन व्यक्तियों की संख्या १७०३८ थी जिन्हें चेचक का टीका लगाया जा चुका था जिनमें से २८८४ व्यक्ति मृत्यु को प्राप्त हुए थे। सन् १९१० ई० से १९२८ के बीच जर्मनी में, जहाँ चेचक का टीका खूब लगाया गया था, चेचक के कारण १९५३ व्यक्तियों की मृत्यु हुई थी, जब कि इसी समय इंगलैंड और वेल्स में जहाँ कम टीका लगा था केवल ३१२ मृत्युएं हुई थीं।

इटली—इटली संसार के खूब टीका लगाये जाने वाले देशों में रहा है। सन् १८८० में वहाँ ९९ प्रतिशत जनता को टीका दिया गया था फिर भी सन् १८८७-८९ में (३ वर्षों में) वहाँ चेचक से ४७,७७५ व्यक्तियों को अपनी इह लीला समाप्त करनी पड़ी थी। १९००-१९२७ के बीच के २८ वर्षों में इसी देश में जहाँ एक बार नहीं कई बार टीका लगाया गया था चेचक के कारण ५६,४३५ मृत्युएं हुई थीं जब कि इसी काल में इंगलैंड और वेल्स में जहाँ कम टीका लगा था केवल ४,६३३ मृत्युएं हुई थीं।

जापान—जापान वह देश है जहाँ नियुक्त कालों पर किसी व्यक्ति द्वारा दुबारा टीका लगवाने की उपेक्षा का प्रयत्न होना सार्वजनिक स्वास्थ्य के विरुद्ध एक गम्भीर कर्त्तव्योपेक्षा समझा जाता है। इसी सम्बन्ध में बेरन ताकाकी ने १९०६ ई० में लन्दन में मेडिकल आफ़िसर आफ हेल्थ की इनकारपोरेटेड सोसाइटी की जयन्ती के उपलक्ष्य में दिये गये भोज के समय अपने भाषण में कहा था, "जापान में टीका लगवाने के विरुद्ध लोग नहीं हैं। ६ महीने की आयु हो जाने के पूर्व ही प्रत्येक बच्चे को टीका लगा दिया जाता है। जब वह स्कूल जाता है तब ६ साल की आयु में फिर टीका लगाया जाता है। इसके बाद टीका लगाया जाता है जब वह सेना में भरती होता है। इसके अतिरिक्त एक बार और टीका लगाया जाता है, जब चेचक का प्रकोप होता है।" पाठक ध्यान दें कि इसी कथन के दो वर्ष बाद ही सन् १९०८ में १८,०७५ व्यक्ति चेचक से आक्रांत हुए जिनमें से ५,८३८ व्यक्ति **केवल एक साल के अन्दर** मर गये।

तुलना कर के भी जरा देखिए

अब उन देशों को तुलना में लीजिए जहाँ टीका बहुत कम लगाया गया था या जहाँ टीका लगाने का कानून

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनिवार्य नहीं रह गया था अथवा जहाँ टीके की प्रथा उठा दी गयी थी।

१८९६-१९२७

मामूली तौर से टीका लगाये जाने वाले देश
(Lightly vaccinated countries)

इङ्गलैंड	वेल्स	स्विटजरलैन्ड

चेचक के कारण
मृत्यु प्रति २० लाख में १ के लगभग १ के लगभग

खूब टीका लगाये जाने वाले देश
(well vaccinated countries)

जर्मनी	बेल्जियम	आस्ट्रिया	फ्रांस	इटली	पुर्तगाल
४	४	४	४	२००	६००

ऊपर लिखित तुलनात्मक आंकड़ों से साफ जाहिर है कि इंगलैन्ड, वेल्स और स्विटजरलैण्ड (जो ऐसे देश हैं जहाँ हल्का या बहुत कम टीका लगाया गया था) की अपेक्षा जर्मनी, बेल्जियम, आस्ट्रिया और फ्रांस में (जहाँ खूब टीके का प्रयोग किया गया था) मृत्यु संख्या (चेचक के कारण) उसी काल में चौगुनी थी। और इटली और पुर्तगाल के आंकड़े क्या प्रकट करते हैं ? केवल यही न कि वहाँ चेचक से मृत्यु इंगलैण्ड, वेल्स तथा स्विटजरलैण्ड की तुलना में २०० व ६०० गुनी थी ! पर इन्हीं दो देशों के आंकड़े अन्य देशों की अपेक्षा क्यों इतने बढ़े-चढ़े प्रतीत होते हैं ? इसका कारण केवल यही है कि इटली और पुर्तगाल उन देशों से हैं जहाँ चेचक के बचाव के लिए टीके का एक बार नहीं बल्कि अनेक बार प्रयोग किया गया था !

वे देश जहां टीके का प्रयोग बहुत कम या नहीं के बराबर होता है

अब उन देशों को देखिये जहाँ इस टीके का प्रयोग नाम मात्र को हुआ है, जहाँ टीके का कानून अनिवार्य नहीं रहने दिया गया है अथवा इसको कत्तई त्याग दिया गया है। नार्वे, जहाँ टीके की प्रथा अनिवार्य नहीं रही, चेचक के कारण मृत्यु से लगभग बरी रहा है। हालैण्ड ने जब १९२८ में टीके की प्रथा को रोक दिया तब से बहुत कम चेचक का प्रयोग वहाँ रहा है। इसके अतिरिक्त आस्ट्रेलिया व न्यूजीलैण्ड में, जिन्होंने टीके के प्रयोग को तिलाञ्जलि दे दी है, चेचक का प्रकोप उल्लेखनीय रह ही नहीं गया।

चेचक की अपेक्षा चेचक के टीके से अधिक मृत्यु

यह तो स्पष्ट ही है कि चेचक का टीका चेचक के विरुद्ध कोई संरक्षण नहीं प्रदान करता। पर यहाँ यह बताना भी परम आवश्यक है कि चेचक की अपेक्षा चेचक का टीका कहीं अधिक घातक होता है। आज इंगलैण्ड में ४० प्रतिशत से भी कम पैदा होने वाले बच्चों को टीका लगाया जाता है। लेकिन इसके बावजूद भी १९०८ से १९३७ तक के अवधि में वहाँ पाँच वर्ष की आयु वाले बच्चों की चेचक के कारण मृत्यु संख्या ८९ थी जब कि टीके के कारण मृत्यु संख्या २२७ थी। इससे सहज अनुमान लगाया जा सकता है कि चेचक या उसका टीका कौन अधिक मृत्यु का कारण होता है ? यह अन्तिम संख्या स्वयं सरकार द्वारा दी गई है जसमें टीका ही मृत्यु का कारण बताया गया है और जिसे वहाँ के रजिस्ट्रार जनरल ने इस तरह अंकित किया है—"टीके तथा तत्सम्बन्धी कारणों से मृत्यु (Deaths from vaccination or causes associated therewith) यह उन बच्चों की संख्या है जो टीका लगाने के समय बिल्कुल अच्छे थे पर टीका लगाने के बाद तुरंत मर गये रजिस्ट्रार जनरल ने लिखा है कि इसमें से १२० तो वैक्सीनिया के कारण मर गये, शेष टीके के अन्य परिणामों के कारण।

आंखें खोल देने वाला लीसेस्टर (Leicester) का उदाहरण

लीसेस्टर वह नगर है जिसकी कहानी टीके लगाने की प्रथा के सच्चे इतिहास में अपना प्रमुख स्थान रखती है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह इतिहास जो जनता तक प्रकाश में नहीं लाया जाता, उस व्यवसायिक चिकित्सक वर्ग द्वारा, जो कम से कम बौद्धिक ईमानदारी की भी शिष्टता नहीं रखता। लीसेस्टर वह नगर है जिसके कारपोरेशन ने आज से लगभग ५०-६० वर्ष पहिले ही टीके को धता बता दिया गया था और तब से बराबर चेचक की रोक केलिए अपना सारा रुपया सार्वजनिक स्वच्छता व सफाई (Public sanitation) में लगता है। सन् १६०८ से १६३७ तक के ३० वर्षों में लीसेस्टर में उत्पन्न बच्चों के ६.१ प्रतिशत को ही टीका लगाया गया था, पर फिर भी इस अवधि में इस तथाकथित अरक्षित नगर में चेचक से केवल २ मृत्यु हुई। लीसेस्टर का यह ज्वलन्त उदाहरण—उसका यह चकित करने वाला अपना अर्ध शताब्दी का प्रयोग, उसका यह रहस्योउद्घाटन कि चेचक के टीके द्वारा चेचक से कतई बचाव नहीं होता तथा सार्वजनिक स्वास्थ्य को उन्नत करने का चेचक व अन्य रोगों से बचने का एक मात्र उपाय यही है कि सार्वजनिक स्वच्छता पर म्युनिसपैलटी व सरकार का निरन्तर ध्यान रहे और इसके लिए वह सतत प्रयत्न करती रहे, भारत ही नहीं समस्त विश्व की आँखें खोल देने वाला है। पर खेद है, लीसेस्टर का यह सफल परीक्षण जनता के सामने लाया ही नहीं जाता, क्यों कि वह तो टीके की प्रथा की जड़ को ही काटने वाला है न! वैक्सीनेशन के इतिहास के बहुत प्रारम्भिक काल में ही लेसेस्टर ने यह खोज कर ली थी और यह निष्कर्ष निकाला था कि चेचक से मुक्ति (immunity) और टीके के बीच कोई भी वैज्ञानिक संबंध नहीं है, पर ऐसा सम्बन्ध चेचक तथा अन्य घातक रोगों से बचाव और स्वच्छता के बीच अवश्यमेव है। एक समय था जब लीसेस्टर के अपने इस अभूतपूर्व प्रयोग के समय उसके साहसी नव विधायकों पर, विचारशील परीक्षण करने वालों पर, भयानक आपत्ति व दुर्घटनाओं को वरपा देने का भीषण आरोप लगाया जाता था। तत्सम्बन्धी हृदय विदारक भविष्यवाणियाँ डाक्टरों द्वारा की जाती थीं। पर शीघ्र ही सत्य ने विजय पायी, प्रकृति के अचूक सिद्धान्त ने अपना कौशल दिखाया। स्वच्छता का मूल्य व उसकी महत्ता सबके सामने सिद्ध हो गई। प्राकृतिक चिकित्सा भी तो इसी 'स्वच्छता'—आन्तरिक या बाह्य—पर रोगों से मुक्ति पाने के लिए सदैव जोर देती है।

डाक्टर किलिक मिलार्ड को, जो काफी लम्बे अरसे तक लीसेस्टर नगर के मेडिकल आफिसर आव हेल्थ, रहे हैं और जो प्रथम स्वयं टीके के हिमायती (यद्यपि सीमा के भीतर) रहे हैं, आखिर में वाध्य होकर लीसेस्टर के आश्चर्यजनक परीक्षण की इस निसन्देह सफलता को मानना पड़ा है, जो विश्व में घोषित करने योग्य है।

सत्यप्रिय व सत्यवादी डाक्टरों के महत्वपूर्ण कथन

आइए अब देखें कि टीके के विषय में उन डाक्टरों व चिकित्सकों की क्या सम्मति है जिन्होंने अपनी आत्मा का हनन न कर सची बात कहने का साहस किया है। नीचे उन्हीं डाक्टरों के कथन उद्धृत किये जाते हैं जिन्हें अपने व्यवसाय में उच्चतम पद व प्रसिद्धि प्राप्त है:—

(१) **डा० चार्ल्स क्रेग्टन**, एम० डी० एम० ए० (इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका के नवें संस्करण में चेचक के टीके पर दिए गए लेख के विद्वान लेखक)—"मेरी राय में टीका चेचक के खिलाफ किसी प्रकार का संरक्षण नहीं प्रदान करता।"

(२) **डा० डब्लू० आर० हाडवेन** एम० डी०—"एक डाक्टर की हैसियत से मैं कहता हूं कि चेचक का टीका लगाना सहज बुद्धि का अपमान करना है, इसकी उत्पत्ति अन्धविश्वास से हुई है, यह सिद्धान्ततः व व्यवहार में अवैज्ञानिक है, इसका रूप व्यर्थ व हानिकर है, इसके अतिरिक्त एक पिता व नागरिक की हैसियत से मैं वैक्सीनेशन ऐक्ट को अनिष्टकारी प्रभाव डालनेवाला अनैतिक प्रवृत्तियों वाला तथा उसके पास होने में निर्दयता और अन्याय समझता हूँ।"

(३) **डा० आर० एच० बेकवेल** एम० डी०, एम० आर० सी० एस० (भूतपूर्व वैक्सीनेटर जनरल व मैडिकल आफिसर आव हेल्थ तथा चेचक तथा 'चेचक उत्पत्ति और उपचार' के लेखक)—"रोग को कम करने के रूप में भी टीका लगाने पर मेरा बहुत कम विश्वास है और महामारियों के समय संरक्षण के रूप में तो मेरा इसमें कत्तई विश्वास नहीं है। अत्यधिक भीषण रूप से टीका लगवाने के बाद ६ महीने के अन्दर ही मुझे स्वयं चेचक निकल आयी।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(४) डा० विलियम हावर्ड हे (एक जीवित प्रमाणिक चिकित्सक)—"आज उन्हीं देशों में चेचक अधिक प्रतिशत में उपस्थित है जिनमें अधिकतम टीका लगाया जा चुका है।"

(५) डा० सी० ई० पेज—"डाक्टरी पेशे की यह एक महान् मूर्खता है।"

(६) डा० जे० डब्लू० हाज—"एक भीमकाय मति-भ्रम......एक की भी कभी प्राणरक्षा नहीं की।"

(७) डा० कालिन्स—"टीके द्वारा नष्ट किये गये आक्रान्तों के तृतीयांश को वर्णन करने की यदि मेरी इच्छा होती तो आपकी धमनियों में रक्त का संचालन बन्द हो जाता।"

(८) डा० टर्नबुल—"मैंने स्वस्थ बच्चों को टीके के परिणामों से सड़कर मरते देखा है।"

(९) डा० हैडवेन—"मिथ्या-चिकित्सा का बृहत्तम नमूना जिससे कि सतत सभ्य राष्ट्र का शोषण किया गया है।"

(१०) डा० वाल्टर कार—(लन्दन की मेडिकल सोसाइटी में सभापति के आसन से दिये गये भाषण में)—"स्पष्टतः वैक्सीनेशन के विषय में हमारे विचार बदल रहे हैं, वे कदाचित और शीघ्र बदलते यदि यह कानून द्वारा स्थापित सरकारी विचार धारा का एक अंश न हो गया होता।"

(११) डा० एम० वेडो वेली (सेक्रेटरी हेल्थ एडूकेशन और रिसर्च काउन्सिल, लन्दन)—आपने आंकड़ों के अनेक प्रमाणों के आधार पर एक बहुत खोजपूर्ण और उपयोगी तालिका बनायी है उन विभिन्न रोगों की जो चेचक के टीके के फलस्वरूप होते हैं तथा स्नायु-मंडल पर घातक प्रभाव डालते हैं।

(१२) डा० ए० एस० मैक्नील, एल० आर० सी० पी० ने अपनी पुस्तक 'कैंसर (जहरीला फोड़ा) का रहस्य खुल गया' (cancer mystery solved) में यह साफ सिद्ध किया है कि वैक्सीन (टीके की पीब) द्वारा शरीर दूषित करना कैंसर जैसे भयानक रोगोत्पति के कारणों की शृङ्खला की एक कड़ी है।

यदि दूर नहीं जाना चाहते तो सुनिये अपने देश में टीके के बारे में क्या कहा गया है :—

(१३) कर्नल शार्ट—(मद्रास किंग इंस्टीट्यूट के संचालक—ने एक बार रोटरी क्लब में भाषण देते समय स्पष्ट कहा था)—"अन्त में चलकर हैजा, प्लेग, चेचक, मलेरिया जैसे रोग वैक्सीन या इस तरह की चीज से कत्तई निर्मूल नहीं हो सकते। सार्वजनिक स्वच्छता को पूर्ण उपयोग में लाने से ही इस पर विजय प्राप्त की जा सकती है।"

महात्मा गांधी के शब्दों में—"टीका लेना बहुत ही जंगली रिवाज है। इस जमाने में फैले हुए भ्रमों में यह एक विषैला भ्रम है। जंगली समझे जाने वाले लोगों में ऐसे भ्रम नहीं दिखलायी पड़ते।.........जिन्हें टीका लगा दिया जाता है उन्हें शीतला से बचा आदमी समझ लिया जाता है। पर यह मानने के लिए एक भी सबल कारण नहीं है। कोई नहीं कह सकता कि टीका न लगवाने से बड़ी शीतला निकलती है। इसके विरुद्ध टीका न लगवाने वालों में शीतला न निकलने के अनेक उदाहरण दिखाये जा सकते हैं। जिन लोगों ने टीका नहीं लिया उनमें शीतला निकलने के उदाहरण द्वारा यह बात नहीं कही जा सकती कि यदि ये लोग टीका लेते तो शीतला से मुक्त रहते। ....कहावत है कि कायर मौत के पहले मर जाता है, शीतला निकलने पर मौत या कुरूप होने के भय से टीका लेकर हम पहले ही मर जाते हैं।"

रत्न-कण

जब कभी मनुष्य किसी सांसारिक वस्तु से दिल लगाता है, जब कभी मनुष्य किसी पदार्थ के साथ उसी पदार्थ के लिये प्रेम करने लगता है, जब कभी मनुष्य उस पदार्थ में सुख ढूंढ़ने का यत्न करता है, उसको धोखा होता है, वह अपने को केवल इन्द्रियों का मूढ़ पायेगा। आप संसारिक पदार्थों से आसक्ति करके सुख नहीं पा सकते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन-ज्योति

डाक्टर पुच्चा वेंकट रमैया, संपादक 'प्रकृति' (तेलेगू) और 'इण्डियन ने चुरोपैथ' (अंग्रेजी)

मनुष्य-जीवन की तुलना जलते हुए दीपक से की जाती है। जिस प्रकार तेल के रहने हुए भी हवा का एक झोंका लगने पर दीपक बुझ जाता है, वही दशा इस जीवन प्रदीप की भी हो सकती है। हम जलते हुए दीपक के बुझ जाने का कारण जानने के लिए उत्सुक हो उठते हैं, उसे फिर जानते का प्रयत्न करते हैं; किन्तु जीवन-प्रदीप के बुझ जाने पर अक्सर हम यही समझ लेते हैं कि उसकी आयु ही पूरी हो गई ! हमारी यह धारणा कहाँ तक सच है, यही इस लेख में आपको बताया गया है। यदि आप इस पर विचार करें तो यह तथ्य रहस्य न बना रहेगा कि असामयिक अथवा अल्पकालिक मृत्यु की जिम्मेदारी अधिकांश में हमीं पर होती है।

'उसकी आयु ही पूरी हो गयी, तभी तो वह मरा। डाक्टर या वैद्य किसी की आयु भला कैसे बढ़ा सकते हैं।'—इस तरह की बात हम प्रायः सभी रोगियों के इलाज कराते हुए मर जाने के बाद सुनते हैं। लेकिन सच पूछिए तो यह सर्वांशतः सत्य नहीं हो सकता। बहुत से ऐसे भी लोग होते हैं जिनके जीवन का प्रदीप असमय में ही बुझ जाता है, जो अकाल ही काल-कवलित हो जाते हैं ! यह विरोधाभास या उल्टवाँसी भले ही जान पड़े, किन्तु यदि इस पर गम्भीरता-पूर्वक विचार करें तो इसकी सचाई साफ जाहिर हो सकती है !

यहाँ पर मैं एक 'पेट्रोमैक्स' लालटेन का उदाहरण देना चाहता हूं। यदि हम उससे अच्छा प्रकाश पाना चाहें तो इसके लिए हमें कुछ बातों पर ध्यान रखना निहायत जरूरी होगा। क्योंकि उनमें से यदि किसी एक भी बात का व्यतिक्रम हुआ तो यह निश्चित है कि लालटेन बुझ जायगा। ठीक इसी प्रकार यदि हम चाहते हैं कि शरीर के भीतर प्राणों का दीपक जलता रहे तो इसके लिए कुछ परिस्थितियाँ अनिवार्यरूप से आवश्यक हैं। उनमें से किसी एक से भी वंचित हो जाने पर इस शरीर-पिंजर से प्राण-पखेरू के उड़ जाने की प्रत्येक सम्भावना हो सकती है।

अब हम देखें कि वे परिस्थितियाँ क्या हैं ?—(१) प्रकाश के लिए 'पेट्रोमैक्स' लालटेन में पहले तो मिट्टी का तेल भरा जाता है। साथ ही इस बात पर ध्यान रक्खा जाता है तेल बिलकुल साफ हो, नहीं तो तेल निकलने की नली में गन्दगी या मैल जमा हो जायगी, तेल का मार्ग अवरुद्ध हो जायगा और तब लालटेन ही बुझ जायगा।

(२) तेल की नली खूब गरम हो जाने के बाद तेल छोड़ना चाहिए, नहीं तो तेल तो जल जाता है मगर प्रकाश नहीं देता। तेल तो तभी प्रकाश देता है जब वह वायु (गैस) के रूप में जलता है।

(३) तेल छोड़ने के बाद हम उसमें हवा भरते हैं। हवा कितनी भरनी चाहिए यह बताने के लिए उसमें एक मीटर (मापक-यंत्र) लगा रहता है। मीटर की सुई लाल निशान पर पहुंचने तक ही हवा भरनी चाहिए। हवा अधिक होने पर प्रकाश अधिक होता है, जिससे तेल जल्दी जल जाता है और लाइट भी जल्द ही बुझ जाती है।

(४) कभी कभी ऐसा भी होता है कि तेल की नली में कोई तिनका अटक जाने पर बत्ती बुझने लग जाती है। तब सुई से उस नली को साफ कर देनी चाहिए।

(५) लालटेन का शीशा हमेशा साफ रखना चाहिए। उसमें कालिख जम जाने पर प्रकाश कम होता है। अधिक प्रकाश पाने के लिए शीशे को बिना साफ किए ही उसमें खूब हवा भर देने से तेल तो शीघ्र ही खर्च हो जाता है, पर प्रकाश नहीं मिलता।

(६) जिस मार्ग से हम तेल भरते हैं, उसमें एक 'वाशर' लगा होता है, जिसके अभाव में प्रकाश नहीं होता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(७) जिस जगह पर तेल जमा रहता है उसमें यदि कहीं छेद या सूराख हो जाय तो बत्ती बुझ जाती है।

(८) तेल को छान कर साफ रखने के लिए उसके अन्दर-ही अन्दर दो छलनियाँ लगी रहती हैं। यदि वे दोनों खराब हो जायं तो बत्ती का काम तमाम ही समझिए।

(९) जिस जगह पर तेल जलकर प्रकाश देता है वहाँ पर एक बारीक सूराख होता है जिससे होकर तेल निकलता है। यदि वह सूराख बड़ा हो तो तेल अधिक मात्रा में निकल कर बत्ती को जला देता है। इसी प्रकार बहुत छोटा होने पर काफी तेल नहीं निकलता और रोशनी भी कम हो जाती है।

(१०) धुआं बाहर निकलने के लिए रास्ता होता है। अगर उसमें कालिख भर जाय, तो धुआं बाहर नहीं निकल-पाता और इस हालत में भी बत्ती बुझ जाती है।

इस 'पट्रोमैक्स' की ही तरह मनुष्य का शरीर भी एक अनोखा यंत्र है, जिसमें सैकड़ों कल पुर्जे लगे हैं। मनुष्य शरीर के यांत्रिक बनावट (Human mechanism) के आगे भला 'पेट्रोमैक्स' की यांत्रिक-बनावट की क्या बिसात ? फिर भी मैंने इन दोनों यंत्रों की यहाँ पर इस लिए की है कि पाठकों को समझने में आसानी हो। मनुष्य शरीर के लिए भोजन की आवश्यकता है। खाद चाहे कितनी ही बढ़िया क्यों न हो, लेकिन जब तक उसका रस नहीं बनता तब तक वह पेड़ का भोजन नहीं बन सकता क्योंकि पेड़ की जड़ों के मुंह इतने बारीक होते हैं वे केवल रस को ही ग्रहण कर सकते हैं। इसी प्रकार शरीर भी भोजन को रस (द्रव) के रूप में परिणत कर के ही अपने उपयोग में लाता है। अतः यह स्पष्ट है कि प्रत्येक ग्रास को खूब चबा-चबा कर ही निगलना चाहिये। हमारे भोजन में कुछ ऐसी चीजें हैं जिनका सेवन शरीर के स्नायु-जाल, मांस-पेशियों तथा अन्य अंगों को उत्तेजना प्रदान करने वाला अतः हानिकारक होता है। चीनी, काफी (कहवा) चाय, कोको, अफीम, प्याज, लहसुन, हींग आदि ऐसी ही चीजें हैं।

कुछ भोजन ऐसे भी हैं जो शरीर को पुष्ट करना तो दूर रहा, उल्टे शरीर से मल के रूप में जल्द बाहर न निकल कर अन्दर ही अन्दर सड़ते रहते हैं। इस श्रेणी के खाद्य-पदार्थों में मैदा, साबूदाना, मशीन का छंटा चावल, छिली हुई तरकारियाँ, स्फोक-रहित अनाज, जली-भुनी साग-सब्जी घी या तेल में तले पकवान आदि आते हैं। खनिज-धातु किसी भी रूप में शरीर के अन्दर पहुँचाने पर शीघ्र बाहर नहीं निकलते और बहुत काल तक वहीं रह कर उत्तेजना उत्पन्न करते रहते हैं। इस लिये हमें सावधान रहना चाहिये कि लोहा, तांबा आदि खनिज पदार्थ किसी भी रूप में और किसी भी मात्रा में शरीर के अन्दर न पहुंचने पायें।

वैसे तो समुद्र का नमक भी इसी श्रेणी में आता है, लेकिन चूंकि हजारों वर्ष से मनुष्य को उसे खाने की आदत पड़ गई है, इसलिए पकाई हुई चीजों के साथ उसका मेल आवश्यक जंचता है। प्राकृतिक भोजन करने वालों को इसकी कोई जरूरत नहीं महसूस होती। लेकिन आज मनुष्य-समाज में नमक का आवश्यकता से अधिक मात्रा में नाड़ियों के अन्दर संचय ही रक्तचाप, आमवात, और संधिवात का कारण होता है।

इसलिये हमें खाद्याखाद्य का समुचित ध्यान रखना चाहिये, अन्यथा विजातीय पदार्थ हमारी रक्त-वाहिनियों, नाड़ी-संधियों में जमा हो जाता है जिसके फलस्वरूप हम नाड़ीशक्ति, मांस पेशियों में बल आदि होते हुये शीघ्र काल कवलित हो उठते हैं। यही कारण है कि जब किसी जीर्ण रोगी की इस दशा में मृत्यु होती है तो हम लोगों को यह कहते सुनते हैं कि 'रोगी महीनों से बीमार था, फिर भी बल में कोई अन्तर नहीं आया था, फिर न जाने इतनी जल्दी क्यों मर गया ?" इसलिये हमारी सलाह यह है कि खुली भूख लगने पर ही भोजन करें और वह भी इसलिये करें कि भूख शांत हो। जरा उन देहाती मजदूरों को देखिये। वे लोग अमीरों की तरह मांस, अण्डे, घी, दाल, आदि प्रोटीन-प्रधान आहार नहीं खाते, फिर भी वे स्वास्थ्य, बल और आयु में अमीरों को मात कर देते हैं।

एक बार आंध्र प्रांत के एक नेता ने मुझ से प्रश्न किया कि ये लोग इतना शारीरिक बल रखते हुए भी संक्रामक रोगों के शिकार क्यों होते हैं। मैंने जवाब दिया कि उनमें सफाई का अभाव ही इसका कारण है।

गरीबों की यह हालत है कि नहाने पर पहनने के लिये

(शेष पृष्ठ १६ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसका दोष?

[डा० सुरेन्द्र प्रसाद गर्ग, एम० ए०, एन० डी०]

बड़े-बड़े अस्पतालों और शफाखानों आए दिन कितने ही रोगी मरते रहते रहते हैं, पर उन रोगियों की मृत्यु-संख्या पर शायद ही किसी का ध्यान खिंचता हो। लेकिन अगर कहीं प्राकृतिक रोगोपचार में किसी रोगी की मृत्यु हो गई तब तो लोगों में तहलका-सा मच जाता है। लोग यही कहने लगते हैं—'लीजिए साहब आप के इलाज ने तो रोगी को मार डाला, यदि उसका प्राकृतिक इलाज न कराया गया होता तो वह बच जाता।'

ऐसी स्थिति में प्राकृतिक चिकित्सा के विरोधियों को भी इस प्रणाली की कड़ी आलोचना और प्राकृतिक चिकित्सका की भर्त्सना करने का अवसर मिल जाता है। इतना ही नहीं स्वयं बेचारा प्राकृतिक चिकित्सक भी, यदि वह नवाभ्यासी है, हतोत्साह हो जाता है और तब वह असाध्य अथवा कष्ट साध्य रोगियों की चिकित्सा का भार ग्रहण करने में झिझकने लगता है। लेकिन इसमें प्राकृतिक चिकित्सा का कोई दोष नहीं। वह तो पुकार-पुकार कर कहती है, "मैं सब रोगों को ठीक कर सकती हूँ, पर सब रोगियों को नहीं।" अतः यह आशा करना कि इस चिकित्सा से सभी रोगी अच्छे हो जायंगे, भारी गलती है। यह बात विरोधाभासात्मक दिखती हुई भी सर्वथा सत्य है। हमारा तो यह भी कहना है कि प्राकृतिक चिकित्सक को जान बूझ कर असाध्य तथा निराश रोगियों को हाथ में लेना चाहिए। यश-अपयश का विचार सेवा-कार्य में उचित नहीं जान पड़ता। इसके अलावा मरने वाला रोगी ठीक होने वाले की अपेक्षा चिकित्सक को अधिक अनुभव और ज्ञान प्राप्त करने का अवसर प्रदान करता है।

यहाँ पर मैं एक रोगी का उदाहरण देना चाहता हूँ। वह ३५ साल का था। वह बाल्यावस्था से खूब खाता पीता रहा। २५ साल की अवस्था में दूसरा विवाह किया। शक्ति के चक्कर में पड़ कर वह अनेक दवाओं का सेवन करने लगा। फलतः उसे ज्वर और खांसी रहने लगी। बीच-बीच में उसे दवा, इन्जेक्शन आदि से दबा दिया गया। पर कोई विशेष लाभ न हुआ और रोगी का शरीर दिनोदिन क्षीण होने लगा। उसके मुंह से दुर्गंध आने लगी। कफ का रंग सफेद न रह कर पीला पड़ गया। ज्वर का ताप क्रम दिनोंदिन बढ़ने लगा। रियासत के बड़े शफाखाने में भरती होने पर उसे ४ इन्जेक्शन दिए गए जिससे उसके दोनों हाथ सूज गये और वह दर्द तथा ज्वर से तड़पने लगा। अन्त में उसने इन पंक्तियों के लेखक को बुला कर प्राकृतिक चिकित्सा शुरू करने की प्रार्थना की। उसके प्राण संकट में जानते हुए भी चिकित्सा आरम्भ की गई। भोजन में से निषेधात्मक वस्तुएं एक दम निकाल कर धीरे-धीरे उसे छाछ, फल तथा शाक भाजी पर लाया गया। उस समय उसकी भूख मर सी गई थी। मिट्टी की पट्टी धूप-स्नान तथा साधारण स्नान भी काम में लाए गए। इन सब से रोगी की तबियत ठीक होने लगी और वह शरीर से क्षीण होते हुये भी स्वास्थ्य की पूर्ण आशा करने लगा। पर लेखक को उसके मुख का सूखापन एवं काँच की-सी चमक देख कर निराशा ही होती थी।

उसके पाखाने के विषय में उल्लेखनीय बात यह थी कि प्रति दिन दो बार बंधा हुआ, काला बदबू वाला दस्त होता था। उसका पेट साफ होने के साथ-साथ नरम पड़ने के बजाय कड़ा पड़ता जाता था। लगभग १७ दिन की चिकित्सा में ही रोगी के ज्वर ने अपना समय बदल दिया और ताप-क्रम भी कम होने लगा। रोगी कहता था कि मुझे २-४ दिन में ही ज्वर हटने पर भूख लगेगी और मैं स्वस्थ हो जाऊंगा। एक दिन उसकी भूख सचमुच खुली और उसने अधिक खाने को माँगा। पर अकस्मात् उसी दिन शाम को उसकी तबियत जरा घबड़ाई और उसने पानी का कोई शीतल उपचार करने के लिए आग्रह किया। लेखक को रोगी में कुछ अनिष्ट के लक्षण दृष्टिगोचर हुए और उसने रोगी से इसका कारण पूछा। पर रोगी ने डाट कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरी धोती नहीं होती। एक बार मैंने एक गरीब नवयुवती को एक नाले में नंगी होकर नहाते देखा। उसका पेशा, मिट्टी खोदना है। उस बेचारी के पास दूसरा कपड़ा न था। बाहर आकर उसने वही कपड़ा पहन लिया। उसके शारीरिक गठन पर मैं मुग्ध रहा। भारतीय मन्दिरों में प्रतिष्ठित स्त्री-मूर्ति का स्मरण हो उठा। अपनी चालीस बरस की उम्र में मैंने ऐसे सुन्दर गठनवाली स्त्री-मूर्ति नहीं देखी। कहने का मतलब यह है कि गरीब लोग इस प्रकार के हृष्ट-पुष्ट शरीर रखते हुये भी वस्त्राभाव के कारण मैले कुचैले कपड़े पहनते हैं जिनमें से बदबू निकलती है। हिन्दुस्तान की आर्थिक-स्थिति के माप-दंड ऐसे ही लोग हैं।

कितने ही ऐसे गरीब हैं जिन्हें जोरों की भूख लगते हुये भी भोजन नहीं मिलता। ये लोग अपनी भूख भूल जाने उत्तर दिया "आप न घबड़ाइये, मैं ठीक हूँ।" कुछ ही देर बाद रोगी ने हाथ जोड़ कर विदा ली और उसके प्राण पखेरू उड़ गए।

पाठक समझ सकते हैं कि वह क्षय-रोगी था। उसका रोग घातक अवस्था में पहुंच चुका था। निरन्तर गलत खान-पान तथा दवाओं के सेवन से उसके फेफड़े और आँतें खराब हो चुकी थीं। यदि वह प्राकृतिक चिकित्सा न करता तो भी अवश्य मरता। इस चिकित्सा से इतना अवश्य हुआ कि वह घुट-घुट कर मरने के बजाय आनन्द से मरा। प्राण शक्ति का क्षय हो जाने पर उसने प्राकृतिक चिकित्सा अपनायी, यही उसका भारी दोष था। यदि रोगी कुछ समय पूर्व चेत जाता तो वह अवश्य ठीक हो सकता था। हमारे पास ऐसे और भी उदाहरण हैं।

कभी-कभी आरंभ से ही प्राकृतिक चिकित्सा होने पर भी रोगी नहीं बच पाता। यहाँ पर पैतृक रोग, जीवन-शक्ति एवं पूर्व संस्कार कारण होते हैं। हमारा तो दावा है कि प्राकृतिक चिकित्सा से कभी कोई हानि हो नहीं सकती। ऐसा कभी नहीं होता कि अन्य चिकित्सा प्रणालियों से बच सकने वाला रोगी इस चिकित्सा से न बच सके अथवा मर जाय।

(पृष्ठ १४ का शेषांश)

के लिये तमाखू खाते या बीड़ी पीते हैं। इससे उनके भूखे जीर्णांग, उस विष को, सप्त धातुओं को, पहुंचा कर सारे शरीर में जहर फैला देते हैं। संक्रामक रोगों का उन लोगों में आसानी से फैलने का यही एक कारण है। कई लोगों का हृदय अत्यन्त कोमल होता है। ये लोग अपनी भूख प्यास या तकलीफ को सह सकते हैं, लेकिन अपने परिवार को भूखे देख कर बहुत परेशान हो उठते हैं। उन्हे लज्जा इस बात की होती है कि वे उन्हें पेट भर भोजन भी नहीं दे सकते। ऐसे लोग अपनी लज्जा या व्यथा को भूलने के लिये ताड़ी या शराब पीते हैं। धीरे धीरे यही उनके लिये आदत बन जाती है। बाद में ये ही लोग क्रूर दैत्य बन जाते हैं। आज समाज की यह हालत है कि श्रमिक-वर्ग को भर पेट भोजन नहीं मिलता और धनिक-वर्ग को शारीरिक-श्रम करने की कोई जरूरत नहीं होती। जब तक इस हालत का अन्त नहीं होगा, तब तक हिन्दुस्तान का कल्याण नहीं हो सकता। पहले लिख चुका हूँ कि खुली भूख लगने पर ही भोजन करना चाहिये। सच्ची भूख तभी लगती है जब आमाशय बिलकुल खाली होता है और उसमें जाठरफ रस की मात्रा भी इस लायक होती है कि वह भोजन को जल्द पचा सके। इससे अन्नरस तुरन्त रस-वाहिनियों और जाठर शिराओं में और मल आंतों में पहुंच जाता है।

अदालत-कचहरी, कालेज, या दफ्तर जाने की जल्दी में बिना भूख के भोजन करने से जाठररस न तो गाढ़ा होता है और न उसकी मात्रा ही काफी होती है। असमय भोजन अजीर्ण का कारण बनता है। मल को आठ घण्टे शरीर के अन्दर रहना पड़ता है। मल के इसप्रकार आठ घण्टे आंतों में पड़े रहने से उसकी तेज दुर्गन्ध फेफड़ों और स्नायु-जाल को दूषित कर देता है। यह गलती रोज करने से कोष्ठ-बद्धता, बवासीर, रक्तक्षय, मन्दाग्नि, राजयक्ष्मा, शोथ आदि भयंकर रोग होते हैं। यह कहने के बजाय कि ऐसे लोग मर जाते हैं, यह कहना बेहतर होगा कि ये लोग स्वयं दिन प्रतिदिन अपने जीवन की आहुति चढ़ाते रहते हैं।

(सशेष)

—अनुवादक श्री चेलसानि कृष्णराव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चयनिका

बालक रोते क्यों हैं ?

[मि० डी० डबल्यू० विन्निकोट, एम० आर० सी० एस० ऑक्सफोर्डशायर, इंगलैन्ड]

माता के दूध और प्यार की भांति, माता के आत्म-विश्वास और समझ की भी बालक को बड़ी आवश्यकता है। बालक को ठीक प्रकार समझने और उसकी उपयुक्त समय पर सहायता करने में माता के समान सफल और कौन हो सकता है ? इस लेख में हम देखेंगे कि बालक किस समय विशेष सहायता चाहता है ?—जब बालक रोता है।

प्रायः सभी बालक रोते हैं। अभिभावकों को सदैव इसकी चिन्ता रहती हैं कि बालक को रोने दें अथवा बहला-पुचकार कर, कुछ खाने को देकर अथवा उसकी माता या आया को सौंप कर उसे चुप करने की चेष्टा करें। कदाचित् आप पूछ बैठें कि 'इस परिस्थिति में क्या किया जाय ?' बालकों के रोने के भिन्न-भिन्न कारण हैं और रोने का ठीक कारण जाने बिना कुछ भी कर सकना संभव नहीं है। रोना मुख्यतया चार प्रकार का होता है—संतोष का रोना, पीड़ा के कारण रोना, क्रोध में रोना और दुःख से रोना। यह साधारण बातें प्रत्येक माता जानते हुए भी उन्हें विचार के उपरान्त अभिव्यक्त करने में असमर्थ रहती है। रोना या तो बालक के अपने फेंफड़ों को व्यायाम कराने (संतोष) की सूचना देता है, अथवा वह पीड़ा की सूचना देता है, या क्रोध की बाध्य अभिव्यक्ति के रूप में प्रकट होता है अथवा किसी दुःख के कारण बालक रोता है।

संतोष—प्रायः यह स्वीकार कर लिया गया है कि बालक आनन्द प्राप्त करने या संतोष की उपलब्धि के लिये रोता है पाठकों को अत्युक्ति पूर्ण प्रतीत हो। जैसे किसी भी शरीरिक व्यायाम में आनन्द की भावना निहित रहती है, ठीक उसी प्रकार शिशु के रोने में भी आनन्द की भावना का समावेश होता है। एक सीमा के भीतर बालक का रोना अनिवार्य है, उससे कम में उसे हानि की संभावना है। एक माता का कथन है कि 'मेरा बालक भोजन के समय से पूर्व कदाचित् ही रोता हो। हाँ, चार और पाँच बजे के बीच वह अनिवार्यतः रोता है किन्तु उसमें उसे आनन्द का अनुभव होता है और बालक को केवल यह जताकर कि मैं उसके समीप हूँ, मैं उसकी विशेष चिन्ता नहीं करती।'

कुछ लोगों का मत है कि बालकों को रोते ही छोड़ देना चाहिये, कुछ उसको बिलकुल ही रोने नहीं देना चाहते बालकों के स्वतंत्र क्रिया-कलापों के प्रति इनका मत द्वेषात्मक है किन्तु वे भूल जाते हैं कि बालकों की अपनी कठिनाइयाँ हैं और वे स्वयं अपने तरीक़ों पर उन्हें सुलझाना चाहते हैं। रोनेवाले बालकों की अपेक्षा न रोनेवाले बालक श्रेष्ठ हैं, ऐसा मेरा मत नहीं है। जो बालक अपनी पूर्ण शक्ति से एक सीमा के भीतर अपने रोने का पूर्ण उपयोग कर सके वह निश्चय ही स्वस्थ बालक हैं। शरीर की दृष्टि से कोई भी सरल व्यायाम बालकों के लिये स्वास्थ्य प्रद है। मचलना और लोटना भी ऐसा ही व्यायाम है। रोने की महत्ता समझना हमारे लिये आवश्यक है, क्योंकि तभी हम समझ सकेंगे कि बालक के लिये रोना कष्ट के समय किस प्रकार आश्वासनकारी होता है। अरक्षा या चिन्ता का उदय होने सांत्वना प्राप्त होती है और थोड़ी देर में वे खेल-कूद में व्यस्त हो जाते हैं।

बालकों का अंगूठा या मुट्ठी चूसकर अपनी कुण्ठित भातनाओं को तुष्ट करने की आदत से पाठक परिचित होंगे। रोना-मचलना भी एक आन्तरिक अंगूठे की भाँति है जिसे अवरुद्ध नहीं किया जा सकता। मुंह से बल पूर्वक अंगूठे को हटाया जा सकता है किन्तु रोना-मचलना रोकना अत्यन्त दुष्कर है। स्वयं आप भी शायद बालक का रोना बंद नहीं करना चाहेंगे। डाक्टरों का कथन है कि नवजात शिशु के लिये रोना स्वास्थ्यप्रद है। इसमें उसे सुख मिलता है।

पीड़ा—अपनी पीड़ा दूसरों पर व्यक्त करने का यही एक साधन बालक के पास है। स्वयं अपनी पीड़ा का निराकरण करने में वह असमर्थ होता है। जब बालक को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पीड़ा होती है तो वह एक तीव्र ध्वनि करता है और बहुधा उस स्थान की ओर इङ्गित करता है जहाँ पीड़ा है। कालिक दर्द होने पर बालक अपने पांव मोड़ लेता है, कान में दर्द होने पर वह कान की ओर इङ्गित करता है, तीव्र आलोक से बचने के लिये वह अपनी आंखें फेर लेता है। पीड़ा जनित रुदन बालकों के लिये आनन्द-दायक नहीं होता।

भूख शिशुओं के लिये महान् पीड़ा के समान है। क्षुधा जनित पीड़ा का अनुभव शिशु के समान सयाने लोग नहीं कर सकते। बालक को क्षुधा जनित पीड़ा का बड़ा कटु अनुभव होता है। मातायें अपने बालकों को ध्वनि या नई वस्तु पर उत्तेजित होते देखकर प्रसन्न होती हैं। भूख शान्त होने पर बालक अपनी पीड़ा भूल जाते हैं।

पीड़ा जनित ध्वनि बालक किसी समय भी कर सकता है। संसार की दो चार बातें बालक समझने लगा है यह इस ध्वनि से स्पष्ट हो जाता है। वह समझने लगता है कि कुछ निश्चित परिस्थितियों में उसे पीड़ा का अनुभव होता है। जैसे ही हम बालक को निरावरण करते हैं वह समझ जाता है कि उसे अब हिलना-डुलना पड़ेगा और कुर्ते का बटन छूते ही वह रोना आरम्भ कर देता है। इस प्रकार के अनुभव आयु के साथ साथ उसे प्रति क्षण करने पड़ते हैं। गंदा होने पर भी बालक रोता है, कदाचित् इसका तात्पर्य यह हो कि वह स्वच्छ रहना चाहता है किन्तु साधारणतया वह अपने कार्य में व्यवधात की आशंका से रोना आरम्भ कर देता है। अनुभव से उसे ज्ञात हो गया है कि कुछ ही क्षणों में वह निरावरण और अरक्षित रह जायगा।

भय जनित रुदन में भी पीड़ा की भावना निहित है। एक बार अत्यन्त तीव्र पीड़ा होने के उपरान्त बालक किसी भी ऐसी परिस्थिति में अथवा किसी भी ऐसी वस्तु से, जिसके द्वारा उसे फिर वैसी ही पीड़ा होने की आशंका है, उठकर रोना आरम्भ कर देता है। शीघ्र ही उसमें भयोत्पादक कल्पनाओं का जन्म होता है; किसी कल्पित भय की आशंका से सिहर कर वह रोना आरम्भ कर देता है।

आक्रोश—बालक अत्यन्त क्रुद्ध होना जानते हैं। लाख चेष्टा करने पर भी हम उन्हें पूर्णतया संतुष्ट नहीं कर सकते। तब क्रोध में भरंकर बालक रोना आरम्भ कर देता है। किन्तु आप में विश्वास रखने और आपको अधिक सदय बना सकने की आशा करने वाला बालक ही रो सकता है। अविश्वासी बालक क्रुद्ध नहीं होते वे याचना करना छोड़कर दयनीय, भ्रष्ट मनोरथ व्यक्ति की भाँति रोना आरम्भ कर देते हैं। कभी कभी वे दीवार या भूमि पर सिर पटक कर या अन्य अवयव नोचकर अपनी ही क्षति कर बैठते हैं।

बालक के लिए अपने क्रोध की उचित सीमायें जान लेना उचित है। क्रोधित बालक निरीह तो नहीं जान पड़ता। वह क्रोध में हाथ-पांव फेंकता है और यदि उसमें शक्ति है तो उठकर खाट के सीखचे तोड़ने की चेष्टा करता है। क्रोध में वह काटता और नोचता-खसोटता है। अधिक क्रुद्ध बालकों को क्षणिक मूर्च्छा भी आ सकती है। कुछ क्षणों के लिये वह प्रत्येक वस्तु और प्रत्येक व्यक्ति, यहां तक कि स्वयं को भी नष्ट कर देने की चेष्टा करता है। क्या आप अनुभव नहीं करते हैं कि क्रोध के उपरान्त बालक को कुछ लाभ होता है। क्रोध में बालक कल्पना करता है कि उसने प्रत्येक वस्तु नष्ट-भ्रष्ट कर दी, किन्तु फिर भी वह प्रत्येक वस्तु स्थिर और शान्त पाता है। यह अनुभव बहुमूल्य है। इसके उपरान्त कल्पित और यथार्थ का सारा भेद उसके सामने स्पष्ट हो जाता है और इन दोनों की दूरी को वह खूब समझ लेता है। बालक को अधिक क्रोधित करना व्यर्थ और अनुचित है।

क्रोध में बालक का व्यवहार स्यानों की भाँति होता है। अपनी इच्छाओं और उनकी पूर्ति के साधनों से वह पूर्णतया परिचित होता है। आशा का त्याग वह कभी नहीं करता पहले अपने साधनों का ज्ञान उसे नहीं होता किन्तु धीरे धीरे वह जान लेता है कि उसके रोने से दूसरों को पीड़ा होती है और तब वह अपने साधनों का बहुधा प्रयोग करता है।

दुःख—दुःख रोने का चौथा कारण है। बालकों को दुःख का अनुभव अधिक मात्रा में और अधिक सरलता से होता है। सयानों ने तो दुःख की भावना से बचने के कई उपाय ढूंढ़ निकाले हैं किन्तु शिशुकाल में तो इस भावना से कोई त्राण नहीं है। किसी प्रिय व्यक्ति के निधन पर, कुछ समय के लिये दुखित होकर हम पूर्ववत हो जाते हैं। बालकों की भांति क्षण क्षण हम दुखी नहीं हो सकते। कुछ व्यक्ति तो दुःख के विरुद्ध अपने को ऐसा अभेद्य बना लेते हैं कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहते हुए भी वे गंभीर नहीं बन सकते और संवेदना पूर्ण चेतना से अनुभव करने में असमर्थ हो जाते हैं। वे यथार्थ और प्रेम तथा संवेदना जनित दुःख से डरते हैं। आप शैशवकाल की दुःख जनित पीड़ा का अनुभव फिर से नहीं कर सकते। इसी कारण आप अपने बालकों की पीड़ा का अनुभव भी संवेदना शील होकर नहीं कर सकेंगे।

बालक भी दुःख के विरुद्ध अपना बचाव कर सकते हैं। किन्तु यहाँ उनकी चर्चा अभीष्ट नहीं है। बालक का दुःख पूर्णरुदन सुनकर हमें विश्वास हो जाना चाहिये कि बालक का भावात्मक विकास काफी हो चुका है। क्रोधजनित रुदन की भांति दुःख जनित रुदन को भी उत्तेजना देना अनुचित है। किन्तु दुःख और क्रोध में यहां एक बड़ा अन्तर है क्रोध निराशा और कुण्ठित मन की सीधी प्रतिक्रिया है। वहाँ दुःख की अभिव्यक्ति पूर्ण रूप से बालक के मस्तिष्क में होनी वाली घटनाओं से सम्बन्धित है।

इस दुःख पूर्ण रुदन में भी एक मधुर संगीतात्मक ध्वनि होती है। एक सीमा तक दुःख पूर्ण रुदन द्वारा बालक अपना मनोरंजन करता है। सोने के समय दुःख पूर्ण ध्वनियों का प्रयोग करते करते बालक धीरे धीरे कोई दुःख पूर्ण लोरी गुनगुनाने लगता है। आँसू भी क्रोध की अपेक्षा दुःख ही में अधिक सहायता देते हैं। आँसू शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य दोनों के लिए लाभदायक हैं।

दुःख का महत्व समझाने के लिए एक उदाहरण देना अनुचित नहीं होगा। एक डेढ़ वर्ष की बालिका ४ मास की अवस्था में गोद ली गई थी। कुछ कटु अनुभवों के कारण वह अपनी माता पर पूर्णतया आश्रित थी। दुर्भाग्य से अन्य बालकों की अच्छी माता प्राप्त होने का उसे सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ। अतएव वह अपनी गोदगर्भा माँ के व्यक्तित्व से चिपट,सी गयी। उसकी दत्तक माँ उसकी देख-रेख में प्रवीण थी। उसे माता के स्थूल व्यक्तित्व की इतनी आवश्यकता थी कि माता को उसे छोड़ते भय होता था। जब बालिका ७ मास की थी तो एक चतुर व्यक्ति की देख-रेख में बालिका को छोड़कर उसकी माता आधे दिन के लिए बाहर गयी। किन्तु इसका परिणाम भयंकर हुआ। जब बालिका १९ मास की हुई तो माता ने एक पखवारे के लिये बाहर जाना निश्चित किया और वह बालिका को समझा-बुझाकर बाहर चली। बालिका अपना अधिकांश समय माता के शयनकक्ष में खेलने में व्यतीत करती थी। माता की अनुपस्थित को जैसे उसका मन स्वीकार नहीं करता था। एक पखवारे के लिए जैसे उसका संसार गतिहीन हो गया और जब माता लौटी तो बालिका उसके गले से लिपटकर हिचकियाँ लेने लगी और कुछ क्षण बाद अपनी स्वाभाविक अवस्था पर लौट आयी।

अन्य व्यक्ति की दृष्टि से माता की अनुपस्थिति में बालिका दुखी थी किन्तु मेरे दृष्टिकोण से उसे दुःख का आभास माता के लौटने पर हुआ। इसका क्या कारण है? बालिका को एक भयोत्पादक परिस्थिति का सामना करना पड़ा था। माता की अनुपस्थिति में बालिका के मन में माता के लिये तीव्र घृणा पैदा हुई, जो उसके लिये भयोत्पादक थी। इस उदाहरण से स्पष्ट प्रतीत होता है कि वह बालिका जो अपनी माता पर पूर्णतया आश्रित थी अपनी माता से घृणा करने के कारण कितनी भयभीत हुई होगी। तभी तो वह अपनी माँ की प्रतीक्षा करती रही। माता के लौटने पर बालिका उसे काट सकती थी, किन्तु वह माँ के गले से लिपट कर रोने लगी। माता की भावनायें उस समय यह रही होंगी—"मैं तो तुम्हारी अच्छी माता हूं। मुझसे घृणा करने के कारण तुम भयभीत और दुखी हो। तुम सोचती हो कि मैं तुम्हारी घृणा अथवा तुम्हारे किसी अपराध के कारण यहाँ से चली गयी। तुमने सोचा मैं सदैव के लिए चली गयी हूँ। अपने को मेरे बाहर जाने का कारण मानकर तुम स्वयं भी दुखी हुई। दुःख द्वारा तुमने फिर मुझे प्यार करने का अधिकार प्राप्त कर लिया है। वास्तव में तो तुम्हारा मन अपराधी था। तुम्हारी यह भावना कि तुम संसार में सबसे बुरी बालिका हो, निर्मूल है। यद्यपि अपने नटखट पन से तुम मुझे थका डालती हो पर मैं कोई बुरा थोड़े ही मानती हूँ......।"

बालकों के रोने की समस्या बड़ी जटिल है और मेरे विचार पूर्ण सत्य चाहे न हों पर वे असत्य भी नहीं हैं। रोने का सीधा अर्थ यह है कि बालक ने संसार में अपना एक निश्चित स्थान बना लिया है। वह निराश्रय और निरीह नहीं रह गया। परिस्थितियाँ और वातावरण के प्रति उसका उत्तरदायित्व जागरूक है। वह केवल प्रतिक्रिया ही नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दर्शाता वरन् दरिस्थितियों के प्रति अपने आपको उत्तरदायी भी ठहराता है। कठिनाई यह है कि वह अपने को पूर्ण रूप से जीवन की परिस्थितियों के प्रति उत्तरदायी ठहराता है।

दुःख जनित रुदन की अन्य प्रकार के रुदन से तुलना करना अनुचित नहीं होगा। क्षुधा और पीड़ा जनित रुदन जन्म के उपरान्त कभी भी सुना जा सकता है। क्रोध का प्रादुर्भाव बुद्धि के साथ होता है। कष्ट की पुनरावृत्ति का स्मरण कर के रोना बालक के भावोत्थान का द्योतक है। दुःख इन भावनाओं से भी अधिक विकसित बालक की ओर इंगित करता है। इस रुदन के पीछे महत्वपूर्ण भावनायें छिपी रहती हैं जिनका मूल्य समझना सभ्य व्यावहारिकता के पुजारियों के लिये कठिन है।

जिस माता और बालक का स्वभाविक सम्बन्ध है वहाँ बालक कदाचित ही पूर्णतया क्रुद्ध हो। बालक यदि माता की गोद नहीं जाना चाहता तो स्पष्ट है कि माता की सुरक्षित गोद छोड़ने में उसे भय लगता है। जो बालक अपने दुःख का बोझ अपने ही सिर पर झेल ले वह दूसरों की सहानुभूति का पात्र बन जाता है। दुखी बालक आपके प्रेम का पूर्ण प्रदर्शन चाहेगा। हँस-खेल कर उसके दुःख को बहला देने की आवश्यकता नहीं है। बालक जब शोकपूर्ण अवधि व्यतीत कर रहा हो तो केवल आपके प्यार का आश्वासन चाहता है। कभी-कभी उसे रोते ही छोड़ देना अधिक उपयुक्त है। शिशुकाल या बचपन में अपराधी मन अथवा दुःख से मुक्ति पाने पर कैसा सुख होता है, कितनी सबल और सत्य वे भावनायें होती हैं, यह बालक ही जान सकते हैं। अपराधी मन और दुःख से मुक्ति पाने की भावनायें इतनी मधुर और भव्य होती हैं कि बालक में उन्हें बार-बार दुहराने की प्रवृत्ति होती है।

निराशा और असहाय रुदन पर कुछ लिखकर मैं लेख समाप्त करूं। यदि बालक के मन आशा की क्षीण रेखा भी न बने तो अन्य प्रकार के रुदन असहाय रुदन में परिणित हो जाते हैं। साधारणतया ऐसा रुदन घर में नहीं सुन पड़ता। बिना सहायता मिले माता-पिता ऐसी स्थिति सँभाल नहीं सकते। किन्तु शिक्षालयों में जहाँ प्रत्येक बालक को एक माता नहीं मिल सकती, ऐसा ही असहाय रुदन सुनने को मिलता है।

यदि आपका जीवन संयमित और व्यवस्थित है, आपका बालक सीधा प्रगति करता जायगा। वह केवल आपको जता देगा कि अब वह क्रुद्ध है, अब वह प्रेमावेश में है, अब वह आपसे भागना चाहता है। अब वह चिंतित अथवा भयभीत है और अब वह विषाद युक्त है। —'बालहित'

'आरोग्य' (मासिक)

एवं आरोग्य ग्रंथमाला का प्रकाशन

दवा दारु से पिंड छुड़ाने, खान पान, के व्यायाम सम्बन्ध का सच्चा ज्ञान देने, भोजन सम्बन्धी नई खोजों से परिचित कराने, कुदरती उपायों द्वारा रोगों छुटकारा पाने की रीति बताने एवं नामी प्राकृतिक चिकित्सकों के लेख एवं पुस्तकें उपलब्ध कराने के प्रकाशन का आयोजन हो रहा है एवं आरोग्य ग्रन्थावली की चार पुस्तकें (१) सर्दी, जुकाम और खांसी, (२) कुदरती जिन्दगी (३) दुग्ध कल्प और (४) उपवास-चिकित्सा प्रेस में दी जा रही है। विशेष जानकारी के लिये लिखें।

प्रबन्धक—'आरोग्य', आरोग्य मन्दिर, गोरखपुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चिन्ता और रोग

लेखिका—श्रीमती योगेश्वर गुलेरी

एक मनुष्य एक बहुत ही कष्टदायक चर्म रोग से पीड़ित था और उसके उपचार के लिये वह अस्पताल में आया। चर्म-रोग-विशेषज्ञ ने उसकी सभी ज्ञात प्रणालियों से परीक्षा की पर कुछ भी पता न लगा। परीक्षा के सब फल ऋणात्मक (Negative) थे पर उसकी फटी बाहें और टांगे ऋणात्मक न होकर प्रत्यक्षतः धनात्मक Positive थीं। उसका कहना था कि प्रत्येक सोमवार के उसको ऐसी ही खराशें हो जाती हैं। अस्पताल के प्रधान चिकित्सक ने उससे पूछा कि 'तुम रविवार को क्या करते हो' उत्तर मिला 'मैं समीप के मोहल्ले में एक युवती से मिलने जाता हूँ और वह हर बार मेरे विवाह के प्रस्ताव को टाल देती है, ऐसा कई मास से हो रहा है—मैंने धन भी इकट्ठा कर लिया है पर वह ब्याह की तारीख स्थिर नहीं करती।' प्रत्येक रविवार को वह युवती टाल देती थी और प्रत्येक सोमवार के उसमें 'एक्जिमा' के लक्षण प्रकट हो जाते थे।

ऐसा ही अनुभव एक युवती को भी हुआ था। उसके बांये हाथ की अंगूठे की उँगली सारी सफेद हो गई थी, उस उँगली में शून्यता नहीं थी फिर भी वह मृतकतुल्य श्वेत थी। इस रोग को Riuands disease 'रेनाडस डिजीज' कहते हैं और इसका कारण रक्त संचार की गड़बड़ी ही माना जाता है। कुछ रक्त-संस्थानों की मांस पेशियों के अत्यधिक तनाव से ही यह रोग होता है। पर यह रोग दोनों हाथों और पैरों के अगले पोरुओं में ही होता है। यहाँ तो केवल बायें हाथ की एक ही पूरी उँगली श्वेत थी क्योंकि वह उँगली अंगूठे वाली थी, इससे यह विचार आया कि हो न हो इसका भावना से सम्बन्ध है। अन्त में रोगिणी ने जो बताया उससे पता लगा कि यह धारणा सत्य ही थी। उसकी सगाई एक युवक से हुई थी और एक दिन वह उससे लड़ ही तो पड़ी। क्रोध में उसकी भेंट की हुई अंगूठी उतार-कर उसने उसके मत्थे पर दे मारी। उसी रात उसकी उँगली में सनसनाहट प्रतीत हुई, ऐसा लगा मानों उँगली सुन्न पड़ गई हो। कुछ देर मलने से उँगली ठीक हो गई! पर कुछ दिन बाद मलने से आराम होता और फिर वैसे ही हो जाता, अंत में उँगली के श्वेत हो जाने पर वह डाक्टरों की शरण आई।

एक तीसरी मिसाल एक श्वास के रोगी की है। वह बहुत ही भयावह हालत में अस्पताल आया था। कई सप्ताह बाद जाकर वह ठीक हुआ।

उसके घर जाने की तारीख तय हुई और जैसा वह चाहता था वैसा ही उसकी यात्रा का आयोजन कर दिया गया। ट्रेन में सीटें रिजर्व करा दी गईं। जाने के दिन के पहली रात्रि को उसे एकाएक फिर श्वास का जोरदार दौरा हुआ। लक्षण सांघातिक थे। उसकी चिकित्सा शुरू की गई और ठीक भी हो गया लेकिन दूसरी बार फिर जब जाने को तैयार हुआ तो रात के उसे फिर जोर का दौरा हुआ और वह न जा सका।

वह दक्षिण के एक कृषि कालेज का अध्यापक था। और कई वर्ष पहले कालेज की दलबन्दी के झगड़े में सम्मिलित था और उसी झगड़े में उसके अफसर के, जो उस पर मेहरबान था, इस्तीफा दे देना पड़ा था। नये अफसर ने उसे तरक्की नहीं दी थी और उसे अपनी नौकरी छूटने का भय था। यह एक ऐसी स्थिति थी जिसमें कि अनिश्चितता थी और स्वभावतः वह अस्पताल की सुरक्षा देने वाली चार दिवारी से बाहर पहले की अशांति के स्थान में जाने से डरता था।

एक सांख्यिक परीक्षा

उन रोगों की संख्या बहुत ही बड़ी है जिनमें मनोवेगों का बहुत बड़ा हाथ होता है। उनका प्रभाव निश्चित होता है। डाक्टर एडवर्ड ए० स्टैकर का कथन है कि ५० प्रतिशत रोग के जटिल प्रश्नों और आरोग्य जन्य स्थिति की कठिनाइयों का प्रादुर्भाव रोगी के शरीर से न होकर उसके मन से ही होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन् १९३४ में डाक्टर फ्रेड़ी डैम्बर और उनसे सम्बन्धित प्रेसबटेरियन अस्पतालों के न्यूयार्क के डाक्टरों ने यह सोचा कि शारीरिक अंगभंग से सम्बन्धित रोगों की परीक्षा की जाय जिससे यह पता लगे कि मनोवेगों का इनमें कहाँ तक हाथ होता है। उन्होंने निर्णय किया कि दो प्रकार के रोगियों का परीक्षण हो, एक तो उन पर जिन्हें मधुमेह का रोग है और दूसरे उन रोगियों पर जो हृदय के रोग से पीड़ित हैं। इन दोनों विभागों से प्राप्त फलों की जांच करने के लिये हड्डी टूटने से इलाज कराने के लिये पहुँचने वाले रोगियों का एक अलग एक विभाग खोला गया। क्योंकि मस्तिष्क से मनोवेगों की उत्पत्ति मानी जाती है अतएव इस विभाग में सिर की अस्थि टूटे हुये रोगी सम्मिलित नहीं किये गये थे। पर तीसरी श्रेणी में टूटी टांग, टूटे हाथ, टूटी पसली के रोगी थे। यह प्रत्यक्ष ही था कि हड्डी अकस्मात् बाहरी दुर्घटना से टूटती है। अतः मनोवेग से उसका क्या सम्बन्ध हो सकता है। फिर भी धैर्य से परीक्षण हुआ।

इस प्रकार के ३०० रोगियों की परीक्षा हुई। तीनों विभागों में आधे से अधिक रोगियों के रोग का कारण निश्चितः रूप से मनोवेग पाया गया। अत्यधिक आश्चर्य तो तीसरे विभाग से हुआ।

वहां भी कष्टों की जड़ में मनोवेग ही थे दुर्घटना नहीं। यह भी प्रमाणित हुआ कि ग्रंथियों के रोग और हृदय रोग भी दुर्घटना जनित टूटी हड्डियों की ही तरह घृणा-भय-ईर्ष्या आदि का परिणाम हैं।

इन रोगों में यद्यपि प्रत्यक्षतः यह दीखता था कि हड्डी दुर्घटना से टूटी है पर पूरी खोज पर यह प्रमाणित होता था कि इसमें दुर्घटना के अलावा मनोवेग का पूरा पूरा हाथ है। उदाहरणार्थ एक नौकरानी को उसकी मालकिन ने बाजार सामान लेने भेजा। वह फिसल गई और उसके पैर में मोच आ गई। उसने मालिक को टेलीफोन से सूचना दी और कहा कि मैं चिर वांछित विश्राम लूंगी और एवजी भेज दूंगी लेकिन मालिक ने लौटने को कहा। नौकरानी कहती कहती थी कि यदि उस समय मालिक वहां होता तो मैं निश्चय खून कर देती। वापस आते समय वह गिर पड़ी जिससे कि उसके घुटने की हड्डी टूट गई। अस्पताल में...... ....वह बार बार कहती थी कि यदि तुम संतोष रखते तो क्या होता-अब भी तो बिना एवजी के छुट्टी दी।

एक और रोगी की कमर की हड्डी टूट गई थी। वह अपने ब्याह के पहले अपनी मां का बहुत ही लाड़ला था। अपनी पत्नी की उपेक्षा से वह दुःखी था। वह कहा करता था कि अब तो मेरी स्त्री को मेरी देख भाल करनी ही पड़ेगी और मैं समझता हूं कि उसके साथ अच्छा ही हुआ।

एक सत्रह वर्ष की लड़की को फुटबाल खेलते समय घुटने में चोट आ गई। उसकी मां ने उसके बाप को तलाक दिया था और क्योंकि बाप से उसकी शक्ल सूरत आदतें बहुत मिलती थी। मां उसे बोर्डिंग भेजकर बाप को भूलना और ब्याह करना चाहती थी। पूर्ण संतोष से वह लड़की कहती कि अब तो मां को मुझे पास रखना ही होगा। वह मुझे अब भेजकर ब्याह न कर सकेगी।

(पृष्ठ २४ का शेषांश)

शारीरिक व्यायाम की अवहेलना करना भी कब्ज का खास कारण है। कब्ज दूर करने के लिए औषधि सेवन की अपेक्षा १५ से ४५ मिनट तक व्यायाम कहीं अधिक हितकर है। इसलिए उन व्यायामों का सहारा लेना चाहिए कि जिससे पेट की पेशियों की कसरत हो जाय। प्रतिदिन १० मिनट सर्वांगासन और हस्तपादासन करने से भी कब्ज दूर होता। मानसिक इच्छा शक्ति द्वारा भी दस्त साफ आ सकता है। जिस समय मल त्याग को जाओ उस समय मन की समस्त शक्तियाँ इस ओर लगा दो कि मुझे मल त्याग होगा। इस भावना को लाने से भी मल त्याग में सहायता मिलती है। सोते समय एक चम्मच जैतून का तेल लेना बहुत ही उपयोगी है। इसके अलावे थोड़ी सफगोल की भूसी खाकर पानी पी लेने से सुबह में खुल कर दस्त आते हैं। प्रतिदिन दो एक नीबू को पानी के साथ इस्तेमाल करना चाहिए। यदि कब्ज जोरदार हो तो खाने बाद थोड़ी मोटी बालू खाकर पानी पी लेना चाहिए। इससे भी दस्त साफ होता है। फलों में बेल के समान शायद ही दूसरा कोई फल होगा जो कब्ज दूर करने में इसकी बराबरी कर सके।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोष्ठबद्धता : उसका प्राकृतिक उपचार

श्री दीनेश्वर नारायण शर्मा

स्वास्थ्य को सर्वोपरि समझ कर उसपर समुचित ध्यान देना मनुष्य मात्र का परम पुनीत कर्तव्य है। क्योंकि स्वास्थ्य का अभाव होने पर होने पर जीवन ही अभावमय बन जाता है, सुख-साधन की सारी वस्तुएं सुखद न होकर हृदय को अहर्निशि सन्तप्त करने वाल बन जाती है। संसारिक सुखों का उपयोग अस्वस्थ नहीं स्वस्थ मनुष्य ही कर सकता है। स्वास्थ्य वह नैसार्गक विभूति है जिसकी प्राप्ति केवल सतत साधना से ही हो सकती है। प्रकृति के पुकार की, उसके कल्याणकारी सन्देश की अवहेलना करने वाला धनवान होता हुआ भी स्वास्थ्य का 'दारिद्री' ही बना रहेगा। वह अपने चाँदी या सोने के टुकड़ों से संसार के समस्त सुख-साधन भले ही खरीद ले, किन्तु यदि वह स्वास्थ्य को 'खरीदना' चाहे तो उसे घोर निराशा ही होगी। उसे प्रकृति की ही शरण में आना पड़ेगा—प्रकृति के ही आदेशों का सच्चाई के साथ पालन करना पड़ेगा। प्रकृति के बताए मार्ग का अनुसार करने पर ही वह स्वास्थ्य की दृष्टि से भय हीन जीवन व्यतीत करेगा, उसे या तो कोई रोग होने की सम्भावना ही न रहेगी या अगर कोई रोग हुआ भी तो वह कोई विकृति उत्पन्न करने के बजाय शरीर-मंदिर को स्वास्थ्य एवं आरोग्य की स्थायी आधार शिला पर प्रतिष्ठित करने में सहायक ही होगा।

विशेषज्ञों की राय में प्रायः ९५ फी. सदी रोगों का कारण कब्ज ही है। अतः कब्ज से छुटकारा पाना स्वास्थ्य साधन भी पहली सीढ़ी है।

कोष्ठबद्धता क्या है

हम जो भोजन करते हैं वह अपने समय पर पच कर और शरीर को आवश्यक रस देकर मल के रूप में आतों के रास्ते बाहर निकल जाता है। अनेक कारणों से अन्न का अवशिष्ट अंश, यह बेकार भाग, बड़ी आँत में नियमित समय से अधिक देर तक ठहरने लगता है। मल के बाहर निकलने में नियमित समय से अधिक देर तक ठहरने लगता है। मलके बाहर निकलने में इसी देर को कोष्ट बद्धता कहते हैं। अगर बड़ी आँत में यह बेकार पदार्थ ज्यादा देर ठहरा तो वहीं सड़ने के कारण अनेक विषमय कीटाणु उसमें पैदा होते हैं। इतना ही नहीं। बड़ी आँतों में बहुत छोटी छोटी गिल्टियाँ हैं जो रस सोखती हैं। यह गिल्टयाँ आँत के अन्दर सड़ते हुए जहरीले पदार्थ को सोखकर रक्त वाहिनियों में डाल देती है। इससे सारा शरीर विष से भर जाता है और तब वह अनेक भयंकर बीमारियों के रूप में प्रकट होता है।

कोष्ठबद्धता के कारण

कोष्टबद्धता खासकर अनियमित खान पान से ही हुआ करती है। हम सब अन्नों की भूसी निकाल देते हैं, सब तरकारियाँ छील कर खाते हैं। ये सब चीजें हमारे को प्रकृति की तरफ से मिली हैं। जिससे आँतों को हरकत पहुंचे, परन्तु हम अज्ञानवश इसको निकाल देते हैं। बिना हरकत के आँतों की सफाई नहीं हो सकती। आजकल तो मशीन द्वारा चावल, आँटा, मैदा इत्यादि पीसा जाता है और उसके सारे असल तत्व को नष्ट कर लोग खाते हैं। यहाँ तक कि दाल के छिलके भी उड़ा दिए जाते हैं। अब तो लोग ठीक इसके प्रतिकूल ही करने लगे हैं। इससे कोष्ठ-बद्धता न हो तो क्या हो। आजकल के वैद्य या डाक्टर तो स्वयं ही कब्ज से पीड़ित रहते हैं लेकिन रोगी के पहुंचने पर उसे कोई झूठी दवाई हाथ में पकड़ा देते हैं। भला यह कब संभव है कि जो किसी रोग से स्वयं ही पीड़ित है वह दूसरों की सफल चिकित्सा कर सके। दवा से कोई फायदा न होने पर रोगी पश्चाताप करने लगता है।

कोष्टबद्धता का दूसरा कारण आधुनिक रहन-सहन भी है, जिसमें ज्यादा बैठे रहना पड़ता है। तीसरा कारण है उदर की मांस-तन्तुओं की कमजोरी की वजह से उत्पन्न हुई आँतों के मास-तन्तुओं की कमजोरी, चौथा कारण होता है ज्ञान तन्तुओं की कमजोरी, पाँचवाँ उठने-बैठने, चलने और सोने का गलत तरीका; छठाँ कम जल पीना;

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सातवां—चिन्ता; आठवाँ—ताजी हवा की कमी; नवाँ—उचित व्यायाम का अभाव; दसवाँ—तंग कपड़े पहनना; ग्यारहवाँ—अधिक मानसिक परिश्रम और बुरे विचार, जैसा कि आज-कल लोगों में यह अक्सर पाया जाता है; बारहवाँ—प्रकृति विरुद्ध आचारण; तेरहवाँ—दुर्व्यसन; चौदहवाँ—ब्रह्मचर्य का अभाव। पन्द्रहवां—भोजन में हरे शाक और फल का अभाव या अनुचित खान-पान और सोलहवां—रेचक दवाइयों का ज्यादा व्यवहार इत्यादि। इन सबों में चिन्ता प्रधान है। कब्ज ज्यादा शिकायत चिन्ता करने से ही होती है, इसलिए कब्ज के रोगियों को चाहिए कि वे सबसे पहले चिन्ता दूर करें। कब्ज का कारण चिन्ता तो होती ही है, लेकिन यह भी ध्यान रहे कि यह शिकायत होने पर चिन्ता करने से रोग की जड़ और भी मजबूत होती है। कोष्ठबद्धता के कारण चिन्ता, चित्त का सदा अप्रसन्न रहना और काम में मन न लगना—इस प्रकार के अनेक उपद्रव रहते हैं। कभी-कभी तो यहाँ तक देखा गया है कि रोगी ऐसी अवस्था में आत्म-हत्या करने को भी तैयार हो जाता है।

कोष्ठबद्धता दूर करने का उपाय

किसी भी रोग के उपचार का सबसे आसान तरीका यही है कि पहले उसके कारण का पता लगा लिया जाय और उसे दूर करने का प्रयत्न किया जाय। कारण के दूर हो जाने पर रोग अपने आप दूर हो जायगा। मलावरोध का सर्वप्रथम कारण अयोग्य खान-पान है। इसलिए इसको सबसे पहले दूर करना चाहिए। इसके लिए तम्बाकू, भांग, गाँजा, शराब, आदि नशीली वस्तुओं का तथा मिर्च, मसाले, अचार आदि गरम और विक्षोभक पदार्थों का और मैदा, मिष्टान्न आदि गरिष्ठ वस्तुओं को अपने भोजन में से निकाल देना चाहिए। हरे शाक, ताजे फल, चोकर वाला आँटा, शुद्ध दूध, सूखे फल, अंजीर, खजूर, द्राक्ष, आम, प्याज विशेष रूप से भूख को देखते हुए खाने चाहिए। इसमें चोकर वाले आंटे की रोटी ज्यादा फायदेमन्द है। लेकिन आजकल लोग ठीक इसके विपरीत ही करते हैं! मिल के पिसे हुए और चोकर निकाले हुए आंटे की रोटी ही ज्यादा व्यवहार में लाते हैं। लेकिन होना तो यह चाहिए कि गेहूँ के आटे में से चोकर निकालने के बजाय उसमें अलग से चोकर मिला दिया जाय। ताजा और मीठा मट्ठा इसके लिए और भी फायदे की चीज है। प्रातः काल खाली पेट हरे फल से जलपान करना कब्ज की अव्यर्थ औषधि है। इसमें सस्ते फल में पपीता और बेल विशेष उपकारी है। मौसमी फल तो बराबर खाना चाहिए। सूखे फलों में अंजीर, खजूर, द्राक्ष उत्तम और रेचक हैं। हरे शाक का व्यवहार भी बहुत जरूरी है। भोजन के साथ हरे शाक, टमाटर, सलाद मूली, गाजर आदि वस्तुएं अच्छी हैं। एक बात और ध्यान रखने लायक है। जो फल या अन्न खाये जायें वे खूब चबाकर ही। भोजन जितना ही बनावटी और अप्राकृतिक होगा उतना ही शरीर को नुकसान पहुंचायेगा। आमाशय और आँतु की आराम देने के लिए उपवास भी जरूरी है। यदि कब्ज नया हो तो एक दिन का नहीं तो पुराने में ३ दिन से एक सप्ताह तक का उपवास कर सकते हैं। लम्बा उपवास किसी की देख-रेख में करना चाहिए। उपवास-काल में एनीमा लेना जरूरी है। एनीमा लेने से वर्षों का पुराना मल दूर हो जाता है और शरीर निर्मल हो जाता है। कब्ज दूर करने में मिट्टी की पट्टी भी लाभदायक है। यह मल को ढीला करता है। पाखाना जाने का समय भी बंधा रहना चाहिए। भले ही पाखाना न मालूम हो, लेकिन नियमित समय पर अवश्य जाना चाहिये। रोग निवारण के लिए स्वच्छ वायु का सेवन भी अत्यन्त आवश्यक है। श्वास लेते समय फेफड़ों को वायु से पूरा पूरा भरना चाहिए और फिर सम्पूर्ण वायु को बाहर फेंक कर फेफड़ों को सिकोड़ना चाहिए। इस प्रकार लगातार फुलाने और सिकोड़ने से रक्त साफ होता है और पाचन अवयवों की क्रिया उत्तम प्रकार से होकर दस्त साफ आता है। पूरा पानी न पीना भी बहुतों के कब्ज का कारण होता है। मनुष्य शरीर को स्वस्थ्य रखने के प्रतिदिन लगभग तीन सेर पानी की आवश्यकता है। कब्ज दूर करने के लिए काफी पानी पीना सहायक होता है। पानी भोजन करते वक्त न पीकर खाने के दो घंटे बाद पीना हितकर होता है। यदि प्यास लगी हो तो भोजन के आध घंटे पहले पी सकते हैं। साधारण स्नान के पहले कटि स्नान लेना भी मल ढीला करने का सर्वोत्तम उपाय है। कब्ज दूर करने का यह बहुत सरल उपाय है।

(शेष पृष्ठ २२ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यायाम

बख्शी भगवती प्रसाद राय श्रीवास्तव

व्यायाम का अर्थ है शारीरिक परिश्रम। मानसिक परिश्रम को व्यायाम नहीं कहते, न उस शारीरिक परिश्रम को ही व्यायाम कह सकते हैं जो दैनिक कार्यों के लिये नित्य प्रति किया जाता है। बल्कि व्यायाम उस परिश्रम को कहते हैं जो किसी खास प्रणाली द्वारा एक निश्चित समय में इस उद्देश्य से किया जाता है कि इससे हमारे अवयव पुष्ट होंगे, उनका विकास होगा, और शक्ति की वृद्धि होगी। अगर व्यायाम से उन कल्पनाओं को निकाल दिया जाय, जो परम्परा से इसके अन्दर निहित हैं, तो व्यायाम एक शुष्क शारीरिक परिश्रम के सिवाय और कुछ नहीं रह जायगा व्यायाम जनित लाभ में चाहे हम कल्पना करें या न करें, यह भावना परम्परा से चली आती है कि व्यायाम से शरीर के अवयव पुष्ट होंगे और स्वास्थ्य ठीक रहेगा। यद्यपि कल्पना शून्य व्यायाम से भी अवयव पुष्ट होंगे क्योंकि यह केवल साधारण परिश्रम नहीं है बल्कि एक परिमार्जित वैज्ञानिक कला है, पर उन्हें अगर कल्पना का मानसिक बल प्राप्त होगा तो वे अवश्य अधिक फल देंगे। इसलिये व्यायाम में शारीरिक क्रिया के बनस्बित मानसिक क्रियां का प्रभाव अधिक पड़ता है। अतएव व्यायाम में शारीरिक क्रिया और मानसिक कल्पना प्रधान है।

अब प्रश्न यह उठता है कि अगर व्यायाम न करके केवल कल्पना ही की जाय कि हमारे अवयव पुष्ट हो रहे हैं और हम स्वस्थ हो रहे हैं तो क्या वास्तव में हम स्वस्थ होंगे? अगर कहा जाय 'हां' तो फिर व्यायाम की क्या जरूरत? केवल कल्पना से ही क्यों न काम लिया जाय? पर कल्पना जितनी सहज मालूम पड़ती है उतनी सहज है नहीं। केवल झूठी कल्पना में विश्वास नहीं होता और बिना विश्वास के विचारों में दृढ़ता नहीं आती। अतः विचारों में दृढ़ता लाने के लिये सत्य का सहारा चाहिये और वह सत्य है व्यायाम, व्यायाम से शरीर के आन्तरिक हिस्से में गति पैदा होती है जिससे हलचल मच जाता है और इससे उत्ताप पैदा होता है तथा उत्ताप से सारे देहाणु चैतन्य होकर अपना अपना काम करने लग जाते हैं। फेफड़े की गति तेज होने के कारण वह अधिक रक्त नसों में भेजने लगता है। सारे शरीर में रक्त का संचालन अधिक होने लगता है, तब फेफड़े को अधिक रक्त साफ करने के लिए बाहर से आक्सीजन की जरूरत पड़ती है और वह जब अधिक आक्सीजन खींचने लगता है तब सांस तेज़ हो जाती है* साथ ही साथ खून के अधिक बहाव के कारण नाड़ियों की गति भी तेज हो जाती है। रक्त की सफाई का काम अधिक तेजी से होने के कारण जो दूषित पदार्थ निकलता है उसका सूक्ष्म भाग वायु रूप में मुँह से निकलता है और जो तरल पदार्थ होता है वह पसीने के रूप में शरीर के रोम कूपों से निकलता है और जो ठोस भाग होता है वह मलद्वार से निकलता है। व्यायाम से शरीर की सफाई होती है और जीवाणु सबल होते हैं। जीवाणुओं में चैतन्य आने पर वह मनरूपी राजा की आज्ञा का पालन करने के लिये सर्वदा तैयार रहते हैं। पर यही जीवाणु जब निस्तेज होते हैं तो वे मनरूपी राजा के आज्ञा की अवहेलना करते हैं और आलसी जीवन बिताते हैं। विश्वास से विचारों को बल मिलता है और बलवान मन की आज्ञा आ का प्रभाव जीवाणुओं पर अधिक पड़ता है। अतः जीवाणुओं पर शासन करने के लिये बलशाली मन की जरूरत है और मन को बलशाली बनाने के लिये विश्वास की।

विश्वास दो प्रकार का होता है (१) अन्धविश्वास (२) ज्ञान पूर्ण विश्वास। क्रियाओं के रहस्य को समझना ज्ञानपूर्वक विश्वास कहलाता है, जब कि बिना समझे ही विश्वास करना अन्ध विश्वास कहलाता है। अन्ध विश्वास

*जब अधिक आक्सीजन अधिक दूषित वायु कारबन से मिलता है तो अधिक गर्मी पैदा करता है, जो पसीने का कारण होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की तह में एक मिथ्याविश्वास भी है जिसमें न भक्ति रूपी दृढ़ता होती है न रहस्यों को समझने का ज्ञानरूपी साधन ही। मिथ्याविश्वास कभी फलीभूत नहीं होता।

किसी कार्य को फलीभूत करने के लिये एक से अधिक ठोस कारणों का होना जरूरी है। इसे संयुक्तिकरण क्रिया कह सकते हैं। इस संयुक्तिकरण क्रिया से कम से कम समय में अधिक से अधिक लाभ होता है। अतएव मानसिक कल्पना के साथ साथ अगर हम व्यायाम करते हैं तो व्यायाम जनित लाभ तो होता ही है, साथ ही साथ मनोबल के मिल जाने से सफलता भी अधिक होती है।

सारांश यह है कि व्यायाम के साथ साथ व्यायाम जनित लाभ को समझना और मनोबल द्वारा उसे अधिक प्रभाव शाली बनाना चाहिये। इसी उद्देश्य को लेकर आज कल व्यायाम की नई नई युक्तियां प्रचलित हो रही हैं।

प्राचीन काल से ही भारतवर्ष में व्यायाम की प्रथा है। भारतवर्ष में शरीर को स्वस्थ रखने के लिये दो प्रकार की व्यायाम प्रणाली प्रचलित है। एक तो सर्वसाधारण में प्रचलित डन्ड, बैठक, कुश्ती, मुग्दर भांजना और वजन उठाने की प्रणाली है। दूसरी प्रणाली का प्रयोग योगीजन करते हैं जिसकी विधियां हठयोग में बताई गई हैं, जिसे आसन-व्यायाम कहते हैं। कुश्ती की रिवाज तो सारे संसार में प्रचलित हैं पर प्रधानता भारतवर्ष में ही है। आज भी मल्लयुद्ध में जगत्विजयी होने का श्रेय भारतीय पहलवान को ही है।

जगत में शारीरिक बल का स्थान गौण और मानसिक बल का स्थान प्रधान होता जा रहा है। स्वभाविकता धीरे धीरे पीछे हटती जा रही है और कृत्रिमता का प्रभाव उस पर जमता जा रहा है! रुचि में परिवर्तन होने के कारण नवीनता का कृत्रिम आवरण संसार को अपने पाश में लपेटता जा रहा है। अतः व्यायाम की अब उतनी ही आवश्यकता समझी जा रही है जितनी कि स्वास्थ्य बनाये रखने के लिये जरूरत है।

आधुनिक व्यायामों में फुटबाल, हाकी, क्रिकेट, बैडमिन्टन, वालीबाल, बाक्सिंग इत्यादि है। किन्तु इस लेख में मैं केवल प्राचीन प्रणाली का ही संक्षेप में वर्णन करूंगा।

प्राचीन व्यायाम-प्रणाली के अनेक भेद हैं पर हम उन्हें पांच भागों में ही विभक्त करेंगे—

(१) सवारी (घोड़े पर चढ़ना)।
(२) डण्ड, बैठक, मुग्दर और कुश्ती आदि।
(३) आसन-व्यायाम।
(४) टहलने का व्यायाम।
(५) तैरने का व्यायाम।

(१) घोड़े की सवारी का व्यायाम एक उत्तम व्यायाम है, पर सिर्फ अमीरों के लिये। खर्चीला होने के कारण इसे गरीब लोग नहीं कर सकते। इससे एक प्रकार का कम्पन होता है जिससे रक्त का प्रवाह स्वच्छन्द रूप से सारे शरीर में फैलता है और खास करके जंघे का अच्छा व्यायाम हो जाता है।

(२) डण्ड-व्यायाम से सीने तथा पीठ की रीढ़ हाथ तथा गर्दन का व्यायाम और बैठक-व्यायाम से पेट तथा जंघे का व्यायाम होता है।

मुग्दर-व्यायाम से हाथ के पुट्ठे और बाजू तथा छाती का व्यायाम होता है।

कुश्ती-व्यामाम से सारे शरीर का व्यायाम होता है।

(२) आसन व्यायाम में शीर्षाशन, सिद्धासन, सर्वाङ्गासन, ताड़ासन, पद्मासन, सिंहासन और भद्रासन प्रधान है। अतएव बाकी आसनों को छोड़ कर इन्हीं का संक्षेप में वर्णन करते हैं। इन आसनों को किसी जानकार से क्रियात्मक सहायता लेकर उन्हीं की देख रेख में करना चाहिये, अन्यथा हानि होने की सम्भावना है।

शीर्षासन शाम को भोजन के दो घन्टा पहले करना चाहिये। पर इस आसन को लोग प्रायः प्रातःकाल ही करते हैं। बहुत से लोग असमय में आवश्यकता से ज्यादे शीर्षाशन करके हानि उठाते हैं पर व इसके कारण को न जानकर आसन का ही दोष देते हैं। जिन्हें शीर्षासन से हानि मालूम हो वे समय बदल कर देखें। दिन भर काम करने के बाद शरीर की नाड़ियां शिथिल हो जाती हैं और इस आसन के करने से उनमें रक्त प्रवाह हो जाने के कारण चैतन्य आ जाता है।

प्रातः काल निद्रा से उठने के बाद नाड़ियां पूर्ण चैतन्य नहीं होतीं और उन्हें स्वाभाविक अवस्था में आने में कुछ देर लगती है। स्वभाविक अवस्था में आने के पहले शीर्षासन करने से नसों पर बेजा दबाव पड़ता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शीर्षासन की क्रिया देखने में अप्राकृतिक मालूम पड़ती है पर समस्त शरीर में रक्त का प्रवाह जारी करने के लिये यह क्रिया अपूर्व है। इससे रक्त वाहिनी नाड़ियां खुल जाती हैं और उनमें रक्त का प्रवाह जारी हो जाता है। शीर्षासन के अन्त में जरूरी है कि जितनी देर तक आसन किया जाय उतनी ही देर तक शान्त भाव से खड़ा रहा जाय ताकि रक्त अपने स्थान पर आ जाय।

सिद्धासन—इस आसन से सर्व रोग दूर होते हैं। पर इसके साथ प्राणायाम भी करना चाहिये।

सर्वाङ्गासन—यथा नाम तथा गुण। इससे सब अंगों पर जोर पड़ता है।

ताड़ासन—इस आसन में मांसपेशियां तनं जाती हैं। इसे गुदा संकोचन और प्राणायाम के साथ करना चाहिये।

पद्मासन—यह आसन खास कर प्राणायाम के लिये है। इसे सुखासन भी कहते हैं। पर पीठ के पीछे हाथ घुमाकर पैर का अंगूठा पकड़ने की हालत में सुखासन नहीं रह जाता।

सिंहासन—इस आसन से वीर्य्य सम्बन्धी व्याधियां दूर होती है।

भद्रासन—इससे पसीने की व्याधियां नष्ट होती हैं।

उपरोक्त ७ आसन हठयोग के ८४ आसनों में से हैं। इनके सिवाय कुछ आधुनिक सरल वैज्ञानिक आसनों में से चुनकर विधि सहित देता हूं। ये आसन सारे अंगों पर जोर पहुंचाते हैं और सहज साध्य भी हैं।

(१) सीधे खड़े हो जाओ। दोनो हाथों को दोनों तरफ सीध में धीरे-धीरे ऊपर उठाओ। हथेली नीचे की तरफ रहे। जब दोनों हाथ बगल के सीध में आ जायं तब हथेली ऊपर की तरफ घुमा दो फिर धीरे-धीरे ऊपर ले जाओ और दोनों हाथों को सिर के ऊपर आपस में मिला दो। ऐसा करते समय सांस भीतर खींचो यानी पूरक करो। जब हाथ ऊपर मिल जाय तब आन्तरिक कुम्भक करो और दोनों हाथों को ऊपर उठाकर पंजे के बल उठो और ताड़ासन की भांति ऊपर छत छूने का उपकरण करो। फिर धीरे-धीरे रेचक करते समय दोनों हाथ कन्धे की सीध में ले जाओ फिर हथेली नीचे की तरफ उलट दो और धीरे धीरे दोनों जांघों तक हाथ पहुंचा दो। पंजों को भी धीरे-धीरे नीचे जाने दो और पूरे पैर के बल पूर्ववत खड़े हो जाओ।

(२) दोनों हाथ ऊपर ले जाकर तनकर खड़े हो। घुटना तना रहे और दोनों हाथ कान से सटाकर ऊपर सीध में खड़ा करो। धीरे-धीरे रेचक करते हुये गोलाकार वृत्त में कान से सटा हुआ ही हाथ सामने से नीचे ले जाकर जमीन छूओ पर घुटना मुड़ने न पावे, तना रहे। अगर नाक से घुटना छू सको तो और भी अच्छा है इसी दशा में जितनी देर तक वाह्य कुम्भक करके रुक सको रुके रहो। फिर धीरे-धीरे दोनों हाथों को गोलाकार वृत्त में ही सामने से ऊपर उठाकर सीध में ले जाते हुये पीछे मोड़ो, यहां तक की जमीन छू जाय। अगर जमीन न छूए तो भी कोई हर्ज नहीं है। जितना ही पीछे जाय उतना ही अच्छा है। जमीन से जब हाथ उठेगा पूरक करते हुये और अन्त में पीछे कुछ देर तक झुके रह कर आन्तरिक कुम्भक करना चाहिये। इससे पेट और पीठ की नसें मजबूत होंगी, शरीर में लचीलापन आवेगा।

(३) सीधे खड़े हो जाओ दोनों हाथों को सामने से ऊपर सिर तक ले जाओ वहां से झटका देकर दोनों हाथ पीछे फेंको फिर उसी प्रकार ऊपर ले जाकर बार-बार ऐसा ही करो। ऊपर ले जाती समय पूरक और पीछे फेंकते समय रेचक करो। इसमें कुम्भक करने की जरूरत नहीं।

(४) सीधे खड़े हो जाओ। कमर पर हाथ रखो पैर सीधा तना रहे और कमर से ऊपर का धड़ चारो तरफ पूर्ण वृत्ताकार में झुका हुआ घूमो।

(५) सीधे तन कर खड़े हो जाओ। ठुड्डी को छाती तक झुकाओ। फिर सिर को चारों तरफ वृत्ताकार में घूमाकर फिर ठुड्डी से छाती छूओ।

(६) सीधे तनकर खड़े होकर श्वांस भीतर खूब भर लो और दोनों हाथों से छाती थपथपाओ। पीछे भी जहाँ तक हाथ पहुंचे थपथपाओ और पंजे के बल ऊपर उठो। मुंह को दोनों होठों से दबाकर छिद्र छोटा कर लो ताकि एक साथ ज्यादे हवा बाहर न निकले। अब भीतर रोके हुए श्वास को तीन बार में थोड़ा-थोड़ा करके मुंह से बाहर ज़ोर के साथ फेंको। प्रत्येक बार फेकते समय पंजों केवल ऊपर उठकर झोंका देकर बदन का सारा भार लगाकर नीचे एड़ी पटको ताकि सारे शरीर में कम्पन हो जाय। ऐसा करने से फेफड़े के सारे छिद्र खुल जाते हैं और रक्त संशोधन का कार्य अच्छी तरह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होता है। इसे "लंग्स क्लीनर" कहते हैं प्रत्येक व्यायाम के अंत में इसे करना चाहिये। पर शीर्षासन के बाद कोई व्यायाम नहीं करना चाहिये।

टहलने का व्यायाम

आज कल टहलने का व्यायाम खास कर शहरों में बढ़ता जाता है। जैसे-जैसे लोग टहलने के लाभ को अनुभव करते जाते हैं वैसे-वैसे इसकी प्रथा भी बढ़ती जाती है यह प्रथा अंग्रेजों के सम्पर्क से यहां आई है। पहले इसकी यहां जरूरत ही नहीं थी लोग खुली हवा में रहते थे। इतनी घनी बास्तियां नहीं थी-खुली हवा में खेतों में परिश्रम करना पड़ता था-चलने का अभ्यास था रेल आदि या अन्य प्रकार की तेज चलने वाली सवारियां सर्व साधारण को उपलब्ध नहीं थीं।

कोई प्रथा अंग्रेजों की नकल होने के कारण ही बुरी नहीं हो सकती। प्रथा तो आवश्यकतानुसार आप चल पड़ती है। आजकल खास कर शहरी जीवन बिताने वालों के लिए यह प्रथा वरदान स्वरूप हो रही है। क्योंकि इस से दो तरह का लाभ होता है। एक तो प्रातः काल का शुद्ध वायु सेवन जो स्वास्थ्य तथा शक्ति को बढ़ाता है दूसरे व्यायाम के लिए स्थान और समय का सर्वदा अभाव ही रहता है इसलिए ग्रामों में, जहाँ समय और स्थान का सुयोग रहता है। टहलने की परिपाटी कम है क्योंकि उन्हें अपने खेतों में काफी परिश्रम करना पड़ता है। उन्हें टहलने के हल्के व्यायाम से तृप्ति नहीं होती। टहलने के व्यायाम पर अपना अधिकार रहता है इसलिये स्त्री, बच्चें, बुड्ढे, और जवान सभी कर सकते हैं। अपनी शक्ति के अनुसार धीरे या तेज चलकर या दौड़कर किया जा सकता है। इसलिए इससे सब तरह के आदमियों की तृप्ति होती है।

दौड़ना टहलने की दूसरी सीढ़ी है। किन्तु दौड़ते या तेज चलते समय लंगोट अवश्य पहनना चाहिये अन्यथा हर्नियां की बीमारी होने की सम्भावना होती है। लंगोट से कमर कसा रहता है इसलिये बदन में फुर्ती रहती है। दौड़ने का व्यायाम कमजोर और खासकर बूढ़ों को नहीं करना चाहिए क्योंकि उनकी मांसपेशियां शिथिल हो जाती हैं दौड़ने के श्रम से वे और ढीली पड़ जाती हैं। अतः दौड़ने का व्यायाम बुड्ढों को नहीं करना चाहिए। अपनी शक्ति के बाहर भी व्यायाम नहीं करना चाहिए।

दौड़ने का सही तरीका यह है कि दोनों हाथों को मोड़ कर मुट्ठी बाँध कर छाती के पास ले जाओ, पंजे के बल उछलते और बराबर कदम रखते हुए धीरे धीरे दौड़ो। पर ख्याल रहे की जब सांस जोरों से चलने लगें तो व्यायाम चाहे वह किसी प्रकार का हो रोक दो।

बहुत से लोग टहलने का अर्थ धीरे धीरे चलना लगाते हैं और शक्ति होते हुए भी ध मन्द गति से चहलकदमी करते हैं। वे भूल जाते हैं कि टहलने का अर्थ केवल वायु-सेवन ही नहीं है बल्कि अपने बलाबल अनुसार व्यायाम भी है। तेज चाल से बदन में फुर्ती आती है।

टहलने का समय प्रातः काल ब्राह्ममुहूर्त्त है। प्रातःकाल वृक्षादि लताओं से आक्सीजन निकलता है इसलिये मैदान के बनिस्बत बाग में टहलना अधिक लाभकारी है। किन्तु रात को बाग के बनिस्बत मैदान और जलाशय के नजदीक टहलना अच्छा है क्योंकि रात में वृक्षादि से आक्सीजन की जगह कारबन निकलता है जो स्वास्थ्य के लिए हानिकर होता है। अतएव सन्ध्या के पश्चात् बाग में न घूम कर मैदान और जलाशय के पास घूमना चाहिये। घूमने के लिये हल्के कपड़े पहनना चाहिये। बहुत से लोग शरीर को इस भांति ढक लेते हैं कि वायु का प्रवेश ही रुक जाता है। जाड़े से बचने के लिए अधिक कपड़े से ज्यादे काम करता है तेज चलना। इससे शरीर में गर्मी पैदा हो जाती है।

कभी धीरे धीरे मत टहलो। लम्बे लम्बे कदम उठाकर जितनी शीघ्रता से चल सको तेज चलो। लम्बे डग डालने से मांस पेशियों पर तनाव पड़ता है और उनका व्यायाम हो जाता है। पैंक्रीज अच्छी तरह काम करने लग जाता है। भोजन शीघ्र पचता है और भूख खूब लगती है। तेज चलते समय कभी बांया हाथ छाती के पास रखो और दाहिना हिलाते रहो कभी दाहिनी छाती पर रखो और बांया हिलाते रहो, कभी दोनो हाथों को आगे पीछे और कभी एक ही साथ आगे पीछे ले जाओ। दोनों हाथों को एक साथ आगे पीछे ले जाने से छाती का व्यायाम होता है और हाथ हिलाने से दोनों बाजुओं का। दोनों हाथों को एक साथ आगे ले जाकर झोंके से पीछे ले जाओ। ऐसा करने से छाती की चौड़ाई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बढ़ेगी और कुछ ही दिनों में आशातीत लाभ दिखाई पड़ेगा।

झुक कर कभी मत चलो। छाती आगे की ओर निकली और तनी हो। हाथ ढीले और लटकते हों। थकावट मालूम हो तो धीरे चलकर सुस्ता लो और फिर तेज चलना आरंभ करो। इस प्रकार अपनी चाल और दूरी को धीरे धीरे बढ़ाते जाओ। शरीर को अगर चुस्त और फुर्तीला बनाना हो तो कभी धीरे धीरे मत चलो, यहाँ तक कि दैनिक कार्यों में भी जब कभी भी चलने का मौका मिले तो तेज चलो। धीरे धीरे गर्दन झुका कर चलाना एक बुरी आदत है। स्वास्थ्य का दारोमदार मन के ही ऊपर निर्भर है। मन को कभी मुर्दा की हालत में मत रखो। इस प्रकार मन में विश्वास के साथ उत्साह भर कर तेजी से घर से निकलो और अपनी शक्ति अनुसार घूम कर उसी उत्साह और चुस्ती के साथ तेजी से घर पर वापस आ जाओ। दिन भर के दैनिक कामों को उत्साह के साथ करने में यही सबेरे कर अभ्यास सहायता करेगा। अभ्यास हो जाने पर तुम्हारे सारे काम सही और समय पर होंगे। रोग दूर भागेगा और तुम तन्दुरुस्त तथा बलवान हो जाओगे।

बिना व्यायाम के भोजन अच्छी तरह नहीं पचता और न शरीर को उचित पोषण ही मिलता है। संसार में जितने रोग हैं उनमें से अधिकांश की जननी कब्जियत है और कब्जियत मन्दाग्नि की बहन है। मन्दाग्नि एक मात्र व्यायाम के अभाव से ही होती है।

तैरने का व्यायाम

तैरने की प्रथा भारतवर्ष की पुरानी प्रथा है पर आधुनिक समय में तैराकी-कला में पश्चिम वालों ने अच्छी उन्नति की है। तैरने के पहले शरीर में तैल मालिश जरूर करना चाहिये पर यह अपने हाथ से ही करना लाभदायक है। इससे व्यायाम भी होता है। तैरने का अर्थ उतराना है। यह दो प्रकार का होता है। एक निष्क्रिय दूसरा सक्रिय। निष्क्रिय में हाथ पैर ढीला कर पानी पर चित्त पड़े रहते हैं। पैर फैला कर और पद्मासन लगा कर भी निष्क्रिय तैरा जाता है। किसी प्रकार तैरना सीखने के लिए एक सहायक होना चाहिए। बिना सहायक के भी तैरना सीखने का यन्त्र आविष्कृत हो चुका है—जैसे रबर का पंखा जिसमें हवा भर कर छाती और कांख द्वारा दोनो तरफ बगल से बाहर निकाल देते हैं। यह रबर मिले हुए कपड़े का भी बनता है। इसके सहारे शरीर का सारा भाग हवा भरे हुए पंख पर आ जाता है। लौकी सुखा कर अन्दर से खोखला कर तैरने के काम में लाया जाता है। खुखड़ी, घड़ा और टीन का पीपा या कनस्तर भी काम में लाया जाता है। पर किसी सुदक्ष तैराक से ही तैराकी सीखना अच्छा होता है। निष्क्रिय तैरना सक्रिय तैराकी सीख लेने के बाद सीखना चाहिये। सक्रिय तैरना कई प्रकार का होता है। इनमें मुख्यतः निम्नलिखित तरीके ज्यादा प्रचलित हैं :—

ब्रेस्ट स्ट्राक, सीजर स्ट्राक, शोल्जर स्ट्राक, बैक स्ट्राक, क्राल और स्टैन्ड स्टाइल यानी खड़े होकर केवल पैर के बल तैरना।

सिर्फ पैर के सहारे खड़े होकर तैरना डूबते को बचाने में बहुत सहायक होता है। डूबते को बचाना साधारण तैराक का काम नहीं है। इसे तो इस कला में दक्ष कुशल तैराक ही कर सकता है। कम तैराक को डूबते हुये के पास भूल कर भी नहीं जाना चाहिये। उसे दूर से ही कपड़ा या रस्सी फेंक कर बचाना चाहिये। कारण, डूबता हुआ आदमी बचाने वाले से चिपट जाता है और उसे भी ले डूबता है।

तैरने की कला की सार्थकता खास कर डूबते हुये को बचाने में ही है। हम तैरना जानते हैं पर डूबते हुये को बचाने में अगर असमर्थ है तो हमारे तैरने का कुछ मूल्य नहीं है। अतएव तैरना जानने वाले के लिये उचित है कि डूबते से बचाने की कला का अवश्य अभ्यास करें। तैरने की संस्थाओं में डूबते से बचाने की कला का अभ्यास कराया जाता है। इस-कला के कुशल तैराक के लिये भी उनसे सावधान रहना पड़ता है। जो डूब रहे हों जो काफी पानी पीकर निस्तेज हो जाते हैं, उन्हें बचाना अपेक्षाकृत सरल है।

स्वास्थ्य के लिये सक्रिय तैराकी सीखने का ब्रेस्ट स्ट्राक सब से अच्छा तरीका है। इसमें सर ऊपर उठा रहेगा। दोनों हाथ सामने एक साथ बढ़ेगा और दोनो तरफ पंजों के बल पानी काटते हुये पीछे चले जायंगे। हाथ के पंजे की अँगुलियों शरीर रहेगी पंजे और हथेली में कटोरे की भाँति गढ़ा कर लेना होगा ताकि पानी पर अधिक दबाव पड़े। दोनों पैरों को मोड़ कर घुटने को पेट तक ले जाना होगा फिर पैर को

(शेष पृष्ट ३१ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हास्योपचार सर्वोत्तम

प्रोफेसर डा० रामचरण महेन्द्र एम० ए० ड० लिट्

प्रसन्नता जंतुनाशक (Germicide) औषधि है; जिस व्यक्ति ने यह तत्व सर्व प्रथम मालूम किया होगा उसकी गिनती महाचिकित्सकों में होनी चाहिए। हास्य तथा प्रसन्नता शरीर तथा मन पर आश्चर्मजनक के प्रभाव डालते हैं और शोक, भय, चिंता, क्लेश जैसी प्राणघातक वृत्तियों का उन्मूलन क्षण भर में कर डालते हैं। आनन्द ईश्वरीय गुण है, चिंता क्लेश इत्यादि आसुरी तत्व। ईश्वरीय गुण का प्रतीक—आनन्द—शरीर में मधुर रस उत्पन्न करता है और किसी अव्यक्त मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रिया से शरीर और मन पर तत्काल शान्ति का अलौकिक प्रभाव डालता है। जिस समय आनन्द तथा प्रसन्नता अपना प्रभाव प्रकट करते हैं तो समस्त प्रतिकूल प्रसंग विलीन हो जाते हैं। शरीर के अणु अणु में नवोत्साह का संचार हो उठता है।

हसना क्या है

हंसने से तात्पर्य है कि आपके सुख की कली कली फूल की पंखुरी की भांति खिल उठे, रोम रोम में नव स्फूर्ति दौड़ जाय, जीवन रस से, नई शक्ति से ओत प्रोत हो उठे; मन की दुर्बलता, क्लेश, चिंता, दुःख की मलिनता या विकार धुल जाँय। मुसकराहट ज्ञान तन्तुओं में जो कुछ. दुर्बलता अथवा चिंता होती है, उसे तत्काल दूर करती है। आनन्द का प्रभाव शरीर तथा मन के कण कण में होता है। जिस जगह औषधि लाभ नहीं पहुंचाती, जहाँ इंजेक्शन, कुनैन या अन्य कृत्रिम साधन कार्य नहीं करते, वहाँ हास्य भाव अपना कार्य करता है।

विपत्ति, चिंता, तथा व्याधि क हास्य के साथ शत्रुता है और इस लिए प्रसन्नता की जितनी अधिकता होगी, उतनी ही व्याधि की न्यूनता होगी। जो हंसते हुए जीवन बितायेगा उसका जीवन उतना ही स्वस्थ होगा। यदि आप रोग तथा व्यधि से मुक्ति चाहते हैं. जीवन का बीमा चाहते हैं, सौ वर्ष तक जीना चाहते हैं तो एक ही मार्ग आपके समक्ष है—अन्तर से वास्तविक अन्तःकरण से—हंसो। खूब खिलखिलाकर हास्य फैलाओ! हंस हंस कर रोग व्याधियो को मार भगाओ। हंसी और सारा संसार तुम्हारे साथ आनन्द से विभोर हो खिल खिला उठेगा; रोओ किन्तु तुम्हारे साथ रोने वाला और कोई न मिलेगा। यदि तुम सुख से जीवन व्यतीत करना चाहते हो, तो हास्य (Laughing) की महिमा को अविलंब समझो और आज से, अभी से उसका अभ्यास प्रारंभ कर दो। अपने जीवन को हास्य से मधुर बनाओ। स्वयं भी हंसो, तथा, दूसरों को भी हंसाओ।

जब हम हंसते हुए जीवन व्यतीत करते हैं तो हमारे लिए सारा संसार परिवर्तित हो जाता है और हम उसे एक नवीन दृष्टि कौन से निरीक्षणकरने लगते हैं। मनुष्य को यह गांठ बाँध लेना चाहिए कि जिस प्रकार भोजन, जल, वायु, इत्यादि जीवन शक्ति के पोषक तत्व हैं; उसी प्रकार, और सच पूछा जाय तो उससे भी अधिक हास्य तत्व—आनन्द में मग्न रहना—आवश्यक है।

अतः हंसें; खिलखिला कर, बिना किसी प्रतिबन्ध के, हंसो। जब समस्त संसार आपको रुलाने को प्रस्तुत हो, जीवन के युद्ध में जब आँधी और तूफान वेग से आता दिखाई देता हो, जब यह प्रतीत होता हो कि जीवन नौका उलटकर समुद्र की लहरों में विलीन हो जायगी, तब खिलखिलाकर हंस दें। आँधी तूफ़ान शान्त हो जायगा जीवन नौका, पुनः आनन्द से चलने लगेगी; हृदय खुशी से उछलने लगेगा।

खुल कर हंसने से फेफड़े, पेट आदि के आन्तरिक अवयवों को व्यायाम प्राप्त होता है। हृदय अधिक तीव्र गति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

से कार्य करने लगता है। रक्त का प्रवाह बढ़ जाता है। हास्य नेत्रों की शक्ति को तेजवान करता है, छाती फैलती है और शरीर के प्रत्येक अंग को स्वास्थ्यप्रद गर्मी पहुंचती है। कठिन परिश्रम के मध्य में खुल कर हंस लेने से, मस्तिष्क को बहुत कुछ विश्राम प्राप्त हो जाता है, थकावट दूर हो जाती है और पुनः नवीन जोश से काम में जी लग जाता है।

हास्योपचार के तत्व —

हास्योपचार के लिये सहनशीलता की आवश्यकता है। जो ज़रा ज़रा-सी बात पर उद्विग्न हो उठता है, वह कैसे हंस कर रोग दूर कर सकता है ? हंस वही सकता है जिसमें दूसरों के अपराध क्षमा कर टाल देने की शक्ति हो, प्रतिहिंसा की ज्वाला हृदय में न सुलगती हो। यदि आपके विरुद्ध कोई अपशब्द कहे तब भी उद्विग्न न हों। यदि कोई आपको रुलाने के लिए तैयार बैठा हो; हानि का हिमालय टूट पड़ने को हो तो भी हंसें।

हास्योपचार के लिए मस्ती, फक्कड़पन तथा अन्तःकरण की शान्ति अत्यन्त आवश्यक है। आप प्रत्येक वस्तु का आशावादी दृष्टिकोण रख कर कार्य में प्रवृत्त होइए। यह भली भाँति समझ लीजिए कि संसार में अखंड रात्रि कभी नहीं रहती। वनस्पति मात्र में कड़वापन नहीं रहता; दिन हमेशा बदलते हैं तो फिर हम क्यों रोते रहें, क्यों न जी खोल कर हंसें, खेलें कूदें, मस्त जीवन यतीत करें ? पत्थर की जाति में भी हीरे होते हैं, तो फिर हमारे सोने से जीवन में क्यों क्लेश तथा रोग व्याधि होने चाहिये ? अपांग पशु भी थोड़े दिनों पश्चात् पुनः स्वस्थ्य हो कर उछलने कूदने लगता है, तो फिर हम क्यों मक्खी मारते रहें ?

हँसना सीखिये। दूध पीने वाला बालक जैसे निर्दोश हँसी हँसता है, वैसी ही हँसी, मस्ती बिखेरने वाली हँसी सर्वोत्तम दवा है।

हास्य सेवन का आनन्द लें। हँसने वालों का संग करें, आनन्द जनक भविष्य को ही अपने सामने रक्खो, प्रत्येक पहलू में आनन्द ही देखें, बरते सुनें और सुनायें। हास्य, और केवल हास्य ही आपके दुःख दर्द की एक मात्र दवा है।

(पृष्ठ २९ का शेषांश)

फैलाते हुये पीछे फेंको उसी प्रकार जिस प्रकार मेंढक करता है। इस प्रकार तैरने में तेजी लाने के लिए सिर डुबाए हुए ही आगे बढ़ो। जब आगे बढ़ने का वेग शेष हो जाय तब सिर पानी के सतह से ऊपर उठ जाना चाहिए और सांस खींच कर फिर सिर डुबा कर पूर्वत् वेग से आगे बढ़ना चाहिये। इस प्रकार तैरने में सारे शरीर पर जोर पड़ता है खास कर सीना और पैंक्रीज पर अच्छा असर पड़ता है।

तैरने का व्यायाम सब प्रकार के व्यायाम से उत्तम है इसमें बाहर जल की ठन्डक रहने के कारण शरीर उत्तप्त नहीं होता अवयव कम थकते हैं। विजातीय पदार्थ पसीने के रूप में बाहर नहीं निकलते बल्कि वायु रूप में निकलते हैं।

प्राकृतिक चिकित्सा सीखने का अनुपम अवसर

आगामी १ मार्च से ३ मार्च तक प्राकृतिक चिकित्सा के शिक्षण योजना का प्रथम क्लास लिया जायगा। इसमें प्राकृतिक चिकित्सा के मूल सिद्धान्तों तथा उसकी व्यावहारिक शिक्षा का पूर्ण आयोजन होगा। जो शिक्षार्थी इससे लाभ उठाना चाहें वे कृपया आवेदन पत्र १५ फरवरी तक अपने नाम व अपनी शैक्षिक योग्यता (Educational Qualification के साथ भेज दें।

नोट—प्रत्येक शिक्षार्थी को १०) मासिक फीस और १५) प्रतिमास निवास स्थान के लिये देना होगा। ट्रेनिङ्ग लेने के लिये वैसे भी विद्यार्थी किसी मास में आ सकते हैं और जिस महीने तक चाहें, स्वास्थ्यगृह में व्यावहारिक शिक्षा प्राप्त करने के लिए अपनी इच्छानुसार रह सकते हैं। पर उनको उपर्युक्त फीस प्रत्येक मास के लिए अवश्य देनी पड़ेगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राकृतिक चिकित्सा की करामात !

गर्दन तोड़ बुखार अच्छा हुआ !

डा० एम० एल० राठौर, जबलपुर

यह बात १९४४ की है। तिलवारे घाट (जबलपुर) के जूड़ा साहब के बंगले पर मेरी बुलाहट हुई। उनकी एक लड़की को, जिसकी अवस्था १६ साल की थी, गर्दन तोड़ बुखार (Meningitis) हो गया था। वह कोई ८ घन्टे से बेहोश पड़ी थी। जबलपुर के एक नामी डाक्टर उसे इंजेक्शन दे रहे थे। जब कोई इंजेक्शन देने पर भी उस बालिका की हालत में कोई सुधार होता न दिखायी दिया बल्कि इसके विपरीत हालत खतरनाक ही होती गयी तो इसे 'सीरियस केस' बता कर वह चलते बने !

रोगिणी की हालत सचमुच गम्भीर बन चुकी थी। वह बेचारी एक-दस मिनट पर चीखती, तड़पती थी। रीढ़ गर्दन तक टेढ़ी हो चुकी थी। मुझे भी इस तरह का यह पहला ही 'केस' मिला था। अतः मैंने साफ कह दिया—'भाई मैं कोशिश तो करता हूं, अगर दो घन्टे के भीतर हालत में कुछ सुधार हुआ तो समझिये कि इसकी जान बच सकती है।'

मैंने पहले एक मिट्टी पट्टी रोगिणी के पेड़ू पर एक दूसरी पट्टी गर्दन पर दी। लेकिन जब १० मिनट तक पट्टी गरम न हुई तो बड़ी निराशा-सी हुई। सोचा कि भीतर से रक्त का बहाव ही बन्द हो रहा है, किसी प्रकार उसे तेज करना चाहिये। इसके लिए मैंने २ तोला शहद, २ तोला नीबू का रस और १० पानी, एक में मिलाकर उसे पीने को दिया। उसके बाद गुनगुने पानी में नीबू निचोड़ कर उसे एनीमा दिया। यह प्रयोग सफल हुआ और उसे काफी टट्टी हुई। इसके बाद कोई ३० मिनट के बाद उसके पेड़ू और गर्दन पर लगायी गई पट्टी गरम हो गयी। इसके साथ-साथ उसका चीखना भी कम हो गया, लेकिन उसकी बेहोशी दूर न हुई। ४ घन्टे बाद उसे फिर नीबू का रस और शहद, पानी में मिला कर पिलाया गया और पेड़ू और गर्दन पर मिट्टी की दूसरी पट्टी दी गयी। शाम को फिर एनीमा और तीसरी बार फिर वह नीबू और शहद का रस पीने को दिया गया और मिट्टी की फिर पट्टी लगा दी गयी। दूसरे दिन भी यही काम जारी रहा। ४-४ घन्टे पर लगाने को मिट्टी की पट्टी और पीने को वही नीबू और शहद का रस दिया गया। ४-४ घन्टे पर एनीमा भी। लगभग ३६ घन्टे के बाद शाम को वह लड़की होश में आ गयी। यह देखकर मुझे बड़ा सन्तोष हुआ। रोग के लक्षणों में भी बहुत कुछ सुधार प्रतीत हुए। तीसरे दिन का क्रम भी यही रहा कि सिर्फ रीढ़ को गरम पानी से सेंक कर मिट्टी की पट्टी एक बार बार बाँध दी गयी। चौथे दिन का उपचार-क्रम यह था—पीने के लिए फल का रस, एक बार एनीमा, दो बार पट्टी, एक रीढ़ पर। पांचवें दिन उसे खाने के लिए फल दिया गया, एक बार एनीमा, और एक बार पट्टी दी गयी। छठें दिन भी यही क्रम जारी रहा। सातवें दिन उसे उबाली हुई सब्जी दी गयी और बाकी सब क्रम उसी प्रकार का रक्खा गया। आठवें दिन उसे रोटी का टुकड़ा भी दिया गया, इसके सिवाय उसके उपचार क्रम में कोई और परिवर्तन नहीं हुआ। वह पांचवें दिन का-सा ही रक्खा गया। रोगिणी को ३ दिन तक इसी क्रम पर रक्खा। इसके बाद रोटी की मात्रा थोड़ी-थोड़ी बढ़ायी गयी। इस क्रम से वह लड़की १२ दिन में बिलकुल चंगी हो गयी ! इस प्रकार प्राकृतिक चिकित्सा से इस भयंकर रोग से, जिसमें विरले ही रोगी बचते हैं, उसकी प्राण-रक्षा हो गयी। यदि आरम्भ में उसे इंजेक्शन न दिए गये होते तो वह लड़की और भी जल्द ठीक हो सकती थी, ऐसा मेरा विश्वास है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गर्भाशय सम्बन्धी बीमारियाँ

डा० इन्दुमती सिंनहा, एन० डी० डी० वाई

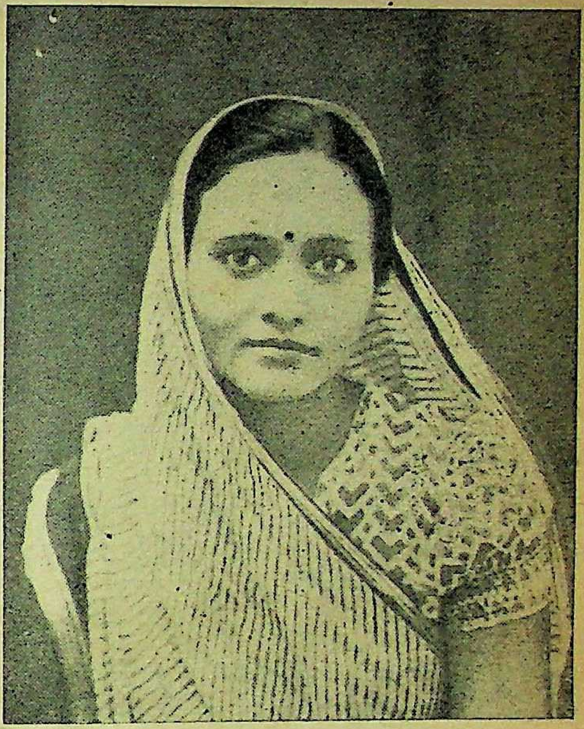

सगर्भावस्था में गर्भाशय के अपने स्थान से हट जाने की शिकायत आम तौर से पायी जाती है। इसके कई कारण होते हैं, जो संक्षेप में इस प्रकार है: अँतड़ियों में लगातार खमीर उठने या बहुत अधिक मल भरे रहने के कारण उनका फूल जाना और इस प्रकार गर्भाशय पर दबाव या भार डालना, पुरानी कब्जियत, कसकर साड़ी बांधना और कपड़े पहनना, लगातार झुककर बैठने की आदत और व्यायाम के अभाव के कारण तलपेट (Abdomen) की आन्तरिक पेशियों का कमजोर होजाना। कभी -कभी प्रसव के समय असावधानी से से काम लेने पर भी बच्चेदानी बाहर निकल आती है।

यह अवस्था ऐसी है जिसका रोगिणी के स्वास्थ्य पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। लगातार दर्द और ऐंठन (Dragging) होते रहने से उसका स्वास्थ्य नष्ट होने लगता है।

इस तरह की शिकायत का डाक्टरी इलाज अपरेशन होता है। कभी-कभी डाक्टर लोग अपरेशन के बजाय योनिद्वार में एक प्रकार का छल्ला पहना देते हैं। किन्तु ये दोनों ही उपचार संतोषजनक होने से कोसों दूर रहते हैं और इनसे रोगिणी को कोई स्थायी लाभ नहीं पहुंच सकता। उनका यह प्रयास कारण के बजाय परिणाम को दूर करने या उसे दबा देने के लिए होता है जिसमें सफलता मिलना सर्वथा असम्भव है। इसके लिए सच पूछिए तो आवश्यकता इस बात की है कि रोग के कारणों को दूर किया जाय, न कि रोग के परिणामों को।

कारण—जरायु के दोनों ओर दो बन्धन हैं जिनसे यह अपने स्थान पर अटका हुआ है। इस जरायु में विजातीय अथवा विसदृश पदार्थ आ जाने की वजह से उसका भार बढ़ जाता है और वह अपने स्थान से हट जाता है। कसकर साड़ी पहनना, प्रसव के बाद ही चलने फिरने लगना, किसी कारण से जरायु पर ज्यादा दबाव पड़ना, आदि कारणों से यह खराबी पैदा होती है।

लक्षण—ऐसा मालूम होता है कि जैसे योनिद्वार से से कोई चीज बाहर निकल जायगी। योनि में अँगुली नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डाली जाती। बार बार पाखाना, पेशाब मालूम होता है या पेशाब बन्द हो जाता है या पेशाब करने में तकलीफ मालूम होती है। जरायु के एकाएक अपने स्थान से हट जाने पर रक्त-स्राव और बेहोशी के लक्षण प्रकट होते हैं। पीठ, पुट्ठे और बगल में दर्द मालूम होना, जरायु का मुख फूल जाना और जरायु में खून जमा होना आदि, इसके लक्षण हैं।

चिकित्सा—गर्भाशय के अपने स्थान से हट जाने पर उसे तुरन्त बैठा देने की कोशिश करनी चाहिए और रोगिणी को चुपचाप लिटा देना चाहिए। जरायु के अपने स्थान पर बैठा देने के बाद बैण्डेज बांध देना चाहिए। पेड़ू पर ठण्डे पानी या मिट्टी की पट्टी देने से तकलीफ कम हो सकती है। रोगिणी को बहुत अधिक हिलने-डुलने न देना चाहिए।

हैरी बेनजेमिन का मत है कि गर्भाशय के अपने स्थान से हट जाने का उपचार मुख्य रूप से यही होना चाहिए कि रोगिणी को समुचित आहार पर रक्खा जाय और उससे समुचित व्यायाम (कसरत) कराया जाय। समुचित आहार से अँतड़ियों की खराबी, जिसके कारण यह रोग होता है, दूर हो जायगी और व्यायाम से आन्तरिक पेशियाँ स्वस्थ और मजबूत होंगी। इसके साथ ही इस बात पर भी ध्यान रखना चाहिए कि कसकर साड़ी न पहनी जाय, लगातार झुककर न बैठा जाय और कोई भारी चीज न उठाई जाय। रोगिणी को ४ से ७ दिनों तक केवल फलाहार पर रखना चाहिए। फलाहार के दिनों में रोगिणी को दिन में ३ बार ताजे, रसदार फल, जैसे-सेब, नाशपाती, अंगूर, नारंगी, अनन्नास, शफतालू, ककड़ी, खरबूजा, या और कोई मौसिमी फल—भोजन करना चाहिए लेकिन केला या सूखे फल नहीं। इसके अलावा और किसी तरह का भी भोजन नहीं देना चाहिए। पीने के लिए नीबू का रस या शीतल या गरम पानी को छोड़कर और कुछ नहीं देना चाहिए। फलों के सम्बन्ध में यह ध्यान रखना चाहिए कि खूब पके हुए और ताजे फल ही दिए जायं, कच्चे या खट्टे फलों से कोई लाभ नहीं हो सकता।

उपचार के प्रारम्भिक दिनों में रात के समय रोगिणी को गरम जल से एनिमा देना चाहिए। उसके बाद एनिमा का प्रयोग आवश्यकता के अनुसार करना चाहिए। हर रोज सुबह के वक्त रोगिणी को शुष्क घर्षण स्नान, मेहन-स्नान तथा सांस की कसरतें तथा अन्य प्रकार के व्यायाम कराने चाहिएं। अगर सम्भव हो तो सप्ताह में दो बार गरम जल में 'ऐपसम साल्ट' (Epsom-Salts) मिलाकर स्नान भी कराया जा सकता है।

बच्चेदानी के आस-पास के तन्तुओं और पेशियों को मजबूत बनाने के लिए गरम और शीतल जल से सिट्ज बाथ कराना भी बहुत उपयोगी होगा। इसे सप्ताह में ३-४ दिन तक रात में सोने के पहले कराना चाहिए। इसके लिए रोगिणी के बगल में दो टब रख देना चाहिए जिनमें से एक में गरम जल और दूसरे ठंडा जल भर दिया जाय। पहले रोगिणी को गरम जल के टब में बैठाकर कुछ मिनट तक सिट्ज बाथ कराया जाय और उसके बाद फौरन ठण्डे पानी के टब में बैठाकर एक मिनट तक सिट्ज बाथ कराया जाय। यह क्रम दो या तीन बार तक जारी रखा जाय। जाड़े दिनों में शीतल जल को कुछ गुनगुना रक्खा जा सकता है, लेकिन पानी जितना ठण्डा होगा उतना ही रोगिणी को अधिक लाभ पहुंचेगा।

रोगिणी को आराम पहुंचाने के लिए बिस्तरे पर लिटा देना चाहिए और उसके पैरों को तकिये या कोई दूसरी चीज के सहारे ऊपर उठाकर रखना चाहिए। पैरों को लगभग १॥ फीट ऊपर उठाकर उनके नीचे तकिया लगा कर रखना चाहिए। इससे रोगिणी को बहुत आराम होगा। पैरों को इस प्रकार आध घंटे से एक घंटे तक रक्खा जा सकता है। इसे दिन में दो या तीन बार करना चाहिए।

गर्भाशय का अर्बुद—जैसा कि पहले बताया जा चुका है इस रोग का मूल कारण अनुचित आहार-विहार के कारण शरीर-प्रणाली में उत्पन्न हुआ विकार ही होता है। मासिक-धर्म का बन्द हो जाना और गर्भाशय में अर्बुद हो जाना—चाहे वह साधारण (benignant) हो या चाहे विषम (malignant) इन दोनों का एक दूसरे से गहरा सम्बन्ध होता है। इसके साथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही साथ कसकर साड़ी पहनना, गन्दी आदतें, बहुत अधिक संगम, जानबूझ कर गर्भपात कराना, ऋतु स्राव सम्बन्धी गड़बड़ी को दूर करने के लिये तथा कथित दवाओं का इस्तेमाल, शल्य-चिकित्सा आदि का भी इस रोग के उत्पन्न होने में बहुत अधिक हाथ रहता है।

चिकित्सा—बच्चेदानी या स्तनों में अर्बुद होने का उपचार जहां तक सम्भव हो सके प्राकृतिक चिकित्सा गृह में रहकर किसी योग्य चिकित्सक से कराना चाहिए। उपवास, युक्त आहार, मालिश, सूर्य-रश्मि-चिकित्सा और शरीर की सफाई तथा शरीर-प्रणाली की अवस्था में सुधार करने वाले सभी उपचारों की इस तरह के रोग में आवश्यकता होती है; क्योंकि इन्हीं उपायों के द्वारा शरीर में संचित उन विसदृश पदार्थों अथवा विजातीय द्रव्यों को बाहर निकाला जा सकता है, जिनकी वजह से इस रोग की उत्पत्ति हुई है। बच्चेदानी के शोथ में अपरेशन के द्वारा सम्भव है कि कुछ समय के लिए आराम हो जाय लेकिन शरीर में वह विकार तो मौजूद ही रहता है जिसकी वजह से इस रोग की उत्पत्ति हुई। इस लिए इसका कोई कारण नहीं कि आगे चलकर फिर यह शिकायत पैदा न हो।

गर्भाशय अथवा स्तन के अर्बुद (Cancer) के सम्बन्ध में यह बता देना आवश्यक है कि इन रोगों का आरम्भ में ही उपचार होना चाहिए अन्यथा सम्भव है कि रोग के बढ़ जाने पर इसे काबू में न लाया जा सके।

जो बहनें किसी प्राकृतिक चिकित्सक के पास जाकर अपने रोग का उपचार कराने में समर्थ नहीं हैं उनके लिए घर पर रह कर ही उपचार करने की विधि यहाँ पर बताई जाती है। सम्भव है कि कुछ बहनों की शिकायत इससे जड़ से दूर न हो, फिर भी इसमें सन्देह नहीं कि अगर वे इस उपचार को करेंगी तो उन्हें बहुत अधिक फायदा मालूम होगा।

उपचार का आरम्भ ३ से लेकर ५ दिनों तक के उपवास से करें। यदि सम्भव हो और अगर इसकी जरूरत जान पड़ती हो तो ५ दिनों से भी अधिक समय तक उपवास किया जा सकता है। उपवास की विधि इस प्रकार है—सवेरे सोकर उठकर कोई चीज न खायँ। अधिक से अधिक एक सन्तरे का रस निचोड़ कर एक गिलास गरम पानी के साथ सवेरे ८ बजे से लेकर रात के ८ बजे तक दो-दो घंटे के अन्तर से लिया जा सकता है। अगर नारंगी का रस अनुकूल न पड़ता हो तो नीबू का रस, या सिर्फ पानी या शाक-भाजियों का रस लिया जा सकता है।

उपवास में दिनों में हर रोज इस बात पर ध्यान रखना होगा कि पेट खूब साफ रहे और शरीर से विजातीय द्रव्य बाहर निकल जाय। इसके लिए डूश या एनिमा का उपयोग सर्वोत्तम है। अगर शरीर से विजातीय द्रव्य को बाहर निकालने पर ध्यान नहीं दिया गया तो उपवास से उचित लाभ नहीं उठाया जा सकता।

उपवास के दिनों में कुछ उपद्रव भी होते हैं जिनसे घबड़ाने की कोई जरूरत नहीं। जैसे—हलका बुखार हो जाना। अगर हरारत जान पड़े तो थोड़ा सा गरम पानी पी लेना चाहिए।

चक्कर आना, सिर दर्द, गश या बेहोशी, अनिद्रा, या दिल की धड़कन बढ़ना—अगर इनमें से कोई उपद्रव जान पड़े तो समझ लेना चाहिए उपवास जारी रहने पर आगे चलकर वह अपने आप मिट जायगा। अतः इन उपद्रवों को कोई अनावश्यक महत्व न देना चाहिए।

जीभ पर मैल जमना और खराब जायका मालूम होना—ये दोनों भी बहुत सामान्य लक्षण है और इनसे इस बात की सूचना मिलती है शरीर में संचित हुए मल अथवा विकार की सफाई का काम बराबर होता जा रहा है।

यहाँ पर अब यह भी बता देना आवश्यक है कि उपवास को किस प्रकार तोड़ना चाहिए। जिस दिन आप उपवास तोड़ें उस दिन केवल ताजा दूध पीकर ही रहें। दिन में दो-दो घंटे के अन्तर से आध-आध पाव धीरे धीरे चूस-चूस कर पीना चाहिए। दूध पीने में सुर्र-सुर्र की आवाज न निकली चाहिए।

इसके बाद दो दिनों का भोजन इस प्रकार का होना चाहिए।

प्रातःकाल का जलपान—दो नारंगियों का रस, अंगूर और एक सेव। सेव को दाँत से खूब चबा-चबा कर खाना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोपहर का भोजन—लेटूस की पत्ती का सलाद, टमाटर, गाजर, चोकर सहित आटे की रोटी और मक्खन, एक नाशपाती या सेब।

शाम का भोजन—उबली हुई शाक-भाजियाँ, अंजीर और किशमिश।

दो दिनों तक इस प्रकार रहने के बाद १० से १४ दिनों तक युक्त आहार पर रहना चाहिए जिसके बाद सामान्य प्राकृतिक भोजन पर आ जाना चाहिए।

युक्त आहार का क्रम इस प्रकार है:—

प्रातःकाल—नारंगी या नारंगी और नीबू का रस या अंगूर का रस। इसके साथ चीनी का इस्तेमाल भूलकर भी न किया जाय।

दोपहर—हरी शाक-भाजियों का सलाद। इसमें कोई भी मौसमी शाक-भाजी रक्खी जा सकती है। सलाद में सिर्फ आलिव आयल और नीबू का रस डाला जाय, सिरका कदापि नहीं। सूखे फलों में किशकिश, मुनक्का, अंजीर और खजूर दिया जा सकता है।

शाम—हरी शाक-भाजियों का सलाद, एक या दो तरह की उबाली हुई शाक-तरकारी, जैसे—पालक, पात गोभी गाजर, फूलगोभी, शलजम इत्यादि।

शाम के भोजन के बाद कुछ मेवे और मीठे फल, जैसे—सेब, नाशपाती आदि—भी खाए जा सकते हैं।

अगर इसके साथ रोटी या कोई भी श्वेत-सार प्रधान भोजन किया जायगा तो इस युक्त आहार का सारा गुण नष्ट हो जायगा। इसलिए अगर इसके अच्छे परिणाम की आकांक्षा हो तो यहाँ पर जो तालिका दी गई है उसमें अपने मन से कोई चीज न मिलानी चाहिए। पानी के सिवाय और किसी तरह का पेय भी ग्रहण नहीं करना चाहिए। अगर किसी बहन का वजन पहले से ही औसत से कम हो तो वह इसके साथ साथ तीनों वक्त एक-एक गिलास दूध भी ले सकती हैं।

युक्ताहार के बाद सामान्य प्राकृतिक भोजन पर आजाना चाहिए और उसके बाद आवश्यकता के अनुसार प्रत्येक छठें सप्ताह या दो महीने बाद छोटा उपवास और युक्ताहार के क्रम को दोहराना चाहिए।

युक्ताहार के दिनों में हर रोज रात के समय गुनगुने पानी से एनिमा लेकर पेट को साफ रखना चाहिए। हर रोज सवेरे नियमित रूप से शुष्क घर्षण स्नान, मेहन-स्नान, सांस की कसरतें और दूसरे तरह के व्यायाम करने चाहिएं। अगर सम्भव हो तो सप्ताह में एक दो बार 'ऐपसम सॉल्ट' (Epsom Salts) से स्नान भी करना चाहिए।

हर रोज रात के समय गरम और ठण्डे पानी से मेहन-स्नान करना चाहिए। लेकिन जिस दिन ऐपसम साल्ट स्नान लिया जाय उस रात को यह स्थगित रखना चाहिए। यह उपचार उन स्त्रियों के लिए है जिनके बच्चेदानी में शोथ (Growth) हो गया है। जिन बहनों के स्तन में शोथ हो उन्हें दिन में कई बार गरम जल में तौलिये को निचोड़ कर इस प्रकार सेंक देना चाहिए:—गरम जल में में तौलिए को निचोड़ कर दो या तीन मिनट तक स्तन को सेंक दें फिर उस तौलिए को हटा दें। उसके बाद एक दूसरे तौलिये को इसी प्रकार निचोड़ कर स्तनों को सेंकें फिर तीसरे तौलिए से। इसके बाद शीतल जल से तौलिये को निचोड़ कर स्तन को धो दें। ३ बार गरम सेंक देने के बाद एक बार ठण्ढे जल से धो दिया जाय। सेंक देने के बाद हलके हाथों से स्तन की मालिश भी लाभ-दायक होगी। इसके अलावा धूप-स्नान और वायु-स्नान से भी बहुत लाभ उठाया जा सकता है।

जननेन्द्रियों के सम्बन्ध में बहुत सफाई की आवश्यकता होती है। जिस के बच्चेदानी में शोथ हो उसे सप्ताह में दो या तीन दिन रात के समय डूश के द्वारा योनिद्वार की सफाई करनी चाहिए। इसके लिए गरम जल का ही प्रयोग करना चाहिए। पेट और पेडू पर हलके हाथों मालिश करने से भी विशेष लाभ मालूम होगा।

मासिक-धर्म के दिनों में सभी प्रकार के स्नानों बन्द कर देना चाहिए।

इस रोग से छुटकारा पाने के बाद भी रोगिणी को अपने भोजन में सुधार जारी रखना अत्यन्त आवश्यक होगा। उसके भोजन में फल और सलाद को अधिक स्थान देना और मैदा या मैदे की बनी चीजें चीनी, मिर्च-मसाले गरिष्ठ तथा चरबी बढ़ाने वाले पदार्थों से पूरी तौर से किनारा कस लेना चाहिए। मांस और चरबी युक्त अन्य पदार्थों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को त्याग देना चाहिए और उसके स्थान पर मक्खन या मेवा रखना चाहिए। चाय, कहवा आदि उत्तेजक पदार्थों का भी पूरी तौर बहिष्कार कर देना होगा।

स्वच्छ वायु का सेवन, अपनी शक्ति के अनुसार मैदान में टहलना और मालिश, ये बहुत गुणकारी होंगे।

गर्भाशय और गर्भाशय की नली में प्रदाह होना

यह एक ऐसी बीमारी है जो स्त्रियों में अधिकतर पाई जाती है। साधारणतः यह प्रदाह डिम्बकोश (Uterus) से शुरू होता है और फिर गर्भाशय की नालियों में फैलता हुआ गर्भाशय तक पहुँच जाता है। और उसके बाद, यदि कहीं उसमें से पीप आने लगी तब तो दशा बहुत ही भयानक हो जाती है।

मासिक धर्म की गड़बड़ी, पुराने किस्म के गर्भाशय सम्बन्धी रोग, सूजाक आदि उत्पादक इन्द्रिय सम्बन्धी रोग, गर्भाशय-प्रदाह के कारण बनते हैं। उदर में जोरों की पीड़ा होना, योनि-मार्ग से कुछ पीप-सा लिये हुए स्राव होना, ये लक्षण इस उपद्रव के पूर्व रूप होते हैं। समय-समय पर न्यूनाधिक कष्ट के साथ आर्त्तव (Homorrage) होता है। इसके कारण स्नायु-प्रणाली को खराबी पहुंचने की सम्भावना हो जाती है, जो अक्सर हिस्टीरिया नामक रोग के रूप में घटित होती है।

गर्भाशय की नली अथवा Fallopion-tubes का प्रदाह:—यह प्रायः गर्भाशय के प्रदाह का पूर्व रूप होता है। इसी तरह के और भी लक्षण प्रकट हो जाते हैं। लेकिन जब ये नलियाँ इस कदर फूल जाती हैं कि इनके भीतर पैदा हुई पीप या श्लेष्मा के निकास का कोई मार्ग नहीं रह जाता तो उसके फलस्वरूप इस शोथ का आकार बढ़कर शिशु के सिर के आकार का-सा हो जाता है। इसके पश्चात् Peritoneum अथवा आमाशयिक झिल्ली पर उसका प्रभाव पड़ता है और यदि कहीं आन्तरिक स्राव होने लगा तो रोगिणी की मृत्यु हो जाती है। प्रायः मासिक धर्म के समय बहुत अधिक मात्रा में खून जाना इस तरह के प्रदाह का पूर्व-सूचक होता है।

गर्भाशयिक अर्बुद:—ये जब आरम्भ में प्रकट होते हैं तो उनके स्वरूप में प्रायः सामान्यता पाई जाती है, उनका रूप भयानक नहीं जान पड़ता। लेकिन आम तौर से जब वे भयानक रूप धारण कर लेते हैं तो वे प्राण लेकर ही छोड़ते हैं। रोग की प्रथमावस्था में अन्य आन्तरिक-अर्बुदों अथवा शोथों की भाँति इनका निदान जानना कठिन ही होता है, क्योंकि कुल मिलाकर उस रोग के लक्षण अस्पष्ट और अनिश्चित ही होते हैं। लेकिन ज्यों-ज्यों इनका आकार बढ़ने लगता है त्यों-त्यों जोरों का आमाशयिक दर्द होना, अक्सर मासिक धर्म के बीच जोरों का रक्तस्राव होना, भूख न लगना, जोरों की कब्जियत होना, शरीर अधिकाधिक क्षीण होने लगना, ये सब स्पष्ट लक्षण प्रकट होने लगते हैं।

इस प्रकार के अर्बुद के बढ़ने पर रोगिणी में सगर्भावस्था के लक्षण प्रतीत होने लगते हैं। आस-पास के आमाशयिक अवयवों पर इस तरह के अर्बुद का जो भार पड़ता है उनके कारण उन अवयवों का कार्य रुक जाता है और शक्तिहीनता तथा पोषण के अभाव के फलस्वरूप रोगिणी की इह लीला समाप्त हो जाती है।

उपचार—गर्भाशय, तथा गर्भाशय की नली, का प्रदाह एवं गर्भाशयिक अर्बुद, इनमें से प्रत्येक का उपचार वस्तुतः एक ही तरह का होता है। प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली के अन्तर्गत रक्त-शुद्धि के ही द्वारा इस तरह के प्रदाह से छुटकारा पाया जा सकता है। अगर शरीर के किसी भी अंग में प्रदाह हो रहा है, (जिसका कट जाना आदि कोई स्थानिक कारण नहीं है) तो यह समझना चाहिये कि इसका कारण केवल रक्त का अशुद्ध हो जाना ही है; और इसे केवल रक्त शुद्धि के ही द्वारा दूर किया जा सकता है। इसलिए इस तरह के अनेक भिन्न-भिन्न रोगों को दूर करने में इसी उपचार विधि से काम लिया जाता है।

इसमें कोई शक नहीं कि शरीर के किसी अंग के के साधारण प्रदाह में जिस उपचार विधि से काम लिया जाता है वह इतनी प्रबल नहीं होती जितनी कि गर्भाशयिक अर्बुद सम्बन्धी उपचार विधि होती है। इन दोनों उपचार विधियों में मुख्य अन्तर यह है कि गर्भाशयिक अर्बुद की अवस्था में अन्य प्रकार के प्रदाहों की अपेक्षा काफी लम्बा उपवास चलता है। यह स्मरण रखना होगा कि जब कोई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यक्ति उपवास करता है तो रक्त के जरिये उसकी प्रणाली शरीर की शक्ति को बनाए रखने के निमित्त पोषण के तौर पर मल की छान-बीन करती है और वह उस मल का ही शोषण करती है। इस तरह के अर्बुद आदि शोथ सर्वथा मल-पिण्ड (मल का ठोस रूप) मात्र होते हैं, अतएव के समय सबसे पहले इन्हीं का शोषण होता है।

अतः साधारण प्रदाह में २ से १० दिन तक और अर्बुद के सम्बन्ध में १० से ३० दिन तक का उपवास बतायी हुई विधि के अनुसार करना चाहिए।

मामूली तरह के प्रदाह में अच्छा होगा कि उपवास तोड़ने के बाद दुग्धाहार पर रहा जाय। किन्तु गर्भाशयिक अर्बुदों में, जहाँ उपवास केवल थोड़े समय तक किया गया हो, दुग्धाहार ठीक न होगा। लेकिन अगर यह उपवास २० से ३० दिन तक जारी रहा है तो उपवास तोड़ने के बाद एक या दो हफ्ते तक दुग्धाहार चलाया जा सकता है। उसके पश्चात रोगिणी को युक्त आहार पर रखना चाहिए। अगर एक बार के उपवास में अर्बुद साफ न हो गया तो इसी तरह रोगिणी को और उपवास कराने चाहिएं। कई मामलों में अगर उपवास के बाद रोगिणी की साधारण शक्ति को बढ़ाने के लिए उसे काफी व्यायाम कराया गया हो और उसे सीमित अहार पर रक्खा गया हो तो यह देखा गया है उसका अर्बुद तेजी के साथ मिटने लगता है और उसे निश्चित रूप से आराम हो जाता है। इस प्रकार उसे दूसरा उपवास कराने की कोई आवश्यकता ही नहीं रह जाती।

इस तरह के रोगों के उपचार में ठण्डे और गरम पानी से मेहन-स्नान विशेष गुणकारी होता है। यह हर रोज सुबह और शाम को करना चाहिए। रोगिणी को चाहिए कि वह पहले गरम जल से फिर ठण्डे जल से इस क्रम से २-३ बार मेहन-स्नान करे। लेकिन जहाँ इस तरह की सुविधा न प्राप्त हो वहाँ शीतल जल से काम लिया जाय अथवा पेड़ू पर गीले कपड़े की पट्टी रक्खी जाय।

स्नायु संस्थानों को सतेज बनाने के लिए उपचारात्मक व्यायाम भी करने चाहिए, जिनका वर्णन अन्यत्र किया जायगा। इस तरह की कसरतें रोगिणी को नियमपूर्वक करनी चाहिएं जिससे शरीर के उस अंग पर, जहाँ प्रदाह होता हो, कोई बुरा प्रभाव पड़ने की सम्भावना न हो। स्वभावतः उन सभी उपायों से, जिनसे शरीर की साधारण शक्ति बढ़ने की आशा की जाती हो, रोगिणी को आराम पहुंचाने में विशेष सहायता मिलेगी।

'जीवन सखा' के ग्राहकों से

'जीवन सखा' के अधिकांश ग्राहक कार्यालय से पत्र-व्यवहार करते समय अपना पूरा पता तथा ग्राहक संख्या लिखना भूल जाते, या उसकी आवश्यकता ही नहीं समझते हैं। इससे हमें पत्रोत्तर देने में बड़ी असुविधा होती है और हम इच्छा रखते हुए भी ठीक समय से उनके पत्र का जवाब देने में असमर्थ होते हैं। अतः ग्राहकों से नम्र निवेदन है कि वे समय की बचत और सहूलियत के लिए पत्र भेजते समय साफ-साफ अक्षरों में अपना नाम, पूरा पता और ग्राहक संख्या लिखना न भूलें।

—मैनेजर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रसोई घर में समझ की जरूरत

[डा० रमाचरण, डी० एच-डी०,प्राकृतिक चिकित्सक, भूतपूर्व सम्पादक, 'जीवन-सन्देश']

[हिन्दी में यों तो 'पाक-विद्या' और 'पाक शास्त्र' जैसी पुस्तकें कई हैं किन्तु परिवार को सुन्दर स्वास्थ्य युक्त देखने की अभिलाषिणी किसी गृह-स्वामिनी के हाथ में निःसंकोच भाव से दी जा सके, ऐसी एक भी नजर नहीं आती। प्रकृति-चिकित्सा का जैसे-जैसे प्रचार बढ़ता जाता है वैसे-वैसे एक ऐसी पुस्तक का अभाव लोगों को खटशता है जिसमें प्रतिदिन के लिये—केवल चिकित्सा-काल के लिये ही नहीं—भोजन के प्राकृतिक नियमों को ध्यान में रख कर पकाने, परसने और खिलाने आदि का मार्ग दिखाया गया हो। इस कमी को दूर करने की दृष्टि से लेखक ने अपने जेल-जीवन के १६ महीने में हिन्दी में एक प्राकृतिक नियमानुकूल पाक प्रणाली विषयक पुस्तक लिखने की चेष्टा की।

हिन्दी संसार में प्रकृति-चिकित्सा का सबसे पहला मासिक पत्र 'जीवन-सन्देश' का सात साल तक सम्पादन करते हुये लेखक क इस विषय में खास तौर पर पढ़ने, सोचने, विचारने, प्रयोग करने और लिखने का अवसर प्राप्त हुआ था। 'जीवन-सन्देश' में प्रकाशित भोजन सम्बन्धी लेखों और नुसखों को लोगों ने काफी तौर पर पसन्द भी किया और आज भी लोग उसकी चर्चा करते हैं। इससे भी लेखक को इस पुस्तक की रचना के लिये प्रेरणा मिली है। यह लेख आपकी 'प्राकृत पाक प्रणाली' नामक पुस्तक का पहला अध्याय है। इसके आगे अंश भी क्रमशः 'जीवन सखा' के पाठकों की सेवा में उपस्थित होंगे।—सं०

आदमी के लिये भोजन बहुत ही आवश्यक वस्तु है। दिन में दो से चार-पांच बार तक वह हर रोज खाता है। उसका शरीर दैनिक भोजन पर ही टिका है। इसीलिये स्थूल शरीर को अन्नमय-कोश कहा गया है और वास्तव में में उसका शरीर उसी से गठित होता है, जो वह खाता-पीता है।

फिर भी क्या हमने अपने रसोई घर में सहज-बुद्धि या समझ को कोई स्थान दिया है? नहीं।

आप कहेंगे—"यह कैसी बात। रसोई के काम में बुद्धि नहीं लगी तो इतने तरह के पकवान, अचार-चटनी, मिठाई, केक-विस्कुट, कबाब-कैटलेट, आदि आदि कैसे बने और नित नये एक से एक मजेदार पदार्थ कैसे बनते जाते हैं? यह बुद्धि की करामात नहीं तो क्या है?"

बात सही है। बुद्धि तो लगी है, पर उल्टी दिशा में। समझदारी को नहीं, नासमझी को ही हमने यहाँ स्थान दिया है।

क्या हमने यह अपने आप से पूछा है कि यह सब उद्योग किस लिये किया जा रहा है? और जो मुख्य उद्देश्य है उसको क्या यह पूरा करने वाला होगा? क्या रसोई घर में प्रवेश करते समय हमारे ध्यान में यह बात स्पष्ट रूप से आती है कि रसोई का मुख्य उद्देश्य शरीर को स्वस्थ, सबल, सतेज और नीरोग रखना है?

नहीं, आज तक हमने रसोई में केवल स्वाद, विकृत स्वाद, को तृप्त करने का ही ध्यान रखा है। कितना मजेदार खाना हम बना सकते है, यही हमारी पाक-पटुता की कसौटी रही है। स्वास्थ्य की दृष्टि, शरीर की आवश्यकता की बात, रसोई बनाते समय बिलकुल ही सामने नहीं रहती। और यह केवल व्यवहार की बात भर नहीं है। हमारे तथा कथित 'पाक शास्त्रों' की भी सोलहो आने यही दशा है। इसीलिये कहना पड़ता है कि रसोई घर में मेहरबानी करके समझ को स्थान दीजिये।

आजकल राष्ट्र के हित की बात करने की परिपाटी-सी चल पड़ी है। यदि राष्ट्र का हित चाहते हैं तो रसोई में समझदारी, सबसे पहले लाइये। क्योंकि बिना इसके राष्ट्र के व्यक्तियों को नीरोग, सबल, सतेज बनाना और रखना सम्भव नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक बात और। आजकल नारी स्वातंत्र्य-आन्दोलन भी खूब चल रहा है। पर सुसभ्य घरों में रसोई की फिहरिस्त और उसके पीछे पीछे चलने वाले रोगों की सूची, इतनी लम्बी होती जा रही है कि बेचारी गृहदेवियों को कबाब-कैटलेट और पथ्य-पानी के चक्कर से फुरसत मिलने की सूरत ही नजर नहीं आती। यदि इस कुचक्र से छूटने की इच्छा हो तो वही करना होगा जो ऊपर कहा जा चुका है, यानी रसोई घर में समझ से काम लें।

इसका मतलब यह कि आपको पुराना रास्ता छोड़ना होगा, पुराने अभ्यास तोड़ने होंगे और नये मार्ग पर नवीन संकल्प से चलना होगा, पर इसके बिना कोई बड़ा या अच्छा काम दुनिया में कब सम्भव हो सका है ?

पुराने पाक-शास्त्रों को भूल कर प्रकृति के पथ पर आने का यह निमंत्रण है—सादे, सरल, स्वास्थ्यपूर्ण, सुरुचिमय एवं आनन्दमय जीवन में प्रवेश करने का यह आमंत्रण है।

इस विषय में अब तक जो प्रयोग एवं अनुसन्धान वैज्ञानिकों ने किये हैं उनसे यह सिद्ध हो चुका है कि रसोईघर पर जिसका शासन हो वह राष्ट्र के स्वास्थ्य को इच्छानुसार बना और बिगाड़ सकता है। विभिन्न देशों के निवासी इस नवीन अर्जित ज्ञान से लाभ उठा रहे है परन्तु एक हम है जो पुरानी लीक पर ही चलना पसन्द करते हैं। इतना ही नहीं बल्कि रसोई के काम को इतना तुच्छ मान लिया गया है कि अब हमारी गृहदेवियां उससे हाथ खींच लेने में ही अपनी प्रतिष्ठा समझने लगीं है। नतीजा इसका और भी बुरा हो रहा है क्योंकि जिस भोजन पर हमारा जीवन और मरण निर्भर करता है, हमारे बच्चों का सारा भविष्य जिस नींव पर खड़ा होगा, उसका प्रबन्ध गैरजिम्मेदार, मूर्ख, एवं खुशामदी रसोइयों और बावर्चियों के हाथ में जा पड़ता है जिनका एक मात्र उद्देश्य अपने मालिकों की बिगड़ी हुई जीभ को तृप्त कर अपनी तनख्वाहें सीधी करना ही होता है। इसमें उनका दोष भी नहीं है, हम इसीलिये उन्हें रखते हैं कि खूब मजेदार रसोई बनाकर वे हमारी रसना को तृप्त करें। इसलिये वे नमक मसाले के जोर से तरह-तरह के कृत्रिम पदार्थ तैयार करने की नित नई कोशिशें करते हैं और जितनी ही कृत्रिम, अजनबी और 'तेज स्वादवाल चीजें वे हमारे आगे लाकर रखते हैं उतना ही हम खुश होते हैं।

यह 'पाक-प्रणाली' इससे भिन्न दिशा में ले जाने वाली है। प्रकृति ने मनुष्य के लिये शरीर-पोषण करने का जो मार्ग नियत किया है और दुर्भाग्य तथा दुरभ्यासवश जिससे हम बहुत दूर जा पड़े हैं, उस रास्ते की ओर धीरे धीरे लौट आने का उद्देश्य इसमें निहित है। जिन्हें यह सदुद्देश्य स्वीकार हो उनके लिये यह 'पाकप्रणाली' व्याहारिक लाभ देनेवाली होगी।

[सर्वाधिकार लेखक के अधीन]

क्रमशः

ग्राहकों के लिये अनुपम अवसर !

श्री देवेन्द्रदत्त गुप्त, केमिस्ट, नेवली शूगर फैक्टरी, एटा, ने अपनी पुत्री सुश्री वीणा रानी के प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली से स्वास्थ्य एवं आरोग्य लाभ करने की खुशी में हमारे पास २००) रु० इस उद्देश्य से भेजा है कि इस रकम से वाचनालयों एवं पुस्तकालयों को सस्ते मूल्य में एक साल तक 'जीवन सखा' भेजा जाय। इसके अनुसार हमने २०० पुस्तकालयों को १।।) में (आठ आने की रियायत हमने अपनी तरफ से की है), साल भर तक 'जीवन सखा' भेजने का निश्चय किया है। आशा है, इस अनुपम अवसर का लाभ उठाते हुए शीघ्र ही वे १।।) मनीआर्डर से भेज कर, साल भर के लिए 'जीवन सखा' का ग्राहक बन जायंगे।

व्यवस्थापक, 'जीवन सखा'
लूकरगंज, प्रयाग।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धारावाहिक लेख—

तत्त्व-चिकित्सा का पुनरुत्थान

ले० श्री गंगाप्रसाद गौड़ 'नाहर'

डा० ओलिवर वेण्डेल होम्स (Dr. Oliver wendell Holmes) डा० ओबरानकी (Dr. Oberanki) डा० जे० विल्सन (Dr. J. Wilson) डा० क्लार्क (Dr. Clerk) अमेरिकन—ये सभी डाक्टर औषधि-चिकित्सा के जबर्दस्त विरोधी और प्राकृतिक चिकित्सा के हिमायती थे।

हेनरिच लेमैन (Heinrich Lamann)—यह जर्मन डाक्टर भी पहले पहल एलोपैथी का भक्त था, किन्तु बाद में कट्टर प्राकृतिक चिकित्सक बन गया। इसकी मूल शिक्षा सात्विक एवं स्वास्थ्य वर्द्धक जीवन-यापन के सम्बन्ध में थी। इसका ड्रेसडेन (Dresden) में अपना एक स्वास्थ्य-गृह भी था। मनुष्य के स्वास्थ्य वर्द्धक आहार के लिये दूध को माप-दण्ड (Standard) स्थापित करने वाला डा० लेमैन ही था। इसने मानव-स्वास्थ्य के लिये आवश्यक पोषक तत्वों से सम्पन्न प्राकृतिक भोजनों के महत्व का अनुसन्धान करके आहार-विज्ञान को सबसे बड़ी सहायता पहुंचाई थी।

एडोल्फ जुस्ट (Adolf Just)—प्राकृतिक-चिकित्सा पर संसार-प्रसिद्ध पुस्तक "Return to Nature" का लिखने वाला यह जर्मन डाक्टर, जिसने केवल साधारण मिट्टी के प्रयोग द्वारा समस्त रोगों का दूर किया जाना सम्भव सिद्ध किया है, पहले पहल एक अत्यन्त साधारण व्यक्ति था। किन्तु बाद में इसने प्राकृतिक चिकित्सासम्बन्धी अनेक ऐसे-ऐसे उपयोगी आविष्कार किये, जिनसे संसार में इसकी बड़ी ख्याति हो गयी। यह व्यक्ति प्रकाश में रहने और नित वायु सेवन करने का बड़ा पक्षपाती था। जुस्ट के विचार से अधेड़ मनुष्य चाहे तो, प्रकृति के रास्ते पर चलकर पुनः युवा अवस्था प्राप्त कर सकता है। इसने जर्मनी में 'हार्ज पर्वत' (Harg mountain) पर 'जंग बार्न' (Jung Barn) नामक एक सेनीटोरियम की स्थापना की थी। इसी डाक्टर ने अपने आप मालिश करने की क्रिया (Self massage) को जन्म दिया है। इसका आदेश था कि मनुष्य को पृथ्वी की प्राण दायक विद्युत-शक्तियों से शरीर का सम्पर्क कायम रखने के लिए नंगे पैर टहलना चाहिये। एडोल्फ जुस्ट टीका-प्रणाली का कट्टर विरोधी था।

हेनरी लिन्डल्हार, एम० डी० (Henry Lindlhar M. D.—यह पहले तो चोटी के एलोपैथिक डाक्टर थे पर बाद में प्राकृतिक-चिकित्सा के गुणों पर मुग्ध होकर प्राकृतिक चिकित्सा के अनुयायी हो गये, और फिर तो इन्होंने इस चिकित्सा का खूब ही प्रचार किया। यह अमेरिकन थे, और उन इने गिने प्राकृतिक-चिकित्सकों से एक थे, जो प्राकृतिक चिकित्सा के सिद्धान्तों के विरुद्ध, रोग उपशम सङ्कट (Curative crisis) उपस्थित होने पर प्राकृतिक उपचारों के साथ, औषधियों—विशेषकर होमियोपैथिक औषधियों—के दिये जाने के पक्ष में थे। इन्होंने सिद्ध किया है कि तीव्र रोग अपना चिकित्सक स्वयं है। अर्थात् प्रत्येक तीव्र रोग प्रकृति की रोग निवारण-शक्ति का परिचायक है। आपका विश्वास था कि मानव समाज जो आये दिन सांघातिक रोगों का सामना करता रहता है, वह आरम्भ में रोगों को औषधियों और सूइयों के द्वारा दबाने का ही परिणाम होता है। चक्षुविज्ञान (Iridiagnosis) के ये जोरदार समर्थक थे। इन्होंने अपने नाम से शिकागो और एल्महर्स्ट (न्यूयार्क) में दो सेनीटोरियम खोले। इनकी बनाई दो पुस्तकें, 'Inidi agnosis' और 'Philosophy and Praetice of Natural Therapeutic,' संसार प्रसिद्ध है। प्राकृतिक आहार शास्त्र पर भी इन्होंने किताबें लिखी हैं।

डा० राबर्ट हावर्ड (Dr. Ropert Howard)—यह प्राकृतिक आहार-विज्ञान का अच्छा ज्ञाता था।

[सर्वाधिकार लेखक के आधीन]

क्रमशः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मलेरिया पर प्राकृतिक चिकित्सा सफल प्रयोग

श्री रामदास चौधरी, मुजफ्फरपुर

पूज्य बाबू दीपनारायण सिंह, मंत्री, विहार प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी, की कृपा से मैंने पूरनटाड (मुज्जफरपुर) के मलेरिया पीड़ित क्षेत्र में पिछले सितम्बर के महीने से लेकर दिसम्बर तक काम किया है।

इस अवधि में मुझे भिन्न-भिन्न प्रकार के मलेरिया के रोगी यहाँ मिले हैं, जैसे—सविराम-ज्वर (Intermittent malarial fever) स्वल्प विराम मलेरिया (Remittent malarial fever) तथा सांघातिक मलेरिया (Malignant malaria) से पीड़ित रोगी। इनमें से ३० रोगी तो प्रायः तीन दिन तक इस चिकित्सा का अनुसरण करने के बाद एलोपैथिक चिकित्सा की ओर झुक गए लेकिन बाद में इनमें से ५ रोगियों को सांघातिक मलेरिया का सामना करने के उपरान्त पुनः प्राकृतिक चिकित्सा की शरण में आना पड़ा और वे इस इलाज से पूर्ण नीरोग और स्वस्थ भी हो गए। मैं उपचार आरम्भ करने के पहले प्रत्येक रोगी से अपनी दो शर्तें मंजूर करा लेता था—पहली तो यह कि इस चिकित्सा क्रम को उसे कम से कम ७ दिन तक तो चलाना ही पड़ेगा, और दूसरी यह कि जो चिकित्सा क्रम बताया जायगा उसकी अनिवार्य रूप से शत-प्रतिशत पूर्ति करनी होगी। मैंने सविराम मलेरिया-ज्वर यह उपचार क्रम निर्धारित किया—पहले तीन दिन तक पूर्ण उपवास। प्रातःकाल पेड़ू र मिट्टी रखना, आध घन्टे तक। गुनगुने पानी का एनिमा। ज्वर की अवस्था में हर-पन्द्रह मिनट पर पेड़ू पर मिट्टी की पट्टी रखना। तीन दिन के बाद उपरोक्त उपचार क्रम के अलावा जाड़ा-बुखार आने के १५ मिनट पहले समूचे शरीर पर गीले कपड़े की पट्टी लगाना या न्यूट्रल बाथ। किसी-किसी रोगी को जाड़ा बुखार आने के आधा घंटा पहले वाष्प-स्नान भी देता था। पर मलेरिया के रोगियों को अधिक लाभ 'न्यूट्रल बाथ' से ही हुआ। इस चिकित्सा विधि से लगभग ५० रोगी अच्छे हुए हैं।

स्वल्प-विराम मलेरिया ज्वर—इस प्रकार के ज्वर में अधिकतर मिट्टी की पट्टी, एनिमा, और समूचे शरीर पर गीली पट्टी का प्रयोग किया गया है। कभी-कभी पैरों का गर्म स्नान भी कराता था। पथ्य में अधिकतर लाल साग पालक या खीरा का रस देता था। उसके बाद रोगी को घी निकाला हुआ थोड़ा-सा मठा भी दिया जाता था। इस तरह के रोगियों के अच्छे होने में अधिक में अधिक १५ से २१ दिन तक का समय लगता। हमारे सेवा-मन्दिर में इस तरह के कोई १५ रोगी आकर भर्ती हुए हैं।

सांघातिक मलेरिया-ज्वर—इस मलेरिया-ज्वर के कुछ रोगियों ने पहले तो ४-५ दिन तक अपना प्राकृतिक इलाज कराया, लेकिन बाद में घबड़ा कर एलोपैथ डाक्टरों के पास चले गए और उनके दवा-दारू के चक्कर में पड़ गए। लेकिन जब वहाँ पर कोई लाभ होने के बजाय उनके रोग ने पहले से अधिक भयंकर रूप धारण कर लिया तो उन्हें लाचार होकर फिर प्राकृतिक चिकित्सा की शरण लेनी पड़ी है। इन रोगियों का इनमें से १० रोगी तो अब तक पूर्ण रूप नीरोग हो गए हैं।

एक ५० वर्ष की स्त्री को मलेरिया हो गया। दो दिन तक तो उसने प्राकृतिक चिकित्सा की, लेकिन उसके बाद उसने घबड़ाकर डाक्टरी दवाइयों का सेवन आरम्भ कर दिया उससे लाभ तो उसे कुछ न हुआ, उल्टे उसकी हालत दिनों दिन बिगड़ती ही गयी। २५ दिनों तक डाक्टरी इलाज कराने के बाद वह मेरे पास आई। उस समय उसकी हालत यह थी कि ऊसे न्यूनाधिक ज्वर बराबर बना रहता था, बुखार तेज हो जाने पर वह बेहोश हो जाती थी। साबूदाना, बार्ली या जो कुछ भी पथ्य लेती वह उसे पचता न था, वह कै कर देती थी। शरीर की कमजोरी बहुत ही बढ़ गयी थी। डाक्टरों तथा अन्य लोगो कों विश्वास हो गया था कि अब वह बच नहीं सकती।

उसकी चिकित्सा शुरू करने पर मैंने उसे दो दिन तक थोड़ा-थोड़ा अनार का रस दिया और पेड़ू पर मिट्टी की मट्टी रखने को कहा। इसके बाद थोड़ा मठा भी ऊसे दिया। इस क्रम से उसकी अवस्था धीरे धीरे सुधरने लगी और १० दिन में वह बिलकुल नीरोग हो गयी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने विचार

स्वागत का विषय

अभी हाल ही में समाचार पत्रों में इस आशय की खबरें प्रकाशित हुई थी कि महात्मा गांधी पूना में एक विस्तृत क्षेत्र में प्राकृतिक चिकित्सा का अस्पताल खोलने जा रहे हैं, और अब पूना ही उनका सदर मुकाम बनने जा रहा है। महात्मा जी ने एक वक्तव्य निकाल कर इन अफवाहों को निराधार बताते हुये अपनी स्थिति स्पष्ट कर दी है। तथ्य यह है कि डा० दीनशा मेहता ने, जो अखिल भारतीय ख्याति प्राप्त प्राकृतिक चिकित्सक हैं और जिनके चिकित्सा गृह (पूना) में महात्मा जी ने नजरबन्दी से छूटने के बाद अपना उपचार कराया था, प्राकृतिक चिकित्सा की शिक्षा देने के लिए एक यूनीवर्सिटी खोलने का विचार किया है। इस उद्देश्य से उन्होंने पूना तथा सिंहगढ़ के चिकित्सा- गृहों को, जिसकी लागत लगभग ५०,००० रुपया होगी, एक ट्रस्ट के सुपुर्द कर दिया है और उसका एक ट्रस्टी बनना महात्मा गांधी ने भी स्वीकार कर लिया है। इसके दो अन्य ट्रस्टियों में एक तो स्वयं डा० दीनशा मेहता तथा दूसरे व्यक्ति, श्री जहाँगीर पटेल हैं, जो प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली में विशेष दिलचस्पी रखते हैं।

अब तक यह संस्था मुख्य रूप से धनिक-वर्ग के ही लिये थी, जहां गरीब लोगों की कोई पहुँच ही नहीं हो सकती थी। लेकिन अब १५ जनवरी से यह संस्था मुख्य रूप से गरीबों के लिए हो जायगी, और वहां पर धनिक वर्ग के केवल ऐसे ही रोगी उपचार के लिए भर्ती किये जायंगे जो वहां गरीबों की भांति रहने, थोड़े जगह में गुजर करने, के लिये तैयार होंगे।

डा० मेहता की इस पुनीत योजना का हम हार्दिक स्वागत करते हैं। प्रकृति के सन्देश को देश के कोने-कोने में पहुँचाने में, उनकी यह योजना विशेष सहायक होगी, ऐसा हमारा दृढ़ विश्वास है। हम तो उस दिन का भी स्वप्न देख रहे हैं, जब कि स्वतंत्र भारत में राष्ट्रीय सरकार स्थापित होने पर राष्ट्रीय चिकित्सा-प्रणाली के रूप में प्राकृतिक चिकित्सा को स्वीकार लिया जायगा, देश के प्रत्येक नगर में इसके केन्द्र स्थापित हो जायंगे और इसे वही आदर तथा सम्मान प्राप्त होगा जो कि ब्रिटिश सरकार के प्रश्रय में पली हुई एलोपैथी चिकित्सा प्रणाली को आज प्राप्त हो रहा है।

बापू का नैसर्गिक चिकित्सा के प्रति प्रेम अगाध है। इसका उल्लेख बापू ने पूना से सेवा-ग्राम लौटने पर एक बार सायंकाल की प्रार्थना के उपरान्त अपने भाषण में किया था। उन्होंने कहा—"जब मैं इङ्गलैंड में पढ़ता था तो एक बार मुझे इनफ्लुएंजा हो गया। उसके उपचार के लिये मैं किसी एलोपैथ डाक्टर की तलाश में निकला। संयोगवश मेरी निगाह एक प्राकृतिक चिकित्सक के साइनबोर्ड पर पड़ी और मैं वहीं चला गया। मैंने कुछ शिलिंग उनकी फीस दी। उन्होंने भोजन-सुधार करने और पानी मे नमक डाल कर जेल-नेति करने की सलाह दी। इस उपचार से २-३ दिन में ही मैं नीरोग हो गया, तभी से मेरा झुकाव इस ओर हुआ है और मैं नैसर्गिक उपचार को सर्वश्रेष्ठ मानने लगा हूँ।"

महात्मा जी ने अपने रचनात्मक कार्यक्रम के अन्तर्गत जो इस प्रणाली को एक प्रमुख स्थान दिया है, वह इसी सत्य का पूर्वाभास है। सच तो यह है कि भारत में प्राकृतिक चिकित्सा की अमर-बेलि बापू के ही हाथों से आरोपित हुई है और उन्हीं के प्रयत्न से वह पनपेगी, हरी-भरी होगी और फूले-फलेगी। बापू का यह स्वप्न पूरा हो, ईश्वर से हमारी यही प्रार्थना है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वर्गीय श्री अजित मोहन बोस

प्राकृतिक चिकित्सा के अनुरागियों को यह जानकर अपार दुःख होगा कि बंगाल के सुप्रसिद्ध प्राकृतिक चिकित्सक श्री अजित मोहन बोस का दिसम्बर मास में कलकत्ता में अपने निवास स्थान (बेलीगंज) में हृदय की गति रुक जाने के कारण स्वर्गवास हो गया। मृत्यु के समय उनकी अवस्था ६२ वर्ष की थी। 'विजय घोष' के नाम से हमने उनके कतिपय लेख दो-तीन साल पूर्व 'जीवन सखा' में प्रकाशित किए थे। इसके बाद इधर हमें उनके लेख प्रकाशित करने का सौभाग्य नहीं प्राप्त कर सका था। उधर पिछले कुछ महीनों से उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं रह था और अब एकाएक हमें पत्रों में उनके निधन का शोक-समाचार पढ़ने को मिला।

श्री बोस एक सफल प्राकृतिक चिकित्सक की हैसियत से भारत भर में ही प्रसिद्ध नहीं थे, वे अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति भी प्राप्त कर चुके थे। सन् १९३६ में बर्लिन में जो प्राकृतिक चिकित्सा तथा रेडियोलाजिकल सम्मेलन हुआ था, उसमें उन्हें भारत के प्रतिनिधि के रूप में आमंत्रित किया गया था। कलकत्ता में उन्होंने एक स्वास्थ्य गृह भी खोला था, और उसे प्राकृतिक स्वास्थ्य सम्बन्धी वैज्ञानिक साधनों से सम्पन्न बनाया था। उनके निधन से भारतीय प्राकृतिक-चिकित्सा जगत् को जो क्षति पहुंची है, वह भूली नहीं जा सकती। हम ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि वह देवंगत आत्मा को शान्ति और उनके शोक-संतप्त परिवार को सान्त्वना प्रदान करे।

(पृष्ठ ४६ का शेषांश)

प्रकाशक, 'धन्वन्तरि' कार्यालय, विजयगढ़, (अलीगढ़), मूल्य ४) रु०

'धन्वन्तरि' के अनेक विशेषांक पहले निकल चुके हैं और वे इतने अच्छे निकले कि हाथों हाथ बिक गये और आज उनमें से बहुतों की एक भी प्रति नहीं मिल सकती। यह विशेषांक भी अत्यन्त उपादेय निकला है।

इस अंक में एक भी लेख भरती का नहीं है। इस अंक से क्षयरोग सम्बन्धी सभी तरह की ज्ञातव्य बातों का भली भांति ज्ञान होता है। क्षय रोग का निदान, लक्षण, क्षयरोग सम्बन्धी वैज्ञानिक अध्ययन, निदान और चिकित्सा सम्बन्धी भूलें, साध्यासध्य और अनेक वैद्यों के चिकित्सा सम्बन्धी अनुभव अनेक उपयोगी नुसखे और और कुछ प्राकृतिक चिकित्सा से सम्बन्ध रखने वाले लेख, सभी कुछ आपको पढ़ने को मिलेंगे। इस अंक को आद्योपन्त पढ़ जाने के बाद क्षयरोग सम्बन्धी शायद ही कोई ऐसी बात हो जो पाठकों को न मिल गई हो। इस समय क्षयरोग का प्रकोप हमारे देश में बहुत है और इसको मार भगाने का प्रयत्न बहुत जल्द होना चाहिए। अन्य देशों में इस रोग के सम्बन्ध में जैसा प्रयत्न हो रहा है उसके मुकाबले में हमारे देश में जो कुछ हो रहा है वह कुछ नहीं बराबर है और यह विशेषांक अत्यन्त उपयुक्त समय में प्रकाशित करके प्रकाशकों ने प्रशंसनीय कार्य किया है। —महेन्द्रनाथ पाण्डेय

नोक-झोंक—सम्पादक पं० केदारनाथ भट्ट, एम० ए० एल० एल० बी०, प्रकाशक तथा मुद्रक, रामप्रकाश पण्डित, महावीर प्रेस, आगरा; कार्यालय—बाग मुजफ्फर खां, आगरा, वार्षिक मूल्य ३) एक अंक का ।)

'नोंक झोंक' हिन्दी साहित्य-क्षेत्र में हास्य रस-प्रधान अपने ढंग का एक अनोखा पत्र है। १९४२ में इसका प्रकाशन कारण-वश बन्द हो जाने के कारण बन्द हो गया था, जिसका अभाव साहित्य प्रेमियों को खटकने ही वाला था। प्रसन्नता की बात है कि नवम्बर मास से इसका पुनः प्रकाशन आरम्भ हो गया है, उसी आन-बान और शान शौकत के साथ। अंक ऐसा कि कोई भी लेख पढ़ना शुरू कीजिए—हंसी के फुहारे छूटने लगेंगे। इसके व्यंग तीखे, और मर्म-भेदी होते हुए भी सर्वथा निर्दोष होते हैं। हास्य-रस प्रधान होता हुआ भी इसका एक ठोस आदर्श है जो हिन्दी साहित्य को सही माने में समादृत करने वाला है। इसके पुनः प्रकाशन पर हार्दिक बधाई। और हमारी यह शुभ कामना भी कि यह उत्तरोत्तर उन्नति करता हुआ जन-मनोरंजन करता रहे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तक परिचय

टीका विरोधी साहित्य (Anti vaccination literature)—प्रकाशक, इण्डियन नेचुरोपैथिक एसोशियेशन, बेजवाडा (दक्षिण भारत), मूल्य ८ आना मात्र।

जैसा कि इसके नाम से ही प्रकट होता है, यह टीका विरोधी बहुमूल्य साहित्य अंग्रेजी में बहुत ही सस्ते दामों में इस उद्देश्य से प्रकाशित किया गया है कि यह सभी के लिए सहज प्राप्त हो। इस साहित्य के अंतर्गत तीन पुस्तिकाएँ और एक प्रायः सवा सौ पृष्ठों की पुस्तक हैं, जिनका नाम है 'Vaccination scourage exposed' (अर्थात् चेचक टीके के उत्पातों का रहस्योद्घाटन)। इस-सुन्दर पुस्तक के लेखक हैं डा० एम० के० पाण्डुरंगम्, संचालक, 'यौगिक क्योर हेल्थ सेन्टर,' बेजवाडा। आपकी आहार-शास्त्र सम्बन्धी सुन्दर पुस्तक 'मनुष्य के भोजन का दिग्दर्शन' (Man's food unveiled) स्वास्थ्यानुरागियों ने सामने आ चुकी है।

इस साहित्य के अन्तर्गत जो तीन पुस्तिकाएं हैं उनमें से एक में तो सन् १९३८ में बेजवाडा में हुई प्रांतीय टीका-निवारक कानफरेन्स की सम्पूर्ण कार्यवाही दी गई है, जिसमें उस कानफरेन्स के स्वागताध्यक्ष डा० पी० वेंकटरमय्या, एन० डी०, सम्पादक 'प्रकृति' (तेलेगू) और 'इण्डियन नेचुरोपैथ' (अंग्रेजी) तथा वी० वेंकट सुब्बय्या, बी० ए० का अध्यक्ष पद से हुआ अभिभाषण भी सम्मिलित हैं। दूसरी पुस्तिका में सन् १९३८ में जब कि मद्रास प्रांत में कांग्रेस सरकार थी, मद्रास एसेम्बली में पेश किए गए सार्वजनिक स्वास्थ्य बिल के सम्बन्ध में प्राकृतिक चिकित्सकों की टीका विरोधी मांग, सदस्यों के विचार, तथा तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री राजगोपालाचारी तथा स्वास्थ्य मंत्री डा० राजन् के भाषणों की रिपोर्ट दी गयी है। इस पुस्तिका से यह सर्वथा स्पष्ट हो जाता है कि मद्रास की काँग्रेस-सरकार ने उस स्वास्थ्य-बिल में जो आत्मिक आक्षेप (Conseience clause) जोड़ा था वह दक्षिण भारत के प्राकृतिक चिकित्सकों के सतत विरोध प्रदर्शन का ही परिणाम था। यद्यपि यह प्राकृतिक चिकित्सकों के लिए कम महत्वपूर्ण विजय नहीं थी, फिर भी इसे पूर्ण विजय नहीं कहा जा सकता।

क्योंकि उक्त बिल में जहाँ आत्मिक-आक्षेप सम्बन्धी धारा जोड़ देने से टीका का विरोध करने वाले व्यक्तियों को मुक्ति मिल जाती है, वहां जिलाधीश द्वारा लगाये गए 'आइसोलेशन' सम्बन्धी प्रतिबन्ध बहुत ही क्षोभ कारक तथा अतर्कसंगत हैं।

तीसरी पुस्तिका में डा० शर्मा के० लक्ष्मण, सम्पादक, 'लाइफ नैचुरल', के सुविस्तृत एवं सारगर्भित लेख दिए गए हैं, जिनमें चेचक की सांघातिकता पर सभी पहलुओं से विचार किया गया एवं प्रकाश डाला गया है। इस पुस्तिका में हरबर्ट स्पेन्सर का भी एक लेख है जिसमें इस महान विचारक ने सिद्ध किया है कि पागल कौन है—टीके लगाने वाले या टीके लगवानेवाले, अथवा इस घातक प्रथा का प्रबल विरोध करनेवाले प्राकृतिक चिकित्सक ? इसमें डा० शर्मा का वह पत्र भी है जिसे उन्होंने अ० भा० कांग्रेस के अध्यक्ष ने नाम भेजा था। उस पत्र में कांग्रेस अध्यक्ष से प्रार्थना की गई थी कि वे प्राकृतिक चिकित्सकों के आधारभूत अधिकारों को स्वीकार करें तथा मद्रास व्यस्थापिका सभा में प्रस्तुत किये गए सार्वजनिक स्वास्थ्य विषयक (चेचक के टीके के की अनिवार्यता पर) बिल के सम्बन्ध में हस्तक्षेप करें और उसे पास न होने दें।

निस्सन्देह, यह १२५ पृष्ठों की पुस्तक स्वास्थ्य सम्बन्धी एक सर्वोत्कृष्ट एवं उपादेय साहित्य है। वर्तमान चेचक का टीका क्या है, इसने अब तक कितने रूप धारण किए हैं, इसके प्रयोग से शरीर में किन-किन प्राणलेवा रोगों का जन्म हो सकता है, इसे लेखक ने बड़े सुन्दर ढंग से समझाया है और यह भी बताया है कि इस घातक प्रथा के विरुद्ध प्राकृतिक चिकित्सकों के कौन-कौन से अकाट्य आक्षेप हैं, 'आत्मिक आक्षेप' सम्बन्धी धारा के लिए हमें क्यों लड़ना चाहिए ? इस पुस्तक में विद्वान एवं अनुभव शील लेखक के गम्भीर विचार, बड़े-बड़े डाक्टरों और हेल्थ अफसरों की सम्मतियों का निरूपण संसार, के विभिन्न भागों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में चेचक से होने वाली मृत्यु संख्या के आंकड़े आदि देखकर हृदय में ये तथ्य अपने आप आन्दोलित होने लगते हैं: (१) टीका सर्वथा हानिकर, बर्बरतापूर्ण एवं रोगोत्पादक वस्तु है, (२) इससे चेचक से कत्तई कोई बचाव नहीं होता, बल्कि कोई बचाव होने के बजाय इससे भी भयानक अन्य कई प्रकार के रोग हो सकते हैं। (३) जिन-जिन देशों में चेचक के टीके का धड़ल्ले से प्रयोग किया जाता है उन-उन देशों में चेचक से होने वाली मृत्यु संख्या भी अपेक्षाकृत कहीं अधिक पायी जाती है, (४) चेचक की अपेक्षा चेचक के टीके से कहीं अधिक मृत्युएं होती हैं। (५) चेचक का अचूक उपचार चेचक का टीका नहीं आन्तरिक सफाई है, और (६) चेचक के टीके के लिए 'सीरम' तैयार कराने में सरकार प्रति वर्ष जो रुपया खर्च करती है, उसे सार्वजनिक स्वच्छता के कार्य में व्यय करना चाहिए।

ऐसा प्रतीत होता है कि इस पुस्तक का मूल्य नाममात्र ही रक्खा गया है, क्योंकि डाक-व्यय के सहित आठ आने में ऐसा साहित्य अन्य कहीं उपलब्ध नहीं हो सकता।

इतने सस्ते दाम में इतना उपयोगी साहित्य के प्रकाशन के लिए इसके प्रकाशक बधाई के पात्र हैं।

कामता प्रसाद अग्रवाल

आहार शास्त्र

हमारा भोजन—लेखक, श्री महेन्द्रनाथ पाण्डेय, प्रकाशक महेन्द्र रसायन शाला, कटरा इलाहाबाद, पृष्ठ संख्या २७१, सजिल्द, मूल्य ४) रु०

आहार शारीरिक स्वास्थ्य की ही नहीं मानसिक शारीरिक स्वास्थ्य की भी आधार शिला है। क्योंकि शरीर के अन्य अवयवों की भांति मन पर भी आहार का विशेष प्रभाव पड़ता है और मन का मस्तिष्क और चित्त पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही है। मानव जीवन में आहार का महत्व सर्वोपरि है। अतः पूर्ण आरोग्यमय तथा स्वस्थ जीवन की अभिलाषा रखने वाले जिज्ञासु के लिए आहार पर समुचित ध्यान देना आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी है।

किन्तु आहार का महत्व जितना महान है उतना ही स्वतः आहार सम्बन्धी प्रश्न जटिल थी। ऐसी पुस्तक का हिन्दी-क्षेत्र में, अभाव ही दिखायी देता है जो आहार के विषय में सही दिशा में स्वास्थ्यार्थियों को अग्रसर करने वाली हो। प्रसन्नता की बात है 'हमारा भोजन', जैसी उपा- एवं प्राभाविक ग्रंथ प्रस्तुत करके पाण्डेय जी ने न केवल हिन्दी-साहित्य के क्षेत्र में बहुत अधिक खटकनेवाले अभाव की पूर्ति की है, प्रत्युत आहार की दिशा में स्वास्थार्थियों का उचित पथ-प्रदर्शन भी किया है। आयुर्वेद और प्राकृतिक चिकित्सा का सामंजस्य, इन दोनों का युक्तियुक्त सम्मेल पाण्डेय जी की अपनी निजी विशेषता है। और यही विशेषता इस पुस्तक में भी स्पष्ट झलकती है।

कोई भी आहार, जो पौष्टिक है, सभी के लिए समान हितकारी होगा, इस भ्रामक धारणा का निराकरण इस पुस्तक में बड़े सुन्दर और युक्तियुक्त ढंग से किया गया है। इसके द्वारा पाठक आसानी के साथ समझ सकते हैं कि शरीर को शक्ति और स्वास्थ्य तथाकथित भोजन से नहीं, भोजन के समुचित समीकरण से ही प्राप्त हो सकता है। जिस भोजन का पाचन-प्रणाली भलीभांति समीकरण कर सकती है केवल वही भोजन हमारे लिए स्वास्थ्य एवं आरोग्यदायक आहार बन सकता है। इसी दृष्टि से लेखक ने भोजन का वर्गीकरण करते हुए समस्त शारीरिक अवस्थाओं के लिए अलग-अलग आहार बताए हैं। इसके अतिरिक्त अपने खाद्य तत्वों का विश्लेषण एवं विवेचन इतने सुन्दर ढंग से किया है कि हिन्दी की साधारण जानकारी रखनेवाला व्यक्ति इस पुस्तक को पढ़कर हम विषय का भलीभांति अवगाहन कर सकता है—उसे अच्छी तरह समझ सकता है। स्वास्थ्य के लिए क्या खाँय और कैसे खांय यह समझने के लिए किसी अन्य की सहायता लेने की कोई आवश्यकता नहीं रह जाता।

संभवतः पुस्तक का मूल्य अधिकांश पाठकों को खटकेगा, किन्तु युद्ध-कालीन कठिनाइयों का जिन्होंने अनुभव किया है, वे समझ सकते हैं कि इस पुस्तक का ४ रुपया मूल्य अधिक नहीं है। इसकी छपाई-सफाई निर्दोष और गेटअप मनोहर है। —'निरीह'

मासिक साहित्य

'धन्वन्तरि' का क्षयरोगांक—इस विशेषांक के सम्पादक—कविराज प्रतापसिंह जी रसायनाचार्य, देहली;

(शेष पृष्ट ४४ पर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
078735

प्रश्नोत्तर

[इस स्तम्भ में जिज्ञासु पाठकों के प्रश्नों के उत्तर दिए जाते हैं। पाठकों को चाहिए कि वे एक बार दो से अधिक प्रश्न पूछने का कष्ट न करें और जहाँ तक हो सके अपने प्रश्न संक्षेप में ही लिखें। यह ध्यान रहे कि इस स्तम्भ का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य यह है कि किसी एक व्यक्ति की जिज्ञासा का लाभ दूसरे पाठक भी उठावें।

प्रश्नों के भेजने के सम्बन्ध में आवश्यक नियम यह है कि प्रश्नों को प्रश्नोत्तर कूपन के साथ भेजा जाय। प्रश्नोत्तर कूपन कवर के तीसरे पेज के नीचे दिया गया है। —सं०]

प्रश्न—मैं दमा का रोगी हूँ। आज तीन वर्षों से प्राकृतिक चिकित्सकों के पथ-प्रदर्शन तथा पुस्तकों के आधार पर प्राकृतिक चिकित्सा करता आ रहा हूं। इससे दमा एक दम तो नहीं छूट गया है, पर हां, कम बहुत हो गया है। किन्तु इस चिकित्सा-काल में दो नये रोग नजर आ रहे हैं—(१) रात में उठकर बार-बार पेशाब करने जाना पड़ता है, ४ से ५ बार तक, जबकि चिकित्सा के पूर्व कुल २-३ बार ही जाया करता था। साथ ही पेशाब लगने पर ऐसा मालूम होता है कि उसे रोकना कठिन है। ऐसा क्यों होता है ? (२) कभी कभी आंख में धुंध-सा मालूम होता है, एक चीज की दो आकृतियां दिखायी पड़ती हैं, पर ऐसा बराबर नहीं होता। ऐसा प्रायः देर तक पढ़ने लिखने या शीर्षासन करने के बाद ही होता है। इसका कारण क्या है ?

जब मैंने पहले-पहल प्राकृतिक चिकित्सा आरम्भ की तो एकाएक बहुत लाभ दिखाई पड़ा जैसे—वजन बढ़ना, शरीर में रक्त की वृद्धि होना, कमजोरी दूर हो जाना कोष्ठ-बद्धता की शिकायत न रहना, आँखों को चश्मे की जरूरत न रह जाना, आदि-आदि। परन्तु बाद में वजन फिर घटने लगना, स्वास्थ्य सुधार की प्रगति रुक जाना, आँखों में खराबी पैदा होना, यह सब उपद्रव फिर उत्पन्न हो गए। ऐसा क्यों हुआ ? अपने रोग के प्राकृतिक उपचार के सिलसिले में मैं प्रातःकाल शीर्षासन, सर्वांगासन, पश्चिमोत्तान, भुजंगासान, शलभासन, नौलि, मयूरासन और शवासन करता हूँ और शाम को दौड़ लगाता हूँ।

—रामदत्त पाण्डेय, मुंगेर।

उत्तर—आप के प्रश्न से प्रकट होता है कि आपकी आँखों पर जोर या बनाव पड़ने से आँखों की शिकायत होती है, यह 'ग्लाइकोमा' (Glycoma) का लक्षण है। इसी तरह यह भी प्रकट होता है कि आपका आहार असन्तुलित है। इसलिए अपने भोजन के क्रम में सुधार कीजिए। कभी कभी निर्जल उपवास करें। इस प्रकार के उपवास में एनिमा के रूप में भी जल का प्रयोग करना बन्द कर दें। केवल आध सेर दूध फाड़ कर उसका पानी पियें या पालक का रस लें। इससे पेट साफ हो जायगा। बार-बार पेशाब मालूम होना मस्से (Prostrate gland) की कमजोरी का द्योतक है। इसके लिए कोई विशिष्ट उपचार नहीं किया जा सकता, साधारण स्वास्थ्य-सुधार होने पर यह अपने आप दूर हो जायगा। हाँ, आँखों की शिकायत दूर करने के लिए यह आवश्यक है कि आप शीर्षासन करना एक दम बन्द कर दें। भोजन यदि आप केवल एक ही समय करें तो बहुत अच्छा। एक वक्त रोटी-सब्जी और एक वक्त एक पाव दूध, फल और सब्जी लें। यदि दिन में भूख मालूम हो तो और अधिक फल खा सकते हैं। पर ध्यान रहे कि सूर्यास्त के बाद न तो आप कुछ खायँ और न जल पियें। शाम का भोजन सूर्यास्त के पहले ही हो जाना चाहिए। विशेष उपचार के लिए तो यही उत्तम होगा कि आप किसी अनुभवी चिकित्सक के पास कुछ समय तक रह कर अपना इलाज करावें, तभी आपको शत प्रतिशत लाभ की सम्भावना हो सकती है।

प्रश्न—मेरी उम्र २० साल की है। परन्तु सिर के बाल लगभग ६ साल से झड़ रहे हैं। पिछले साल, जब कि मैं 'थर्ड ईयर' में पढ़ती थी तो अक्सर सिर भी दुखा करता था और आँखें कमजोर होने के कारण चश्मा भी लगाना पड़ा। इन सब बीमारियों के अलावा मेरा मासिक-धर्म शुरू से ही अनियमित रहा। मैंने अज्ञानतावश बीमारी के मूल कारण न समझ कर सिर्फ आंखों का ही एलोपैथिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा आयुर्वेदिक इलाज किया और इससे जब कोई विशेष लाभ होता न दिखाई दिया तो आँखों की शिकायत से मजबूर होकर मैंने पढ़ाई छोड़ दी और तब प्राकृतिक-चिकित्सा के सिद्धान्तों के अनुसार अपना इलाज शुरू किया। इससे सिर दर्द और आँखों का दर्द तो ठीक है। मासिक धर्म कभी तो ठीक समय से और कभी दो-चार दिन पहले ही हो जाया करता है। परन्तु बालों का झड़ना उसी प्रकार जारी है। अतः आप इस तरह के केश-विन्यास सम्बन्धी लेख या प्रश्नोत्तर द्वारा बतायें कि बालों को कैसे बढ़ाया जाय तथा उनके लिए जो आसन किए जा सकते हों उनकी विधि या आसन सम्बन्धी कोई पुस्तक का नाम बतावें जिससे कि मैं पूरा लाभ उठा सकूँ।

—श्रीमती एस० एन० खन्ना, प्रयाग।

उत्तर—यह प्रश्न आपने डा० इन्दुमती सिनहा से पूछा है। इसके सम्बन्ध में आपको यह सूचित का देना चाहता हूँ कि इन दिनों प्रसूता होने के कारण वह स्वयं उत्तर देने में असमर्थ हैं। अतः आपके प्रश्न का उत्तर उनकी ओर से दिया जा रहा है।

शरीर के अन्य अवयवों की भांति बालों के लिए भी यह जरूरी है कि उन्हें स्वस्थ रखने के लिए आवश्यक खुराक पहुंचता रहे। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि आप का भोजन शुरू से ही ऐसा रहा है जो कि बालों को समुचित रूप से पोषण पहुंचाने में समर्थ नहीं था। दूसरे आप के मस्तिष्क की नसों में विकार भर गया है जिसके कारण सिर में ठीक तरह से रक्त संचार नहीं हो पाता इस कारण भी बालों को पोषण मिलने में रुकावट पड़ती है। शरीर शुद्ध करने के लिए आप नीचे लिखे अनुसार करें।

तीन दिन उपवास करें। इस उपवास में गरम जल में नीबू का रस प्रति घंटे पीवें। दिन में सात-आठ बार तक पी सकती हैं। दोनों समय हलके गरम जल से एनिमा लीजिए। तीन दिनों के बाद चौथे दिन सन्तरे का रस आध सेर दो बार लीजिए। पाँचवे दिन से फल और शाक तरकारियाँ लीजिए। यह क्रम तीन दिन और चलाइए। सातवें दिन से धीरे धीरे रोटी लेना आरम्भ करें। एक मास रोटी सब्जी ही रखें और प्रतिदिन कम से कम आध सेर दूध लीजिए। एक छटाँक पानी में एक छटाँक नीबू का रस मिलाकर सिर में मलिए। बालों की जड़ों में अँगुली से मालिश कीजिए। मालिश का अभिप्राय यह है कि सिर में रक्त का संचार बढ़ जाय। सिर में 'ब्लू आयल' (नीला तेल) लगाइए। इस तेल की भी मालिश ऊपर की विधि से ही कीजिए।

नीला तेल बनाने की विधि यह है—नीले बोतल में काली तिल का तेल डाल कर धूप में रख दीजिए इस तरह चालिस दिन तक धूप में रखिए। चालिस दिनों के बाद यह तेल तैयार हो जाता है। आप के लिए विपरीत करणी मुद्रा लाभदायक होगी। इसे आप यहाँ आकर सीख जायं अथवा अपने यहाँ किसी जानकार आदमी से सीख लें। यह योगिक क्रिया है, लिखकर समझना-समझाना दोनों कठिन है। इसी कारण इसकी विधि नहीं लिखी गई।

—बालेश्वर प्रसाद सिंह

सूचना

इस मास से 'जीवन सखा' कार्यालय तथा स्वास्थ्य गृह का प्रबन्ध अलग-अलग कर दिया गया है और 'जीवन सखा' कार्यालय स्वास्थ्य गृह से हटा कर एक दूसरे स्थान पर खोला गया है। अब भविष्य में 'जीवन सखा' वहीं से प्रकाशित भी हुआ करेगा। अतः 'जीवन सखा' सम्बन्धी सभी पत्र-व्यवहार इस नए पते से ही होना चाहिए। प्राकृतिक स्वास्थ्य भंडार की पुस्तकें मंगाने आदि के सम्बन्ध में भी नीचे लिखे पते ही से पत्र-व्यवहार करें:—

व्यवस्थापक,
'जीवन सखा' कार्यालय, २८७, बादशाही मंडी, चौक, प्रयाग।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पढ़िये ! लाभ उठाइये !!

सुन्दर, स्वस्थ और सुखी जीवन के इच्छुकों को ये पुस्तकें पढ़नी चाहिए

(१) रोगों की अचूक चिकित्सा (चतुर्थ संस्करण) :श्री जानकी शरण, वर्मा, बी० ए० ५)
(२) मठा—उसके गुण तथा उपयोग (परिवर्धित संस्करण) : श्री महेन्द्रनाथ पांडेय ।)
(३) हमारा भोजन—श्री महेन्द्रनाथ पाण्डेय ... ... ४)
(४) स्वास्थ्य के नुस्खे—'जीवन सखा' कार्यालय ... ... ।)
(५) क्या और कैसे खायं—डा० बालेश्वर प्रसाद सिंह ... ... ।=)
(६) ब्रह्मचर्य ही जीवन है—स्वामी शिवानन्द ... ... १॥)
(७) आनन्दमय जीवन—श्री शंकरलाल तिवारी ... ... ॥)
(८) कब्ज या कोष्ठबद्धता : डा० बालेश्वरप्रसाद सिंह ... ... १)
(९) आँख का अचूक इलाज : श्री महेन्द्रनाथ पांडेय ... ... २)
(१०) शाकों के गुण—श्री नारायणप्रसाद अरोड़ा ... ... १)
(११) फलाहार—श्री नारायणप्रसाद अरोड़ा ... ... १)
(१२) वैज्ञानिक जल-चिकित्सा—श्री कुलरंजन मुखोपाध्याय ... ... २)
(१३) सचित्र हठयोग—स्वामी शिवानन्द ... ... १)
(१४) मन और उसका निग्रह (प्रथम भाग)—स्वामी शिवानन्द ... १)
(०५) मन और उसका निग्रह (द्वितीय भाग) " ... ... ३)
(१६) हम सौ वर्ष कैसे जीवें : श्री केदारनाथ गुप्त, एम० ए० ... ... १॥)
(१७) आरोग्य-साधन—महात्मा गाँधी ... ... ॥)
(१८) स्वास्थ्य साधन—श्री रामदास गौड़ ... .. ३॥)
(१९) अहार ही औषध है : डा० एल० एन० रतरा ... ... १)
(२०) जल चिकित्सा (पहला भाग)—श्री राखालचन्द्र चट्टोपाध्याय ... १॥)
(२१) Nature Cure by H. Lindlahr, M. D. 7-8-0
(२२) Food-be-Medicine by Dr, L. N. Ratra, H. M. B. .. 1-0-0
(२३) Universal un-cooked food 3-8-0
(२४) Nature Cure of Eye defect by Dr. K. L. Sharma. 2-0-0
(२५) Practical Nature cure " " " 8-8-0
(२६) Constipaticn and Dyspepsia 1-8-0
(२७) Gems of health 2-0-0
(२८) Drugless healing 1-0-0

स्वास्थ्य सम्बन्धी पुस्तकें मिलने का पता:—

मैनेजर, स्वास्थ्य ग्रंथ-भंडार २८७, बादशाहीमंडी, चौक, प्रयोग।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन सखा का नया उपहार

जल-चिकित्सा अंक

आगामी जनवरी में प्रकाशित होगा

—:०:—

पिछले कुछ वर्षों से हम जीवन सखा के अपने जीवन के नए वर्ष में पदार्पण करने के अवसर पर एक सुन्दर विशेषांक निकालते रहे हैं, किन्तु पिछले दो वर्षों में युद्धकालीन कठिनाइयों के कारण हम कोई विशेषांक प्रकाशित करने में असमर्थ ही रहे, किन्तु अब प्रसन्नता की बात है युद्धकालीन परिस्थितियों का तनाव ढीला होने के साथ-साथ आगामी जनवरी मास में, जबकि 'जीवन सखा' ११ वें वर्ष में पदार्पण करेगा, हमने एक सर्वाङ्ग सुन्दर, एवं वृहद् विशेषांक निकालने का आयोजन किया है। प्राकृतिक चिकित्सा में जलोपचार का कितना अधिक महत्व है, इसे दृष्टि में रखते हुए यह बताने की आवश्यकता नहीं कि प्राकृतिक चिकित्सा के अनुयायी स्वास्थार्थियों के लिए यह विशेषांक कितना उपयोगी होगा। यह अपने विषय का एक सुन्दर, सर्वांगपूर्ण एवं संग्रहणीय ग्रंथ केवल परिमित संख्या में ही छपेगा। अतः 'जीवन सखा' के स्थायी ग्राहकों को मिलने के बाद इसकी बहुत कम प्रतियां बच रहेंगी इसलिए अन्य प्राकृतिक स्वास्थ्य प्रेमियों की मांग हम बहुत कम संख्या में पूरी कर सकेंगे। अतः इसे प्राप्त करने के लिए अभी से ग्राहक बनिए, जिससे आपको निराश न होना पड़े।

विशेष जानकारी के लिए निम्नलिखित पते से पत्र-व्यवहार करें।

व्यवस्थापक,

76233

'जीवन सखा' कार्यालय, २८७, बादशाही मंडी,
चौक, इलाहाबाद।

Printed by M. L. Pandey at the Abhudaya Press Allahadad.
Published by Syt. Baleshwarprasad Sinha. 287, Badshahi Mandi,
Chowk, ALLAHABAD.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Compiled
1999-2000

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar